स्वाध्याय स्वमन्थन स्वावलम्बन

उ०प्र० राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

प्रयागराज

MAEC-108

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार एवं व्यापार नीति

खण्ड 01 : अन्तर्राट्रीय व्यापार सिद्धान्त–1

खण्ड 02 : अन्तर्राट्रीय व्यापार सिद्धान्त–2

खण्ड 03 : व्यापार की शर्तें तथा विकास एवं व्यापार

खण्ड 04 : विनिमय दर एवं भुगतान संतुलन

खण्ड 05 : अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाएं, क्षेत्रीय सहयोग एवं भारत का व्यापार

शान्तिपुरम् (सेक्टर–एफ), फाफामऊ, प्रयागराज–211013

www.uprtou.ac.in

MAEC-108
अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार एवं व्यापार नीति

खण्ड 01 अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार सिद्धान्त – 1

इकाई 01	व्यापार का क्लासिकल सिद्धान्त : ऐडम स्मिथ – निरपेक्ष लाभ सिद्धान्त, रिकार्डो–तुलनात्मक लागत का सिद्धान्त
02	मिल का पारस्परिक मांग सिद्धान्त, व्यापार की शर्तें
03	टॉजिग का व्यापार का मौद्रिक स्वरूप, हैबरलर का अवसर लागत सिद्धान्त
04	अन्तर्राष्ट्रीय एवं अन्तक्षेत्रीय व्यपार : हेक्सर ओलिन साधन प्रचुरता सिद्धान्त
05	सैमुएलसन का साधन मूल्य समानीकरण सिद्धान्त
06	विपरीत साधन गहनता : स्टोलपर – सैमुएलसन प्रमेय तथा रिजिन्सकी प्रमेय

खण्ड 02 अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार सिद्धान्त – 2

इकाई 01	उत्पादन, उपभोग एवं अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में समान्य संतुलन
02	व्यापार तटस्थ रेखाएं तथा प्रस्ताव वक्र
03	अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के नवीन सिद्धान्त : केविस, लिन्डर, पोसनर का तकनीकि गैप, वर्नन : उत्पाद चक्र केनन : मानव पूंजी, इमानुएल : असमान विनिमय सिद्धान्त
04	अन्तर उद्योग एवं अन्त्रा उद्योग व्यापार, लियान्तीफ विरोधाभास आदि
05	तकनीकि प्रगति एवं अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार
06	अपूर्ण बाजार एवं अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार, वस्तु विभेद, अल्पधिकार बाजार एवं विदेशी व्यापार

खण्ड 03 व्यापार की शर्तें तथा विकास एवं व्यापार

इकाई 01	व्यापार की शर्तों की विभिन्न अवधारणएं
02	प्रेविष – सिंगर विपरीत व्यापार शर्तो की अवधारणा
03	अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार एवं आर्थिक विकास : व्यापार के स्थैतिक एवं गत्यात्मक लाभ
04	आर्थिक विकास एवं अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार : हिक्स मॉडल सोडर्स्टन मॉलड आदि
05	बाजार में हस्तक्षेप की आवश्यकता : संरक्षण की दलीलें, विषु उद्योग तर्क, बाजार विकृतियां तथा वाह्य मितव्यायितॉएँ, तटकर एवं अम्यष
06	सीमा संघ सिद्धान्त एवं आर्थिक एकीकरण

खण्ड 04 विनिमय दर एवं भुगतान संतुलन

इकाई 01	विनिमय दर निर्धारण के सिद्धान्त : क्रय शक्तिसमता एवं भुगतान संतुलन सिद्धान्त, विनिमय की साम्य दर
02	व्यापार संतुलन एवं भुगतान संतुलन, भुगतान सतुंलन की मदें
03	भुगतान संतुलन में घाटा एवं असाम्य की धाराएं
04	भुगतान संतुलन में साम्य की विधियां : लोच एवं अवशोषण विधियां, व्यय घटाने तथा व्यय परिवर्तित करने की विधियां
05	भुगतान संतुलन समायोजन की मौद्रिक विधि एवं विदेशी व्यापार गुणक एवं आय विधि
06	आन्तरिक एवं वाह्य का एक साथ संतुलन : स्वान रेखाचित्र, मेण्डल फ्लेमिंग मॉडल, मौद्रिक एवं राजकोषीय विधियों द्वारा समायोजन

खण्ड 05 अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाएं, क्षेत्रीय सहयोग एवं भारत का व्यापार

इकाई 01	अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष, विश्व बैक व संबद्ध संस्थाएं
02	क्षेत्रीय व्यापार सहयोग : यूरोपियन यूनियन, सार्क आदि
03	विश्व व्यापार संगठन एवं अन्य विकसित देशों का व्यापार
04	भारत का विदेशी व्यापार : मात्रा, संघटक व दिशाएं
05	भारत में विदशी पूंजी एवं विदेशी ऋण
06	भारत का भुगतान संतुलन एवं व्यापार नीति

उ०प्र० राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

गुरूकुल से छात्रकुल

॥ सरस्वती नः सुभगा मयस्करत्॥

शान्तिपुरम् (सेक्टर-एफ), फाफामऊ, प्रयागराज-211013
www.uprtou.ac.in

MAEC-108
अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार एवं व्यापार नीति

परामर्श–समिति

प्रोफेसर सीमा सिंह	**कुलपति–अध्यक्ष**
प्रो. सत्यपाल तिवारी	निदेशक, मानविकी विद्याशाखा– कार्यक्रम संयोजक
श्री विनय कुमार	कुलसचिव–सचिव

विशेषज्ञ समिति

प्रो. सत्यपाल तिवारी	**अध्यक्ष**	उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज
डॉ अनिल कुमार यादव	**संयोजक**	उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज
प्रो.किरन सिंह		इलाहाबाद केन्द्रीय विश्वविद्यालय, प्रयागराज
प्रो. एम.के. सिंह		एम.जे.पी. रूहेलखण्ड विश्वविद्यालय, बरेली
डॉ. विश्वनाथ कुमार		एस.बी. पी.जी. कालेज, बड़ागाँव, वाराणसी
डॉ. अनूप कुमार		इलाहाबाद केन्द्रीय विश्वविद्यालय, प्रयागराज

पाठ्यक्रम समन्वयक

डॉ. अनिल कुमार यादव — सहायक आचार्य, अर्थशास्त्र, उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त वि.वि., प्रयागराज

सम्पादक

प्रो. कौशलेंद्र विक्रम मिश्र — अर्थशास्त्र विभाग एवं प्राचार्य, राम नगर पी.जी. कालेज, बाराबंकी

परिमापक

डॉ. अनिल कुमार यादव — सहायक आचार्य, अर्थशास्त्र, उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त वि.वि., प्रयागराज

लेखक मण्डल

लेखक

डॉ. अनिल कुमार यादव
सहायक आचार्य, अर्थशास्त्र, उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त वि.वि., प्रयागराज
डॉ. उमेश प्रताप सिंह
विभागाध्यक्ष, अर्थशास्त्र विभाग, ई.सी.सी., इलाहाबाद विश्वविद्यायल, प्रयागराज

मुद्रित– (माह), (वर्ष)

© उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज – (वर्ष)

ISBN-

सर्वाधिक सुरक्षित। इस पाठ्य सामग्री का कोई भी अंश उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति के बिना, मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज की ओर से श्री विनय कुमार, कुलसचिव द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित, (माह) (वर्ष), (मुद्रक का नाम व पता)

<u>खंड 01:</u> अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार सिद्धांत -01

<u>इकाई- 01</u>

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का प्रतिष्ठित सिद्धांत

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का अर्थ
1.3.1 अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के प्रमुख लक्षण
1.3.2 अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लाभ
2.4 अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का आधार
2.5 अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का प्रतिष्ठित सिद्धांत– भूमिका
2.6 अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के प्रतिष्ठित सिद्धांत की मान्यताएं
2.7 एडम स्मिथ का निरपेक्ष लाभ सिद्धांत
2.8 रिकार्डो का तुलनात्मक लागत सिद्धांत
2.9 अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के प्रतिष्ठित सिद्धांत की कमियां
2.10 मुल्यांकन
2.11 सारांश
2.12 शब्दावली
2.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सुची
2.14 अभ्यास प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र के खंड एक “अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार सिद्धांत -01” से सम्बंधित यह पहली इकाई है. इससे पहले अर्थशास्त्र के व्यष्टि तथा समष्टि सिद्धांतों के अध्ययन के पश्चात् आप विभिन्न सिद्धांतों के बारे में बता सकते हैं. अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, अर्थशास्त्र की ही एक विशेष स्थिति है. समस्त आंतरिक तथा अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक क्रियाओं का आधार वस्तुओं तथा सेवाओं का विनिमय या क्रय-विक्रय है; अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का सम्बन्ध राष्ट्रों के मध्य समस्त आर्थिक सौदों से है.

प्रस्तुत इकाई में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के आधार, अर्थ और अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के प्रतिष्ठित सिद्धांत के स्मिथ और रिकार्डो के सिद्धांतों के बारे में विस्तार से बताया गया है. विशेष रूप से रिकार्डो द्वारा प्रस्तुत अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के **तुलनात्मक लागत सिद्धांत** की विस्तार से चर्चा की गयी है. प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के अनुसार जब तक दो देशों के बीच लागतों का अंतर विद्यमान है तब तक कम से कम एक या दोनों ही देशों को व्यापार से लाभ होगा. इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के आधार एवं प्रकृति तथा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के प्रतिष्ठित सिद्धांत के सम्बन्ध में स्पष्ट जानकारी प्राप्त कर सकेगें.

1.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के बाद आप -

- अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के अर्थ एवं प्रकृति को समझ सकेंगे.
- अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का आधार जान सकेंगे.
- अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के प्रतिष्ठित सिद्धांत के बारे में जान सकेंगे.
- निरपेक्ष लाभ एवं तुलनात्मक लाभ सिद्धांत में अंतर समझ सकेंगे
- प्रतिष्ठित सिद्धांत की खूबियां तथा कमियां जान सकेंगे.

1.3 अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का अर्थ, प्रकृति एवं लाभ

व्यापार का अर्थ है वस्तुओं तथा सेवाओं का विनिमय या क्रय-विक्रय. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार, व्यापार का ही एक विशेष स्वरूप है. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का अर्थ है राष्ट्रों के मध्य वस्तुओं तथा सेवाओं का विनिमय या क्रय-विक्रय. स्वतंत्र अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का अर्थ उस वाणिज्यिक निति से है जो वस्तुओं तथा सेवाओं के घरेलु तथा विदेशी विनिमय के मध्य विभेद नहीं करती.

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार एक ऐसी क्रियाविधि या तरीका है जो की वस्तुओं, सेवाओं तथा संसाधनों के जरिये विश्व के विभिन्न देशों को आपस में जोडता है.आर्थिक समृद्धि मुख्यतया श्रम विभाजन और विष्टिकरण पर निर्भर करता है जबकि श्रम विभाजन और विष्टिकरण बाज़ार के आकार पर निर्भर करता है; बाज़ार का आकार अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से बढता है. व्यापार से तात्पर्य है पूर्ति, यदि घरेलू उपभोग देश के उत्पादन से अधिक हो, तथा मांग, यदि देश का उत्पादन घरेलू उपभोग से अधिक हो के लिए दूसरे स्रोतों पर निर्भरता. एक देश व्यापर न होने की स्थिति में आत्मनिर्भर हो सकता है परन्तु भौतिक रूप से वह काफी गरीब होगा; ऐसी आत्मनिर्भरता देश के उत्पादन के आकार तथा उसकी दक्षता को बिलकुल सीमित कर देती है.

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का सिधांत पुरे विश्व को एक समुदाय के रूप में देखता है जो की देशों की सीमाओं में भले विभाजित हो परन्तु आय व रहन – सहन के स्तर में वृद्धि के समान उद्देश्य से बंधा है. यह विकाश के अंतर्मुखी रणनीति की अपेक्षा बहिर्मुखी रणनीति की वकालत करता है जो की अपेक्षाकृत सरल और कम श्रमसाध्य तरीका है. सर डेनिस राबर्टसन(Dennis Robertson) अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को किसी देश के आर्थिक समृद्धि और विकास का इंजन कहा है.

1.3.1 अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के प्रमुख लक्षण

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के प्रमुख लक्षण निम्नलिखित हैं:

i. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में संसाधनों की गतिशीलता अनेक कारणों से अंतरक्षेत्रीय या घरेलू व्यापार की अपेक्षा काफी कम रहती है इसलिए संसाधनों और उत्पादों की कीमतों में भी अंतर होता है.

ii. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार विभिन्न राजनीतिक इकाइयों के बीच ही उत्पन्न होता है. राजनीतिक तंत्र के भिन्न होने से एक देश की राजनीतिक तथा आर्थिक नीतियां,विभिन्न कानून व नियम, सरकारी हस्तक्षेप के तरीके तथा उनकी गुणवत्ता इत्यादि भिन्न होते हैं.

iii. विभिन्न दशों के बीच सामाजिक- आर्थिक वातावरण भी काफी भिन्न होने से व्यापार उतप्पन होता है.

iv. अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में विभिन्न देशों के बाज़ारों में भी; भिन्न भाषा, रीति- रिवाज़, जलवायु, आदतें, प्राथमिकताएं इत्यादि भिन्न होने के कारण; भिन्नता होती है.असमांग बाज़ार अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का एक प्रमुख प्रभेदक लक्षण है.

v. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का एक प्रमुख प्रभेदक लक्षण यह है कि यह विभिन्न प्रकार कि मुद्राओं को अपने व्यापर में सम्मिलित करता है. चूंकि हर एक देश कि मुद्रा अलग है इसलिए विनिमय दरों और विदेशी विनिमय से सम्बंधित विभिन्न देशों कि नीतियां भी अलग- अलग है.

1.3.2 अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लाभ

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के मुख्य लाभ निम्नलिखित हैं:

i. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार विष्टिकरण और श्रम विभाजन को बढावा देकर व्यापार में सम्मिलित देशों के लाभों को बढाता है.

ii. अन्तर्राष्ट्रीय विष्टिकरण और भौगोलिक श्रम विभाजन से विश्व के संसाधनों का अनुकूलतम आवंटन सुनिश्चित करता है.

iii. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार, व्यापार में सम्मिलित देशों के उत्पादन में वृद्धि लाकर उन्हें समृद्ध बनाता है, उनके धन में वास्तविक वृद्धि लाता है. इस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से प्रत्येक देश के उपभोग या आर्थिक कल्याण में वृद्धि होती है.

iv. इस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार पुरे विश्व के उत्पादन तथा आर्थिक कल्याण में वृद्धि लाता है.

v. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार स्वतंत्र व्यापार को बढावा देकर एकाधिकरात्मक प्रवृतियों को रोकता है तथा एकाधिकरात्मक शोषण से उपभोक्ताओं को बचाता है.

vi. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार विश्व के सभी देशों के हितों कि रक्षा करता है और कच्चे मॉल कि उपलब्धि के लिए सभी देशों को समान अवसर प्रदान करता है.

vii. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक सहयोग तथा सांस्कृतिक मूल्यों के आदान प्रदान का माध्यम बनता है.

viii. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार बाज़ार के आकार को बढाता है जिससे और जटिल विष्टिकरण और श्रम विभाजन को बढावा मिलता है.

ix. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार प्रतियोगिता को बढावा देकर घरेलु उत्पादकों को अत्यधिक दक्ष होने और उत्पादों कि गुणवत्ता बढाने को प्रेरित करता है.

x. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार श्रम और पूंजी कि प्रकृति में गुणात्मक परिवर्तन लाता है साथ ही तकनीकी ज्ञान के आदान प्रदान के कारण भी काफी भिन्न प्रकार के परिवर्तन देशों में होते हैं.

1.4 अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार का आधार

अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार के सिद्धान्त के सामने एक मूलभूत प्रश्न यह रहा है कि दो या दो से अधिक देश आपस मे व्यापार क्यों करते हैं? कोई भी देश व्यापार तभी करेगा जब उसे व्यापार से लाभ होगा। तो प्रश्न यह उठता है कि व्यापार से लाभ क्यों होता है? इन्हीं प्रश्नों–उत्तरों में तुलनात्मक लागत सिद्धान्त का सार निहित है। प्रतिष्ठित अथशास्त्रीयों ने मात्र श्रम को ही उत्पादकता का साधन मानते हुए, विभिन्न देशों के बीच श्रम–उत्पादकता के अंतर को ही व्यापार कारण कहा है।

प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के अनुसार दो देशों के बीच लागतों या लागत दशाओं मे जितना ही अंतर होगा उतना ही व्यापार से लाभ होगा, यह लाभ व्यापार मे भाग लेने वाले एक या दोनों ही देशों को प्राप्त हो सकता है।

जिन कारणों से विभिन्न व्यक्ति आपस मे व्यापार करते हैं उन्ही कारणों से विभिनन राष्ट्र भी एक दूसरे से व्यापार करते हैं। कोई भी व्यक्ति अपने उपभोग के लिए आवश्यक सभी वस्तुओं व सेवाओं का उत्पादन नहीं कर सकता है और यह बात राष्ट्रों के संदर्भ में भी लागू होती है। प्रकृति ने पृथ्वी की सतह पर उत्पादन के संसाधनों का वितरण असमान ढंग से किया है। जलवायु दशाओं, खनिज संसाधनों, श्रम तथा पूंजी संसाधनों, प्राकृतिक संसाधन प्रचुरता, तकनीकी क्षमताओं, उद्यमीय तथा प्रबंधकीय क्षमताओं और

उन सभी चीजों जो कि किसी देश की उत्पादन क्षमता को निर्धारित करती है, में विभिन्न राष्ट्रों की स्थिति भिन्न होती है। उत्पादन संभावनाओं मे यह अन्तर ऐसी स्थितियों को जन्म देता है जहाँ कुछ देश अन्य देशों की अपेक्षा कुछ वस्तुओं तथा सेवाओं का उत्पादन अधिक दक्षतापूर्वक कर सकते हैं और कोई भी देश सभी वस्तुओं तथा सेवाओं का उत्पादन पूरी दक्षता पूर्वक अर्थात् न्यूनतम संभव उत्पादन लागत पर नहीं कर सकता है।

जिस प्रकार व्यक्तियों के बीच श्रम–विभाजन होता है उसी तरह विश्व के विभिन्न राष्ट्रों के मध्य श्रम विभाजन तथा विशिष्टीकरण हो सकता है। एक राष्ट्र उस वस्तु या सेवा के उत्पादन में विशिष्टता हासिल करता है जिसमें कि वह अन्य देशों की अपेक्षा उत्पादन में श्रेष्ठ होता है विनिमय की प्रक्रिया में व्यक्ति या उपभोक्ता जिस प्रकार अपनी संतुष्टि या विनिमय से लाभ को अधिकतम करने का प्रयास करता है उसी प्रकार अन्र्राष्ट्रीय व्यापार में एक राष्ट्र अन्य राष्ट्रों से कम कीमत पर वस्तुओं तथा सेवाओं की खरीद करके लाभ प्राप्त करता है।

वस्तुतः वस्तुओं तथा सेवाओं के विनिमय से प्राप्त होने वाला लाभ ही अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का आधार है यदि कोई लाभ प्राप्त नहीं होगा तो व्यापार नहीं होगा। और व्यापार से लाभ का तात्कालिक कारण वस्तुओं और सेवाओं की कीमतों में विद्यमान अंतर है जो कि पूर्ति तथा माँग की दशाओं में अन्तर के कारण उत्पन्न होता है।

इस प्रकार वस्तुओं व सेवाओं की कीमतों में अन्तर, जो कि अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार का आधार है, निम्नलिखित स्थितियों के कारण उत्पन्न हो सकता है

(क) यदि पूर्ति–दशाओं में अन्तर हो, या

(ख) यदि माँग–दशाओं में अन्तर हो या

(ग) यदि मांग और पूर्ति दोनों की दशाओं में अन्तर हों

स्पष्ट है कि यदि दो देशों में माँग तथा पूर्ति, दोनों दशाएँ एक समान है, तो उनमें कोई व्यापार सम्भव नहीं है, क्योंकि तब व्यापार से किसी भी देश को लाभ नहीं होगा।

पूर्ति दशाओं में अंतर बहुत सारे कारणों से पैदा हो सकते हैं, जैसे–आर्थिक संसाधनों की उपलब्धता, इन संसाधनों की दक्षता का स्तर, उत्पादन में प्रस्तुत तकनीकी का स्तर, श्रम की योग्यता, साधन गहनता इत्यादि। वास्तव में पूर्ति–पक्ष राष्ट्रों के बीच साधन–सम्पन्नता तथा उत्पादन–दक्षता में अंतर का बताता है, जो कि वस्तुओं तथा सेवाआं की उत्पादन लागतों और बिक्री कीमतों में व्यक्त होती है।

दो देशों के मध्य पूर्ति दशाएँ या उत्पादन लागत समान होने की स्थिति में भी, माँग दशाओं मे अंतर के कारण कीमतों में भिन्नता हो सकती है। माँग में अन्तर मुख्यतः आय के स्तरों तथा रुचि पर निर्भर करता है।

हम उपरोक्त तीनों स्थितियों को चित्र के माध्यम से दर्शा सकते हैं:

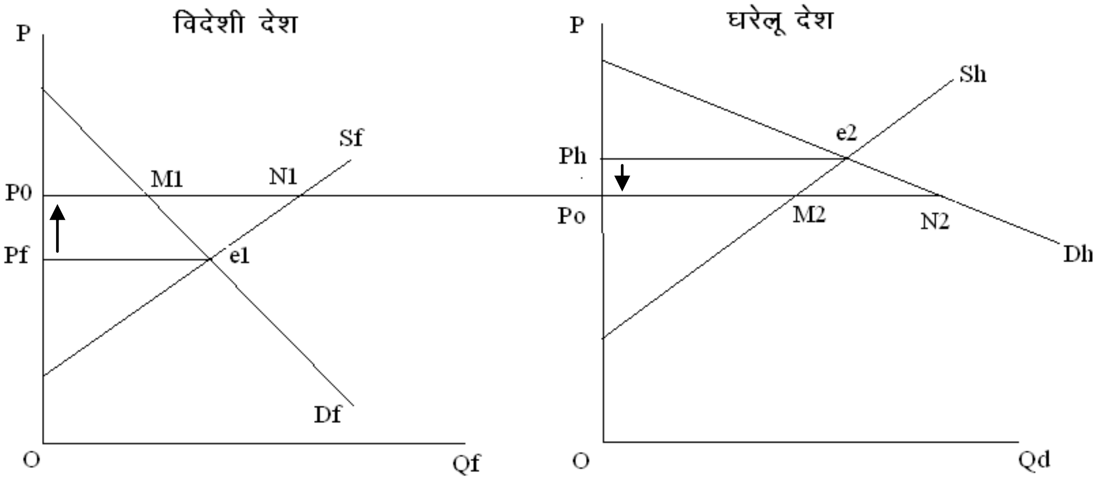

चित्र–1.1 जब पूर्ति दशाएँ समान हों, तथा मांग दशाओं में अन्तर हो

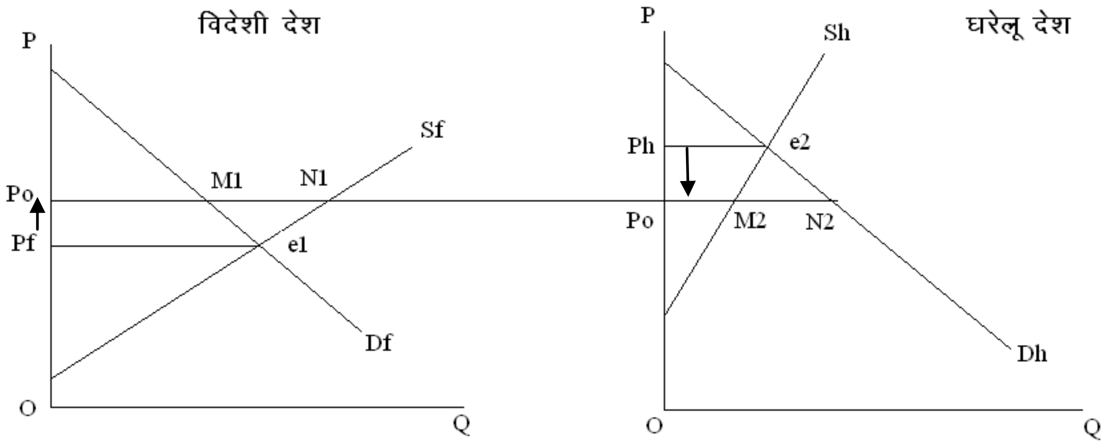

चित्र–1.2 जब पूर्ति दशाएँ समान हों, तथा मांग–दशाओं में अन्तर हो

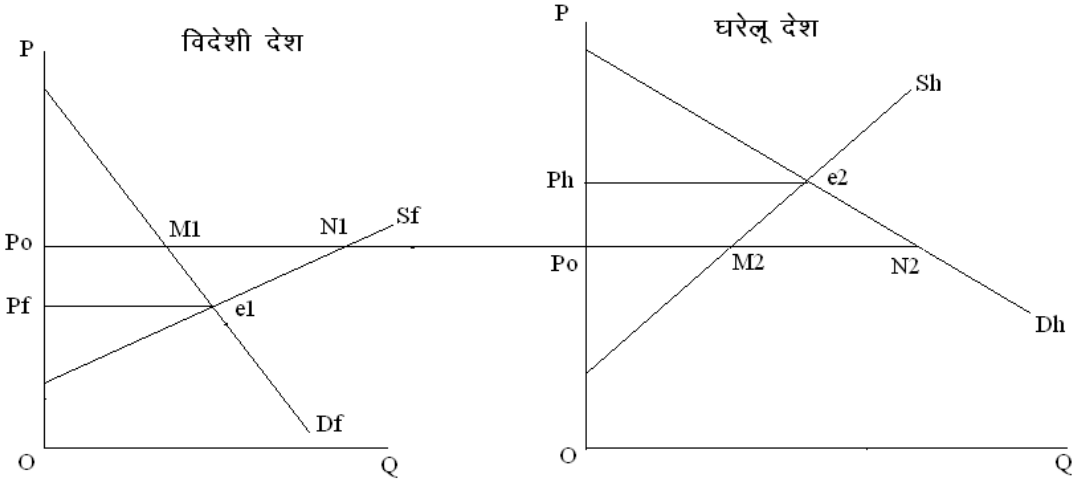

चित्र–1.3 जब पूर्ति तथा मांग दशाएँ दोनों भिन्न हों।

उपरोक्त तीनों चित्रों मे विदेशी तथा घरेलू देश की, एक दिए हुए वस्तु या उत्पाद के संदर्भ में, माँग तथा पूर्ति की विभिन्न दशाओं को दर्शाया गया है। X–अक्ष पर वस्तु की मात्रा तथा Y अक्ष पर कीमत प्रदर्शित की गयी है। Sf तथा Df क्रमशः विदेशी देश के पूर्ति तथा मांग वक्र को और Sh तथा Dh क्रमशः घरेलू देश के पूर्ति तथा माँग वक्र है। Pf तथा Ph क्रमशः विदेशी तथा घरेलू देश में व्यापार न होने की दशा में कीमतें हैं। P_0 व्यापार शुरु के पश्चात् दोनों देशों की संतुलन कीमत को व्यक्त करता है।

उपरोक्त सभी चित्रों में, विदेशी देश में वस्तु की कीमत (Pf) घरेलू देश की कीमत (Ph) से कम है (Pf<Ph) यह अंतर निम्नलिखित कारणों से है –

(क) चित्र–1.1 में पूति–दशाएँ भिन्न है। विदेशी पूर्ति वक्र (Sf) घरेलू पूर्ति वक्र(Sh) की अपेक्षा अधिक लोचदार है।

(ख) चित्र–1.2 में मांग–दशाओं में भिन्नता है। घरेलू मांग वक्र (Dh) विदेशी मांग वक्र (Df) की अपेक्षा अधिक लोचदार है।

(ग) चित्र–1.3 में पूर्ति तथा मांग–दशाएँ दोनों भिन्न है।

चूंकि घरेलू देश में वस्तु की कीमत विदेशी देश की अपेक्षा अधिक है, इसलिए विदेशी देश से घरेलू देश को वस्तु का आयात होगा। इस प्रकार कीमत अंतर के कारण वस्तु का व्यापार होगा जिसमें विदेशी देश निर्यातक तथा घरेलू देश आयातक होगा। वस्तु का विदेशी देश से निर्यात तथा घरेलू देश से आयात तब तक जारी रहेगा जब तक कीमतों में अंतर पूरी तरह सामाप्त नहीं हो जाता है और घरेलू देश का आयात विदेशी देश के निर्यात की मात्रा के बराबर और स्थिर नहीं हो जाता। चित्र में संतुलन की स्थिति मे कीमत Po है जिस पर आयात और निर्यात की मात्राएँ स्थिर तथा एक दूसरे के बराबर है। Po कीमत पर, कीमत अंतर समाप्त हो जाने के बाद आगे व्यापार के लिए कोई प्रेरणा नहीं होगी।

चित्र–1.4 में, दोनों देशों में समान पूर्ति और मांग की स्थितियाँ दर्शायी गयी है। चूंकि कीमतों में कोई अंतर नहीं है (Ps=Ph) इसलिए व्यापार संभव नहीं है।

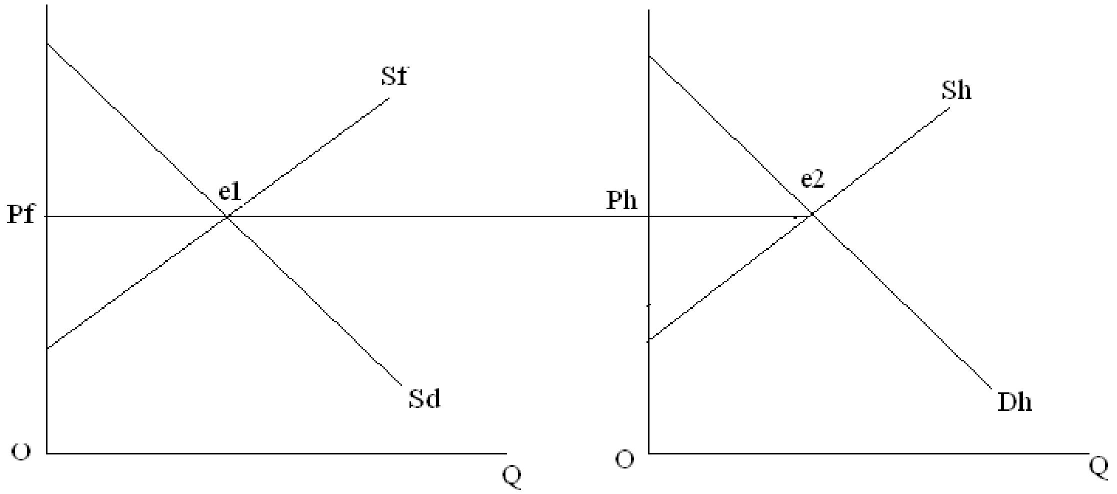

चित्र–1.4 जब पूर्ति व मांग दशाएँ दोनों समान हैं।

इस प्रकार जब कीमतों में अन्तर होगा तो व्यापार से दोनों देशों को लाभ होगा और उनके उपभोग तथा कल्याण के स्तर में वृद्धि होगी। दूसरी ओर अंतर्राष्ट्रीय व्यापर विश्व के राष्ट्रों के समक्ष यह संभावनाएं खोल देता है कि वे उन आर्थिक गतिविधियों में विशिष्टीकरण प्राप्त करें जिनमें वे सर्वाधिक सम्पनं तहत दक्ष हैं. अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर यह उप–विभाजन तथा विशिष्टीकरण, व्यापार में भाग लेने वाले सभी देशों को लाभ पहुँचाता है।

अंतर्राष्ट्रीय व्यापार वस्तु कीमतों के साथ–साथ कीमतों में भी सामानीकरण लाता है।

1.5 अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का प्रतिष्ठित सिद्धांत – भूमिका

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार सिद्धांत का मुलभूत प्रश्न यह है की अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार क्यों होता है? या अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से लाभ क्यों होता है? प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने श्रम को उत्पादन का एक मात्र साधन मानते हुए कहा की विभिन्न देशों के बीच श्रम उत्पादकता में अंतर के कारण ही व्यापार होता है.

प्रतिष्ठित सिद्धांत से पूर्व आधुनिक राष्ट्र राज्य के विकास के दौरान १७वीं तथा १८ वीं शताब्दी में वणिकवादी विचारधारा थी . वणिकवाद में कई आधुनिक तत्व थे; जैसे वणिकवादी अत्यधिक राष्ट्रवादी थे, उनके लिए अपने देश का कल्याण सर्वोपरि था, राष्ट्रीय उदेश्यों को प्राप्त करने के लिए वे आर्थिक गतिविधियों के नियमन और आयोजन के पक्ष में थे. वणिकवादीयों के लिए एक देश के समृद्ध होने का सबसे महत्वपुर्ण उपाय अधिक से अधिक बहुमूल्य धातुएं विशेष रूप से सोना अर्जित करना है. निर्यात से यदि देश में बहुमूल्य धातुएं या सोना आता है तो उसका वे समर्थन करते हैं परन्तु आयात से सोना देश के बाहर जायेगा. इसलिए वे विनियमित, नियन्त्रित तथा प्रतिबंधित व्यापर नीति के पक्ष में थे.

प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों में एडम स्मिथ प्रथम अर्थशास्त्री थे जिन्होंने दिखाया की किसी राष्ट्र के धन का सही मापन सोने से नहीं बल्कि उन वस्तुओं और सेवाओं से होता जो देश में उत्पादित होती है.अपनी प्रसिद्ध पुस्तक **"एन इन्क्वायरी इनटू नेचर एंड काजेज आफ वेल्थ आफ नेशंस"** में उन्होंने वणिकवादी विचारधारा को गलत तथा अतार्किक बताया. उनके अनुसार यदि सरकार विदेशी व्यापार से वणिकवादी नियंत्रणों को हटा दे तो राष्ट्र के उत्पादन यानि धन में तेजी से वृद्धि होगी. स्मिथ वणिकवादीयों की इस धारणा का भी खंडन करते हैं की अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से एक देश को लाभ दुसरे की कीमत पर होगा.स्मिथ ने दिखाया की अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से अन्तर्राष्ट्रीय श्रम विभाजन के द्वारा व्यापार में लगे सभी देशों को लाभ होता है.

स्मिथ और रिकार्डो की विचारधारा के केन्द्र में व्यक्ति है; राष्ट्र तो मात्र उसके नागरिकों का योग है. इसलिए उनके लिए अर्थशास्त्र का सबसे महत्वपूर्ण विषय उपभोक्ता था. मनुष्य मेहनत और उत्पादन उपभोग के लिए करता है. और कोई भी चीज जो उपभोग को बढ़ा दे या रिकार्डो के शब्दों में 'आनंदों के योग' को बढ़ा दे, उसका समर्थन किया जाना चाहिए. स्मिथ और रिकार्डो द्वारा प्रस्तुत अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का सिद्धान्त मुख्यतः इसी बात की व्याख्या करता है की व्यापार से कैसे व्यापार में लगे देशों को लाभ होता है अर्थात देश के लोगों के उपभोग में वृद्धि होती है.

एडम स्मिथ ने अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के प्रतिष्ठित सिद्धांत के निर्माण की आधारशिला रखी. परन्तु डेविड रिकार्डो ने एडम स्मिथ के **सिद्धांत को** और स्पष्ट किया, इसका विस्तार किया तथा इसे वैज्ञानिक रूप में प्रस्तुत किया. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के प्रतिष्ठित सिद्धांत को रिकार्डो द्वारा प्रस्तुत **तुलनात्मक लागत सिद्धांत या तुलनात्मक लाभ सिद्धांत** द्वारा जाना जाता है. बाद में जान स्टुअर्ट मिल ने **तुलनात्मक लागत सिद्धांत में** मांग पक्ष को समिलित कर प्रतिपूरक मांग का सिद्धांत दिया.

1.6 अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के प्रतिष्ठित सिद्धांत की मान्यताएं

चूंकि वास्तविक जगत में चीजें काफी जटिल हैं और तेजी से बदलती रहती हैं इसलिए प्रत्येक आर्थिक सिद्धांत कुछ निश्चिच मान्यताओं पर आधारित होते हैं जो की वास्तविकता के ही सरलीकृत रूप होती हैं. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का प्रतिष्ठित सिद्धांत निम्नलिखित मान्यताओं पर आधारित है:

1. केवल दो देश हैं जो दो समरूप वस्तुओं का व्यापार करते हैं।
2. श्रम ही उत्पादन का एकमात्र साधन है अर्थात् यह सिद्धांत 'मूल्य के श्रम सिद्धांत' पर आधारित है। सभी श्रम–इकाईयाँ समरूप हैं।
3. उत्पादन में पैमाने के स्थिर प्रतिफल की स्थिति है।
4. परिवहन लागतें शून्य है।
5. उत्पादन के साधन देश के भीतर पूर्णरूप से गतिशील तथा देशों के मध्य पूर्णरूप से अगतिशील हैं।
6. दोनों देशों में पूर्ण रोजगार है तथा पूर्ण–प्रतियोगिता की स्थिति पायी जाती है।

7. अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार पर किसी प्रकार का प्रतिबंध नहीं है। अर्थात् दो देशों में स्वतंत्र व्यापार हो रहा है।
8. दोनों देशों के मध्य वस्तु–विनिमय प्रणाली के आधार पर व्यापार होता है अर्थात् मुद्रा के अस्तित्व की उपेक्षा की गयी है।
9. उपभोक्ता की रुचि, उत्पादन फलन, उत्पादन के साधनों की मात्रा आदि को स्थिर मान लिया गया है।

1.7 एडम स्मिथ का निरपेक्ष लाभ सिद्धांत

एडम स्मिथ ने अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का **निरपेक्ष लाभ सिद्धांत** प्रस्तुत किया. एडम स्मिथ ने **लागतों में निरपेक्ष अंतर के आधार पर** अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का **सिद्धांत** प्रस्तुत किया.यदि एक देश को एक वस्तु के उत्पादन में निरपेक्ष लागत लाभ तथा दुसरे वस्तु के उत्पादन में निरपेक्ष हानि हो तो फिर व्यापार होगा. प्रत्येक देश उस वस्तु का निर्यात करेगा जिसके उत्पादन मे निरपेक्ष लागत लाभ होगा और उस वस्तु का आयात करेगा जिसके उत्पादन मे निरपेक्ष लागत हानि होगी.इस तरह स्वतंत्र अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार बाज़ार की सीमा में विस्तार करके श्रम के अत्यधिक विशिष्टिकरण को संभव बनता है; फलस्वरूप श्रम के सीमापार क्षेत्रीय विभाजन से प्राप्त लाभों को बढाता है.

एडम स्मिथ के अनुसार अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार से बाजार का विस्ताार होता है जिससे श्रम विभाजन की संभावना बढ़ जाती है। अर्न्तराष्ट्रीय श्रम–विभाजन और उसके फलस्वरूप होने वाले विशिष्टीकरण के कारण उत्पादन और उपभोग में हुई वृद्धि का लाभ व्यापार में सम्मिलित सभी देशों को होता है। जिस प्रकार दर्जी अपने जूतों को स्वयं नहीं बनाता, बल्कि कपड़े के बदले मोची से उसे खरीदता है। इस प्रकार दर्जी और मोची दोनों का लाभ होता है। उसी प्रकार, स्मिथ के अनुसार, एक देश भी दूसरे देशों के साथ व्यापार करके लाभ प्राप्त कर सकता है।

स्मिथ के अनुसार दो देशों के बीच व्यापार तभी होता है जब लागतों में निरपेक्ष अंतर हो अर्थात् एक देश को एक वस्तु के उत्पादन में निरपेक्ष लाभ तथा दूसरे देश को दूसरी वस्तु के उत्पादन में निरपेक्ष लाभ हो। ऐसी स्थिति में प्रत्येक देश को उस वस्तु के उत्पादन में विशिष्टीकरण हासिल करना चाहिए और निर्यात करना चाहिए, जिसमें उसे निरपेक्ष लाभ हो तथा उस वस्तु का आयात करना चाहिए जिसमें उसे निरपेक्ष हानि है।

माना दो देश A और B हैं दो वस्तु X और Y का उत्पादन कर रहे हैं। दोनों देशों की लागत दशाओं को निम्नलिखित सारणी में दिखाया गया है।

सारणी 1.1: दो देशों में दो वस्तुओं की लागतों की तुलना

	प्रति इकाई उत्पादन लागत (श्रम घण्टों में)	
	1 इकाई वस्तु X की उत्पादन लागत	1 इकाई वस्तु Y की उत्पादन लागत
देश–A	100	200
देश–B	200	100

उपरोक्त सारणी से स्पष्ट है कि देश A में वस्तु X की उत्पादन लागत (100 श्रम घण्टे), देश B में X की लागत (200 श्रम घण्टे) की आधी है। इस प्रकार वस्तु Y की देश A में लागत देश B की अपेक्षा दुगुनी है। स्पष्ट है कि देश A, वस्तु X के उत्पादन में निरपेक्ष रूप से अधिक दक्ष है जबकि देश B, वस्तु Y के उत्पादन में अधिक दक्ष है। यदि देश A सिर्फ X का तथा B सिर्फ Y का उत्पादन करें तो कुल उत्पादन बढ़ जायेगा।

विशिष्टीकरण के पश्चात् देश A कुल 300 श्रम घण्टे (100+200) से वस्तु X की 3 इकाई का उत्पादन करेगा, इसी प्रकार देश B, कुल 300 श्रम घण्टे (200+100) से 3 इकाई वस्तु Y का उत्पादन करेगा।

सारणी 1.2: दो देशों में दो वस्तुओं की व्यापार के पूर्व तथा पश्चात् उत्पादन की तुलना

	वस्तु–X उत्पादन		वस्तु–Y उत्पादन		कुल उत्पादन	
	व्यापार के पूर्व	व्यापार के पश्चात्	व्यापार के पूर्व	व्यापार के पश्चात्	व्यापार के पूर्व	व्यापार के पश्चात्
देश–A	1	3	1	0	2	3
देश–B	1	0	1	3	2	3
कुल उत्पादन	2	3	2	3	**4**	**6**

सारणी 1.2 से स्पष्ट है कि विशिष्टीकरण के पश्चात् उतने ही संसाधनों (श्रम घण्टों) से दोनों ही देशों में दोनों ही वस्तुओं का एक–एक इकाई अधिक उत्पादन होगा तथा कुल संयुक्त उत्पादन 4 से बढ़कर 6 हो जायगा।

व्यापार के फलस्परूप उत्पादन में हुई वृद्धि दोनों देशों के कल्याण या उपभोग में कितनी वृद्धि लाएगा यह अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार शर्त पर निर्भर करेगा। यदि अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार शर्त या कीमत अनुपात 1x=1y हो तो दोनों देशों को व्यापार से लाभ होगा। जैसा कि **सारणी** 1.3 से स्पष्ट है–

सारणी 1.3: व्यापार के पश्चात् उपभोग(यदि अर्न्तराष्ट्रीय कीमत अनुपात 1x=1y हो)

	वस्तु–x	**वस्तु–y**	**कुल**
देश–A	2	1	3
देश–B	1	2	3

व्यापार से पूर्व दोनों देश वस्तु X और Y की एक–एक इकाई का उपभाग कर रहे थे, परन्तु अब देश A 1x के बदले 1y प्राप्त करेगा और बचे हुए 2y का उपभोग करेगा। इसी प्रकार देश B भी पहले की अपेक्षा एक इकाई अधिक वस्तु y का उपभोग करेगा। इस प्रकार व्यापार से दोनों ही देशों के जीवन के रहन–सहन के स्तर में सुधार आएगा।

एडम स्मिथ की अर्न्तराष्ट्रीय व्यापर से लाभ की व्याख्या अत्यंत सरल और स्पष्ट है। तथा स्वतंत्र व्यापार के पक्ष में बड़े ही दृढ़ता पूर्वक अपने तर्क को प्रस्तुत करती है। हालांकि यह सिद्धान्त संकीर्ण है और थोड़ी जटिल स्थितियों मे व्यापार से होने वाले लाभों की व्याख्या करने में असमर्थ है।

1.8 रिकार्डो का तुलनात्मक लागत सिद्धांत

रिकार्डो द्वारा प्रस्तुत अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का सिद्धान्त **तुलनात्मक लागत सिद्धांत** कहा जाता है. रिकार्डो एक कदम और आगे बढकर यह दिखाते हैं की यदि एक देश को दुसरे देश की अपेक्षा किसी भी वस्तु के उत्पादन में निरपेक्ष लागत लाभ नहीं है तब भी व्यापार होगा और व्यापार में लगे सभी देशों को लाभ होगा. उनके अनुसार अन्य बातें सामान रहने पर एक देश उस वस्तु के उत्पादन में विशिष्टिकरण प्राप्त करेगा और निर्यात करेगा जिसमें उसे अधिकतम **तुलनात्मक लागत लाभ** या न्यूनतम **तुलनात्मक लागत** हानि हो. इसी प्रकार देश उस वस्तु का आयात करेगा जिसमें उसे **तुलनात्मक लागत लाभ** न्यूनतम या **तुलनात्मक लागत** हानि अधिकतम हो. इस प्रकार देश अपने उत्पादन और उपभोग को अधिकतम करने में समर्थ होगा.

रिकार्डो ने अपने सिद्धांत को एक उदहारण द्वारा समझाया.माना दो देश इंग्लैंड और पुर्तगाल हैं जो दो वस्तुओं कपडे और शराब का उत्पादन करते हैं. सारणी १ में दोनों देशों की लागत दशाओं को दर्शाया गया है.

सारणी 1.4: इंग्लैंड और पुर्तगाल के लागत दशाओं की तुलना

देश	**उत्पादन की लागत(श्रम घंटों में)**		**घरेलु विनिमय अनुपात**
	१ इकाई शराब	**१ इकाई कपड़ा**	

पुर्तगाल	80	90	1 इकाई शराब = 80/90 = 0.89 इकाई कपड़ा या 1इकाई कपड़ा=1.125 इकाई शराब
इंग्लैंड	120	100	1 इकाई शराब =120/100 =1.2 इकाई कपड़ा या 1इकाई कपड़ा=.83 इकाई शराब
तुलनात्मक लागत अनुपात	80/120 =0.67	90/100= 0.90	

तुलनात्मक लागत लाभ जानने के लिए हम दोनों देशों में एक वस्तु की उत्पादन लागत की तुलना दूसरे वस्तु की उत्पादन लागत से करते हैं. रिकार्डो के उदहारण में –

$$\frac{\text{पुर्तगाल में शराब की श्रम लागत}}{\text{इंग्लैंड में शराब की श्रम लागत}} < \frac{\text{पुर्तगाल में कपड़ा की श्रम लागत}}{\text{इंग्लैंड में कपड़ा की श्रम लागत}} < 1$$

अर्थात 80/120 < 90/100 < 1

अर्थात 0.67 < 0.90 < 1

पुर्तगाल में दोनों वस्तुओं की एक इकाई की उत्पादन लागत इंग्लैंड से कम है; पुर्तगाल दोनों वस्तुओं के उत्पादन में निरपेक्ष लाभ प्राप्त कर रहा है. परन्तु वह कपड़े की अपेक्षा शराब के उत्पादन में अधिक **तुलनात्मक लाभ** प्राप्त कर रहा है. क्यूंकि एक इकाई शराब के उत्पादन में पुर्तगाल की श्रम लागत, इंग्लैंड में शराब की श्रम लागत का मात्र 67% है, जबकि कपड़े में यह 90% है.

स्पष्ट है कि इंग्लैंड दोनों वस्तुओं के उत्पादन में निरपेक्ष हानि प्राप्त कर रहा है. परन्तु वह कपड़े की अपेक्षा शराब के उत्पादन में अधिक **तुलनात्मक** हानि प्राप्त कर रहा है. रिकार्डो के अनुसार चूँकि पुर्तगाल **का तुलनात्मक लाभ** शराब के उत्पादन में अधिक है और इंग्लैंड **की तुलनात्मक** हानि कपड़े के उत्पादन में कम है इसलिए यदि पुर्तगाल शराब के उत्पादन में तथा इंग्लैंड कपड़े के उत्पादन में पूर्ण विशिष्टिकरण करे तो व्यापार से दोनों देशों को लाभ होगा. **अर्थात दक्षता को वहाँ विशिष्टिकरण करना चाहिए जहां वह अधिक हो और अदक्षता को वहाँ विशिष्टिकरण करना चाहिए जहां वह कम हो.**

विशिष्टिकरण के पश्चात दोनों वस्तुओं, कपडे और शराब, का उत्पादन व्यापार शुरू होने से पहले के उत्पादन की अपेक्षा अधिक होगा. इसे आप निम्नलिखित ढंग से समझ सकते हैं:

पुर्तगाल में कुल संसाधन = 170 श्रम घंटे

इंग्लैंड में कुल संसाधन = 220 श्रम घंटे

सारणी 1.5: व्यापार ना होने की स्थिति में उत्पादन और उपभोग

देश	शराब	कपड़ा	कुल उत्पादन तथा उपभोग
पुर्तगाल	1	1	2
इंग्लैंड	1	1	2
विश्व	2	2	4

व्यापार ना होने की स्थिति में दोनों देश एक – एक इकाई कपडे और शराब का उत्पादन तथा उपभोग करते हैं और कुल विश्व उत्पादन चार इकाई के बराबर है.

सारणी 1.6: व्यापार होने की स्थिति में उत्पादन और उपभोग

देश	शराब	कपड़ा	कुल उत्पादन तथा उपभोग
पुर्तगाल	2.125	0	2.125
इंग्लैंड	0	2.2	2.2
विश्व	2.125	2.2	4.325

व्यापार शुरू होने के पश्चात विशिष्टिकरण के कारण दोनों वस्तुओं, कपडे और शराब, का उत्पादन तथा उपभोग अधिक होगा. पुर्तगाल अब अपने कुल 170 श्रम घंटे संसाधन से 2.125 इकाई शराब का उत्पादन करेगा जबकि इंग्लैंड में कुल 220 श्रम घंटे से 2.2 इकाई कपडे का उत्पादन करेगा और कुल विश्व उत्पादन 4 इकाई से बढ़कर 4.325 इकाई हो जायगा.

परन्तु वास्तव में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से होने वाला उत्पादन लाभ यह सुनिश्चित नहीं करता की व्यापर से दोनों देशों के कल्याण या उपभोग में वृद्धि होगी. उत्पादन लाभ सकल राष्ट्रिय आय में लाभ या आय लाभ है. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के फलस्वरूप व्यपारत देशों के आर्थिक रहन सहन का स्तर कितना ऊपर उठा इसके निर्धारण में उपभोग लाभ महत्वपूर्ण है. प्रत्येक देश के उपभोग या कल्याण में कितनी वृद्धि होगी यह पूरी तरह से व्यापार शर्त पर निर्भर करेगा.

इंग्लैंड एक इकाई शराब के उत्पादन के लिए 120 श्रम घंटे तथा एक इकाई कपडे के उत्पादन के लिए 100 श्रम घंटे ले रहा है. स्पष्ट है कि इंग्लैंड में शराब की उत्पादन लागत कपडे की उत्पादन लागत से अधिक है-

1 इकाई शराब = 120/100 या 1.2 इकाई कपड़ा

1 इकाई कपड़ा = 0.83 इकाई शराब.

पुर्तगाल एक इकाई शराब के उत्पादन के लिए 80 श्रम घंटे तथा एक इकाई कपडे के उत्पादन के लिए 90 श्रम घंटे ले रहा है.स्पष्ट है कि पुर्तगाल में कपडे की उत्पादन लागत शराब की उत्पादन लागत से अधिक है-

1 इकाई शराब = 80/90 या 0.89 इकाई कपड़ा.

यदि अन्तर्राष्ट्रीय विनिमय अनुपात या व्यापार शर्त हो :

1 इकाई कपडा **= 1** इकाई शराब**;**

अर्थात पुर्तगाल शराब के **1** इकाई निर्यात से **1** इकाई कपडा प्राप्त करेगा, जबकि घरेलु स्तर पर सिर्फ **0.89** इकाई कपडा मिलता था क्योंकि पुर्तगाल का घरेलु विनिमय अनुपात है: **1** इकाई शराब **= 0.89** इकाई कपड़ा. तो पुर्तगाल को व्यापार से लाभ होगा: **(1 – 0.89 =) 0.11** इकाई कपडा.

शराब के पदों में देखें तो पुर्तगाल घरेलु स्तर पर **1** इकाई कपडा के लिए **1.125** इकाई शराब देता है (क्योंकि पुर्तगाल का घरेलु विनिमय अनुपात है: **1**इकाई कपड़ा**=1.125** इकाई शराब); जबकि व्यापर के पश्चात सिर्फ **1** इकाई शराब के निर्यात से **1** इकाई कपडा प्राप्त करेगा अर्थात पुर्तगाल को व्यापार से लाभ होगा (1.125 – 1=) 0.125 इकाई शराब.

इसी प्रकार इंग्लैंड को व्यापार से लाभ होगा (1.20 - 1 =) 0.20 इकाई कपड़ा या (1 - 0.83 =) 0.17 इकाई शराब; क्योंकि इंग्लैंड का घरेलु विनिमय अनुपात है: 1 इकाई शराब = 1.20 इकाई कपड़ा या 1इकाई कपड़ा=0.83 इकाई शराब. अर्थात इंग्लैंड घरेलु स्तर पर1 इकाई शराब के लिए 1.20 इकाई कपडा देता है या 1 इकाई कपडा से सिर्फ 0.83 इकाई शराब ही मिलती है.

यदि व्यापार पुर्तगाल की घरेलु विनिमय अनुपात पर होता है तो इसे व्यापार से कोई लाभ नहीं होगा, व्यापार का समस्त लाभ इंग्लैंड को होगा. इसके विपरीत यदि व्यापार इंग्लैंड की घरेलु विनिमय अनुपात पर होता है व्यापार का समस्त लाभ पुर्तगाल ले जायेगा. वास्तविक अन्तर्राष्ट्रीय विनिमय अनुपात या व्यापार शर्त दो देशों के इन्हीं घरेलु विनिमय अनुपातों के बीच कंही निर्धारित होगी. यदि व्यापार शर्त दो देशों के घरेलु विनिमय अनुपातों के बिलकुल बीच में स्थित है तों दोनों ही देशों को व्यापार से बराबर बराबर लाभ होगा.

1.9 अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के प्रतिष्ठित सिद्धांत की कमियां

अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार का प्रतिष्ठित सिद्धांत बड़े ही तार्किक और सुन्दर ढंग से व्यापार से होने वाले लाभों की व्याख्या करता है। तुलनात्मक लागतों में विद्यमान अन्तर के कारण अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार सभी व्यापाररत देशों के लिए लाभदायक होगा। प्रतिष्ठित अथशास्त्री बड़े ही स्पष्ट ढ़ंग से इस बात को कहते हैं कि विभिन्न देशों के उत्पादन फलन अलग–अलग होते हैं, इसी कारण तुलनात्मक लागतों में अन्तर होता है।

प्रथम विश्वयुद्ध तक यह सिद्धांत अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार का एक लोकप्रिय सिद्धांत बना रहा। संसाधनों के अनुकूलतम प्रयोग को सुनिश्चित करने और इस प्रकार कुल उत्पादन तथा उपभोग में वृद्धि करने की दृष्टि से इस सिद्धांत की खूबियाँ बिल्कुल स्पष्ट हैं। परन्तु यह सिद्धांत जिन मान्यताओं पर आधारित हैं वे व्यवहारिक रूप से अवास्तविक हैं। इसलिए इस सिद्धांत का विश्लेषणात्मक ढांचा काफी कमजोर रहा है। आधुनिक अर्थशास्त्रियों ओहलिन, ग्राहम आदि ने इस सिद्धांत की कमियो को महत्वपूर्ण रूप से रंखांकित किया है। सिद्धांत की महत्वपूर्ण आलोचनाएँ निम्नलिखित है–

1. प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री यह बताने में असफल रहे कि विभिन्न देशो के उत्पादन फलन भिन्न–भिन्न क्यों होते हैं।
2. यह सिद्धांत 'मूल्य के श्रम सिद्धांत' पर आधारित है जो कि अवास्तविक मान्यताओं पर आधारित हैं किसी वस्तु की उत्पादन लागत उसके उत्पादन में लगे सिर्फ श्रम की मात्रा के बराबर नहीं होती है बल्कि उसमें सभी संसाधन लागतें सम्मिलित होती हैं। विभिन्न श्रम–इकाईयाँ भी समरूप नहीं होती हैं। श्रम अनेक वर्गों में विभक्त होता है जैसे, कुशल श्रम, अकुशल श्रम, अर्द्धकुशल श्रम इत्यादि और ये विभिन्न वर्गों के श्रम आपस में प्रतियोगी नहीं होते हैं।

   श्रम की अर्न्तक्षेत्रीय पूर्ण गतिशीलता और श्रम–बाजार की पूर्ण प्रतियोगिता की मान्यता भी अवास्तविक है इसलिए आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने श्रम के मूल्य सिद्धांत को रद्द कर दिया है।

   प्रतिष्ठित सिद्धांत के समर्थकों का तर्क है कि उनका विश्वास मुख्यतः कल्याणकारी अर्थशास्त्री में था। इसलिए अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार से प्राप्त लाभ की माप के लिए उन्होंने श्रम लागत का प्रयोग 'वास्तविक लागत' के रूप में किया है। 'वास्तविक लागत' की धारणा का प्रयोग सामान्यतः उत्पादन के दौरान श्रम की अनुपयोगिता या कष्टानुभूति के रूप में किया गया है। परन्तु

अनुपयोगिता एक आत्मनिष्ठ प्रत्यय है जो कि देश, काल और व्यक्ति के अनुसार परिवर्तित होती रहती है।

सिद्धांत इस मान्यता पर भी आधारित है कि सभी वस्तुओं के उत्पादन में श्रम समान अनुपात में प्रयुक्त होता है। यह मूलतः एक स्थैतिक विश्लेषण है इसलिए अवास्तविक है।

परन्तु आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने अन्य लागत की परिभाषाओं को लेकर भी स्मिथ तथा रिकार्डो के निष्कर्षों को सिद्ध किया है। प्रो0 जगदीश भगवती के अनुसार रिकार्डो का सिद्धांत एक कल्याणकारी मॉडल के रूप में देखा जाना चाहिए, जिसका उद्देश्य स्वतंत्र व्यापार का समर्थन था। यह सिद्धांत व्यापार के विभिन्न तथ्यों की व्याख्या के लिए निर्मित धनात्मक (positive) मॉडल नहीं है।

3. प्रतिष्ठित सिद्धांत उत्पादन में पैमाने के स्थिर प्रतिफल की मान्यता मान लेता है और इस आधार पर सभी व्यापाररत देशों में पूर्ण विशिष्टीकरण की बात करता है।

   वास्तविक जगत में न तो उत्पादन में स्थिर लागत की स्थिति और न ही किसी देश में पूर्ण विशिष्टीकरण की स्थिति पायी जाती है। अनेक देश अनेक वस्तुओं का उत्पादन करते हैं और लागत दशाएँ उत्पादन में बढते हुए प्रतिफल से घटते हुए प्रतिफल के बीच परिवर्तित होती रहती है।

   परंतु बाद में नव–प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने अन्य लागत दशाओं में भी व्यापार–सिद्धांत का विस्तार किया और प्रतिष्ठित सिद्धांत के निष्कर्षों को सिद्ध करने की कोशिश की।

4. प्रतिष्ठित सिद्धांत में परिवहन लागतों की भी उपेक्षा की गयी है जबकि इन लागतों की अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार की मात्रा और दिशा दोनों को प्रभावित करने में महत्वपूर्ण भूमिका होती है। उच्च परिवहन लागतें तुलनात्मक लाभों और व्यापार से लाभों को समाप्त कर सकती हैं।

   यह आलोचना सिद्धांत को गम्भीर चुनौती पेश नहीं करती क्योंकि परिवहन लागतों व अन्य सम्बन्धित लागतों को जोड़कर कुल लागत के पदों में तुलनात्मक लाभों को पुनः परिभाषित करना सम्भव है।

5. सिद्धांत में उपभोक्ताओं की रुचियो, उत्पादन–फलन, उत्पादन साधनों की मात्रा आदि को स्थिर मान लिया गया है परन्तु व्यवहार में ये स्थिर नहीं है।

6. यह सिद्धांत सिर्फ कुछ संकीर्ण प्रश्नों के उत्तर देने तक ही सीमित हैं, जैसे– किसी दिये हुए समय मे किन वस्तुओं का व्यापार किया जाएगा और व्यापार से क्या लाभ होगा? यह इस बात को नहीं बताता कि समय के साथ व्यापार की मात्रा, संरचना तथा लाभ में किस प्रकार परिवर्तन होता है। दूसरे शब्दों में, यह सिद्धांत इस बात की व्याख्या नहीं करता कि समय के साथ तुलनात्मक लाभ की संरचना में कैसे परिवर्तन होगा।

7. रिकार्डो का सिद्धांत एकपक्षीय है क्योंकि यह अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार के केवल पूर्ति पक्ष पर विचार करता है और मांग पक्ष को पूरी तरह से उपेक्षित कर देता है। तुलनात्मक लागत में भिन्नता के लिए मांग की दशाओं की उपेक्षा की गयी है।

   वास्तव में प्रतिष्ठित सिद्धांत अल्पकालीन नहीं बल्कि दीर्घकालीन समस्या पर विचार करता है इसलिए इसलिए लागतों में अंतर के लिए सिर्फ पूर्ति दशाओं को ही प्रभावशाली मानता है। हालांकि बाद में जे0एस0 मिल ने प्रतिष्ठित सिद्धांत की इस कमी को दूर करते हुए मांग पक्ष को भी सम्मिलित किया।

8. बर्टिल ओहलिन इस सिद्धांत को बेढंगा और अवास्तविक कहते हैं, क्योंकि यह विभिन्न देशों के मध्य सीधे सीधे पूर्ण लागत की भिन्नता पर विचार नहीं करता है। यह सिर्फ श्रम लागतों पर विचार करता है और अन्य लागतों की अवहेलना करता है। ओहलिन इस सिद्धांत को खतरनाक मानते हैं क्योकि यह केवल दो देशों तथा दो वस्तुओं वाली परिस्थितियों का विश्लेषण करता है और इससे प्राप्त निष्कर्षों को अनेक देशों और वस्तुओं वाली परिस्थितियों पर लागू करने का प्रयास करता है।

ओहलिन के अनुसार संसाधन न सिर्फ अर्न्तराष्ट्रीय स्तर पर बल्कि देश के भीतर भी विभिन्न क्षेत्रों के बीच अगतिशील होते हैं। इसलिए तुलनात्मक लाभ का सिद्धांत न सिर्फ अर्न्तराष्ट्रीय स्तर पर बल्कि सभी प्रकार के व्यापार में लागू होता है। इसलिए ओहलिन मूल्य के सामान्य सिद्धांत पर आधारित अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार के नये सिद्धांत का प्रतिपादन करते हैं।

9. इस सिद्धांत की आलोचना करते हुए मिर्डल कहते हैं कि यह अर्न्तराष्ट्रीय असमानताओं और विकास तथा अल्पविकास की समस्याओं की उपेक्षा करता है।
10. फ्रैंक ग्राहम ने यह दिखाया कि इस सिद्धांत की मान्यताओं के आधार पर भी पूर्ण विशिष्टीकरण सम्भव नहीं होगा। अपूर्ण या आंशिक विशिष्टीकरण निम्नलिखित स्थितियों में होगा–
    i. यदि दो व्यापार कर रहे देशों में उत्पादन की दृष्टि से एक बहुत छोटा तथा दूसरा बहुत बड़ा हो।
    ii. यदि दोनों देशों के व्यापार में सम्मिलित वस्तुओं का मूल्य तुलनीय हो। जब एक वस्तु उच्च मूल्य वाली वस्तु हो तथा दूसरी वस्तु निम्न मूल्य वाली हो।

    प्रथम स्थिति में छोटा देश पूर्व विशिष्टीकरण प्राप्त कर लेगा परन्तु बड़ा देश पूर्ण विशिष्टीकरण नहीं कर सकेगा। यदि बड़ा देश पूर्ण विशिष्टीकरण करता है तो छोटे देश में उसकी खपत सम्भव नहीं है। दूसरी ओर छोटा देश पूर्ण विशिष्टीकरण के पश्चात् भी बड़े देश की मांग को संतुष्ट नहीं कर सकता है।

    द्वितीय स्थिति में, उच्च मूल्य की वस्तु उत्पादित करने वाला देश पूर्ण विशिष्टीकरण प्राप्त करने में समर्थ होगा जबकि निम्न मूल्य वाली वस्तु का उत्पादन करने वाला देश ऐसा नहीं कर सकेगा क्योंकि कम मूल्य वाली वस्तु के सम्पूर्ण निर्यात का मूल्य, उस देश की उच्च मूल्य की वस्तु की आवश्यकता को पूरा नहीं कर सकता।

    इस प्रकार, जब तक व्यापार में सम्मिलित देश समान आर्थिक आकार के न हों या व्यापारिक वस्तुएँ लगभग समान उपभोग मूल्य की न हों उत्पादन में पूर्ण विशिष्टीकरण सम्भव नहीं है।
11. इस सिद्धांत की इस आधार पर भी आलोचना की जाती है कि यह सिर्फ 2 वस्तुओं और 2 देशों को लेकर विश्लेषण करता है। परन्तु दो से अधिक देशों तथा वस्तुओं के संदर्भ में भी इस सिद्धांत को प्रस्तुत किया जा सकता है।
12. सिद्धांत की इस आधार पर भी आलोचना की जाती है स्वतंत्र व्यापार की मान्यता पर आधारित है। यह मान्यता सिद्धांत को अवास्तविक बना सकती है परन्तु यह किसी भी तरह इसे अवैध नहीं बनाती; गैर स्वतंत्र व्यापार स्थिति में भी व्यापार–संतुलन को दिखाया जा सकता है।

1.10 मूल्यांकन

तुलनात्मक लाभ सिद्धांत की इस आधार पर आलोचना कि इसकी मान्यताएँ वास्तविक जगत से मेल नहीं खाती हैं, बहुत उचित नहीं है। इनमें से अधिकांश मान्यताएँ सैद्धान्तिक सरलता के लिए ली गयी है।

एक तो विश्व की वास्तविकताएँ काफी जटिल हैं और दूसरे ये समय के साथ बदलती रहती है। सिद्धांत के पक्ष में यह बात उल्लेखनीय है कि आर्थिक सिद्धांत आदर्शों को वास्तविकता की ओर ले जाने की अपेक्षा वास्तविकता को आर्दशात्मक बनाने का प्रयास करते हैं। वास्तव में, सिद्धांत यह बताता है कि आर्थिक नीति के उद्देश्य आदर्श स्थितियों को उत्पन्न करना और उन्हें वास्तविकता में परिवर्तित करना होना चाहिए और उन आदर्शों को पूरा करने के बाद सिद्धांत यह कहता है कि अर्न्तराष्ट्रीय श्रम विभाजन के लिए हमें तुलनात्मक लाभ सिद्धांत का अनुसरण करना चाहिए, जिससे कि आगे विश्व में संसाधनों का अत्यधिक अनुकूलतम आवंटन सुनिश्चित होगा तथा पूरे विश्व के आर्थिक कल्याण में वृद्धि होगी। इस आधार पर तुलनात्मक लाभ सिद्धांत आर्दशात्मक सिद्धांत हो जाता है, यह वर्णनात्मक की अपेक्षा निर्देशात्मक हो जाता है। यह सामान्य धनात्मक अर्थशास्त्र की अपेक्षा आर्दशात्मक कल्याण अर्थशास्त्र की विषय–वस्तु बन जाता है।

स्मिथ व रिकार्डो यह दिखाने की कोशिश करते हैं कि राष्ट्रों के हित एक दूसरे से टकराएँ यह जरूरी नहीं है। वे विश्व के राष्ट्रों के बीच एक अर्न्तराष्ट्रीय दृष्टि उत्पन्न करने का प्रयास करते हैं, यह दिखाकर कि कुछ व्यापार; व्यापार न होने से बेहतर है। राष्ट्रों के बीच व्यापार को प्रतिबंधित करने की अपेक्षा इसे प्रोतसाहित करना विश्व के उत्पादन में वृद्धि लायेगा तथा सार्वभौमिक कल्याण को अधिकतम करेगा। तुलनात्मक लागत सिद्धान्त का यही संदेश था और अब भी है। सिद्धांत व्यापार के पक्ष में रहा है और स्वतंत्र व्यापार का समर्थन करता है। अपनी सभी सीमाओं के बावजूद यह सिद्धांत समय की कसौटी पर खरा उतरा है। यद्यपि इसमें काफी सुधार किये गए हैं,पर इसका मूल ढांचा वैसा ही है। सिद्धांत उल्लेखनीय रूप से अपने उद्‌देश्यों को पूरा करने में सफल रहा है।

1.11 सारांश

जिस प्रकार व्यक्तियों के बीच श्रम–विभाजन होता है उसी तरह विश्व के विभिन्न राष्ट्रों के मध्य श्रम विभाजन तथा विशिष्टीकरण हो सकता है। एक राष्ट्र उस वस्तु या सेवा के उत्पादन में विशिष्टता हासिल करता है जिसमें कि वह अन्य देशों की अपेक्षा उत्पादन में श्रेष्ठ होता है। विनिमय की प्रक्रिया में व्यक्ति या उपभोक्ता जिस प्रकार अपनी संतुष्टि या विनिमय से लाभ को अधिकतम करने का प्रयास करता है उसी प्रकार अर्न्राष्ट्रीय व्यापार में एक राष्ट्र अन्य राष्ट्रों से कम कीमत पर वस्तुओं तथा सेवाओं की खरीद करके लाभ प्राप्त करता है।

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार वस्तुओं, सेवाओं तथा संसाधनों के जरिये विश्व के विभिन्न देशों को आपस में जोडता है. आर्थिक समृद्धि मुख्यतया श्रम विभाजन और विष्टिकरण पर निर्भर करता है जबकि श्रम विभाजन और विष्टिकरण बाज़ार के आकार पर निर्भर करता है; बाज़ार का आकार अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से बढता है. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार विष्टिकरण और भौगोलिक श्रम विभाजन के द्वारा विश्व के संसाधनों का अनुकूलतम आवंटन सुनिश्चित करता है.

वस्तुतः वस्तुओं तथा सेवाओं के विनिमय से प्राप्त होने वाला लाभ ही अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का आधार है यदि कोई लाभ प्राप्त नहीं होगा तो व्यापार नहीं होगा। और व्यापार से लाभ का तात्कालिक कारण वस्तुओं और सेवाओं की कीमतों में विद्यमान अंतर है जो कि पूर्ति तथा माँग की दशाओं में अन्तर के कारण उत्पन्न होता है।

एडम स्मिथ ने **लागतों में निरपेक्ष अंतर के आधार पर** अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का **सिद्धांत** प्रस्तुत किया.यदि एक देश को एक वस्तु के उत्पादन में निरपेक्ष लागत लाभ तथा दुसरे वस्तु के उत्पादन में निरपेक्ष हानि हो तो फिर व्यापार होगा. प्रत्येक देश उस वस्तु का निर्यात करेगा जिसके उत्पादन मे निरपेक्ष लागत लाभ होगा और उस वस्तु का आयात करेगा जिसके उत्पादन मे निरपेक्ष लागत हानि होगी. रिकार्डो यह दिखाते हैं की यदि एक देश को दुसरे देश की अपेक्षा किसी भी वस्तु के उत्पादन में निरपेक्ष लागत लाभ नहीं है तब भी व्यापार होगा. उनके अनुसार एक देश उस वस्तु के उत्पादन में विशिष्टिकरण प्राप्त करेगा और निर्यात करेगा जिसमें उसे अधिकतम **तुलनात्मक लागत लाभ** या न्यूनतम **तुलनात्मक लागत** हानि हो. इसी प्रकार देश उस वस्तु का आयात करेगा जिसमें उसे **तुलनात्मक लागत लाभ** न्यूनतम या **तुलनात्मक लागत** हानि अधिकतम हो. एडम स्मिथ ने अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के प्रतिष्ठित सिद्धांत के निर्माण की आधारशिला रखी. परन्तु डेविड रिकार्डो ने एडम स्मिथ के **सिद्धांत को** और स्पष्ट किया, इसका विस्तार किया तथा इसे वैज्ञानिक रूप में प्रस्तुत किया.

1.12 शब्दावली:

व्यापार: व्यापार का अर्थ है वस्तुओं तथा सेवाओं का विनिमय या क्रय-विक्रय.

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार: एक राष्ट्र द्वारा अपनी सीमाओं से बाहर शेष विश्व के साथ होने वाले समस्त प्रकार के लेन - देन या व्यापार को अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार कहते हैं. अर्थात दो राष्ट्रों के मध्य होने वाले व्यापार को अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार कहते हैं.

अंतरक्षेत्रीय या आंतरिक व्यापार: एक राष्ट्र की सीमाओं के भीतर होने वाले समस्त प्रकार के लेन - देन या व्यापार को अंतरक्षेत्रीय, घरेलु या आंतरिक व्यापार कहते हैं.

श्रम विभाजन : किसी वस्तु या सेवा के उत्पादन की विभिन्न गतिविधियों तथा प्रक्रियाओं के संपादन में लगे श्रम का उन गतिविधियों तथा प्रक्रियाओं के आधार पर बंटवारा और उसमें विशिष्टीकरण प्राप्त करना ही श्रम विभाजन है .इस प्रकार श्रम विभाजन उत्पादन की वह प्रणाली है जिसके अंतर्गत कार्य विशेष को कई प्रक्रियाओं तथा उप प्रक्रियाओं में बाँट दिया जाता है और प्रत्येक प्रक्रिया तथा उप प्रक्रिया को विभिन्न व्यक्तियों या व्यक्ति समूहों द्वारा पूरा किया जाता है.

विशिष्टीकरण: उत्पादन गतिविधि को कम समय में अधिक गुणवत्ता के साथ करने की क्षमता, जो की श्रम विभाजन से प्राप्त होती है. श्रम विभाजन जितना ही जटिल होगा विशिष्टीकरण उतना ही अधिक होगा. वस्तुतः विशिष्टीकरण अधिक विस्तृत अवधारणा है जिसका प्रयोग किसी निकाय या क्षेत्र या फर्म में उत्पादन दक्षता बढानें के लिए विभिन्न उत्पादन गतिविधियों तथा प्रक्रियाओं के विभाजन के सन्दर्भ में किया जाता है.श्रम विभाजन इसकी एक किस्म है. विशिष्टीकरण से किसी निकाय या क्षेत्र या फर्म या व्यक्ति को यह मौका मिलता है की जिस कार्य में वह दक्ष है उसी में विशिष्टता हासिल करे. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार देशों को विशिष्टीकरण का अवसर देता है.

मूल्य का श्रम सिद्धांत

इस सिद्धांत के अनुसार किसी वस्तु का मूल्य–निर्धारण उस वस्तु में निहित श्रम की मात्रा के द्वारा होता है। यह सिद्धांत रिकार्डो द्वारा दिया गया निम्नलिखित मान्यताओं पर आधारित है–

(1) श्रम ही उत्पादन का एकमात्र साधन है।
(2) सभी श्रम समरूप इकाईयाँ हैं।
(3) देश के भीतर श्रम पूर्णतया गतिशील हैं।
(4) श्रम बाजार में पूर्ण–प्रतियोगिता है।

श्रम के अर्न्तराष्ट्रीय स्तर पर अगतिशील होने के कारण यह सिद्धांत घरेलू व्यापार के संदर्भ में तो लागू होता है पर अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार के संदर्भ में विघटित हो जाता है।

लागतों का निरपेक्ष अन्तर

कुछ देश कुछ विशेष प्राकृतिक सुविधाओं के अधिक मात्र में उपलब्ध होने के कारण कुछ वस्तुओं का उत्पादन अन्य देशों की अपेक्षा कम लागत पर कर सकते हैं.लागत के इस अंतर को निरपेक्ष अंतर कहते हैं. माना दो देश X तथा Y हों, जो दो वस्तुओं का A तथा B उत्पादन करते हों, यदि देश X में A की श्रम लागत Xaa तथा B की श्रम लागत Xb तथा देश Y में क्रमशः Ya तथा Yb हो तों लागत के निरपेक्ष अंतर निम्न प्रकार से दिखाया जा सकता है:

$$\frac{\mathrm{Xa}}{\mathrm{Xb}} < 1 > \frac{Ya}{Yb}$$

अर्थात् देश X को A वस्तु के उत्पादन में तथा देश Y को B के उत्पादन में निरपेक्ष लाभ है. एक देश की एक वस्तु के उत्पादन में लागत कम है तथा दूसरे देश की दूसरे वस्तु के उत्पादन में लागत कम है,अर्थात् एक देश को एक वस्तु के उत्पादन में निरपेक्ष लाभ तथा दूसरी वस्तु के उत्पादन में निरपेक्ष हानि हो।

लागतों में तुलनात्मक अन्तर

यदि एक देश की उत्पादन लागत दोनों ही वस्तु के संदर्भ में दूसरे देश से कम हो तो, उसे दोनों ही वस्तु के उत्पादन में निरपेक्ष लागत लाभ प्राप्त होगा। ऐसी स्थिति में यह देखना होगा कि वह देश किस वस्तु के उत्पादन में अधिक दक्ष है अर्थात् उसकी तुलनात्मक लागत कम है तथा दूसरे देश की किस वस्तु के उत्पादन में तुलनात्मक हानि कम है।

उपरोक्त उदाहरण से लागत के सापेक्ष अंतर को निम्न प्रकार से दिखाया जा सकता है:

$$\frac{\mathrm{Xa}}{\mathrm{Xb}} < \frac{Ya}{Yb} < 1$$

अर्थात देश X को दोनों ही वस्तुओं के उत्पादन में देश Y की अपेक्षा निरपेक्ष लाभ है परन्तु वस्तु A के उत्पादन में तुलनात्मक लाभ वस्तु B की अपेक्षा अधिक है.

1.13 संदर्भ /उपयोगी ग्रंथ सूचीः

1. H. G. Mannur, *International Economics* ,Vikas Publishing House Pvt. Ltd. 2001
2. Bo Sodersten, International Economics ,Macmillan, 1999
3. Paul Krugman and Maurice Obstfeld: *International Economics: Theory and Policy, Dorling Kindersley India Pvt Ltd, 2009.*
4. Charles P Kindleberger, International Economics, Richard D. Irwin Inc., Illinois, 1968
5. Dominik Salvatore, International Economics, John Willy & Sons, Inc., 2008
6. International Economics: Theory and Policy, Ronald Press, New York 1968.
7. D. M. Mithani, International Economics, Himalaya Publishing House, Mumbai, 2006
8. Robert M. Dunn, and John H. Mutti, International Economics, Rougledge, London.
9. सुदामा सिंह एवं एम०सी० वैश्य, अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, ऑक्सफ़ोर्ड एंड आई०बी०एच० पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2007
10. एम०एल०झिंगन, अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, वृंदा पब्लिकेशन, दिल्ली, 2010.
11. ज्ञानेंद्र सिंह कुशवाहा, अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, दि मैकमिलन कंपनी आफ इंडिया लिमिटेड, नई दिल्ली,1979.
12. एच० एस० अग्रवाल, तथा सी०एस० बरला, *अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र* ,लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, 2003.

1.14 अभ्यास प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्नः

1. व्यापार क्यों होता है? अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का आधार क्या है? विस्तार से समझाइये।
2. प्रतिष्ठित अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार सिद्धांत का आलोचनात्मक मूल्यांकन कीजिए।
3. रिकार्डो के तुलनात्मक लागत सिद्धांत का विस्तृत विवेचन करते हुए इसकी कमियों का वर्णन कीजिए।
4. तुलनात्मक लागत व्यापार सिद्धांत की मान्यताएँ अवास्तविक है, इसलिए यह सिद्धांत अवैध है। विवेचना कीजिए।

लघु उत्तरीय प्रश्नः

१. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के प्रतिष्ठित सिद्धांत की मान्यताएं बताइए.

२. तुलनात्मक लागत सिद्धांत पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए.

खंड -01
इकाई- 02
मिल का प्रतिपूरक मांग सिद्धांत

2.15 प्रस्तावना

2.16 उद्देश्य

2.17 मिल का प्रतिपूरक मांग का सिद्धांत

2.18 व्यापार की शर्तें

2.19 सारांश

2.20 शब्दावली

2.21 सन्दर्भ ग्रन्थ सुची

2.22 अभ्यास प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र के खंड एक “अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार सिद्धांत -01” से सम्बंधित यह दूसरी इकाई है. इससे पहले की इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की प्रकृति तथा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के प्रतिष्ठित सिद्धांत के बारे में बता सकते हैं. आप जान गए होंगे की अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का आधार तथा उससे होने वाला लाभ है. प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के अनुसार जब तक दो देशों के बीच लागतों का अंतर विद्यमान है तब तक कम से कम एक या दोनों ही देशों को व्यापार से लाभ होगा. एडम स्मिथ ने अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के प्रतिष्ठित सिद्धांत के निर्माण की आधारशिला रखी. डेविड रिकार्डो ने एडम स्मिथ के **सिद्धांत को** और स्पष्ट किया, इसका विस्तार किया तथा इसे वैज्ञानिक रूप में प्रस्तुत किया. जे.एस. मिल ने तुलनात्मक लागत सिद्धांत में मांग पक्ष को समिलित कर प्रतिपूरक मांग का सिद्धांत दिया और यह बताया कि व्यापार की शर्तों का निर्धारण कैसे होता है.

प्रस्तुत इकाई में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार जे.एस. मिल के प्रतिपूरक मांग के सिद्धांत और व्यापर शर्तों का वर्णन किया गया है. इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के प्रतिपूरक मांग के सिद्धांत और उसक व्यापार शर्तों से सम्बन्ध के सम्बन्ध में स्पष्ट जानकारी प्राप्त कर सकेगें.

2.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के बाद आप

- जे.एस. मिल के प्रतिपूरक मांग के सिद्धांत को समझ सकेंगे
- व्यापर शर्तों को जान सकेंगे.
- व्यापार की शर्तों का निर्धारण कैसे होता है, जान सकेंगे.
- प्रतिपूरक मांग के सिद्धांत और उसक व्यापार शर्तों से सम्बन्ध को समझ सकेंगे.

2.3 जे0एस0 मिल का प्रतिपूरक मांग का सिद्धांत

रिकार्डो ने अपने तुलनात्मक लागत सिद्धांत में यह दिखाया कि यदि व्यापार–शर्त रेखा दोनों व्यापाररत देशों की घरेलू कीमत रेखा के बीच में है तो दोनों ही देशों को व्यापार से लाभ होगा। परन्तु दो देशों की घरेलू विनिमय अनुपातों के बीच वास्तविक विनिमय अनुपात कहाँ निर्धारित होगा अर्थात् वास्तविक व्यापार शर्त रेखा का निर्धारण किस प्रकार होगा, इसका उत्तर रिकार्ड़ो नहीं दे सके क्योंकि प्रतिष्ठित

अर्थशास्त्री माँग–पक्ष की उपेक्षा कर देते हैं। इनके अनुसार अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार शर्त दो देशों में आन्तरिक लागत अनुपातों अर्थात् सिर्फ पूर्ति दशाओं द्वारा निर्धारित होती है। यदि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार शर्त रेखा एक देश के अंदर के सापेक्षिक लागत अनुपात के बराबर है तो उस देश को व्यापार से कोई लाभ नहीं होगा। इस प्रकार दो देशों के आन्तरिक लागत अनुपात, उच्चतम तथा निम्नतम सीमा का निर्धारण करते हैं। जिसके बीच अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार–शर्त रेखा हो सकती है।

परन्तु व्यापार–शर्त अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर जिन वस्तुओं तथा सेवाओं का व्यापार किया जाता है, उनकी कीमते हैं और किसी भी अन्य कीमतों की तरह इसका निर्धारण की माँग और पूर्ति दोनों के द्वारा किया जाना चाहिए। स्मिथ और रिकार्डो माँग की दशाओं की उपेक्षा कर देते हैं इसलिए वास्तविक व्यापार–शर्त रेखा का निर्धारण नहीं कर पाते हैं। 1948 में जान स्टुअर्ट मिल ने वास्तविक व्यापार शर्त या विनिमय अनुपात के निर्धारण की समस्या का समाधान अपने प्रतिपूरक माँग सिद्धांत में किया। मार्शल तथा एजबर्थ ने प्रस्ताव वक्रों के माध्यम से मिल के सिद्धांत को आगे बढ़ाया।

संतुलित विनमय दर के निर्धारण की व्याख्या के लिए जे0एस0 मिल ने प्रतिपूरक मांग सिद्धांत का विकास किया। उन्होंने जोर दिया कि वास्तविक वस्तु विनिमय व्यापार शर्त केवल लागत दशाओं पर ही निर्भर नहीं करती है, जैसा कि रिकार्डो मान लेते हैं, बल्कि मूलतः यह मांग दशाओं पर भी निर्भर करती है। उनके अनुसार संतुलित व्यापार शर्त प्रतिपूरक मांग की दशाओं द्वारा निर्धारित होती है। प्रतिपूरक मांग का अर्थ है दो व्यापाररत देशों की अपने उत्पाद के पदों में एक–दूसरे के उत्पाद के लिए मांग की सापेक्षिक शक्ति तथा लोच। विनिमय का स्थिर अनुपात उस बिन्दु पर होगा जहाँ प्रत्येक देश आयातों व निर्यातों का मूल्य संतुलन में हो।

जे0एस0 मिल ने तुलनात्मक सिद्धांत की व्याख्या करते हुए उसमें संशोधन किया और यह बताया कि वास्तविक व्यापार–शर्त का निर्धारण कैसे और कहाँ होता है। मिल ने श्रम की एक दी हुई मात्रा से दो देशों में दो वस्तुओं के उत्पादन की तुलना के आधार पर तुलनात्मक लागत (लाभ) सिद्धांत को प्रस्तुत किया। इस प्रकार मिल का सिद्धांत तुलनात्मक लाभ या श्रम की क्षमता के रूप में है।

माना दो देश A और B हैं, जो संसाधनों की दी हुई मात्रा (जैसे एक श्रम वर्ष) से वस्तु X और Y का उत्पादन करते हैं। निम्नलिखित सारणी में दोनों देशों द्वारा व्यापार से पूर्व उत्पादन तथा उपभोग की स्थिति दी हुई है।

सारणी 3.7

संसाधनों की दी हुई मात्रा (जैसे एक श्रम वर्ष) से उत्पादन तथा उपभोग

	वस्तु X	वस्तु Y	घरेलू विनिमय अनुपात
देश A	250	150	250 X=150Y या 1x=0.6 y
देश B	200	100	200 X=100Y या 1x=0.5 y
तुलनात्मक लागत अनुपात	$\frac{200}{250} = 0.80$	$\frac{100}{150} = 0.66$	

देश A दिए हुए संसाधनों से वस्तु X की 250 इकाई या Y की 150 इकाई का उत्पादन करता है जबकि देश B, X की 200 तथा Y की 100 इकाई का उत्पादन करता है। देश A दोनों ही वस्तुओं के उत्पादन में देश B की अपेक्षा निरपेक्ष लाभ की स्थिति में है। परन्तु तुलनात्मक लागत अनुपात से स्पष्ट है कि देश A में वस्तु X की उत्पादन लागत, देश B में वस्तु X की उत्पादन लागत की 0.80 % है। जबकि वस्तु Y की उत्पादन लागत देश A में देश B की अपेक्षा मात्र 66% है।

इस प्रकार देश A,वस्तु Y के उत्पादन में तुलनात्मक रूप से अधिक लाभ की स्थिति में है जबकि देश B का वस्तु X के उत्पादन में तुलनात्मक हानि कम है। अतः देश A वस्तु Y के उत्पादन में और देश B

वस्तु X के उत्पादन में विशिष्टीकरण प्राप्त करेगा। देश A, वस्तु X के बदले Y का निर्यात करेगा जबकि देश B, Y के बदले X का निर्यात करेगा।

अर्न्तराष्ट्रीय विनिमय अनुपात की संभावित सीमा का निर्धारण श्रम की क्षमता द्वारा स्थापित घरेलू विनिमय अनुपात के आधार पर होगा। सारणी 3.7 में दोनों देशों की घरेलू अनुपात रेखाएँ दी हुई है। 1 इकाई X के विनिमय की सीमा 0.5 तथा 0.6 के मध्य होगी। इस सीमा के भीतर वास्तविक व्यापार–शर्त का निर्धारण एक देश की वस्तु की दूसरे देश की माँग या प्रतिपूरक माँग की तीव्रता द्वारा होगा। संतुलित व्यापार शर्त रेखा पर दोनों देशों के आयात तथा निर्यात एक दूसरे के बराबर होंगे।

मार्शल व एजबर्थ ने मिल के प्रतिपूरक मांग सिद्धांत की प्रभावी व्याख्या के लिए प्रस्ताव वक्रों की तकनीकी का विकास व प्रयोग किया। एक देश का प्रस्ताव वक्र आयातों की मांगों के बदले निर्यातों की देय मात्रा को व्यक्त करता है।

प्रस्ताव वक्र एक ओर किसी देश द्वारा वस्तु–विशेष की एक निश्चित मात्रा के बदले दूसरी वस्तु की एक निश्चित मात्रा देने की इच्छा को व्यक्त करता है और दूसरी ओर यह विभिन्न संभव व्यापार शर्तों या विनियम अनुपातों पर एक देश के उत्पाद के लिए मांग की इच्छा को व्यक्त करता है। इस प्रकार प्रस्ताव वक्र में मांग व पूर्ति दोनों की तत्व विद्यामान होते हैं।

प्रस्ताव वक्र दोनों देशों में व्यापार न होने की दशा की व्यापार–शर्त या घरेलू कीमत–रेखाओं के भीतर ही स्थित होते हैं। प्रस्ताव वक्र उत्पादन व उपभोग दशाओं द्वारा संयुक्त रूप से निर्धारित होते हैं। ये दशाएँ ही व्यापाररत देशों के प्रस्ताव वक्र के आकार को निर्धारित करता है; प्रस्ताव वक्र के आकार आगे व्यापार–शर्त को निर्धारित करते है।

मान लिया विश्व में दो देश A व B तथा दो वस्तुएँ X व Y हैं; तब प्रतिपूरक मांग के नियम के अनुसार व्यापार–शर्त देश B के उत्पाद (वस्तु X) के लिए A की मांग तथा देश A के उत्पाद (वस्तु Y) के लिए देश B की मांग द्वारा निर्धारित होगी। दूसरे शब्दों में व्यापार–शर्त विदेशी वस्तुओं के लिए घरेलू मांग की तीव्रता और घरेलू वस्तु के लिए विदेशी मांग की तीव्रता द्वारा निर्धारित होती है। प्रस्ताव वक्र प्रतिपूरक मांग की लोच को प्रदर्शित करते हैं.

$$\text{प्रतिपूरक मांग की लोच} = \frac{\text{आयातों में प्रतिशत परिवर्तन}}{\left(\frac{\text{निर्यात की कीमतों में प्रतिशतपरिवर्तन}}{\text{आयात की कीमतों में प्रतिशतपरिवर्तन}}\right)}$$

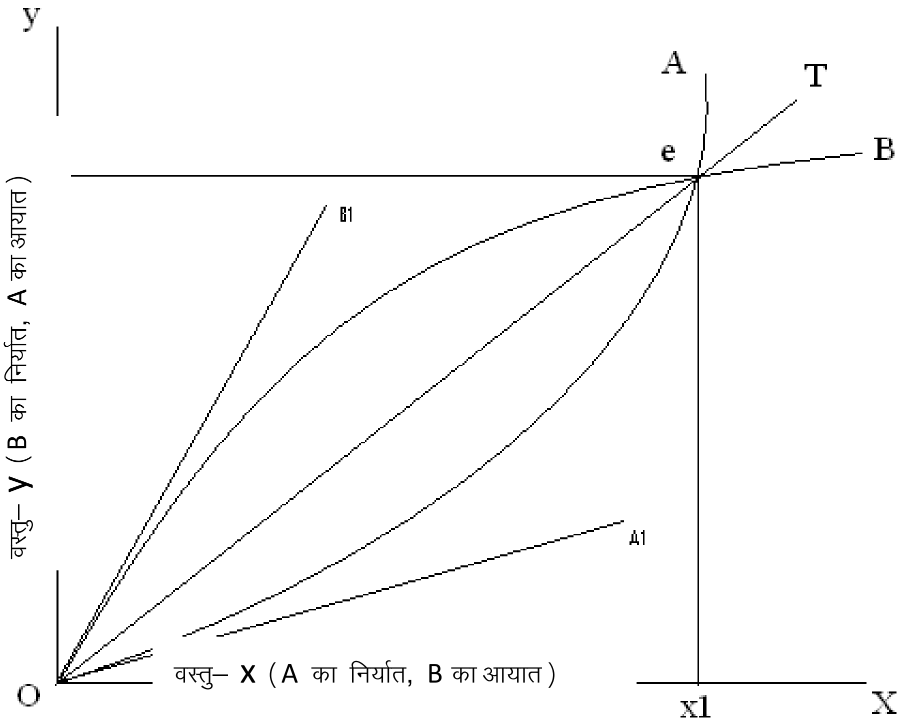

चित्र 3.1

देश A का प्रस्ताव वक्र देश B के उत्पाद Y के लिए उसकी मांग की तीव्रता को बताता है तथा देश B का प्रस्ताव वक्र देश A के उत्पाद X के लिए उसकी मांग की तीव्रता का दर्शाता है। संतुलित व्यापार–शर्त उस बिन्दु पर निर्धारित होती जहाँ दोनों प्रस्ताव वक्र एक दूसरे को काटते हैं। चित्र 3.1 में OA देश A तथा OB देश B का प्रस्ताव वक्र है। दोनों प्रस्ताव वक्र एक दूसरे को e बिन्दु पर काटते हैं। यही एक मात्र संतुलन बिंदु है और मूल बिंदु से खींची गयी रेखा OT संतुलित व्यापार शर्त रेखा है जो की e बिन्दु से होकर जाती है.

केवल संतुलित व्यापार शर्त पर ही देश A से X का निर्यात देश B से X के आयात के बराबर होगा तथा देश A में Y का आयात देश B से Y के निर्यात के बराबर होगा। इस प्रकार, बाजार संतुलन में होगा। दूसरे शब्दों में e बिन्दु पर B के उत्पाद के लिए A की मांग A के उत्पाद के लिए की B की मांग के बिन्कुल बराबर है।

यदि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार–शर्त की रेखा दोनों देशों की घरेलू विनिमय अनुपात की रेखाओं OA_1 व OB_1 के मध्य A पर है तो अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से दोनों देशों को लाभ होगा।

व्यापार शर्त एक देश के पक्ष और दूसरे देश के विपक्ष में हो सकती है। यह इस पर निर्भर करता है कि संबंधित देश में मांग की सापेक्षिक लोच क्या है, इससे व्यापार से होने वाले कुल लाभ में उस देश का हिस्सा निर्धारित होता है।

स्पष्टतः बेलोच मांग (आयातों के लिए) वाले देश को दूसरे वस्तु की निश्चित मात्रा (आयातों) के लिए अधिक वस्तुएँ (निर्यात) देनी पड़ेगी। इस प्रकार व्यापार–शर्त उस देश के प्रतिकूल होगी। जब एक देश व्यापार–शर्त को दूसरे देश की घरेलू लागत अनुपात की ओर कर देने में सफल हो जाता है तो उसका अपना लाभ बढ़ जाता है।

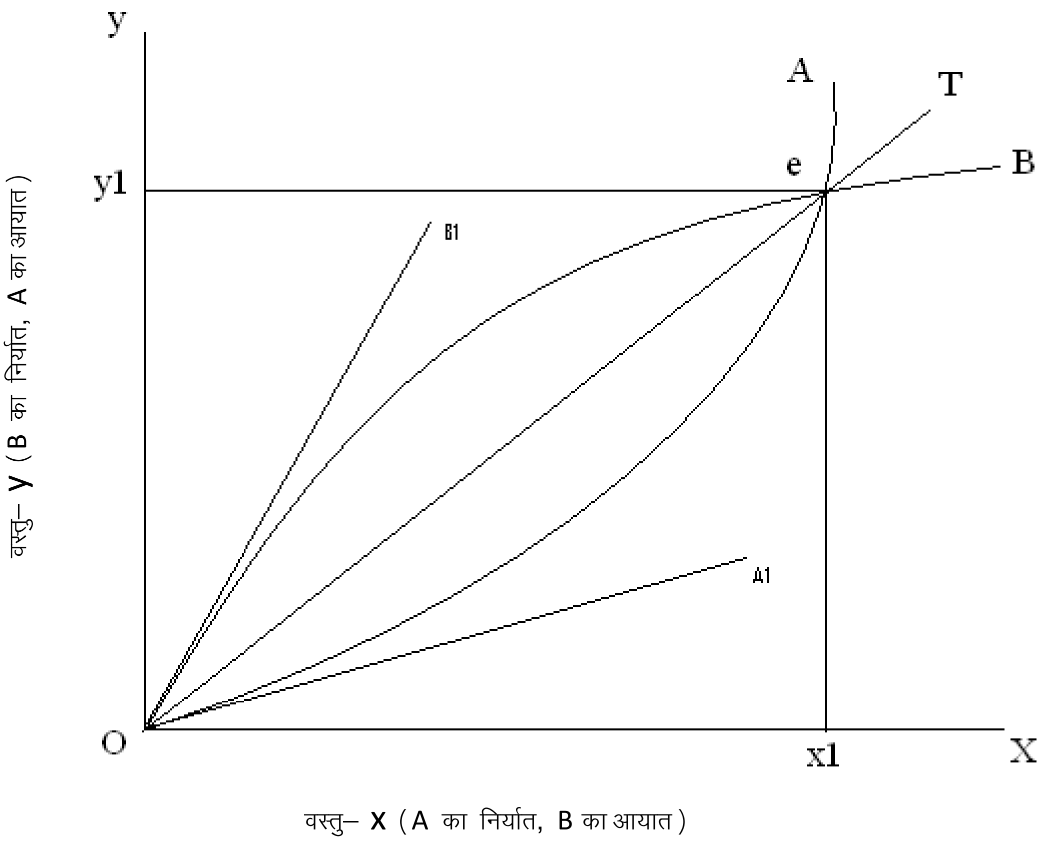

चित्र 3.1

देश A का प्रस्ताव वक्र देश B के उत्पाद Y के लिए उसकी मांग की तीव्रता को बताता है तथा देश B का प्रस्ताव वक्र देश A के उत्पाद X के लिए उसकी मांग की तीव्रता का दर्शाता है। संतुलित व्यापार–शर्त उस बिन्दु पर निर्धारित होती जहाँ दोनों प्रस्ताव वक्र एक दूसरे को काटते हैं। चित्र 3.1 में OA देश A तथा OB देश B का प्रस्ताव वक्र है। दोनों प्रस्ताव वक्र एक दूसरे को e बिन्दु पर काटते हैं। यही एक मात्र संतुलन बिंदु है और मूल बिंदु से खींची गयी रेखा OT संतुलित व्यापार शर्त रेखा है जो की e बिन्दु से होकर जाती है.

केवल संतुलित व्यापार शर्त पर ही देश A से X का निर्यात देश B से X के आयात के बराबर होगा तथा देश A में Y का आयात देश B से Y के निर्यात के बराबर होगा। इस प्रकार, बाजार संतुलन में होगा। दूसरे शब्दों में e बिन्दु पर B के उत्पाद के लिए A की मांग A के उत्पाद के लिए की B की मांग के बिन्कुल बराबर है।

यदि अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार–शर्त की रेखा दोनों देशों की घरेलू विनिमय अनुपात की रेखाओं OA_1 व OB_1 के मध्य A पर है तो अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार से दोनों देशों को लाभ होगा।

व्यापार शर्त एक देश के पक्ष और दूसरे देश के विपक्ष में हो सकती है। यह इस पर निर्भर करता है कि संबंधित देश में मांग की सापेक्षिक लोच क्या है, इससे व्यापार से होने वाले कुल लाभ में उस देश का हिस्सा निर्धारित होता है।

स्पष्टतः बेलोच मांग (आयातों के लिए) वाले देश को दूसरे वस्तु की निश्चित मात्रा (आयातों) के लिए अधिक वस्तुएँ (निर्यात) देनी पड़ेगी। इस प्रकार व्यापार–शर्त उस देश के प्रतिकूल होगी। जब एक देश व्यापार–शर्त को दूसरे देश की घरेलू लागत अनुपात की ओर कर देने में सफल हो जाता है तो उसका अपना लाभ बढ़ जाता है।

2.4 सारांश

जे0एस0 मिल ने तुलनात्मक सिद्धांत की व्याख्या करते हुए उसमें संशोधन किया और अपने प्रतिपूरक माँग सिद्धांत में यह बताया कि वास्तविक व्यापार–शर्त का निर्धारण कैसे और कहाँ होता है। मार्शल तथा एजबर्थ ने प्रस्ताव वक्रों के माध्यम से मिल के सिद्धांत को आगे बढ़ाया।

2.5 शब्दावली

प्रतिपूरक मांग

प्रतिपूरक मांग का अर्थ है दो व्यापाररत देशों की अपने उत्पाद के पदों में एक–दूसरे के उत्पाद के लिए मांग की सापेक्षिक शक्ति तथा लोच। अर्थात् विदेशी वस्तुओं के लिए घरेलू मांग की तीव्रता और घरेलू वस्तु के लिए विदेशी मांग की तीव्रता।

प्रस्ताव वक्र

प्रस्ताव वक्र एक ओर किसी देश द्वारा वस्तु–विशेष की एक निश्चित मात्रा के बदले दूसरी वस्तु की एक निश्चित मात्रा देने की इच्छा को व्यक्त करता है और दूसरी ओर यह विभिन्न संभव व्यापार शर्तों या विनियम अनुपातों पर एक देश के उत्पाद के लिए मांग की इच्छा को व्यक्त करता है।

2.6 संदर्भ ग्रंथ सूची

13. H. G. Mannur, *International Economics* ,Vikas Publishing House Pvt. Ltd. 2001
14. Bo Sodersten, International Economics ,Macmillan, 1999
15. Paul Krugman and Maurice Obstfeld: *International Economics: Theory and Policy, Dorling Kindersley India Pvt Ltd, 2009.*
16. Charles P Kindleberger, International Economics, Richard D. Irwin Inc., Illinois, 1968
17. Dominik Salvatore, International Economics, John Willy & Sons, Inc., 2008
18. D. M. Mithani, International Economics, Himalaya Publishing House, Mumbai, 2006
19. सुदामा सिंह एवं एम०सी० वैश्य, अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, ऑक्सफ़ोर्ड एंड आई०बी०एच० पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2007
20. एम०एल०झिंगन, अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, वृंदा पब्लिकेशन, दिल्ली, 2010.

2.7 अभ्यास प्रश्न

1. जे.एस. मिल के प्रतिपूरक मांग के सिद्धांत का विस्तृत वर्णन कीजिये.
2. व्यापार की शर्तों का निर्धारण कैसे होता है? विवेचना कीजिये .

खंड 01: अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार सिद्धांत -01
इकाई- 3
अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का टाजिंग और हैबरलर का सिद्धांत

2.23 प्रस्तावना

2.24 उद्देश्य

2.25 टासिंग का व्यापार का मौद्रिक सिद्धांत

2.26 अवसर लागत का सिद्धांत – भूमिका

2.27 उत्पादन में स्थिर प्रतिफल या स्थिर लागत के अंतर्गत व्यापार संतुलन

2.28 उत्पादन में ह्रासमान प्रतिफल या वृद्धिमान लागत के अंतर्गत व्यापार संतुलन

2.29 उत्पादन में वृद्धिमान प्रतिफल या ह्रासमान लागत के अंतर्गत व्यापार संतुलन

2.30 एक वस्तु के उत्पादन में वृद्धिमान प्रतिफल तथा दूसरी वस्तु के उत्पादन में ह्रासमान प्रतिफल के अंतर्गत व्यापार संतुलन

2.31 मूल्यांकन

2.32 विनिमय से लाभ तथा विशिष्टीकरण से लाभ

2.33 सारांश

2.34 शब्दावली

2.35 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

2.36 अभ्यास प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र के खंड एक “अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार सिद्धांत -01” से सम्बंधित यह तृतीय इकाई है. इससे पहले की इकाईयों के अध्ययन के पश्चात् आप अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की प्रकृति, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के प्रतिष्ठित सिद्धांत तथा प्रतिपूरक मांग के सिद्धांत के बारे में बता सकते हैं. आप जान गए होंगे कि प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के अनुसार जब तक श्रम लागतों का अंतर विद्यमान है व्यापाररत देशों को व्यापार से लाभ होगा. परन्तु श्रम के अतिरिक्त दूसरे साधन भी उत्पादन में उतने ही महत्वपूर्ण होते है. इसलिए हैबर्लर ने अवसर लागत के रूप में लागतों का मापन करते हुए अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का सिद्धांत दिया. अवसर लागत व उत्पादन संभावना वक्र के साथ समुदाय अधिमान वक्रों के प्रयोग के द्वारा अन्र्तराष्ट्रीय व्यापार का नव–प्रतिष्ठित सिद्धांत विकसित किया गया, जिसमें हैबरलर, लियो–टीफ, लर्नर, मार्शल, एजबर्थ और मीड का योगदान है।

प्रस्तुत इकाई में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के टासिंग का तुलनात्मक व्यापार के सिद्धांत के मौद्रिक स्वरूप और हैबरलर द्वारा दिये गये अवसर लागत सिद्धांत के बारे में विस्तार से बताया गया है. इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के टासिंग के मौद्रिक स्वरूप और हैबरलर द्वारा दिये गये नव प्रतिष्ठित सिद्धांत के सम्बन्ध में स्पष्ट जानकारी प्राप्त कर सकेगें.

3.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के बाद आप

- अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के टासिंग का तुलनात्मक व्यापार के सिद्धांत के मौद्रिक स्वरूप को समझ सकेंगे.
- उत्पादन में स्थिर लागतों के अंतर्गत अवसर लागत सिद्धांत के बारे में जान सकेंगे.
- उत्पादन में बढती हुई लागतों के अंतर्गत अवसर लागत सिद्धांत के बारे में जान सकेंगे.
- उत्पादन में घटती हुई लागतों के अंतर्गत अवसर लागत सिद्धांत के बारे में जान सकेंगे.
- अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के विनिमय तथा विशिष्टीकरण से होने वाले लाभों को जान सकेंगे.

3.3 प्रो टासिंग का व्यापार का मौद्रिक सिद्धांत

स्मिथ और रिकॉर्डो द्वारा दिया गया अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का सिद्धांत कई अवास्तविक मान्यताओं पर आधारित है, जिसमें बाद मेंअनेक संशोधन हुए। प्रतिष्ठित सिद्धांत में श्रम लागत के आधार पर व्याख्या की गई हैऔर विनिमय का आधार वस्तु विनिमय है ना की मुद्रा के माध्यम से लेन -देन में होता है। प्रोफेसर टाजिंग ने रिकार्डो के तुलनात्मक व्यापार के प्रतिष्ठित सिद्धांत में मुद्रा को सम्मिलित करके इस सिद्धांत की व्याख्या की।

3.3.1 मान्यताएं

टासिंग का व्यापार का मौद्रिक सिद्धांत निम्नलिखित मान्यताओं पर आधारित है:

1. दो देश है जो कि दो वस्तुओं का उत्पादन करते हैं।
2. दोनों ही देश में मुद्रा के रूप में श्रमिकों को मजदूरी वस्तुओं की कीमतें व्यक्त की जाती है।
3. दोनों ही देश में मुद्रा कीमतों के रूप में निरपेक्ष अंतर है।
4. दोनों देशों के भुगतान शेष संतुलन की स्थिति में हैं। यदि किसी देश के भुगतान शेष में घाटा या अधिशेष है तो सोना या विदेशी मुद्रा की मुक्त अंतरराष्ट्रीय प्रभावों के द्वारायह अपने आप समायोजित हो जाएगा। सोना भुगतान शेष में अतिरेक वाले देश से भुगतान शेष में घाटे वाले देश की ओर प्रवाहित होगा, जब तक की संतुलन नहीं स्थापित हो जाता है।

3.3.2 सिद्धांत की व्याख्या

मान लिया देश A 10 श्रम दिन में X वस्तु की 20 ईकाइयां और 10 श्रम दिन में ही Y वस्तु की भी 20 ईकाइयां उत्पादित कर सकता है। उपरोक्त सारणी से स्पष्ट है कि देश A को दोनों ही वस्तुओं को उत्पादन में निरपेक्ष लाभ है जबकि भी देश B को दोनों ही वस्तुओं को उत्पादन में निरपेक्ष हानि है। परंतु देश A का तुलनात्मक लाभ वस्तुX के उत्पादन में अधिक है जबकि देश B की तुलनात्मक हानि वस्तुY के उत्पादन में कम है। ऐसे में रिकॉर्ड के तुलनात्मक लागत सिद्धांत के अनुसार देश A वस्तु X के उत्पादन में विशिष्टिकरण प्राप्त करेगा, जिसमें कि उसका तुलनात्मक लाभ अधिक है, जबकि देश B वस्तु Y के उत्पादन में विशिष्टीकरण प्राप्त करेगा जिसमें कि उसकी तुलनात्मक हानि कम है।

सारणी 2.1 दो देशो में कुल उत्पादन

	कुल उत्पादन, 10 दिन में	
	वस्तु X का उत्पादन	वस्तु Y का उत्पादन
देश A	20	20
देश B	10	15

यदि हम यह मान लें कि देश A में प्रतिदिन की मजदूरी 15 रूपये है और देश B में प्रतिदिन की मजदूरी 10 रुपए है तो देश A में 10 दिन की मजदूरी 150 रूपये और देश B में 10 दिन की मजदूरी 100 रूपये होगी। इस प्रकार देश A और देश B में वस्तु X और वस्तु Y के प्रति इकाई उत्पादन लागत की तुलना मुद्रा के रूप में की जा सकती है जिसे सारणी 2.2 में दिखाया गया है। एक इकाई X के उत्पादन की लागत देश A में 7.5 रु और देश B में रू 1 है, जबकि वस्तु Y की उत्पादन लागत देश A में 7.5 रुपए और देश B में 6.67 रुपए है।

सारणी 2.2 दो देशो में मुद्रा के रूप में लागतों की तुलना

	10 दिन की मजदूरी	प्रति इकाई उत्पादन लागत मुद्रा में (रु)	
		वस्तु X	वस्तु Y
देश A मजदूरी 15 रु प्रतिदिन	150	7.5	7.5
देश B मजदूरी 10 रु प्रतिदिन	100	1.00	6.67

स्पष्ट है कि यदि मुद्रा के रूप में लागत का मापन किया जाए तो भी तुलनात्मक लागत अंतर ज्ञात किया जा सकता है। उपरोक्त उदाहरण में तुलनात्मक रूप से X वस्तु की उत्पादन लागत A देश में कम है, जबकि वस्तु Y की तुलनात्मक लागत देश B में कम है। इसलिए A देश X वस्तु के उत्पादन में विशिष्टीकरण और निर्यात करेगा जबकि देश B वस्तु Y के उत्पादन में विशिष्टीकरण प्राप्त करेगा और उसका निर्यात करेगा।

देश A में प्रतिदिन की मजदूरी जब तक ₹20 या इससे कम होगी, या 13 रुपए या इससे अधिक होगी तब तक दोनों देशों के बीच व्यापार की संभावना रहेगी। देश ए में मजदूरी ₹20 से अधिक होने या 13 रुपए से कम होने की स्थिति में दोनों देशों के बीच वस्तु व्यापार नहीं हो सकता है क्योंकि तब किसी एक देश को व्यापार से होने वाला लाभ समाप्त हो जाएगा और भुगतान शेष या तो अधिशेष में या फिर घाटे में आ जाएगा। ऐसी स्थिति में सोने का देश से अंतरप्रवाह या बाह्य प्रवाह होगा जब तक कि पुनः भुगतान संतुलन स्थापित नहीं हो जाता है।

3.4 अवसर लागत का सिद्धांत

प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने अपने अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के शुद्ध सिद्धांत में यह दिखाने का प्रयास किया कि व्यापार सभी व्यापाररत देक्षों के लिए लाभदायक है। स्मिथ के मॉडल में व्यापार सम्भव तभी है जब एक देश को एक वस्तु के उत्पादन में और दूसरे देश को दूसरे वस्तु के उत्पादन में निरपेक्ष लाभ प्राप्त है। परन्तु रिकार्डो ने अपने तुलनात्मक लागत सिद्धांत में यह दिखाया कि यदि एक देश दूसरे देश की अपेक्षा दोनों ही वस्तुओं के उत्पादन में निरपेक्ष लाभ की स्थिति में हो तब भी व्यापार हो सकता है। यदि एक देश को एक वस्तु के उत्पादन में अत्यधिक तुलनात्मक लाभ तथा दूसरे देश को दूसरी वस्तु के उत्पादन में अत्यधिक तुलनात्मक हानि प्राप्त है तो भी व्यापार सम्भव है। यह प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों की एक महान उपलब्धि है क्योंकि तुलनात्मक लागत सिद्धांत की वैधता सार्वभौमिक है।

परन्तु तुलनात्मक लागत सिद्धांत के मूल्य के श्रम सिद्धांत पर आधारित होने के कारण कटू आलोचना की जाती है। परन्तु मूल्य का श्रम सिद्धांत अनेक दुर्बल तथा त्रुटिपूर्ण मान्यताओं पर आधारित होने के कारण अर्थशास्त्रियों द्वारा अस्वीकृत किया जा चुका है। वास्तव मे, व्यवहारिक जगत में श्रम एक समरूप साधन नहीं है। श्रम कई अप्रतियोगी समूहों में बँटा होता है। जिसके मध्य मजदूरी के समान होने की प्रवृत्ति नहीं होती। जैसे, एक खेत में काम करने वाले मजदूर, आफिस में काम करने वाले क्लर्क तथा एक कम्पनी के प्रबन्धक, तीनों की अलग–अलग श्रेणिया हैँ, जो कि अप्रतियोगी हैं, इनकी मजदूरी के समान होने की प्रवृत्ति नहीं होती है। इसके अतिरिक्त वस्तुओं का उत्पादन केवल श्रम का ही नहीं बल्कि उत्पादन के अन्य साधनों भूमि, श्रम, पूँजी और उद्यमिता के भी संयोग से होता है।

परन्तु यदि हम मूल्य के श्रम सिद्धांत को अस्वीकार दें, तब भी रिकार्डो के तुलनात्मक लाभ सिद्धांत का निष्कर्ष, कि यदि तुलनात्मक लाभ के आधार पर व्यापाररत दो देश विशिष्टीकरण करते हैं तो इससे विश्व के सकल घरेलू उत्पाद तथा आर्थिक कल्याण में वृद्धि होगी, प्रभावित नहीं होगा। इस प्रकार का प्रयास सबसे पहले 1936 में प्रसिद्ध अर्थशास्त्री हैबरलर ने किया। हैबरलर ने वास्तविक लागत सिद्धांत के विकल्प के रूप में 'अवसर लागत का सिद्धांत' प्रस्तुत किया। और जब तुलनात्मक लाभ को अवसर लागत रूप के रूप में परिभाषित किया जाता है तो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है कि उत्पादन सिर्फ श्रम से हो रहा है या श्रम के साथ सभी उत्पादन के साधनों के संयोग से।

हैबरलर का मानना है कि लागतों का अर्थ वस्तु के उत्पादन मे निहित श्रम की मात्रा से नहीं बल्कि वस्तु के उत्पादन के लिए किए गए वैकल्पिक उत्पादन के त्याग अर्थात् अवसर लागत से है। हैबरलर इस बात को जोर देकर कहते हैं कि मूल्य के श्रम सिद्धांत का मुख्य उद्देश्य दो व्यापाररत देशों में, प्रत्येक में एक वस्तु की अवसर लागत दूसरी वस्तु के पदों में निर्धारित करना था।

इस प्रकार अवसर लागत के पदों मे एक वस्तु की उत्पादन लागत उस वस्तु के मूल्य के बराबर होगी जिसका त्याग विचाराधान वस्तु के उत्पादन के लिए किया गया है। वस्तु X की अवसर लागत, वस्तु Y की वह मात्रा है जो कि वस्तु X की एक अतिरिक्त इकाई के उत्पादन के लिए त्यागनी पड़ती है। इस प्रकार दो वस्तुओं के मध्य विनिमय अवसर लागत के रूप में होता है, जिसकी व्याख्या उत्पादन संभावना वक्र के साथ की जा सकती है।

अवसर लागत व उत्पादन संभावना वक्र के साथ समुदाय अधिमान वक्रों के प्रयोग के द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का नव–प्रतिष्ठित सिद्धांत विकसित किया गया, जिसमें हैबरलर, लियो–टीफ, लर्नर, मार्शल, एजबर्थ और मीड का योगदान है। विशेषरूप से मीड ने आधुनिक ज्यामितीय तकनीकी की मदद से तुलनात्मक लागत के नवप्रतिष्ठित सिद्धांत में महत्वपूर्ण योगदान किया।

नव प्रतिष्ठित व्यापार सिद्धांत में मूल्य के श्रम सिद्धांत को त्यागने के साथ–साथ उत्पादन की अलग–अलग दशाओं में व्यापार–संतुलन की व्याख्या करता है। जबकि प्रतिष्ठित सिद्धांत उत्पादन के स्थिर प्रतिफल के अंर्तगत ही व्यापार–संतुलन की व्याख्या करता है।

प्रतिफल के तीन नियमों के अनुरूप नवप्रतिष्ठित व्यापार सिद्धांत, निम्नलिखित तीन स्थितियो में व्यापार–संतुलन की व्याख्या करता है–

1. जब उत्पादन में स्थिर पैमाने का प्रतिफल हो, अथवा जब उत्पादन में सीमान्त अवसर लागतें स्थिर हों।
2. जब उत्पादन में घटते हुए प्रतिफल या बढ़ती हुई सीमान्त अवसर लागतों की स्थिति हो।
3. जब उत्पादन में बढ़ते हुए प्रतिफल या घटती हुई सीमान्त अवसर लागत की स्थिति हो।

3.5 उत्पादन मे स्थिर प्रतिफल या स्थिर लागतों के अर्न्तगत व्यापार संतुलन

उत्पादन मे स्थिर प्रतिफल या स्थिर लागतों की स्थिति में उत्पादन संभावना वक्र एक सीधी रेखा होगा। अर्थात् एक वस्तु की एक अतिरिक्त इकाई के उत्पादन के लिए दूसरी वस्तु की त्याग की गयी मात्रा सदैव स्थिर रहेगी।

माना दो देश A और B तथा दो वस्तुएँ A और B हैं। दोनों देशों को अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार से लाभ की संभावना तब होगी जबकि दोनों देशों में उत्पादन संभावना वक्र का ढाल असमान होगा अर्थात् लागतों में तुलनात्मक भिन्नता की स्थिति होगी।

माना देश A का उत्पादन संभावना वक्र A_1A_2 तथा देश B का B_1B_2 है। देश A को X वस्तु तथा देश B को Y वस्तु के उत्पादन में निरपेक्ष लाभ प्राप्त है।

देश A के उत्पादन संभावना वक्र A_1A_2 से स्पष्ट है कि वह साधनों की दी हुई मात्रा से या तो OA_2 मात्रा में वस्तु X या OA_1 मात्रा में वस्तु Y का उत्पादन कर सकता है या A_1A_2 वक्र पर स्थित X और संभावित संयोग का उत्पादन कर सकता है। इसी प्रकार देश B दिए हुए साधनों से OB_2 मात्रा में वस्तु X या OY_1 मात्रा में वस्तु Y का उत्पादन कर सकता है या B_1B_1 रेखा पर स्थित दोनों का कोई संभावित संयोग उत्पादित कर सकता है।

व्यापार की अनुपस्थिति में देश A, वक्र A_1A_2 के e बिन्दु पर, तथा देश B वक्र B_1B_2 के f बिन्दु पर उत्पादन तथा उपभोग कर रहे हैं। बिन्दु e पर देश A के उत्पादक तथा उपभोक्ता दोनों सतुलन में है क्योंकि e बिन्दु पर

उत्पादन संभावना वक्र A_1A_2 की ढाल= समुदाय अधिमान वक्र IC_{A_1} की ढाल = कीमत रेखा A_1A_2 का ढाल(रेखा A_1A_2 देश A की घरेलू कीमत रेखा को भी दर्शाती है)

अर्थात् $MRTSxy=MRSxy=\frac{Py}{Px}$

अर्थात् उत्पादन में तकनीकि प्रतिस्थापन की सीमांत दर = उपभोग में सीमांत प्रतिस्थापन की दर = वस्तु कीमत अनुपात

इसी प्रकार बिन्दु f पर देश B में उत्पादन और उपभोग दोनों का एक साथ संतुलन में है क्योंकि f बिन्दु पर, उत्पादन संभावना वक्र B_1B_2 की ढाल= समुदाय अधिमान वक्र IC_{B_1} की ढाल= कीमत रेखा (B_1B_2) का ढाल।

व्यापार न होने की दशा में दोनों ही देशों के लिए यह सम्भव नहीं है कि वे अपने उत्पादन संभावना वक्र के बाहर के किसी बिन्दु को प्राप्त कर सकें। इस प्रकार बिन्दु e पर, देश A में और बिन्दु f पर देश B में उत्पादन के सभी संसाधन रोजगार में लगे हैं। दोनों बिन्दु संबन्धित देशों में उत्पादन तथा उपभोग या आर्थिक कल्याण के उच्चतर स्तरों को व्यक्त करते हैं।,

व्यापार के पश्चात् देश A वस्तु X के उत्पादन में तथा देश B, वस्तु Y के उत्पादन में पूर्ण विशिष्टीकरण प्राप्त करेगा। इस प्रकार देश A अपने समस्त साधनों के प्रयोग से OA_2 मात्रा में X वस्तु का उत्पादन करेगा; जबकि देश B अपने सभी संसाधन Y वस्तु के उत्पादन में लगा देगा और OB_1 मात्रा में Y का उत्पादन करेगा। A देश, व्यापार के पश्चात् A_2 बिन्दु पर तथा B देश B_1 बिन्दु पर उत्पादन करेगा।

पूर्ण विशिष्टीकरण के पश्चात् दोनों देश अन्तर्राष्ट्रीय कीमत अनुपात या व्यापार–शर्त रेखा के अनुरूप आपस में व्यापार करेंगे। दोनों देशों को व्यापार से लाभ तभी होगा जब अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार शर्त रेखा दोनों देशों की घरेलू कीमत रेखा के बीच हो। चित्र 4.1 में रेखा B_1A_2 दोनों घरेलू कीमत रेखा के लगभग बीच में है। अतः व्यापार से A और B दोनों ही देशों को लाभ होगा। दोनों देश आपस में कितना व्यापार करेंगे या अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार–शर्त रेखा पर वास्तव में उपभोग का संतुलन कहाँ होगा, यह दोनों देशों के उपभोक्ताओं की रुचियों की प्रवृत्ति पर निर्भर करेगा।

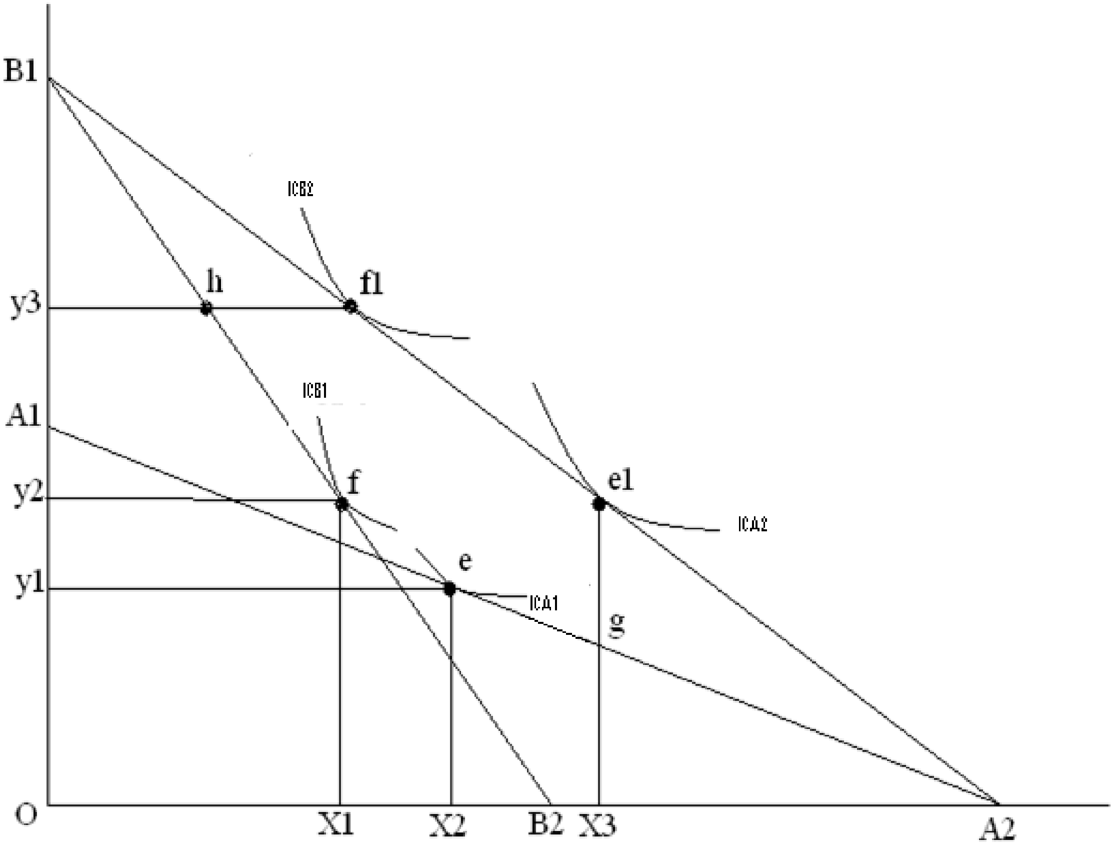

चित्र 4.1 स्थिर लागतों के अन्तर्गत व्यापार संतुलन

व्यापार के पश्चात् उपभोक्ताओं की रुचियाँ दी हुइ होने पर देश के उपभोक्ता अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार शर्त रेखा पर e_1 बिन्दु पर संतुलन में होंगे, जहाँ उसका समुदाय अधिमान वक्र ICA_2 स्पर्श कर रहा है, जबकि B देश के उपभोक्ता f_1 बिन्दु पर संतुलन में होंगे, जहाँ अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार शर्त रेखा उसके समुदाय अधिमान वक्र ICB_2 को स्पर्श कर रही है।

देश A को व्यापार से लाभ

$= e_1x_3 - gx_3$

$= e_1g$ इकाई वस्तु

देश B को व्यापार से लाभ

$= f_1y_3 - hy_3$

$= f_1h$ इकाई वस्तु–X

व्यापार के पश्चात् देश A, बिन्दु A_2 पर उत्पादन कर रहा है जबकि e_1 बिन्दु पर उपभोग कर रहा है।देश A, OA_2 मात्रा X का उत्पादन करता है, परन्तु OX_3 मात्रा का उपभोग करता है और बाकी X_3A_2 मात्रा देश B को निर्यात कर देता है जिसके बदले में वह वस्तु Y की e_1x_3 मात्रा देश B से आयात करता है। स्पष्ट है कि व्यापार के पश्चात् देश A, X और Y दोनों ही वस्तुओं का पहले से अधिक उपभोग कर रहा हैं।

व्यापार से पूर्व e बिन्दु पर वह X की OX_2 तथा y की Oy_1 मात्रा का उपभोग कर रहा था, जबकि व्यापार के बाद e_1 बिन्दु पर X की OX_3 ($> OX_2$) तथा y की e_1X_1 ($> Oy_1$) का उपभोग कर रहा है। व्यापार के पश्चात् देश A निचले समुदाय अधिमान वक्र IC_{A1} के बिन्दु e से, ऊँचे अधिमान वक्र IC_{A2} के बिन्दु e_1 पर संतुलन में है जो कि उसके उपभोग या आर्थिक कल्याण के बढ़े हुए स्तर को व्यक्त करता है।

देश B व्यापार के पश्चात् B_1 बिन्दु पर उत्पादन तथा f_1 बिन्दु पर उपभोग कर रहा है। वह y वस्तु के कुल OB_1 उत्पादन मं से Oy_3 मात्रा का उपभोग करता है, बाकी B_1y_3 मात्रा, देश A को निर्यात कर देता है जिसके बदले में वह Y_3F_1 मात्रा वस्तु X का देश A से आयात करता है। व्यापार से पूर्व वह Y वस्तु की OY_2 तथा X वस्तु OX_1 मात्रा का उपभोग करता था, जबक व्यापार के पश्चात् वह Y वस्तु की $OY_3(>OY_2)$ तथा X वस्तु की Y_3f_1 ($>Y_2f$) मात्रा का उपभोग करता है। स्पष्ट है कि व्यापार के पश्चात् वह ICB_1 समुदाय अधिमान वक्र से और ऊँचे अधिमान वक्र ICB_2 पर चला जाता है, जो कि उसके बढ़े हुए उपभोग या आर्थिक कल्याण के स्तर को व्यक्त करता है।

स्पष्ट है कि व्यापार के पश्चात् दोनों ही व्यापाररत देशों के लिए यह सम्भव हो पा रहा है कि वह अपने उत्पादन संभावना वक्र की सीमा से इतर किसी बिन्दु पर जा सके, व्यापार से पहले यह सम्भव नहीं था। चित्र 4.1 में, बिन्दु e_1 तथा f_1 क्रमशः देश A तथा B के उत्पादन संभावना वक्र की सीमा से काफी ऊपर है। व्यापार के पश्चात् दोनों ही देश, दोनों ही वस्तुओं का पहले से अधिक उपभोग कर रहे हैं।

व्यापार के पश्चात् कुल विश्व उत्पादन में भी वृद्धि हो जाती है। व्यापार से पूर्व वस्तु X का कुल उत्पादन $=OX_1$ (देश B का उत्पादन) × OX_2(देश A का उत्पादन) है, जो कि व्यापार के पश्चात् के कुल उत्पादन OA_2 की अपेक्षा कम है। इसी प्रकार वस्तु Y का व्यापार के पश्चात् का उत्पादन (OB_1) व्यापार के पूर्व के उत्पादन ($OY_1 \times OY_2$) से अधिक है।

स्थिर अवसर लागत की स्थिति में जबकि दोनों देश समान आर्थिक आकार के हों निरपेक्ष लाभ सिद्धांत के अर्न्तगत अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार के संतुलन को अब आप अच्छी तरह से समझ गए होंगे।

3.6 उत्पादन में ह्रासमान प्रतिफल या वृद्धिमान लागतों के अंतर्गत व्यापार संतुलन

यदि दोनों देशों में, दोनों वस्तुओं के उत्पादन में सीमान्त अवसर लागत बढ़ती हुई हो, तो दोनों देशों के उत्पादन संभावना वक्र का आकार मूल बिन्दु के प्रति अवतल होगा। इकाई–2 के अध्ययन बाद आप परिचित हो गए होंगे कि यदि उत्पादन संभावना वक्र का आकार मूल बिन्दु के प्रति अवतल है तो उत्पादन में घटता हुआ प्रतिफल प्राप्त होता है।

माना दो देश A और B हैं, जो कि समान आर्थिक आकार के हैं। वे दो वस्तुओं X और Y का उत्पादन करते हैं। देश A, वस्तु X के उत्पादन में और देश B, वस्तु Y के उत्पादन में अधिक दक्ष है। A देश का उत्पादन संभावना वक्र A_1A_2 तथा देश B का B_1B_2 है।

व्यापार से पूर्व दोनों देश अपने–अपने उत्पादन संभावना वक्र के उस बिन्दु पर संतुलन में हैं जहाँ घरेलू कीमत रेखा या लागत अनुपात उत्पादन संभावना वक्र तथा समुदाय अधिमान वक्र को स्पर्श

करती है। चित्र 4.2 (A) तथा (B) में, देश A के उत्पादन तथा उपभोग का संतुलन बिन्दु e तथा देश B का बिन्दु f पर है। बिन्दु e पर,

देश A की घरेलू कीमत रेखा A_0A_0 का ढाल = उत्पादन संभावना वक्र A_1A_2 की ढाल

= समुदाय अधिमान वक्र ICA_0 की ढाल

अर्थात्, $\frac{Py}{Px}$ $=RTS_{XY}=MRS_X$

बिन्दु f पर,

देश B की घरेलू कीमत रेखा B_0B_0 का ढाल = B के उत्पादन संभावना वक्र B_1B_2 का ढाल= समुदाय अधिमान वक्र ICB_0 की ढाल

अर्थात् $\frac{Py}{Px}$ $=RTS_{XY}=MRS_X$

व्यापार न होने की स्थिति में, यह दोनों बिन्दु e और f देशों के अधिकतम उत्पादन, पूर्ण रोजगार तथा अधिकतम संतुष्टि के स्तर को व्यक्त करता है क्योंकि दोनों ही बिन्दु (e तथा f) देश A तथा B के उत्पादन संभावना वक्र पर स्थित है। बिन्दु e तथा f पर वस्तु तथा साधन बाजार दोनों संतुलन की स्थिति में है। प्रत्येक देश में, साधन बाजार में प्रत्येक साधन का मूल्य उसकी सीमान्त उत्पादन के बराबर है तथा वस्तु बाजार में कीमत अनुपात, सीमान्त लागत अनुपात के बराबर है।

कीमत रेखा A_0A_0 देश A में दो वस्तुओं के आन्तरिक लागत अनुपातों को व्यक्त करती है। इसी प्रकार B_0B_0 देश B में दोनों वस्तुओं की सापेक्षिक कीमतों या लागत अनुपातों को दर्शा रही है। A_0A_0 रेखा अधिक चपटी है जो कि देश A में Y वस्तु की अधिक इकाई लागत तथा X वस्तु के उत्पादन की कम इकाई लागत को व्यक्त करती है। B_0B_1 रेखा अधिक तिरछी है,जो कि देश B में X वस्तु की अधिक इकाई तथा Y वस्तु के उत्पादन की कम इकाई लागत को व्यक्त करती है। दो देशों में दो वस्तुओं के उत्पादन की सापेक्षिक लागतों में अन्तर व्यापार की संभावना को जन्म देता है। वस्तुओं के तुलनात्मक सस्तेपन के कारण लाभदायक व्यापार के लिए पर्याप्त अवसर है। स्पष्ट है कि देश A को X वस्तु तथा देश B को Y वस्तु के उत्पादन में विशिष्टीकरण हासिल करना चाहिए।

व्यापार शुरु होने के पश्चात् दोनों ही देश अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार शर्त रेखा (T_0T_0) के अनुरूप अपने उत्पादन के संसाधनों को दो वस्तुओं के उत्पादन में पुर्नआवंटित करेंगे। उत्पादन का संतुलन उस बिन्दु पर होगा जहाँ अर्न्तराष्ट्रीय कीमत रेखा T_0T_0, संबंधित देश के उत्पादन संभावना वक्र को स्पर्श करती है। चित्र 4.2 में, देश A का उत्पादन का संतुलन g बिन्दु पर होगा, जहाँ, T_0T_0, A_1A_2 को स्पर्श करती है अर्थात्

अर्न्तराष्ट्रीय कीमत रेखा T_0T_0 का ढाल = उत्पादन संभावना वक्र A_1A_2 का ढाल अर्थात् $\frac{Py}{Px} =$ $MRTS_{XY}$

देश A का e बिन्दु से अंततः g बिन्दु तक की गति यह बताती है कि वह Y वस्तु से संसाधनों हटाकर X वस्तु उद्योग में लगा रहा है, क्योंकि अर्न्तराष्ट्रीय बाजार में वस्तु X की सापेक्षिक कीमत घरेलू बाजार से अधिक है, जबकि X की सापेक्षिक उत्पादन लागत देश A में कम है। अर्थात् उसे X के उत्पादन में निरपेक्ष (या तुलनात्मक) लाभ प्राप्त है। इसलिए देश A, वस्तु X का उत्पादन बढ़ा रहा है तथा Y वस्तु का उत्पादन

कम कर रहा है।

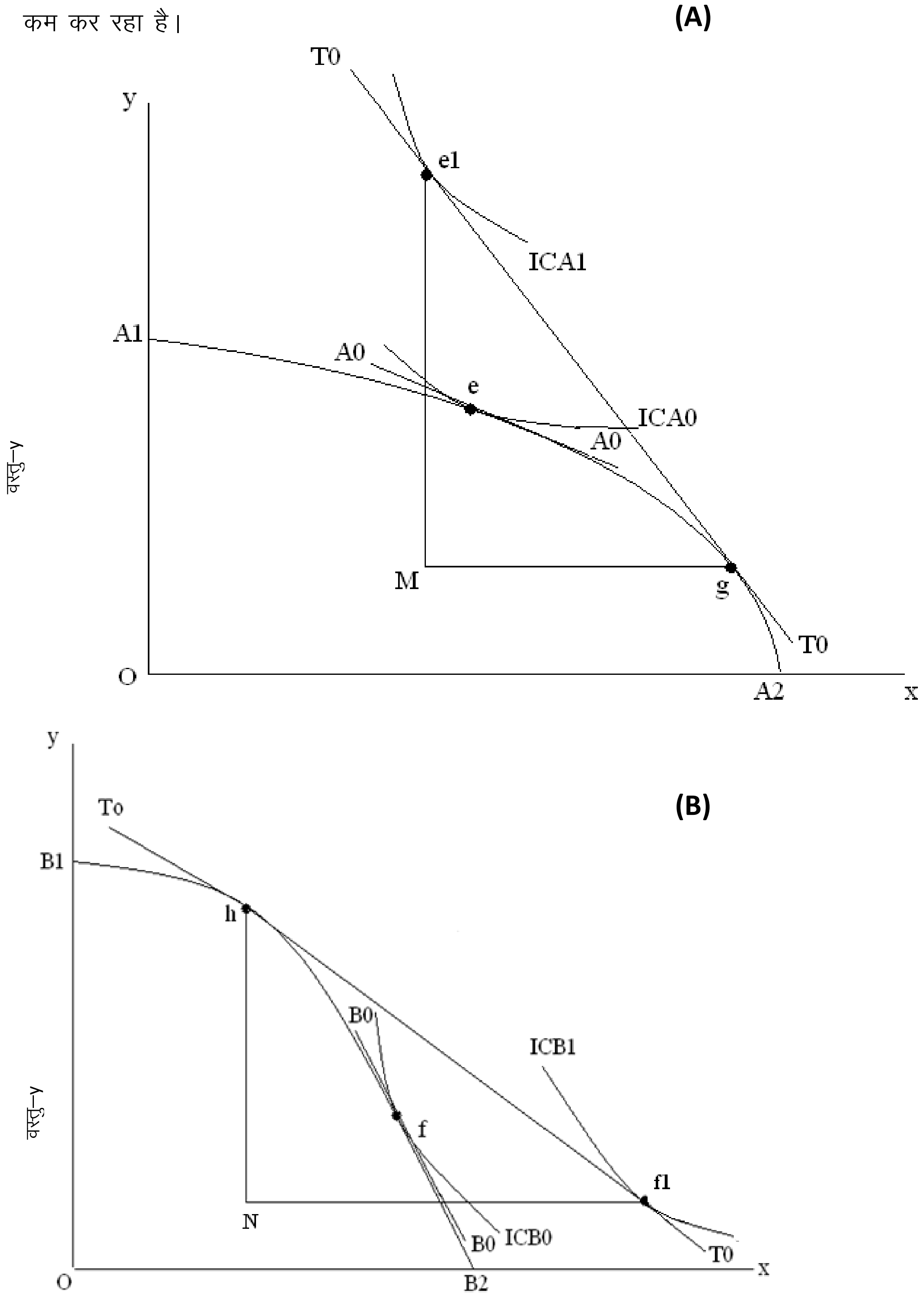

चित्र 4.2 : वृद्धिमान लागत... व्यापार संतुलन

इसी प्रकार देश B व्यापार के पश्चात् वस्तु Y का उत्पादन बढाएगा क्योंकि उसे Y के उत्पादन में निरपेक्ष (या तुलनात्मक) लाभ प्राप्त है। जबकि अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में वस्तु Y की कीमत देश B के घरेलू

बाजार की अपेक्षा अधिक है। देश का अंतिम उत्पादन का संतुलन h बिन्दु पर होगा जहाँ उसके उत्पादन संभावना वक्र B_1B_2 का ढाल, अन्तर्राष्ट्रीय कीमत रेखा T_0T_0 के ढाल के बराबर है। देश B संसाधनों को X वस्तु उद्योग से हटाकर Y वस्तु उद्योग में लगाएगा।

इस प्रकार, देश A वस्तु X के उत्पादन में तथा देश B, वस्तु Y के उत्पादन में विशिष्टीकरण प्राप्त करेगा, परन्तु बढ़ती हुई लागतों की स्थिति में विशिष्टीकरण पूर्ण नहीं होगा। देश A के लिए अनुकूलतम उत्पादन बिन्दु Y तथा देश B के लिए g होगा। इस स्थिति में दोनों ही देशों का आर्थिक कल्याण अधिकतम होगा। व्यापार के पश्चात्, देश A बिन्दु e_1 तथा देश B बिन्दु f_1 पर उपभोग करेगा। बिन्दु e_1 पर, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार रेखा T_0T_0 देश A के समुदाय अधिमान वक्र ICA_1 को स्पर्श कर रही है। अर्थात् e_1 पर

T_0T_0 का ढाल = ICA_1 का ढाल

या $\frac{Py}{Px}$= MRSxy

इसी प्रकार बिन्दु f पर T_0T_0 देश B के समुदाय अधिमान वक्र ICB_1 को स्पर्श कर रही है। अथार्त् T_0T_0 का ढाल = ICB_1, का ढाल

देश A वस्तु X की mg मात्रा का निर्यात करेगा और बदले में me मात्रा में वस्तु Y का आयात करेगा; देश B, वस्तु Y, की nh मात्रा (= e_1m) के निर्यात के बदले वस्तु X की nf_1 मात्रा (=mg) का आयात करेगा।

व्यापार के पश्चात् दोनों देश पहले की अपेक्षा ऊँच समुदाय अधिमान वक्र पर पहुँच जा रहे हैं जो कि उनके बढ़े हुए उपभोग या आर्थिक कल्याण के स्तर को व्यक्त करता है। बिन्दु e_1 तथा f_1 पर अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार शर्त रेखा T_0T_0 का ढाल, दोनों देशों के समुदाय अधिमान वक्रों के ढाल के बराबर है। चूँकि बिन्दु g और h पर T_0T_0 का ढाल दोनों देशों के उत्पादन संभावना व्रक्रों के ढाल के बराबर है। अतः दोनों देश के उत्पादक तथा उपभोक्ता एक साथ सामान्य संतुलन की स्थिति में है। संतुलन की स्थिति में–

उत्पादन संभावना वक्रों की ढाल = समुदाय अधिमान वक्रों की ढाल = अन्तर्राष्ट्रीय कीमत रेखा का ढाल

या $MRST_{XY}$ = MRSxy = $\frac{Py}{Px}$

संतुलन की स्थिति में,

देश A का निर्यात् (वस्तु–x की mg मात्रा)= देश B का आयात (x की nf_1 मात्रा) तथा

देश A का आयात (y की mg मात्रा)= देश B का निर्यात (y की ny मात्रा)

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि बढ़ती हुई लागतों की दशा में उत्पादन में पूर्ण विशिष्टीकरण सम्भव है परन्तु यह अनुकूलतम स्थिति नहीं होगी। पूर्ण विशिष्टीकरण के पश्चात् उस देश के आर्थिक कल्याण के स्तर में कमी आ जायेगी। उदाहरण के तौर पर, यदि देश A वस्तु X के उत्पादन में पूर्ण विशिष्टीकरण करता है तो वह उत्पादन संभावना वक्र के बिन्दु B_1 पर उत्पादन करेगा। ऐसी स्थिति में, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार शर्त रेखा $T_1T_{1;}$ जो कि T_0T_0 के समानान्तर है अर्थात् अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में X ओर Y की सापेक्षिक कीमतें अपरिवर्तित है, होगी। T_1T_1 रेखा, उत्पादन संभावना वक्र A_1B_1 को स्पर्श नहीं करती है। अतः B_1 उत्पादन का अनुकूलन बिन्दु नहीं है। पूर्ण विशिष्टीकरण की स्थिति में उपभोग का बिन्दु e_1 से बिन्दु j पर आ जाएगा, जहाँ व्यापार शर्त T_1T_1 समुदाय अधिमान वक्र ICA को j बिन्दु पर स्पर्श करती है। बिन्दु j, देश A के उत्पादन संभावना वक्र की सीमा से बाहर है जो कि यह बताता है कि व्यापार न होने से व्यापार का होना बेहतर है, क्योंकि इससे आर्थिक कल्याण का स्तर बढ़ जाता है। परन्तु बिन्दु j, बिन्दु e की अपेक्षा निचले समुदाय अधिमान वक्र पर स्थित है। अर्थात् g की अपेक्षा B_1 बिन्दु पर उत्पादन करने पर आर्थिक कल्याण या उपभोग का स्तर कम हो जाएगा। इस प्रकार अपूर्ण विशिष्टीकरण बढ़ती हुई लागतों की स्थिति में अनुकूलतम संतुलन की स्थिति को व्यक्त करता है जिसमें कि आर्थिक कल्याण अधिकतम होगा।

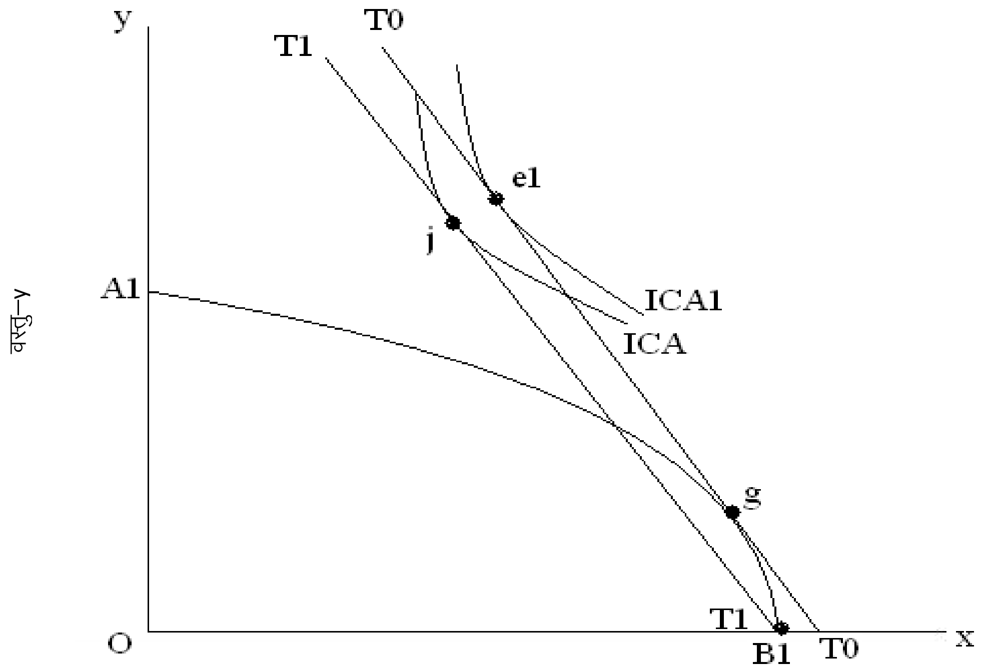

चित्र 4.3: बढ़ती हुई लागतों की दशा में पूर्ण त विशिष्टीकरण की स्थिति में व्यापार के संतुलन की तुलना

3.7 उत्पादन में वृद्धिमान प्रतिफल या ह्रासमान लागतों के अंतर्गत व्यापार संतुलन

उत्पादन में बढ़ते हुए प्रतिफल या ह्रासमान लागतों की स्थिति में, उत्पादन में वृद्धि के साथ–साथ औसत तथा सीमान्त लागतों में कमी आती है। प्रति इकाई उत्पादन लागत में कमी बड़े पैमाने के उत्पादन से प्राप्त आन्तरिक बचतों तथा वाह्य बचतों के कारण होता है। परन्तु ऐसी स्थिति में पूर्ण–प्रतियोगिता नहीं रहेगी। क्योंकि पूर्ण–प्रतियोगिता में सभी फर्में अनुकूलतम आकार की होती है, जिन्हें कोई आतरिक तथा वाह्य बचतें नहीं प्राप्त होती है। यदि पूर्ण प्रतियोगिता की मान्यता का त्याग कर दिया जाय तो फर्मों के आकार में वृद्धि के कारण, उत्पादन बढने पर आंतरिक बचतें या मितव्ययिताओं में वृद्धि तथा उनका पूर्ण दोहन हो पाता है।

ह्रासमान लागतों की दशा में उत्पादन संभावना वक्र का आकार मूल बिन्दु के प्रति उत्तल होगा। एक अकेले देश के व्यापार संतुलन की स्थिति को भी हम घटती हुई लागतों की स्थिति में दिखा सकते हैं।

चित्र 4.4 में, एक देश A का उत्पादन संभावना वक्र AB दिया हुआ है, जो कि मूल बिन्दु के प्रति उन्नतोदर है। दोनों ही वस्तुओं के उत्पादन में ह्रासमान लागतों या वृद्धिमान प्रतिफल की स्थिति है। व्यापार से पूर्व e बिन्दु पर संतुलन है जहाँ कि उस देश की घरेलू कीमत रेखा P_0P_0, उत्पादन संभावना वक्र AB को स्पर्श करती है। बिन्दु e पर A देश ox_1 मात्रा x तथा oy_1 मात्रा y का उत्पादन तथा उपभोग कर रहा है।

व्यापार शुरु होने के पश्चात् देश किसी भी वस्तु के उत्पादन में पूर्ण विशिष्टीकरण प्राप्त कर सकता है, क्योकि उत्पादन बढ़ने पर दोनों ही वस्तु उद्योगों को आन्तरिक बचतें प्राप्त है। वास्तव में यह देश किस वस्तु के उत्पादन में विशिष्टीकरण प्राप्त करेगा, यह अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार शर्त रेखा पर निर्भर करेगा। यदि अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार शर्त रेखा और घेरलू कीमत रेखा का ढाल बराबर हो, अर्थात् दोनों अनुपात एक ही हों तब भी देश A को अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार से लाभ होगा।

यदि अर्न्तराष्ट्रीय कीमत या व्यापार–शर्त रेखा AT_1, घरेलू कीमत रेखा P_0P_0 एक समान हों, अर्थात् व्यापार के पश्चात् दोनों वस्तुओं की सापेक्षिक कीमतों में कोई परिवर्तन नहीं होता है तो देश वस्तु y के उत्पादन में पूर्ण विशिष्टीकरण करता है। चित्र 4.4 में अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार–शर्त रेखा AT_1 घरेलू कीमत रेखा P_0P_0 के समानान्तर है। व्यापार शुरु होने के पश्चात् देश अपने सभी संसाधनों को X वस्तु उद्योग से Y वस्तु

उद्योग में लगा देता है और उत्पादन का बिन्दु e से बिन्दु A पर चला जाता है। जहाँ वह वस्तु y की OA तथा वस्तु X की शून्य मात्रा का उत्पादन करता है। परन्तु उपभोग का संतुलन बिन्दु e से बिन्दु f पर चला जाता है। बिन्दु f पर वह Ay_2 मात्रा Y का निर्यात करता है और बदले में y_2f मात्रा X का आयात करता है। स्पष्ट है कि व्यापार के पश्चात् देश के आर्थिक कल्याण में वृद्धि ो जा रही है। देश IC_1 के e बिन्दु से IC_2 के f बिन्दु पर चला जा रहा है जो कि उपभोग तथा कल्याण के बढ़े हुए स्तर को प्रदर्शित करता है।

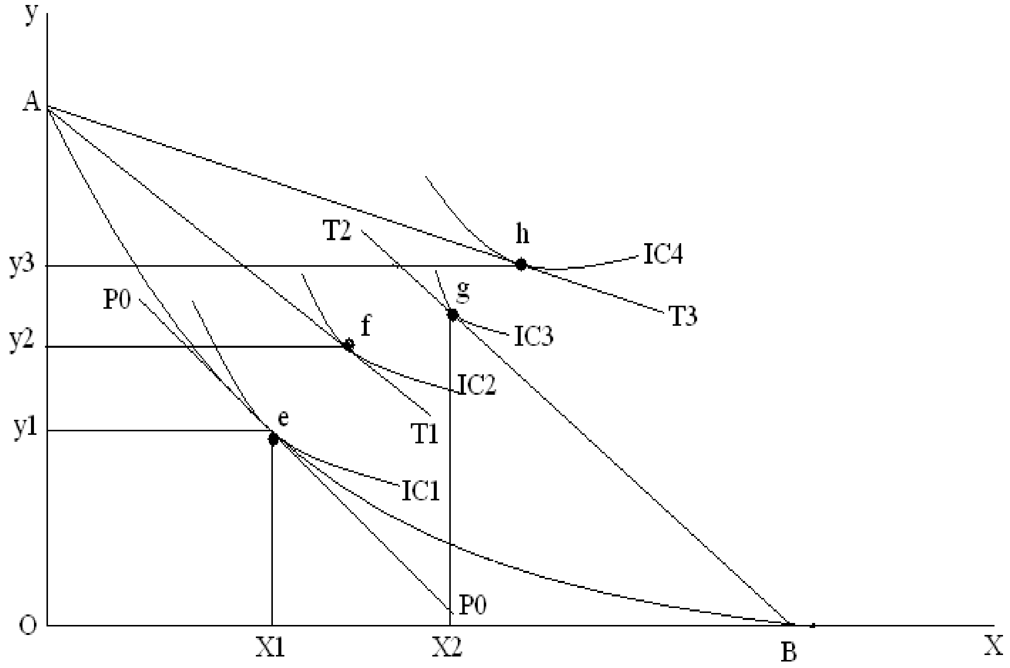

चित्र 4.4 ह्रासमान लागतों के अंतर्गत व्यापार संतुलन

यदि देश वस्तु X के उत्पादन में विशिष्टीकरण प्राप्त करता है तो बिन्दु B पर उत्पादन का संतुलन होगा। यदि व्यापार–शर्त रेखा वही है अर्थात् रेखा BT_2, AT_1 तथा P_0P_0 के समानान्तर हो, तो देश X_2B मात्रा में X का निर्यात करेगा और बदले में X_2g मात्रा y का आयात करेगा। व्यापार–शर्त रेखा से स्पष्ट है कि X के उत्पादन में विशिष्टीकरण करना देश A के लिए अधिक फायदेमंद है। यह बात इस तथ्य से भी स्पष्ट है कि अब उत्पादन का संतुलन बिन्दु g पर है जो कि ऊपर के समुदाय अधिमान वक्र IC_3 पर स्थित है। चूंकि बिन्दु f की अपेक्षा बिन्दु g आर्थिक कल्याण के ऊँचे स्तर के व्यक्त करता है इसलिए इस देश के लिए B बिन्दु पर उत्पादन और बिन्दु g पर उपभोग करना उपयुक्त होगा।

यदि अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार के शुरु होने बाद व्यापार–शर्तों में परिवर्तन हो जाता है तो उत्पादन व उपभोग संतुलन परिवर्तित हो जाएगा। उदाहरण के लिए मान लिया अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार शर्त रेखा AT_3 है, जो कि व्यापार से पूर्व कि कीमत रेखा P_0P_0 से अधिक चपटी है। अर्थात् विश्व बाजार में वस्तु X की अपेक्षा वस्तु y काफी मंहगी है। इसलिए देश के लिए यह अधिक लाभदायक होगा कि वह वस्तु y के उत्पादन में पूर्ण विशिष्टीकरण हासिल करे। वह OA मात्रा में y वस्तु का उत्पादन करेगा, उसमें से Ay_3 मात्रा निर्यात करके बदले में Y_3h मात्रा X का आयात करेगा। देश का उत्पादन का संतुलन A बिन्दु पर तथा उपभोग का संतुलन h बिन्दु पर होगा। बिन्दु h, समुदाय अधिमान वक्र IC_4 पर स्थित है, जो कि पहले कि स्थितियों से

सबसे अधिक आर्थिक कल्याण के स्तर को प्रदर्शित करता है।

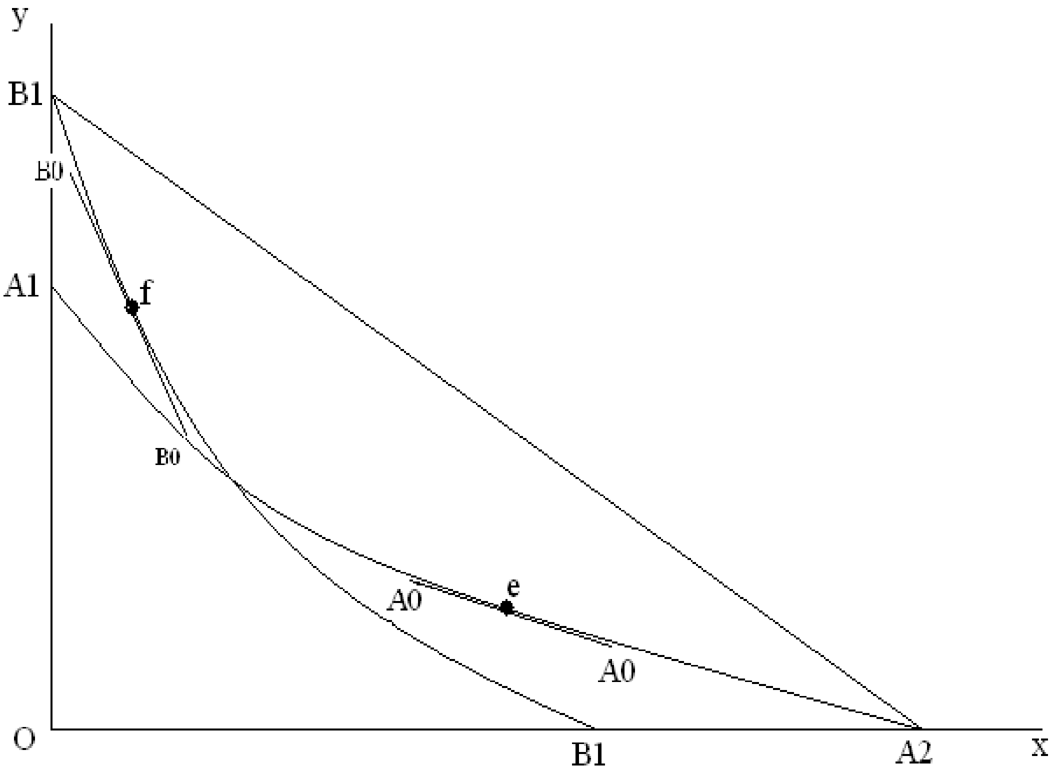

चित्र 4.5 ह्रासमान लागतों के अंतर्गत व्यापार संतुलन

जब दो देश A और B हों, जो दो वस्तुओं X और Y उत्पादन बढ़तें हुए प्रतिफल के अंर्तगत कर रहे हों, उनके व्यापार का संतुलन चित्र 4.5 में दिखाया गया है। देश A का उत्पादन संभावना वक्र A_1A_2 तथा देश B का B_1B_2 है व्यापार से पहले दोनों देश क्रमशः e और f बिन्दु पर संतुलन में है जहाँ घरेलू कीमत रेखा A_0A_0 तथा B_0B_0 उनके उत्पादन संभावना वक्रों क्रमशः A_1A_2 तथा B_1B_2 को स्पर्श कर रही है।

देश A की घरेलू कीमत रेखा A_0A_0 अधिक चपटी है, जो कि यह बताती है कि y की अपेक्षा वस्तु X काफी सस्ती है। अर्थात् देश A को X के उत्पादन में अधिक लाभ प्राप्त है, क्योंकि उसकी उत्पादन लागत कम है। इसी प्रकार देश B की घरेलू कीमत रेखा B_0B_0 अधिक तिरछी है, जो यह दर्शाती है कि देश B को Y के उत्पादन में अधिक लाभ प्राप्त है। यदि अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार–शर्त रेखा B_1B_2 हो तो देश B, वस्तु Y के उत्पादन में पूर्ण विशिष्टीकरण प्राप्त करेंगे। रेखा B_1A_2 से स्पष्ट है कि वस्तु X की वैश्विक बाजार में कीमत देश A की घरेलू कीमत से अधिक है। इसी प्रकार, वस्तु Y की देश B में घरेलू कीमत की अपेक्षा अर्न्तराष्ट्रीय बाजार में कीमत अधिक है।

इस प्रकार व्यापार के पश्चात् देश A वस्तु X में तथा देश B वस्तु Y में पूर्ण विशिष्टीकरण प्राप्त करेगा। अर्न्तराष्ट्रीय बाजार में वस्तु X देश A के घरेलू बाजार से मंहगी है। जबकि वस्तु Y अर्न्तराष्ट्रीय बाजार में देश B के घरेलू बाजार की अपेक्षा मंहगी है। देश A का उत्पादन का बिन्दु, e से हटकर A_2 तथा देश B का f से B_1 पर आ जाएगा। जबकि दोनों देशों में उपभोक्ताओं का संतुलन अंर्न्तराष्ट्रीय व्यापार शर्त रेखा B_1A_2 पर कहीं स्थित होगा। देश A, वस्तु X का निर्यात और वस्तु Y का आयात करेगा तथा देश B वस्तु Y का निर्यात तथा X का आयात करेगा। संतुलन की स्थिति में दोनों देशों के आयात व निर्यात परस्पर बराबर होंगे।

3.8 एक वस्तु के उत्पादन में वृद्धिमान प्रतिफल तथा दूसरी वस्तु के उत्पादन में ह्रासमान प्रतिफल के अंतर्गत व्यापार संतुलन

एक वस्तु के उत्पादन में बढ़ते हुए प्रतिफल या घटती हुई लागतों तथा दूसरे वस्तु के उत्पादन में घटते प्रतिफल या बढ़ती हुई लागतों की स्थिति में व्यापार–संतुलन अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार–शर्त रेखा पर निर्भर करेगा। साथ ही व्यापार संतुलन की स्थिति घटती हुई लागतों की स्थिति मजबूत है या सामान्य है, इस पर निर्भर करेगी।

चित्र 4.6 में, एक देश को X वस्तु के उत्पादन में बढ़ते हुए प्रतिफल तथा Y वस्तु के उत्पादन में घटते हुए प्रतिफल की स्थिति दिखायी गयी है। व्यापार के पश्चात् देश वस्तु–X के उत्पादन में विशिष्टीकरण प्राप्त करेगा या वस्तु–Y के उत्पादन में, यह पूरी तरह से अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार–शर्त रेखा या वैश्विक बाजार में वस्तु X तथा Y की सापेक्षिक कीमतों पर निर्भर करेगा।

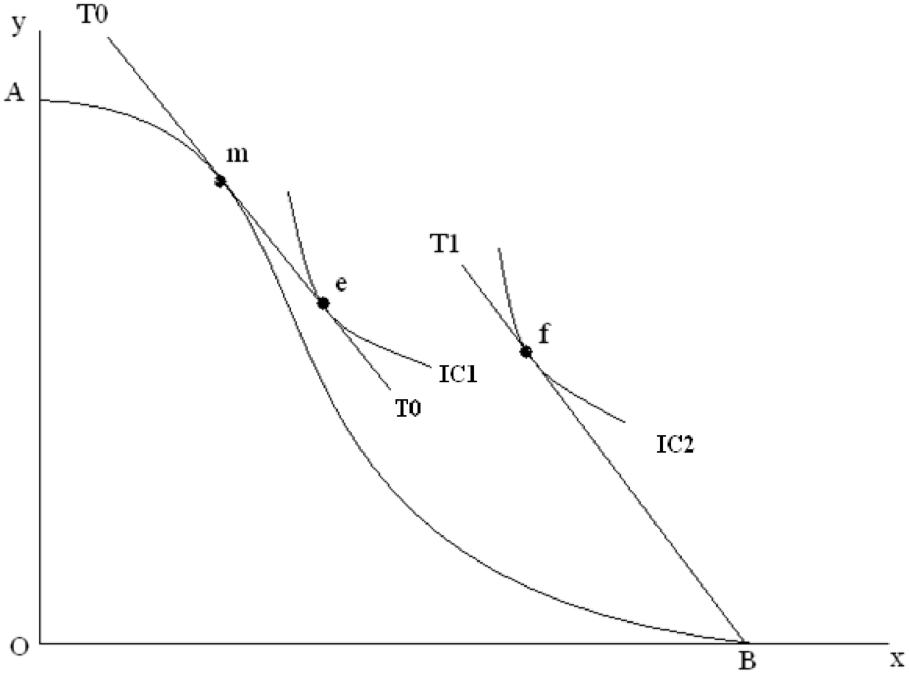

चित्र 4.6: एक वस्तु के उत्पादन में वृद्धिमान प्रतिफल तथा दूसरी वस्तु के उत्पादन में ह्रासमान प्रतिफल के अंतर्गत व्यापार संतुलन

यदि अर्न्तराष्ट्रीय कीमत रेखा T_0T_0 है, तो स्पष्ट है कि वैश्विक बाजार में वस्तु Y की अपेक्षा वस्तु X मंहगी है। इसलिए देश वस्तु X के उत्पादन में विशिष्टीकरण प्राप्त करेगा। वैश्विक माँग देशाओं के साथ ही देश में वस्तु X के लिए उत्पादन की दशाएँ भी अनुकूल हैं क्योंकि X के उत्पादन में बढ़ता हुआ प्रतिफल प्राप्त हो रहा है। व्यापार के पश्चात् उत्पादन का संतुलन B बिन्दु पर तथा उपभोग का f बिन्दु पर होगा, जो कि ऊँचे समुदाय अधिमान वक्र पर स्थित है।

देश, यदि वस्तु Y के उत्पादन में विशिष्टीकरण प्राप्त करेगा तो भी व्यापार से पहले की अपेक्षा अधिक लाभ प्राप्त करेगा। चूँकि वस्तु Y के उत्पादन में घटते हुए प्रतिफल की स्थिति है इसलिए उत्पादन में अपूर्ण विशिष्टीकरण से ही उसका लाभ अधिकतम होगा। Y वस्तु में विशिष्टीकरण की स्थिति में उत्पादन का संतुलन M बिन्दु पर होगा जहाँ व्यापार शर्त रेखा T_0T_0 (जो कि T_1B के समानान्तर है) वक्र AB का स्पर्श करती है तथा उपभोग का संतुलन अधिमान वक्र IC_1 के e बिन्दु पर होगा। IC_1 वक्र IC_2 के नीचे स्थित है अतः बिन्दु e, बिन्दु f की अपेक्षा आर्थिक कल्याण के निम्नतर स्तर को व्यक्त करता है। अतः देश के लिए सबसे अच्छी स्थिति होगी वह वस्तु X के उत्पादन में पूर्ण विशिष्टीकरण करे तथा IC_2 के f बिन्दु पर उपभोग करें।

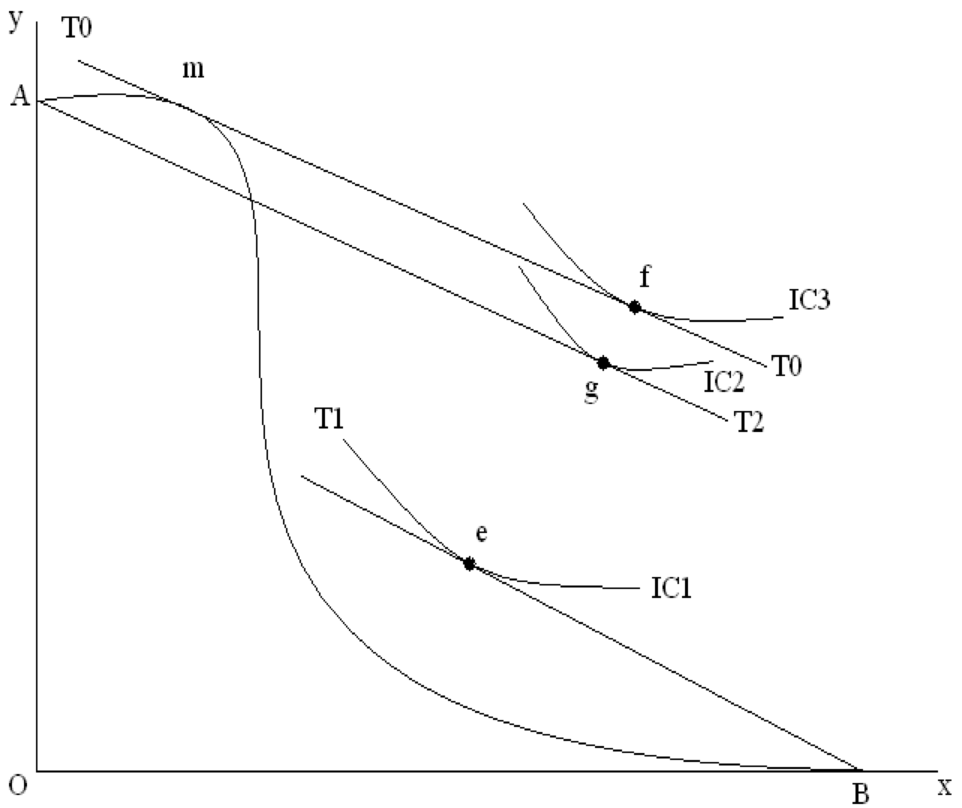

चित्र 4.7: एक वस्तु के उत्पादन में वृद्धिमान प्रतिफल तथा दूसरी वस्तु के उत्पादन में ह्रासमान प्रतिफल के अंतर्गत व्यापार संतुलन

यदि अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार शर्त रेखा बहुत चपटी है, अर्थात् यदि वैश्विक बाजार में वस्तु X की अपेक्षा वस्तु Y मंहगी हो, जैसा कि चित्र 4.7 में T_0T_0 (।। T_1B) से स्पष्ट है तो ऐसी स्थिति में वस्तु X के उत्पादन में पूर्ण विशिष्टीकरण के पश्चात् देश IC_1 के e बिन्दु पर उपभोग करेगा। जबकि यदि वह Y वस्तु के उत्पादन में m बिन्दु पर अपूर्ण विशिष्टीकरण करता है तो IC_3 के f बिन्दु पर उपभोग कर रहा है जो e की अपेक्षा अधिक आर्थिक कल्याण के स्तर को व्यक्त करता है। अतः X के उत्पादन में बढ़ते हुए प्रतिफल की स्थिति के बावजूद, व्यापार की शर्तों के विरुद्ध होने के कारण, इसके उत्पादन में विशिष्टीकरण नही करेगा। यदि देश Y के उत्पादन में पूर्ण विशिष्टीकरण करता है तो IC_1 के e बिन्दु की अपेक्षा अधिक कल्याण अर्जित कर रहा है। चित्र में Y वस्तु के पूर्ण विशिष्टीकरण की स्थिति में उत्पादन का संतुलन A बिन्दु पर होगा जबकि उपभोग IC_2 के बिन्दु g पर होगा, जो कि IC_1 के e बिन्दु से ऊपर है। परन्तु IC_2 वक्र IC_3 के नीचे स्थित है। अतः स्पष्ट है कि देश, वस्तु Y के उत्पादन में अपूर्ण विशिष्टीकरण करके, अर्थात् बिन्दु M पर उत्पादन करके अपने उपभोग तथा आर्थिक कल्याण के स्तिर को बढ़ा सकता है।

3.9 मूल्यांकन

अवसर लागत पर आधारित अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार का नवप्रतिष्ठित सिद्धांत, न सिर्फ मूल्य के श्रम सिद्धांत तथा उत्पादन में स्थिर प्रतिफल जैसे अवास्तविक बातों को त्याग कर व्यापार संतुलन का एक वैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत करता है, बल्कि यह अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार के सामान्य संतुलन सिद्धांत का एक सरल मॉडल प्रस्तुत करता है जो कि विश्लेषण के महत्वपूर्ण यंत्रों से सुसज्जित है।

प्रतिष्ठित सिद्धांत के समर्थकों का मानना है कि नवप्रतिष्ठत सिद्धांत वस्तु के उत्पादन में निहित श्रम की अनुपयोगिता या कष्टानुभूति को मापने में असमर्थ है, यह सिद्धांत सिर्फ विश्लेषणात्मक कार्यों के लिए श्रेष्ठ है इसका वास्तविक लागतों या कल्याण संबंधी अर्थशास्त्र से कोई संबंध नहीं है परन्तु अनेक आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने जैसे केम्प, सैम्युलसन, बाल्डबिन आदि ने उत्पादन संभावना वक्र तथा समुदाय अधिमान वक्रों के माध्यम से अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार से प्राप्त लाभों को कल्याण के रूप में प्रदर्शित किया है।

3.10 विनिमय से लाभ तथा विशिष्टीकरण से लाभ

अब तक के अध्ययन से आप यह समझ गए होंगे कि यदि दो देशों के बीच एक वस्तु की उत्पादन लागतों में तुलनात्मक रूप से अंतर है तो अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार दोनों ही देशों के लिए लाभदायक होगा। व्यापार से होने वाले लाभ दो तरह के होते हैं विनिमय से लाभ तथा विशिष्टीकरण से लाभ। ये दोनों लाभ मिलकर व्यापार से होने वाले कुल लाभों को बताते हैं। व्यापार से होने वाले लाभों या आर्थिक कल्याण में वृद्धि को हम उपभोग में या उपभोक्ताओं की संतुष्टि में हुई वृद्धि के रूप में मापते हैं, जो कि समुदाय अधिमान वक्र के माध्यम से दर्शाया जाता है। यदि एक देश के उपभोक्ता निचले समुदाय अधिमान वक्र से ऊपर के समुदाय अधिमान वक्र पर पहुँच जाते हैं तो यह उस देश के रहन–सहन या आर्थिक कल्याण में वृद्धि को दर्शाता है, जो कि व्यापार से होने वाले लाभ हैं। यह लाभ दो कारणों से होता है, एक तो अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार शर्तों के देश के पक्ष होने कारण अर्थात् वह जिस वस्तु के उत्पादन में अधिक दक्ष है उसकी वैश्विक बाजार में कीमत, घरेलू बाजार से अधिक होती है, दूसरे देश के आर्थिक संसाधनों के प्रयोग में अर्थात् उत्पादन में, विशिष्टीकरण के कारण।

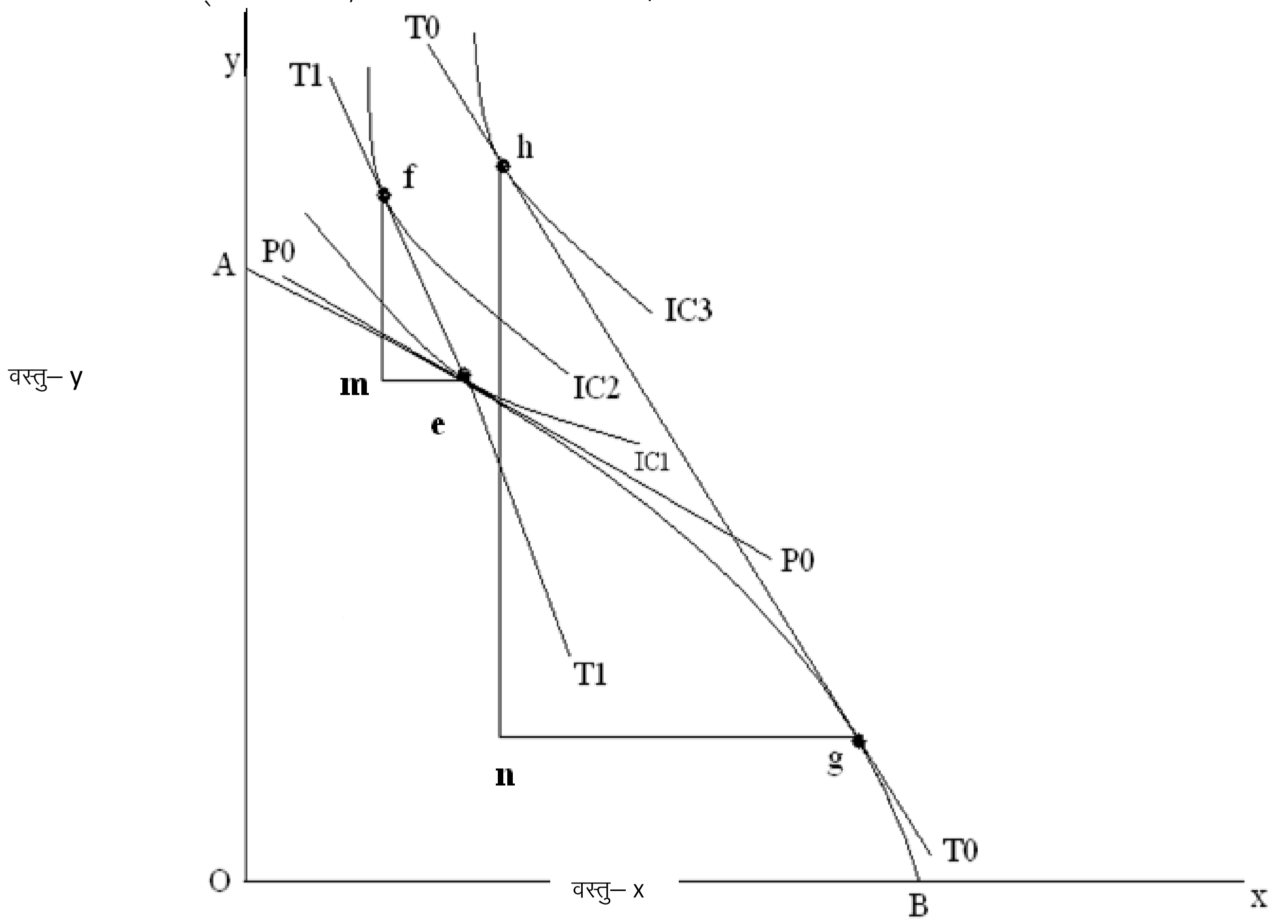

चित्र 4.8

चित्र 4.8 में, व्यापार न होने की स्थिति में, देश अपने उत्पादन संभावना वक्र AB के बिन्दु e पर संतुलन में है, जहाँ घरेलू कीमत रेखा P_0P_0, स्पर्श कर रही है। देश e बिन्दु पर उत्पादन के साथ–साथ उपभोग भी कर रहा है। क्योंकि कीमत रेखा P_0P_0 समुदाय अधिमान वक्र IC_1 के e बिन्दु पर स्पर्श करती है। जैसे ही अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार शुरु होता है नयी अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार शर्त रेखा (T_0T_0) के अनुसार देश संसाधनों को पुर्नआवंटित करेगा। चूँकि देश में वस्तु X की सापेक्षिक लागत कम है, जबकि वस्तु X वैश्विक बाजार में तुलनात्मक रूप से मंहगी है। (रेखा T_0T_0, घरेलू कीमत रेखा P_0P_0 से अधिक तिरछी है) अतः देश वस्तु X के उत्पादन में विशिष्टीकरण करके व्यापार से अधिकतम लाभ प्राप्त करना चाहेगा। परन्तु संसाधनों

को वस्तु Y उद्योग से हटाकर वस्तु X उद्योग में लगाने में कुछ समय लगेगा। ऐसी स्थिति में यदि उत्पादकों की प्रतिक्रिया पर विचार नहीं किया जाएगा, तो बिन्दु e पर उत्पादन करके, अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार शर्त रेखा T_0T_0 (II T_1T_1) के आधार पर देश के उपभोक्ता सिर्फ वस्तु विनिमय के द्वारा लाभ कमा सकते है। चित्र में, देश के उपभोक्ता अर्न्तराष्ट्रीय कीमत रेखा T_1T_1, जो कि T_0T_0 के समानान्तर है और उत्पादन में संतुलन के प्रारंभिक बिन्दु e से होकर गुजरती है, के अनुसार व्यापार करेंगे। अनुकूल व्यापार शर्त के कारण उपभोक्ताओं का संतुलन बिन्दु IC_1 के e बिन्दु से IC_2 के f बिन्दु पर जाता है, जो कि ऊँचे संतुष्टि या कल्याण के स्तर को व्यक्त करता है। उत्पादन में बिना विशिष्टीकरण के यह सिर्फ वस्तु विनिमय के द्वारा प्राप्त लाभ है। देश em मात्रा में वस्तु X का निर्यात करके fm मात्रा में वस्तु Y का आयात करेगा। इस प्रकार, बिना उत्पादन में परिवर्तन किए समुदाय अधिमान वक्र IC_1 के बिन्दु e से IC_2 के बिन्दु f तक की गति अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार द्वारा विनिमय से लाभ को प्रदर्शित करती है।

परन्तु उत्पादन e बिन्दु पर नहीं होता रहेगा, उत्पादक निष्क्रिय नहीं बैठेंगे। उत्पादक वस्तु Y उद्योग से संसाधनों को हटाकर तब तक वस्तु X उद्योग में लगाते रहेंगे, अर्थात् वस्तु X का उत्पादन तब तक बढ़ाते रहेंगे जब तक कि अर्न्तराष्ट्रीय विनिमय अनुपात, उत्पादन की सीमांत प्रतिस्थापन दर के बराबर न हो जाए अर्थात् जहाँ व्यापार शर्त रेखा T_0T_0 तथा उत्पादन संभावना वक्र AB का ढाल बराबर हो जाए। इस प्रकार उत्पादन का अंतिम संतुलन g बिन्दु पर होगा जहाँ T_0T_0, AB को स्पर्श कर रही है। उत्पादन बिन्दु e में g से तक गति संसाधनो के उपभोग में बढ़ी हुई दक्षता को दर्शाता है। उत्पादन में इस बढ़ी हुई दक्षता के कारण देश के उपभोक्ता अब IC_3 समुदाय अधिमान वक्र के h बिन्दु पर उपभोग कर रहे हैं, जो कि IC_2 से ऊपर स्थित है और उपभोग तथा आर्थिक कल्याण के ऊँचे स्तर को व्यक्त करता है। देश ng मात्रा वस्तु X का निर्यात करेगा और बदले में nh मात्रा वस्तु Y का आयात करेगा. इस प्रकार IC_2 के बिन्दु f से IC_3 के बिन्दु h तक गति, उत्पादन में विशिष्टीकरण के कारण व्यापार से लाभ को प्रदर्शित करती है।

इस प्रकार व्यापार से होने वाला कुल लाभ, जो देश के उपभोग में या आर्थिक कल्याण में वृद्धि को बताता है, दो प्रकार के लाभों का योग है– विनिमय से प्राप्त लाभ तथा विशिष्टीकरण से प्राप्त लाभ।

विनिमय से लाभ = IC_1 के बिन्दु e से IC_2 के बिन्दु f तक की गति
विशिष्टीकरण से लाभ = IC_2 के f से IC_3 के g तक गति
व्यापार से कुल लाभ=IC_1 के बिन्दु e से IC_3 के g तक की गति

(e से f तक + f गति से g तक गति)

यहाँ यह महत्वपूर्ण है कि व्यापार के पश्चात् आय के वितरण में देश के भीतर जो परिवर्तन होता है उस पर विचार नहीं किया गया है। उत्पादन में परिवर्तन से देश के भीतर आय के वितरण से महत्वपूर्ण परिवर्तन हो सकता है परन्तु यहाँ, आय वितरण को स्थिर मानकर समुदाय अधिमान वक्र की रचना की गयी है।

3.11 सारांश

अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार का तुलनात्मक लागत सिद्धांत की मूल्य के श्रम सिद्धांत पर आधारित होने के कारण कटू आलोचना की जाती है। परन्तु जब तुलनात्मक लाभ को अवसर लागत रूप के रूप में परिभाषित किया जाता है तो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है कि उत्पादन सिर्फ श्रम से हो रहा है या श्रम के साथ सभी उत्पादन के साधनों के संयोग से। हैबरलर ने वास्तविक लागत सिद्धांत के विकल्प के रूप में 'अवसर लागत का सिद्धांत' प्रस्तुत किया। हैबरलर का मानना है कि लागतों का अर्थ वस्तु के उत्पादन मे निहित श्रम की मात्रा से नहीं बल्कि वस्तु के उत्पादन के लिए किए गए वैकल्पिक उत्पादन के त्याग अर्थात् अवसर लागत से है। वस्तु X की अवसर लागत, वस्तु Y की वह मात्रा है जो कि वस्तु X की एक अतिरिक्त इकाई के उत्पादन के लिए त्यागनी पड़ती है। अवसर लागत व उत्पादन संभावना वक्र के साथ समुदाय अधिमान वक्रों के प्रयोग के द्वारा अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार का नव–प्रतिष्ठित सिद्धांत विकसित किया गया। नव प्रतिष्ठित व्यापार सिद्धांत में मूल्य के श्रम सिद्धांत को त्यागने के साथ–साथ उत्पादन की

अलग–अलग दशाओं में व्यापार–संतुलन की व्याख्या करता है। प्रतिफल नियमों के अनुरूप यह उत्पादन में स्थिरे, घटते तथा बढ़ते हुए प्रतिफल की स्थितियो में व्यापार–संतुलन की व्याख्या करता है.

उत्पादन मे स्थिर प्रतिफल या स्थिर लागतों की स्थिति में पूर्ण विशिष्टीकरण होगा। व्यापार से लाभ तभी होगा जब अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार शर्त रेखा दो देशों की घरेलू कीमत रेखा के बीच हो। व्यापार के पश्चात् कुल विश्व उत्पादन में वृद्धि हो जाती है। व्यापाररत देश पहले से अधिक उपभोग करते हैं। ह्रासमान प्रतिफल या बढ़ती हुई लागतों की दशा में उत्पादन में पूर्ण विशिष्टीकरण सम्भव है परन्तु यह अनुकूलतम स्थिति नहीं होगी। पूर्ण विशिष्टीकरण के पश्चात् उस देश के आर्थिक कल्याण के स्तर में कमी आ जायेगी। अपूर्ण विशिष्टीकरण बढ़ती हुई लागतों की स्थिति में अनुकूलतम संतुलन की स्थिति को व्यक्त करगा। उत्पादन में बढ़ते हुए प्रतिफल या ह्रासमान लागतों की स्थिति में, देश किस वस्तु के उत्पादन में विशिष्टीकरण प्राप्त करेगा, यह अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार शर्त रेखा पर निर्भर करेगा।

व्यापार से होने वाला कुल लाभ देश के उपभोग में या आर्थिक कल्याण में वृद्धि को बताता है। यह दो प्रकार के लाभों का योग है– विनिमय से प्राप्त लाभ तथा विशिष्टीकरण से प्राप्त लाभ। दोनों देश आपस में कितना व्यापार करेंगे या अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार–शर्त रेखा पर वास्तव में उपभोग का संतुलन कहाँ होगा, यह अन्तर्राष्ट्रीय कीमत रेखा के ढाल पर निर्भर करेगा।

3.12 शब्दावली

अवसर लागतः एक वस्तु की उत्पादन या अवसर लागत उस वस्तु के मूल्य के बराबर होगी जिसका त्याग विचाराधान वस्तु के उत्पादन के लिए किया गया है। वस्तु X की अवसर लागत, वस्तु Y की वह मात्रा है जो कि वस्तु X की एक अतिरिक्त इकाई के उत्पादन के लिए त्यागनी पड़ती है।

विनिमय से लाभः उत्पादन में बिना विशिष्टीकरण के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार शर्त रेखा के आधार पर सिर्फ वस्तु विनिमय के द्वारा प्राप्त लाभ है।

विशिष्टीकरण से लाभः देश के आर्थिक संसाधनों के प्रयोग में अर्थात् उत्पादन में विशिष्टीकरण के कारण व्यापार से प्राप्त लाभ।

नव प्रतिष्ठित व्यापार सिद्धांत : नए विश्लेषणात्मक यंत्रों के द्वारा प्रतिष्ठित व्यापार सिद्धांत की पुनर्व्याख्या और इसके निष्कर्षों की पुनर्स्थापना करने वाले सिद्धांत. अवसर लागत व उत्पादन संभावना वक्र के साथ समुदाय अधिमान वक्रों के प्रयोग के द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का नव–प्रतिष्ठित सिद्धांत विकसित किया गया, जिसमें हैबरलर, लियो–टीफ, लर्नर, मार्शल, एजबर्थ और मीड का योगदान है। विशेषरूप से मीड ने आधुनिक ज्यामितीय तकनीकी की मदद से तुलनात्मक लागत के नवप्रतिष्ठित सिद्धांत में महत्वपूर्ण योगदान किया।

3.13 संदर्भ ग्रंथ सूची

21. H. G. Mannur, *International Economics* ,Vikas Publishing House Pvt. Ltd. 2001

22. Bo Sodersten, International Economics ,Macmillan, 1999

23. Paul Krugman and Maurice Obstfeld: *International Economics: Theory and Policy, Dorling Kindersley India Pvt Ltd, 2009.*

24. Charles P Kindleberger, International Economics, Richard D. Irwin Inc., Illinois, 1968

25. Dominik Salvatore, International Economics, John Willy & Sons, Inc., 2008

26. D. M. Mithani, International Economics, Himalaya Publishing House, Mumbai, 2006

27. सुदामा सिंह एवं एम०सी० वैश्य, अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, ऑक्सफ़ोर्ड एंड आई०बी०एच० पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2007

28. एम०एल०झिंगन, अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, वृंदा पब्लिकेशन, दिल्ली, 2010.

29. ज्ञानेंद्र सिंह कुशवाहा, अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, दि मैकमिलन कंपनी आफ इंडिया लिमिटेड, नई दिल्ली,1979.

30. एच० एस० अग्रवाल, तथा सी०एस० बरला, *अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र* ,लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, 2003.

3.14 **अभ्यास प्रश्न**

निबंधात्मक प्रश्न

1- उत्पादन में स्थिर तथा ह्रासमान प्रतिफल के अंतर्गत अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के संतुलन की व्याख्या कीजिये.

2- ह्रासमान अवसर लागत के अंतर्गत अंतर्राष्ट्रीय व्यापार संतुलन की विवेचना कीजिये.

3- जब दो वस्तुओं के उत्पादन में ह्रासमान प्रतिफल या वृद्धिमान सीमांत लागत की स्थिति हो तो अंतर्राष्ट्रीय व्यापार संतुलन की विवेचना चित्र की सहायता से कीजिये.

4- विनिमय से लाभ तथा विशिष्टीकरण से लाभ में अंतर स्पष्ट करते हुए अंतर्राष्ट्रीय व्यापार से होने वाले लाभों को चित्र की सहायता से समझाइए.

लघु उत्तरीय प्रश्नः

३. उत्पादन में स्थिर प्रतिफल के अंतर्गत अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के संतुलन की व्याख्या कीजिये.

४. उत्पादन में स्थिर प्रतिफल के अंतर्गत अंतर्राष्ट्रीय व्यापार से होने वाले लाभों को चित्र की सहायता से दर्शाइए .

५. व्यापार होने पर बढ़ती हुई लागतों की दशा में एक देश उत्पादन में पूर्ण विशिष्टीकरण नहीं करेगा. टिप्पणी कीजिये.

६. उत्पादन में घटता हुआ प्रतिफल प्राप्त होने की स्थिति में एक देश के व्यापर के संतुलन की स्थिति को चित्र की सहायता से स्पष्ट कीजिये.

खंड 01: अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार सिद्धांत -01

इकाई- 4

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का हेक्सर-ओहलिन का सिद्धांत

2.37 प्रस्तावना

2.38 उद्देश्य

2.39 अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार एवं अंतरक्षेत्रीय व्यापार

4.3.1 साधन गतिशीलता

4.3.2 उत्पाद गतिशिलता

4.3.3 अन्तर्राष्ट्रीय मौद्रिक विभिन्नताएं

4.3.4 आर्थिक तथा राजनीतिक वातावरण

4.3.5 भुगतान शेष की समस्या

2.40 अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के पृथक सिद्धांत की आवश्यकता

4.4.1 आधुनिक दृष्टिकोण

4.4.2 निष्कर्ष

2.41 अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का आधुनिक सिद्धांत

4.5.1 भूमिका

4.5.2 मान्यताएं

4.5.3 साधन सम्पन्नता

4.5.4 साधन सम्पन्नता के कीमत मापदण्ड के आधार पर सिद्धांत की व्याख्या

4.5.5 साधन सम्पन्नता के भौतिक मापदण्ड के आधार पर सिद्धांत की व्याख्या

4.5.5.1. जब उत्पादन तथा उपभोग का झुकाव भिन्न दिशाओं में हो

4.5.5.2. जब उत्पादन तथा उपभोग का झुकाव एक ही दिशा में हो

4.5.6 निष्कर्ष

2.42 प्रतिष्ठित सिद्धांत से तुलना

2.43 अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के आधुनिक सिद्धांत की कमियां

2.44 अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के आधुनिक सिद्धांत की आनुभविक जाँच

4.8.1 लियोंतिफ का विरोधाभास

4.8.2 अन्य अध्ययन

4.8.3 लियोंतिफ का विरोधाभास की आलोचना

2.45 सारांश

2.46 शब्दावली

2.47 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

2.48 अभ्यास प्रश्न

3.5 प्रस्तावना

अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र के खंड एक "अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार सिद्धांत -01" से सम्बंधित यह चतुर्थ इकाई है. इससे पहले की इकाईयों के अध्ययन के पश्चात् आप अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की प्रकृति, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से होने वाले लाभ, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के प्रतिष्ठित सिद्धांत, प्रतिपूरक मांग के सिद्धांत तथा अवसर लागत सिद्धांत के बारे में बता सकते हैं. आप जान गए होंगे की रिकार्डो द्वारा प्रस्तुत तुलनात्मक लाभ सिद्धान्त के अनुसार व्यापार का मुख्य कारण श्रम उत्पादकता में अन्तर है, परन्तु श्रम की उत्पादकता में अन्तर क्यों है इसकी कोई व्याख्या प्रतिशिठत अर्थशास्त्री नहीं प्रस्तुत करते हैं। ओहलिन, रिकार्डो के तुलनात्मक लागत सिद्धान्त को अधूरा बताते हुए उसकी आलोचना करते हैं और तुलनात्मक लागतों में अन्तर के कारणों की व्याख्या करते हैं।

हेक्सर ओहलिन के आधुनिक व्यापार सिद्धान्त में व्यापार का कारण है– विभिन्न देशों के पास भिन्न–भिन्न साधन उपलब्धता। विभिन्न देशों में साधन उपलब्धताओं में भिन्नता के कारण ही वस्तुओं की सापोक्षिक कीमतों में भिन्नता पायी जाती है जिससे देशों के बीच व्यापार सम्भव होता है।

प्रस्तुत इकाई में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के आधार, अर्थ और अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार एवं अंतरक्षेत्रीय व्यापार में अंतर के बारे में विस्तार से बताया गया है. साथ ही अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के पृथक सिद्धांत की आवश्यकता पर भी चर्चा की गयी है. हेक्सर ओह्लिन द्वारा दिये गये आधुनिक सिद्धांत के बारे में विस्तार से बताया गया है. इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के आधुनिक व्यापार सिद्धांत के सम्बन्ध में स्पष्ट जानकारी प्राप्त कर सकेगें.

3.6 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के बाद आप

- अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार एवं अंतरक्षेत्रीय व्यापार में अंतर समझ सकेंगे.
- अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के पृथक सिद्धांत की आवश्यकता को समझ सकेंगे.
- अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के आधुनिक सिद्धांत के मुलभूत स्थापनाओं को समझ सकेंगे.
- अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के आधुनिक सिद्धांत तथा प्रतिष्ठित सिद्धांत में अंतरों को जान सकेंगे.
- अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के आधुनिक सिद्धांत की आनुभविक अध्ययनों के आधार पर परख कर सकेंगे.

4.3 अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार एवं अंतरक्षेत्रीय व्यापार

दो राष्ट्रों के मध्य होने वाले व्यापार को अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार तथा एक राष्ट्र की सिमाओं के भीतर होने वाले व्यापार को अंतरक्षेत्रीय या आंतरिक व्यापार कहते हैं. अंतरक्षेत्रीय या आंतरिक व्यापार को ओहलिन अंतर स्थानीय व्यापार कहते हैं.

अंतर्राष्ट्रीय व्यापार को कई अर्थशास्त्री अतंर्राक्षेत्रीय तथा स्थानीय व्यापार से भिन्न नहीं मानते हैं क्योंकि दोनों ही विनिमय की क्रियाएँ हैं और मूलतः एक–सी हैं।

वास्तव में अर्थशास्त्रीयों के बीच यह काफी विवाद का विषय रहा है कि अंतर्राष्ट्रीय व्यापार, अंतरक्षेत्रीय या स्थानीय व्यापार से भिन्न है। प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रीयों के अनुसार दन दोनों में एक निश्चित मूलभूत अन्तर है परन्तु आधुनिक अर्थशास्त्रीयों जैसे ओहलिन और हैबeलर के अनुसार इन दोनों के बीच अंतर स्थापित करना न तो संभव है और न ही इसकी आवश्यकता है।

एक देश के नागरिकों के मध्य वस्तुओं तथा सेवाओं का विनिमय आन्तरिक व्यापार तथा एक देश का विश्व के अन्य देशों के साथ विनिमय अंतर्राष्ट्रीय व्यापार कहा जा सकता है। इन दोनों के बीच अंतर के मुख्य कारण निम्नलिखित है–

4.3.1 साधन गतिशीलता– प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री उत्पादन के संसाधनों की भौगोलिक गतिशीलता के आधार पर अंतर्राष्ट्रीय तथा अंतरक्षेत्रीय व्यापार के मध्य विभेद करते हैं। प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के अनुसार एक देश के भीतर उत्पादन के संसाधन पूरी तरह गतिशील होते हैं, इसलिए देश के भीतर एक ही प्रकार तथा गुणवत्ता वाले किसी भी संसाधन की कीमत समान होगी परन्तु राष्ट्रों के बीच संसाधन पूरी तरह गतिशील हैं। इसलिए सापेक्षिक कीमतों का निर्धारण करने वाला सिद्धान्त घेरलू तथा विदेशी व्यापार के लिए अलग–अलग होगा।

ओहलिन प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के इस तथ्य को स्वीकार नहीं करते है। उनके अनुसार देश के भीतर अंतरक्षेत्रीय स्तर पर भी, संसाधन जैसे श्रम व पूँजी अगतिशील रहते हैं। एक देश के अंदर मजदूरी दरें न केवल भिन्न–भिन्न व्यवसायों मे भिन्न–भिन्न होती है बल्कि एक ही व्यवसाय मे विभिन्न क्षेत्रों में अलग–अलग होती है। ब्याज दरें भी विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न उद्देश्यों के लिए बदलती रहती है। इसी प्रकार, श्रम और पूँजी राष्ट्रों के बीच पूरी तरह अगतिशील नहीं है। 19वीं तथा 20वीं शताब्दी के प्रारम्भ में संयुक्त राज्य अमेरिका, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड, कनाडा तथा लैटिन अमेरिका देशों का तीव्र विकास इग्लैण्ड और यूरोप से श्रम और पूँजी के चलन से ही संभव हुआ। आज विदेशी पूँजी का अल्पविकसित देशों के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका है। यूरोपीय संघ के देशों में श्रमिक स्वतंत्रता पूर्वक आ जा सकते हैं। अतः स्पष्ट है कि संसाधनों की घेरलू गतिशीलता और अतंर्राष्ट्रीय गतिशीलता में केवल अंश (डिग्री) का ही अंतर है। संसाधनों की अंतरक्षेत्रीय गतिशीलता इसकी अंतर्राष्ट्रीय गतिशीलता से अधिक होती है।

वास्तव में प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के संदर्भ में संसाधनों की स्थान गतिशीलता को शून्य मानते हैं। पर्याप्त संसाधन गतिशीलता के अभाव में एक ही जैसे व्यवसायों में संसाधनों की कीमतों में अन्तर विद्यमान रहेगा। इस अर्थ में, जहाँ तक प्राकृतिक संसाधनों की बात है, शून्य गतिशीलता होगी।

4.3.2 उत्पाद गतिशीलता – एक राष्ट्र के भीतर वस्तुओं तथा सेवाओं की आवाजाही या गतिशीलता स्वतंत्र होती हैं। यह गतिशीलता सिर्फ भौगोलिक दूरी या परिवहन लागत द्वारा सीमित होती है परन्तु दो राष्ट्रों के बीच वस्तुओं तथा सेवाओं की गतिशीलता पर अनेक मानववजनित प्रशुल्क तथा गैर–प्रशुल्क अवरोध होते हैं जो कि वस्तुओं की अंतर्राष्ट्रीय गतिशीलता को न सिर्फ सीमित कर देते हैं बल्कि इसे अंतर्राष्ट्रीय गतिशीलता से भिन्न प्रकार का बना देते हैं। फिर अंतराष्ट्रीय व्यापार में प्राकृतिक अवरोध जैसे भौगोलिक दूरी तथा परविहन लागत भी काफी महत्वपूर्ण हो जाती है।

राजनैतिक सीमाओं का अस्तित्व अंरर्राष्ट्रीय व्यापार और भुगतान का नियंत्रण एवं नियमन विभिन्न रूपों में करता है, जैसे, प्रशुल्क, कोटा, विनिमय नियंत्रण, विदेशी व्यापार अधिनियम एवं नियंत्रण के अति सूक्ष्म उपाय, जिसे प्रशासनिक संरक्षणवाद कहा जाता है, आदि।

4.3.3 अतंर्राष्ट्रीय मौद्रिक विभिन्नताएँ – अतंर्राष्ट्रीय मौद्रिक विभिन्नताएँ अंतर्राष्ट्रीय लेन–देनों में अनेक प्रकार की जटिलता एवं अवरोध पैदा करती है जो कि घेरलू व्यापार तथा विनिमय में नहीं होता है। एक राष्ट्र के अंदर मौद्रिक कानून तथा वित्तीय प्रणाली व व्यवस्था सभी क्षेत्रो मे एक ही तरह की होती है। जबकि आन्तरिक या अंतरक्षेत्रीय व्यापार में विनिमय के माध्यम के लिए या मूल्य के मापन के लिए एक ही करेंसी का प्रयोग किया जाता है जिससे विनिमय काफी आसान होता है। स्वतंत्र राष्ट्रीय मौद्रिक प्रणाली के कारण विभिन्न देशों की मुद्राओं को एक निश्चित अनुपात में विनिमय की आवश्यकता है।

4.3.4 आर्थिक एवं राजनैतिक वातावरण – राष्ट्र के अंदर आर्थिक, सामाजिक तथा राजनैतिक वातावरण देश के सभी क्षेत्रों में लगभग समान रहता है। उपभोग, उत्पादन, निवेश और वस्तुओं तथा सेवाओं के विनिमय को संचालित करने वाला वैधानिक ढाँचा या कानून पूरे देश में एक समान रहता है। ब्याज दरों, मजदूरी तथा कीमतों से संबंधित सरकारी नीतियां पूरे राष्ट्र में एक–सी होती है। इसी प्रकार बाजार–संरचना, उपभोक्ताओं की रुचि की प्रवृत्तियों और अधिमान कमोवेश पूरे राष्ट्र में एक–से होते हैं। परन्तु विभिन्न राष्ट्रों के बीच इनमें महत्वपूर्ण अन्तर पाया जाता है जो कि अंतर्राष्ट्रीय व्यापार को महत्वपूर्ण रूप से आंतरिक व्यापार से अलग कर देता है।

4.3..5 भुगतान–शेष की समस्या – आन्तरिक व्यापार में राष्ट्र के अंदर किसी क्षेत्र या राज्य में भुगतान–शेष की समस्या नहीं होती है क्योंकि आंतरिक असंतुलन का वित्तीयन अपने आप हो जाता है। जबकि अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में भुगतान–शेष के असंतुलन की समस्या काफी गम्भीर और व्यापक है।

प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री उपरोक्त तर्कों के आधार पर अंतर्राष्ट्रीय व्यापार को अंतरक्षेत्रीय व्यापार से मूलतः भिन्न मानते हैं।

4.4 अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के पृथक सिद्धांत की आवश्यकता

प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री उत्पादन के संसाधनों की भौगोलिक गतिशीलता के आधार पर अंतर्राष्ट्रीय तथा अंतरक्षेत्रीय व्यापार के मध्य विभेद करते हैं। इस प्रकार उन्होंने तुलनात्मक लागत अंतरों के सिद्धांत पर आधारित अंतर्राष्ट्रीय व्यापर के लिए एक पृथक सिद्धांत का प्रतिपादन किया। परन्तु आधुनिक अर्थशास्त्रीयों जैसे ओहलिन और हैeलर के अनुसार इन दोनों के बीच अंतर स्थापित करना न तो संभव है और न ही इसकी आवश्यकता है। इसलिए अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के पृथक सिद्धांत की कोई आवश्यकता नहीं है।

4.4.1 आधुनिक दृष्टिकोण

ओहलिन के अनुसार घेरलू तथा अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में मूलतः कोई मूलभूत अंतर नहीं है। दोनों में स्थान कारक महत्वपूर्ण है तथा वस्तुएँ व सेवाएँ उन स्थानों से जहाँ कि वे प्रचुर मात्र में होती हैं, उन स्थानों कि ओर जाती हैं जहाँ वे कम होती हैं। दोनों में ही परिवहन लागतें शामिल है। दोनों में लाभ अधिकतम करने के उद्देश्य से फर्में व्यापार करती हैं। एक देश की मुद्रा भी दूसरे देश की मुद्रा से परिवर्तनीय होती है, इसलिए अंतर्राष्ट्रीय व्यापार तथा अंतरक्षेत्रीय व्यापार में कोई मूलभूत अंतर नहीं पाया जाता है।

ओहलिन के अनुसार किस प्रकार कोई व्यक्ति या समूह अपनी आवश्यकता की समस्त वस्तुओं का उत्पादन नहीं करते और आपस में व्यापार करते हैं उसी प्रकार विभिन्न राष्ट्र भी व्यापार में संलग्न हैं। विशिष्टीकरण का मूलभूत सिद्धांत जो जीवन के सभी श्रेत्रों मे पाया जाता है, निश्चित रूप से उसी प्रकार और उतनी ही दृढता से अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में भी लागू होता है। इस प्रकार, तुलनात्मक लागतों के सिद्धांत का अंतर्राष्ट्रीय व्यापार पर प्रयोग अनावश्यक है क्योंकि यह समस्त प्रकार के व्यापारों का आधार है।

अतः ओहलिन का विश्वास है कि अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के पृथक सिद्धांत की कोई आवश्यकता नहीं है। वस्तुतः अंतर्राष्ट्रीय व्यापार अंतरस्थानीय या क्षेत्रीय व्यापार की एक विशेष स्थिति है। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर विनिमय की गयी वस्तुओं तथा सेवाओं की कीमतें उसी प्रकार निर्धारित होती है जिस प्रकार अंतरक्षेत्रीय स्तर पर विनिमय की गयी वस्तुओं की क्योंकि कीमत निर्धारण का आधार दोनों ही स्थितियों में मांग और पूर्ति का सामान्य संतुलन है। प्रशुल्क अवरोध, करेन्सी की भिन्नताएँ, भाषा, आदतों, रुचियों, रीति–रिवाजों इत्यादि की विभिन्नताएँ मात्रात्मक हैं, मूल्यात्मक नहीं है। वास्तव में ये अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर वस्तूओं तथा सेवाओं के मुक्त प्रवाह को नहीं रोकती है। इस प्राकर ओहलिन के अनुसार अंतर्राष्ट्रीय व्यापार की स्वीकृत विशिष्टताओं को ध्यान से देखनें पर यह स्पष्ट हो जाता है कि अंतर्राष्ट्रीय एवं घरेलू व्यापार के लक्षणों में अंतर मात्रात्मक है या केवल अंश (डिग्री) का अंतर है, यह अंतर मूलभूत गुणात्मक प्रकृति का नहीं है जिसके आधार पर अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के पृथक सिद्धांत के औचित्य को स्वीकार किया जाता है।

4.4.2 निष्कर्ष– परंतु वास्तविकता में अंतर्राष्ट्रीय तथा अंतरक्षेत्रीय व्यापार में काफी भिन्नताएँ है। जैसा कि प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री कहते हैं। अंतरक्षेत्रीय व्यापार में विनिमय दरों, भुगतान शेषों, प्रशुल्कों इत्यादि की समस्याएँ बिल्कुल उत्पन्न नहीं होती हैं, जबकि अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का ये अभिन्न अंग हैं. अंतर्राष्ट्रीय व्यापार से उत्पन्न होने वाली समस्याओं को हल करने के लिए ही अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष, गैट (GATT), अंकटाड (UNCTAD) तथा विश्व व्यापार संगठन (WTO) जैसी संस्थाएँ स्थापित की गयीं, जिनका घरेलू व्यापार से कोई सरोकार नहीं है। इतना ही नहीं अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के समष्टि तथा व्यष्टि भागों से संबंधित अनेक सिद्धांत और मॉडल, हेक्सर, ओहलिन, सैम्युलसन, लियोन्टिफ, जोनसन, भगवती आदि अर्थशास्त्रियों द्वारा प्रतिपादित किये गये हैं जो कि आन्तरिक व्यापार से संबंधित सिद्धान्तों से सर्वथा भिन्न है।

4.5 अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का आधुनिक सिद्धांत

4.5.1 भूमिका

प्रतिश्ठित अर्थशास्त्रियों के अनुसार जो मूल्य सिद्धान्त घरेलू बाजार में लागू होता है वह अंतरराश्ट्रीय व्यापार में लागू नहीं होगा क्योंकि अंतरराष्ट्रीय तथा अंतरक्षेत्रीय व्यापार में अंतर है। परन्तु बर्टिल ओहलिन के अनुसार मूल्य का सामान्य साम्य विश्लेशण जो कि अतंरक्षेत्रीय व्यापार की व्याख्या के लिए उपयुक्त है वही बिना किसी विशेश परिवर्तन के अंतरराश्ट्रीय व्यापार के लिए भी उपयुक्त है; अंतरराश्ट्रीय व्यापार अंतरक्षेत्रीय व्यापार की ही एक विशेश स्थिति है।

मूल्य के सामान्य सिद्धान्त के अनुसार किसी वस्तु का मूल्य उसकी समग्र मांग और समग्र पूर्ति की समानता के द्वारा निर्धारित होता है और संतुलन बिन्दु पर वस्तु की कीमत औसत उत्पादन लागत के बराबर होती है। उत्पादन की लागत उत्पादन मे लगे साधनों की कीमतें हैं जो कि वास्तव में संसाधनों की आय है जिससे आगे वस्तु की मांग उत्पन्न होती है। इस प्रकार वस्तुओं की कीमत, साधनों की कीमत, वस्तुओं की मांग और साधनों की मांग और पूर्ति में पारस्परिक अंर्तसंबंध और निर्भरता होती है।

वास्तव में, मार्शल के मूल्य के सामान्य साम्य विश्लेशण मे समय आयाम (time dimensions) तो है परन्तु स्थान आयाम (space dimensioins) नहीं है। यह एक एकाकी बाजार सिद्धान्त है जो कि एक क्षेत्र या देश में प्रयुक्त होता है। ओहलिन का विचार है कि मूल्य के सामान्य सिद्धान्त में स्थान तत्व (space element) को सम्मिलित करके इसका बहु–बाजार सिद्धान्त दिया जा सकता है, और इसका प्रयोग विभिन्न क्षेत्रों या देशों के मध्य व्यापार में मूल्य निर्धारण के लिए प्रयुक्त किया जा सकता है। इस प्रकार हेक्सर–ओहलिन का विद्धान्त अंतरराश्ट्रीय व्यापार का सामान्य संतुलन सिद्धान्त है।

सर्वप्रथम एली हेक्सर ने यह बताया कि जब दो देशों के मध्य व्यापार होता है तो मूल्य के पारस्परिक निर्भरता का सिद्धान्त क्रियाशील होता है। इसी आधार पर ओहलिन ने अंतरराश्ट्रीय व्यापार के आधुनिक सिद्धान्त की व्याख्या प्रस्तुत की।

ओहलिन, रिकार्डो के तुलनात्मक लागत सिद्धान्त को अधूरा बताते हुए उसकी आलोचना करते हैं और तुलनात्मक लागतों में अन्तर के कारणों की व्याख्या करते हैं। इस प्रकार यह सिद्धान्त प्रतिश्ठित सिद्धान्त की रिक्तता की पूर्ति करता है।

ओहलिन के अनुसार विभिन्न देशों में, विभिन्न वस्तुओं की सापेक्षिक कीमतों में पायी जाने वाली भिन्नता के कारण ही अंतरराश्ट्रीय व्यापार उत्पन्न होता है। वस्तुओं की कीमतों में भिन्नता मुख्यतः उत्पादन साधनों की पूर्ति या उपलब्धता में भिन्नता के कारण होती है।

रिकार्डो द्वारा प्रस्तुत तुलनात्मक लाभ सिद्धान्त के अनुसार व्यापार का मुख्य कारण श्रम उत्पादकता में अन्तर है, परन्तु श्रम की उत्पादकता में अन्तर क्यों है इसकी कोई व्याख्या प्रतिश्ठित अर्थशास्त्री नहीं प्रस्तुत करते हैं।

आधुनिक व्यापार सिद्धान्त में व्यापार के कारणों की दूसरी व्याख्या प्रस्तुत की गयी है. हेक्सर ओहलिन के आधुनिक व्यापार सिद्धान्त के अनुसार व्यापार का कारण है– विभिन्न देशों के पास भिन्न–भिन्न साधन उपलब्धता। विभिन्न देशों में साधन उपलब्धताओं में भिन्नता के कारण ही वस्तुओं की सापोक्षिक कीमतों में भिन्नता पायी जाती है जिससे देशों के बीच व्यापार सम्भव होता है।

सर्वप्रथम एली हेक्शर ने 1919 में यह विचार प्रस्तुत किया कि विभिन्न देशों में साधन सम्पन्नताओं में अन्तर के कारण अंतरराश्ट्रीय व्यापार सम्भव होता है। बर्टिन ओहलिन ने हेक्सर के इसी विचार के आधार पर अंतरराश्ट्रीय व्यापार का आधुनिक सिद्धान्त प्रस्तुत किया। ओहलिन ने अपनी पुस्तक Inter-regional and International Trade (1933) में प्रतिश्ठित सिद्धान्त की आलोचना की ओर अंतरराश्ट्रीय व्यापार का सामान्य संतुलन सिद्धान्त प्रस्तुत किया।

हेक्सर ओहलिन सिद्धान्त के अनुसार एक देश को उस वस्तु के उत्पादन में तुलनात्मक लाभ होगा और उसका निर्यात करेगा जो कि उस साधन का अधिक गहनता से प्रयोग करता है जो कि उस देश में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। दूसरे शब्दों में, कुछ देशों के पास पूँजी अधिक है और कुछ देशों के पास श्रम।

सिद्धान्त के अनुसार जो देश पूँजी सम्पन्न है वह पूँजी –प्रधान वस्तु तथा जो देश श्रम सम्पन्न है वह श्रम–प्रधान वस्तु का उत्पादन तथा निर्यात करेगा।

सिद्धान्त की व्याख्या से पहले हम इसकी मान्यताओं का अध्ययन करेंगे, जिन पर यह सिद्धान्त आधारित है।

4.5.2 मान्यताएं

1. मात्र दो उत्पादन के साधन हैं श्रम और पूँजी।
2. दो देश हैं जो कि साधन सम्पन्नता में भिन्न है। एक देश पूँजी सम्पन्न है और श्रम दुर्लभ तथा दूसरा देश श्रम सम्पन्न और पूँजी दूर्लभ है।
3. मात्र दो वस्तुएँ है। दोनों वस्तुओं के उत्पादन में श्रम और पूँजी दोनों संसाधन लगे हैं।
4. सभी उत्पादन–फलन प्रथम कोटि के समरूप हैं।
5. उत्पादन फलन इस प्रकार के हैं कि दो वस्तुओं की कारक गहनता भिन्न है परन्तु दो देशों में प्रत्येक वस्तु की कारक गहनता समान है।
6. दो वस्तुओं के उत्पादन फलन भिन्न है परन्तु दोनों देशों में एक ही वस्तु का उत्पादन–फलन समान है। अर्थात् वस्तुएँ दोनों ही देशों में एक ही तकनीकी से उत्पादित होती है।
7. परिवहन लागत, प्रशुल्क एवं अन्य प्रतिरोध नहीं है।
8. वस्तु तथा साधन बाजार दोनों में पूर्ण प्रतियोगिता है।

इन मान्यताओं के आधार पर हेक्सर–ओहलिन प्रमेय कहती है कि पूँजी आधिक्य देश, पूँजी गहन वस्तु के उत्पादन में विशिश्टीकरण करेगा और निर्यात करेगा तथा श्रम–प्रधान देश, श्रम–गहन वस्तु का उत्पादन तथा निर्यात करेगा।

4.5.3 साधन सम्पन्नता

हेक्सर–ओहलिन मॉडल में साधन–सम्पन्नता या प्रचुरता की धारणा को दो अर्थों में लिया गया है–

1. साधन–सम्पन्नता को साधन कीमतों के रूप में परिभाशित किया गया है। मूल्य मापदण्ड के अनुसार एक देश जिसमें पूँजी सापेक्षिक रूप से सस्ती और श्रम सापेक्षिक रूप से मंहगी है उसे पूँजी–प्रचुर देश कहा जाएगा भले ही इस देश में पूँजी और श्रम की उपलब्ध भौतिक मात्रा दूसरे देश के मुकाबले कितनी भी हो।

   यदि दो देश । और ॥ हैं तो देश A पूँजी–प्रचुर देश होगा

   यदि $\left(\frac{Pk1}{Pl1}\right) < \left(\frac{Pk2}{Pl2}\right)$

   जहाँ Pk_1 – देश । में पूँजी की कीमत

   Pl_1 – देश । में श्रम की कीमत

   Pk_2 – देश ॥ में पूँजी की कीमत

   Pl_2 – देश ॥ में श्रम की कीमत

यह मापदण्ड दो देशों में उत्पादन के संसाधनों की माँग तथा पूर्ति दोनों दशाओं पर विचार करता है। ओहलिन सापेक्षिक संसाधन सम्पन्नता के लिए कीमत मापदण्ड का प्रयोग करते हैं परन्तु उनके अनुसार दो देशों में साधन कीमतों में अन्तर साधनों की आपूर्ति में भिन्नता के कारण होती है। दूसरे शब्दों में ओहलिन का विश्वास है कि किसी देश में साधनों की सापेक्षिक कीमत निर्धारण में पूर्ति पक्ष की भूमिका काफी महत्वपूर्ण होती है।

2. साधन–सम्पन्नता को भौतिक पदों में भी परिभाशित किया जा सकता है। इस मापदण्ड के आधार पर एक देश सापेक्षिक रूप से पूँजी–प्रचुर देश होगा यदि दूसरे देश की अपेक्षा यहाँ पूँजी का अनुपात श्रम से अधिक है। इसी प्रकार एक देश श्रम–प्रचुर होगा यदि दूसरे देश की अपेक्षा यहाँ श्रम–पूँजी अनुपात अधिक है। देश । पूँजी–प्रचुर और देश ॥ श्रम–प्रचुर होगा यदि

   $$\left(\frac{\mathrm{K}K1}{L1}\right) > \left(\frac{K2}{L2}\right)$$

जहाँ K_1– देश I में पूँजी की कुल मात्रा

K_2– देश II में में पूँजी की कुल मात्रा

L_1– देश I में श्रम की कुल मात्रा

यह विशुद्ध पूति L_2– देश II में श्रम की कुल मात्रा उपेक्षा करता है।

साधन सर–ओहलिन का सिद्धान्त या प्रमेय कीमत–मापदण्ड का प्रयोग करने पर सिद्ध किया जा सकता है पर भौतिक मापदण्ड के साथ यह सिद्ध हो पाए, यह आवश्यक नहीं है। ओहलिन कीमत–मापदण्ड के आधार पर ही साधन–सम्पन्नता को परिभाषित करते हैं। उनके अनुसार यदि एक देश में पूँजी सापेक्षतया पूँजी सस्ती है तो वहाँ पूँजी की पूर्ति अवश्य ही अधिक होगी और यदि श्रम सापेक्षिक सस्ता है तो उस देश में श्रम की प्रचुरता होनी चाहिए।

4.5.4 साधन सम्पन्नता के कीमत मापदण्ड के आधार पर सिद्धांत की व्याख्या

हेक्सर–ओहलिन प्रमेय; कि एक देश यदि पूँजी–प्रधान है तो पूँजी प्रधान वस्तु का उत्पादन और निर्यात करेगा तथा दूसरा देश जहाँ श्रम की प्रचुरता है वह श्रम–प्रधान वस्तु का उत्पादन तथा निर्यात करेगा; का परीक्षण हम चित्र की सहायता से साधन–सम्पन्नता को कीमत–मापदण्ड के आधार परिभाषित करके करेंगे।

माना दो देश I और II हैं जो कि दो साधनों श्रम (L) और पूँजी (K) के प्रयोग से दो वस्तुएँ X और Y का उत्पादन करते हैं।

चित्र मे P_0P_0 देश I में साधन कीमत अनुपात तथा P_1P_1 देश II में साधन कीमत अनुपात को दर्शाता है। P_0P_0 तथा P_1P_1 की सापोक्षिक ढाल यह बताती है कि देश I में पूँजी सस्ती तथा श्रम मँहगा है और देश II में श्रम सस्ता और पूँजी मँहगी है। क्योंकि देश I में पूँजी प्रचुर तथा देश II श्रम–प्रचुर देश है।

वस्तु X का समोत्पाद वक्र xx तथा वस्तु Y का yy है जो कि क्रमशः वस्तु x तथा y की एक इकाई उत्पादन मात्रा को व्यक्त करते हैं। दोनों ही देशों में वस्तु x पूँजी–प्रधान तथा वस्तु y श्रम प्रधान है।

चित्र में समोत्पाद वक्र xx तथा yy एक दूसरे को केवल एक ही बार बिन्दु M पर काटते हैं। इससे यह प्रदर्शित होता है कि साधन गहनता की प्रतिलोमता नहीं है। अर्थात् एक वस्तु दोनों ही देशों में श्रम–प्रधान (वस्तु y) तथा दूसरी वस्तु दोनों ही देशों में पूँजी–प्रधान (वस्तु x) है। जैसी कि हेक्सर–ओहलिन की मान्यता है कि दो देशों में प्रत्येक वस्तु का उत्पादन फलन एक ही है।

चित्र की सहायता से अब आप इस बात को समझ सकते हैं कि कैसे पूँजी प्रधान देश पूँजी–गहन वस्तु तथा श्रम–प्रधान देश श्रम–गहन वस्तु का निर्यात करेगा।

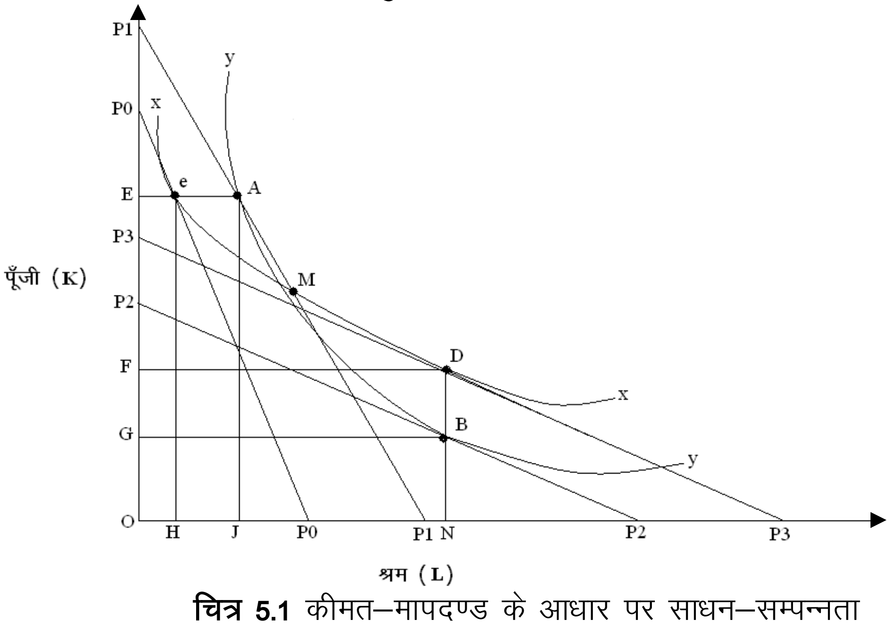

चित्र 5.1 कीमत–मापदण्ड के आधार पर साधन–सम्पन्नता

पूँजी–प्रचुर देश I में साधन कीमत अनुपात रेखा P_0P_0 तथा P_1P_1 है, जो एक दूसरे समानान्तर है। श्रम–प्रचुर देश II में साधन कीमत अनुपात को सामानान्तर रेखाएँ P_2P_2 तथा P_3P_3 द्वारा दिखाया गया है। P_0P_0 या P_1P_1 के ढाल से स्पश्ट है कि देश I में पूँजी सस्ती है। इसी प्रकार P_2P_2 या P_3P_3 के ढाल से स्पश्ट है कि देश II में श्रम सस्ता है।

देश I एक इकाई वस्तु–X का उत्पादन CH मात्रा में पूँजी तथा CE मात्रा में श्रम के संयोग से करता है, क्योंकि C बिन्दु पर x वस्तु का समोत्पाद वक्र, समलागत रेखा P_0P_0 को स्पर्श करता है। इसी प्रकार देश I में एक इकाई y वस्तु की लागत AJ मात्रा पूँजी तथा AE मात्रा श्रम का संयोग है।

स्पश्ट है कि देश में I में एक इकाई वस्तु y के उत्पादन के लिए लगी पूँजी की मात्रा (AJ) वस्तु–x के उत्पादन में लगी पूँी की मात्रा (CH) के बराबर है, परन्तु श्रम की मात्रा (AE), वस्तु x के उत्पादन में लगी श्रम की मात्रा (CA) से अधिक (AE=CE+CA) ळें

आप इसे निम्न प्रकार से समझ सकते हैं–

देश I में, वस्तु–x की उत्पादन लागत = CH पूँजी + CE श्रम

वस्तु y की उत्पादन लागत

= AJ पूँजी + AE श्रम

= CH पूँजी + AE श्रम (क्योंकि चित्र में CH=AJ)

= CH पूँजी + (CE+CA) श्रम (क्योंकि AE=CE+CA)

= (CH पूँजी + CE श्रम) + CA श्रम

= वस्तु–x की उत्पादन लागत + CA श्रम

(क्योंकि वस्तु–x की उत्पादन लागत=eH पूँजी+ eE श्रम) इसका अर्थ यह हुआ कि देश I में वस्तु–x,y की अपेक्षा सस्ती है। इसलिए पूँजी–प्रचुर देश I पूँजी–गहन वस्तु–x के उत्पादन में विशिश्टीकरण तथा निर्यात करेगा।

देश II एक इकाई वस्तु y का उत्पादन BN मात्रा में पूँजी तथा BG मात्रा में श्रम के संयोग से करता है। परन्तु वस्तु–x की उत्पादन लागत DN मात्रा में पूँजी तथा DF मात्रा मे। श्रम है। स्पश्ट है कि वस्तु–x की उत्पादन लागत में श्रम की मात्रा वस्तु–y के बराबर (DF=BG) परन्तु पूँजी की मात्रा (DN) वस्तु–y के उत्पादन में लगी मात्रा (BN) से अधिक है (DN=BN+BD)।

समीकरण के रूप में, आप इसे निम्न प्रकार से समझ सकते हैं–

देश II में, वस्तु–y की उत्पादन लागत = BG श्रम + BN पूँजी

वस्तु–x की उत्पादन लागत = DF श्रम + (BN+BD) पूँजी

(क्योंकि DF=BG तथा DN=BN+BD)

= (BG श्रम + BN पूँजी) + BD पूँजी

= वस्तु–y की उत्पादन लागत + BD पूँजी

स्पश्ट है कि देश II में वस्तु–y, वस्तु–x की अपेक्षा सस्ती है। इसलिए श्रम–प्रचुर देश II, श्रम गहन वस्तु–y के उत्पादन में विशिश्टीकरण तथा निर्यात करेगा।

इस प्रकार साधन–सम्पन्नता को साधन कीमतों के रूप में परिभाशित करने पर हेक्सर–ओहलिन प्रमेय को सिद्ध किया जा सकता है। इस प्रमेय का उल्टा भी उतना ही सही है अर्थात् यदि एक देश पूँजी प्रधान वस्तु का निर्यात करता है तो पूँजी उस देश में सापेक्षतया सस्ता उत्पादन का साधन है।

परन्तु साधन कीमतों के आधार प्रमेय को स्थापित करने में माँग दशाओं या साधन उपलब्धता को ध्यान में नहीं रखा गया है। वास्तव में साधन कीमतें साधन की माँग तथा पूर्ति की पारस्परिक क्रिया का प्रतिफल है और साधन की माँग उत्पादन की तकनीक के साथ–साथ वस्तुओं की माँग पर निर्भर करती है। स्पश्ट है कि सिर्फ साधन–सम्पन्नता के आधार पर साधन–कीमतों के सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा जा सकता है।

4.5.5 साधन सम्पन्नता के भौतिक मापदण्ड के आधार पर सिद्धांत की व्याख्या

जैसा कि आप ऊपर देख चुके हैं कि यदि दो देश I तथा II हैं, देश I पूँजी–प्रचुर तथा देश II श्रम–प्रचुर देश होगा, यदि

$$\frac{K1}{L1} > \frac{K2}{L2}$$

जहाँ K_1 तथा K_2 क्रमशः देश I तथा II में पूँजी की कुल मात्रा और L_1 तथा L_2 श्रम की मात्रा है।

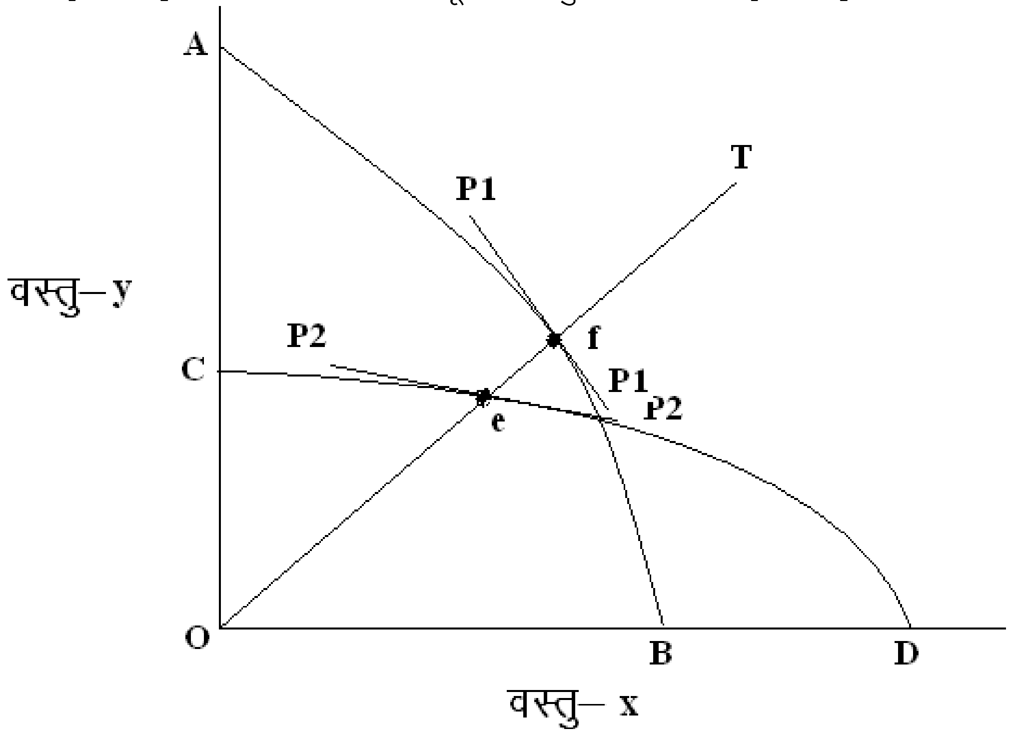

चित्र 5.2 भौतिक मापदण्ड के आधार पर साधन–सम्पन्नता

इस आधार पर अब हम यह दिखाएगें कि देश I जो कि भौतिक मापदण्ड के आधार पर पूँजी–सम्पन्न देश हैं, पूँजी– प्रधान वस्तु के उत्पादन की ओर झुकाव होगा तथा श्रम–सम्पन्न देश II का झुकाव श्रम–प्रधान वस्तु की ओर होगा। इसे चित्र में दिखाया गया है।

चित्र 5.2 में तुलनात्मक रूप से वस्तु y पूँजी–प्रधान तथा वस्तु–x श्रम प्रधान वस्तु है। देश I का उत्पादन सम्भावना वक्र AB तथा देश II का CD है। मान लीजिए कि यदि दोनों देशों में दोनों वस्तुओं का उत्पादन समान अनुपात में, मूल बिन्दु से खींची गयी रेखा OT पर होता है, तो देश I अपने उत्पादन सम्भावना वक्र AB के बिन्दु f पर देश II, अपने उत्पादन सम्भावना वक्र eD के बिन्दु e पर उत्पादन करेगा। देश I के उत्पादन सम्भावना वक्र AB की बिन्दु f पर ढाल, देश II के वक्र eD के बिन्दु e की ढाल से अधिक तिरछी है। इसी प्रकार देश I की वस्तु कीमत रेखा P_1P_1, देश II की कीमत रेखा P_2P_2 से अधिक तिरछी है। इन सबका अर्थ यह है कि देश I में देश II की अपेक्षा वस्तु y सस्ती है तथा देश II से देश I की अपेक्षा वस्तु x सस्ती है यदि दोनों देश क्रमशः बिन्दु f तथा e पर उत्पादन कर रहे होते हैं।

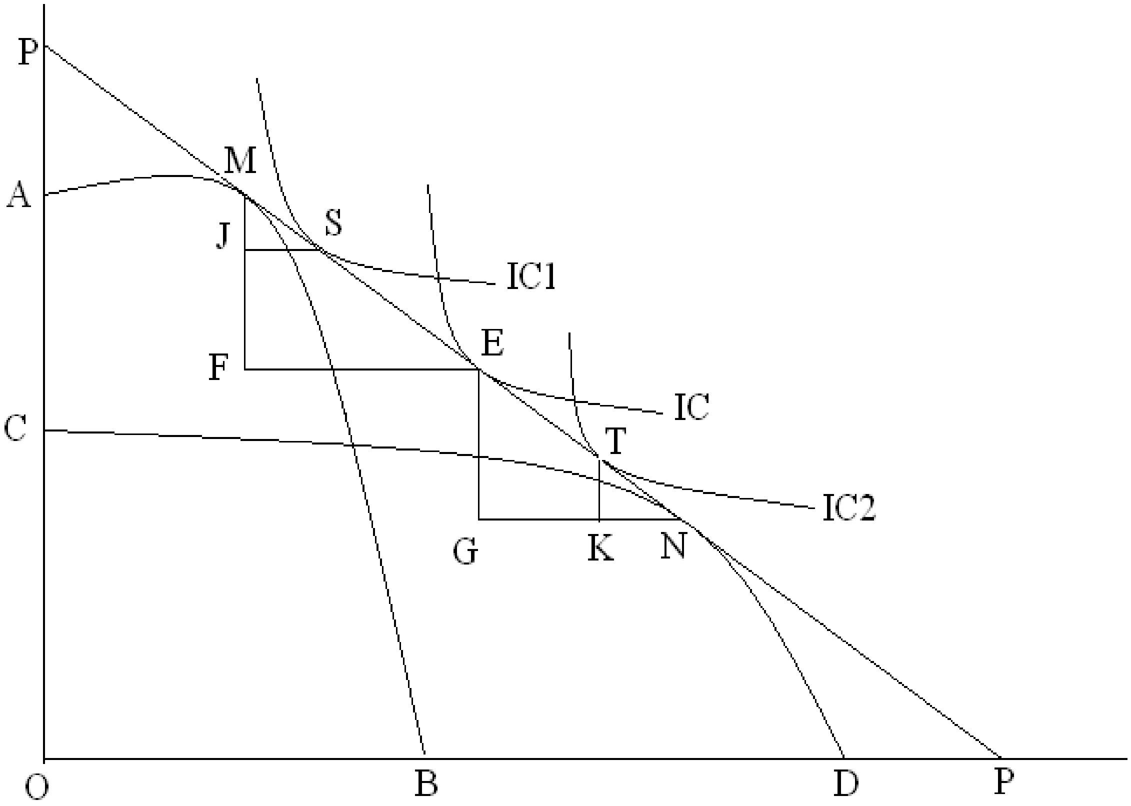

चित्र 5.3

अतः देश । में वस्तु y के उत्पादन के विस्तार की अवसर लागत, देश ॥ की अपेक्षा कम है तथा देश ॥ में वस्तु X के उत्पादन में विस्तार की अवसर लागत देश । की अपेक्षा कम है। इस प्रकार यह स्पश्ट है कि देश I, जो कि पूँजी–सम्पन्न देश है पूँजी–प्रधान वस्तु y तथा देश II, जो कि श्रम–प्रचुर देश है, श्रम–प्रधान वस्तु x का उत्पादन बढ़ाने को उत्सुक होगा।

परन्तु इसके आधार पर हम यह निश्कर्श नहीं निकाल सकते कि देश I, वस्तु y, का तथा देश II, वस्तु x का निर्यात करेगा। कौन सा देश किस वस्तु का निर्यात करेगा यह माँग कारकों पर निर्भर करेगा। भौतिक मापदण्ड के आधार पर हेक्सर–ओहलिन सिद्धान्त उसी स्थिति में सत्य हो सकता है जबकि दोनों देशों में प्रत्येक वस्तु के लिए उपभोक्ताओं की रुचियाँ उपभोग अधिमान समान हो और आयात माँग की लोच इकाई के बराबर हो।

4.5.5.1 जब उत्पादन तथा उपभोग का झुकाव भिन्न दिशाओं में हो

चित्र 5.3 में देश । तथा ॥ का उत्पादन संभवना वक्र चित्र 5.2 की तरह ही है। चित्र में दोनों में माँग की दशाओं को भी दिखाया गया है। दोनों देशों के बीच व्यापार शुरु होने के पश्चात्, देश I, वस्तु y के उत्पादन में विशिश्टीकरण करता है और उसका उत्पादन बिन्दु M पर विवर्तित हो जाता है। जबकि देश ॥ वस्तु x के उत्पादन में विशिश्टीकरण करता है और अब N बिन्दु पर उत्पादन करता है। बिन्दु M तथा N उत्पादन के अनुकूलतम बिन्दु है क्योंकि अंतरराश्ट्रीय व्यापार–शर्त रेखा, M तथा N को स्पर्श करती है जो व्यापार के पश्चात् दोनों देशों की सापेक्षिक साधन कीमत रेखा भी है। इस प्रकार पूँजी–प्रचुर देश I, पूँजी–प्रधान वस्तु y का तथा श्रम–प्रचुर देश II, श्रम–प्रधान वस्तु x के उत्पादन में विशिश्टीकरण करता है।

यदि दोनों देशों में माँग की दशाएँ ऐसी हों, जिसे कि चित्र में IC वक्र द्वारा प्रदर्शित किया गया है, तो दोनों देश बिन्दु E पर उपभोग करते हैं। इस स्थिति में देश I, FM मात्रा वस्तु y का निर्यात तथा FE मात्रा

में वस्तु x का आयात करेगा जबकि देश II वस्तु x की GM मात्रा निर्यात तथा वस्तु y की GE मात्रा का आयात करेगा। अतः पूँजी प्रधान देश I, पूँजी प्रधान वस्तु y का निर्यात तथा श्रम–प्रधान वस्तु x का आयात करेगा। इसी प्रकार श्रम–प्रधान देश II, श्रम–प्रधान वस्तु x का निर्यात तथा पूँजी–प्रधान वस्तु y का आयात कर रहा है। ऐसी स्थिति में हेक्सर–ओहलिन प्रमेय स्थापित होती है, और पूरी तरह वैध है।

वास्तव में, हेक्सर–ओहलिन प्रमेय की वैधता के लिए यह आवश्यक है कि उपभोग बिन्दु, जैसे चित्र 5.3 में बिन्दु E, दोनों देशों के उत्पादन बिन्दुओं के बीच में कहीं हो अर्थात् बिन्दु M के दाहिनी ओर तथा बिन्दु N के बायीं ओर स्थित है।

दोनों देशों में उपभोक्ताओं की रुचियाँ समान होने पर चित्र 5.3 में दोनों देशों के लिए एक ही अधिमान वक्र IC है। परन्तु यदि दोनों देशो में उपभोक्ताओं की रुचियाँ भिन्न हों तो भी हेक्सर–ओहलिन प्रमेय मान्य होगा यदि उपभोग बिन्दु M और N के बीच स्थित है। चित्र में, उपभोक्ताओं की रुचियाँ दोनों देशों में भिन्न होने पर देश I का समुदाय अधिमान वक्र IC_1 तथा देश II का IC_2 है। इस स्थिति में, देश उत्पादन M तथा उपभोग S पर और देश II उत्पादन N तथा उपभोग T बिन्दु पर कर रहा है। देश I, JM मात्रा में वस्तु y का निर्यात तथा JS मात्रा में वस्तु x का आयात कर रहा है जबकि देश II KN मात्रा में वस्तु x का निर्यात तथा KT मात्रा में वस्तु y का आयात कर रहा है। और इस प्रकार हेक्सर–ओहलिन प्रमेय मान्य है।

यदि माँग दशाएँ ऐसी है कि देश I का समुदाय अधिमान वक्र बिन्दु S तथा देश II का बिन्दु N पर स्पर्श करें तो दोनों देश उसी बिन्दु पर उपभोग करेंगे जहाँ उत्पादन कर रहे हों। ऐसी स्थिति में दोनों देशों में व्यापार नहीं होगा। इस स्थिति में भी हेक्सर–ओहलिन सिद्धान्त मान्य होगा, परन्तु सिर्फ उत्पादन में विशिश्टीकरण के सम्बन्ध में माँग की दशाएँ व्यापार की दिशा में परिवर्तन ला सकती है।

4.5.5.2 जब उत्पादन तथा उपभोग का झुकाव एक ही दिशा में हो

जब दोनों देशों में उत्पादन तथा उपभोग का झुकाव एक ही दिशा में हो तो ऐसी स्थिति को चित्र 5.4 में दिखाया गया है। चित्र 5.4 में देशा I का समुदाय अधिमान वक्र IC_1 है और देश II का IC_2, जोकि यह दर्शाता है कि देश I में माँग का झुकाव पूँजी–प्रधान वस्तु की ओर तथा देश II माँग का झुकाव श्रम–प्रधान वस्तु की ओर है। फलस्वरूप, देश I, उत्पादन M बिन्दु पर करता है और पूँजी–प्रधान वस्तु y के उत्पादन में विशिश्टीकरण प्राप्त करता है। दी हुई माँग दशाओं के अंतर्गत देश I, बिन्दु E पर उपभोग करेगा, अर्थात् वह GM मात्रा में वस्तु x का निर्यात करेगा तथा GE मात्रा में वस्तु y का आयात करेगा। इसी प्रकार देश II, वस्तु x के उत्पादन में विश्शिटीकरण प्राप्त करेगा और बिन्दु N पर उत्पादन करेगा। परन्तु दी हुई माँग दशाओं के अंर्तत उपभोग बिन्दु F पर करेगा। इस प्रकार देश II, NH मात्रा में वस्तु y का निर्यात तथा HF मात्रा में वस्तु x का आयात करेगा।

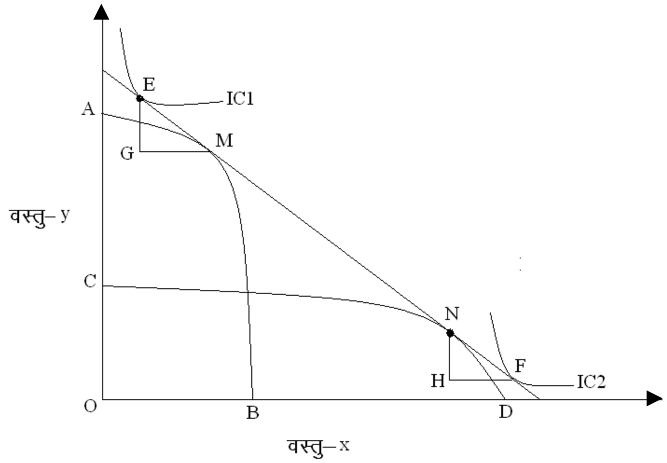

स्पश्ट है कि माँग की प्रतिलोमता की स्थिति में पूँजी–प्रचुर देश I, श्रम–प्रधान वस्तु x का निर्यात तथा पूँजी प्रधान वस्तु y का आयात करेगा, जबकि श्रम–प्रचुर देश II, पूँजी प्रधान वस्तु y का निर्यात तथा

श्रम–प्रधान वस्तु x का आयात करेगा। इस प्रकार पूर्ति या लागत दशाओं के आधार पर जो व्यापार की दिशा होनी चाहिए, उसे माँग की दशाएँ उलट देती है, और इस स्थिति में हेक्सर–ओहलिन प्रमेय असत्य हो जाती है।

4.5.6 निश्कर्शः

निश्कर्श के रूप में कहा जा सकता है कि हेक्सर–ओहलिन सिद्धान्त में साधन–सम्पन्नता की दोनों व्यवस्थाएँ समान नहीं हैं। केवल साधन कीमतों के मापदण्ड के आधारपर साधन सम्पन्ता को परिभाशित करने पर ही यह सिद्धान्त सत्य सिद्ध होता है। भौतिक मापदण्ड के रूप में साधन सम्पन्नता को परिभाशित करने पर यह सिद्धान्त केवल तभी वैध होगा जब माँग की प्रतिलोमता की स्थिति न हो।

4.6 प्रतिश्ठित सिद्धान्त से तुलना

यह सिद्धान्त काफी व्यापाक और तर्कसंगत व्याख्या प्रस्तुत करता है।

उपरोक्त विवेचना से आप समझ गए होंगे की हेक्सर ओहलिन द्वारा दिया गया,व्यापार का आधुनिक सिद्धान्त प्रतिश्ठित सिद्धान्त से काफी भिन्न है। साथ ही आधुनिक सिद्धान्त को निम्नलिखित आधार पर प्रतिश्ठित सिद्धान्त से बेहतर कहा जा सकता है–

1. प्रतिश्ठित सिद्धान्त की तरह ओहलिन अंतरराश्ट्रीय व्यापार का एक अलग सिद्धान्त नहीं देते हैं, बल्कि मार्शल द्वारा दिए मूल्य के सामान्य सिद्धान्त में स्थान तत्व को सम्मिलित करके उसे अंतरराश्ट्रीय व्यापार के संदर्भ में विस्तार देते हैं। वे अंतरराश्ट्रीय व्यापार को अंतरक्षेत्रीय व्यापार की ही एक विशेश स्थिति मानते हैं।
2. आधुनिक सिद्धान्त मूल्य के सामान्य संतुलन पर आधारित है, जबकि प्रतिश्ठित सिद्धान्त मूल्य के श्रम सिद्धान्त पर आधारित हो, जो कि अवास्तविक है।
3. रिकार्डो के सिद्धान्त में मात्र एक साधन श्रम है, जबकि ओहलिन श्रम और पूँजी दो साधन को लेकर अपने सिद्धान्त की व्याख्या करते हैं। परन्तु यहाँ यह उल्लेखनीय है कि यदि दो से अधिक साधन होंगे तो साधन गहनता की संकल्पना को परिभाशित करना मुश्किल हो जाएगा।
4. आधुनिक सिद्धान्त साधनों की पूर्ति में अन्तर के आधार पर अंतरराश्ट्रीय व्यापार के ढाँचे को निर्धारित करता है। साथ ही यह साधनों की सापेक्षिक कीमतों पर आधारित होने के कारण आधिक वास्तविक है। जबकि रिकार्डो साधनों की पूर्ति पर ध्यान नहीं देते हैं और सिर्फ वस्तुओं की सापोक्ष कीमतों पर ही विचार करते हैं।

   ओहलिन श्रम और पूँजी की सापेक्ष उत्पादकता के अंतरों को व्यापार का आधार मानते हैं। जबकि रिकार्डो सिर्फ श्रम की उत्पादकता के आधार पर ही सिद्धान्त की व्याख्या करते हैं।
5. रिकार्डो दो देशों में श्रम की गुणवत्ता में भिन्नता के आधार पर उत्पादन फलन में अंतर की व्याख्या करते हैं, जो कि व्यापार का आधार है। जबकि ओहलिन देशों की बीच साधन–सम्पन्नता में भिन्नता के कारण कीमतों में अन्तर की व्याख्या करते हैं।

   इस प्रकार प्रतिश्ठित सिद्धान्त उत्पादन फलनों में अन्तर के आधार पर तुलनात्मक लाभ की व्याख्या करते हैं, इसके विपरीत आधुनिक सिद्धान्त दोनों देशों में एक वस्तु का एक उत्पादन–फलन मानता है और तुलनात्मक लाभ का आधार देशों के बीच साधन अनुपातों में भिन्नता को मानता है।
6. रिकार्डो तुलनात्मक लागत अंतरों का आधार क्या है, यह स्पश्ट नहीं करते हैं। ओहलिन के अनुसार संसाधनों की भौतिक मात्रा में अंतर के कारण देशों के बीच अन्तरराश्ट्रीय व्यापारका उदय होता है न कि विभिन्न क्षेत्रों में साधनों की गुणवत्ता में अंतर के कारण। ओहलिन ने स्पश्ट किया कि विभिन्न क्षेत्रों/देशों में साधन–अनुपातों में अन्तर के कारण ही तुलनात्मक लागतों में अन्तर होता है।
7. प्रतिश्ठत सिद्धान्त विदेशी व्यापार के कल्याणात्मक या मूल्यात्मक पक्ष को स्थापित करता है। इसके अनुसार व्यापार में सम्मिलित सभी देशों को व्यापार से लाभ होगा। परन्तु ठीक यही बात आधुनिक सिद्धान्त के संदर्भ में नहीं कही जा सकती है।

आधुनिक सिद्धान्त व्यापार से होने वाले लाभ पर ध्यान नहीं देता है बल्कि वह व्यापार की संरचना और साधन–कीमतों की स्थिति पर ही ध्यान देता है और इस आधार पर सिर्फ व्यापार के संतुलन की व्याख्या करता है, जो कि धनात्मक अर्थशास्त्र का हिस्सा बन जाता है न कि कल्याणकारी अर्थशास्त्र का।

इस प्रकार, आधुनिक सिद्धान्त व्यापार के आधार पर केन्द्रित है, जबकि प्रतिश्ठित सिद्धान्त अंतरराश्ट्रीय व्यापार से होने वाले लाभों को दिखाने का प्रयास करता है। वस्तुतः आधुनिक सिद्धान्त, प्रतिश्ठत सिद्धान्त से बेहतर ढंग से अंतरराश्ट्रीय व्यापार के कारणों की व्याख्या करता है और यह उसमें एक बेहतर सुधार करता है।

4.7 अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का आधुनिक सिद्धांत की कमियां

आधुनिक व्यापार सिद्धान्त की अनेक आधारों पर आलोचना की गयी है–

1. आधुनिक व्यापार सिद्धान्त की मान्यताएँ अवास्तविक तथा अति सरलीकृत हैं। यह सिद्धान्त केवल दो देश, दो वस्तुओं तथा दो साधनों को लेकर ही व्याख्या प्रस्तुत करता है। इसी प्रकार पूर्ण–प्रतियोगिता, पूर्ण–रोजगार, समान–उत्पादन–फलन, शून्य परिवहन लागत जैसी मान्यताएँ भी अवास्तविक हैं।

   परन्तु बाद में ओहलिन ने अनेक, प्रदेशों, अनेक वस्तुओं तथा अनेक साधनों के संदर्भ अपने सिद्धान्त को विस्तारित किया। इसी प्रकार ओहलिन के अनुसार अन्य मान्यताओं में ढील देने पर भी उनका सिद्धान्त उसी प्रकार मान्य है।

2. इस सिद्धान्त के अनुसार व्यापार का कारण दो देशों या क्षेत्रों के बीच साधन सम्पन्नता में भिन्नता है। परन्तु व्यवहार में विश्व व्यापार का एक बड़ा भाग ऐसे देशो के बीच होता है जिनकी साधन–सम्पन्नता लगभग एक जैसी है।

   वस्तुतः तुलनात्मक लागत मे भिन्नता के कारण की व्यापार होता है। ओहलिन का सिद्धान्त अंतरराश्ट्रीय व्यापार में लागत को प्रभावित करने वाले घटको जैसे, परिवहन लागतों, पैमाने की बचतें, आन्तरिक व वाह्य बचतें आदि की उपेक्षा करता है, और इस प्रकार यह सामान्य साम्य की प्रणाली को विकसित करने में असमर्थ है।

   प्रो0 हैबरलर का कहना है कि यद्यपि ओहलिन का सिद्धान्त वास्तविकता के अधिक निकट है परन्तु यह पूर्ण सामान्य संतुलन प्रणाली को विकसित करने में असफल है। मोटे तौर पर यह एक आंशिक संतुलन विश्लेशण ही है।

3. हेक्सर–ओहलिन सिद्धान्त की वैधता के लिए यह आवश्यक है कि दो देशों में एक वस्तु के उत्पादन–फलन समान हो एवं कारक–गहनता की प्रतिलोमता हो। अर्थात् दो वस्तुओं के समोत्पाद वक्र एक–दूसरे को केवल एक ही बार काटे।

   कारण–गहनता की प्रतिलोमता की स्थिति में, अर्थात् जब दो समोत्पाद वक्र एक दूसरे को एक से अधिक बार काटेंगे, हेक्सर–ओहलिन सिद्धान्त अवैध हो जाता है।

   मिन्हास तथा अन्य लोगों ने 19 देशों के 24 उद्योगों के आँकड़ों के आधार पर यह पाया कि 5 मामलों में साधन प्रतिलोमता की स्थिति है। हालांकि लियोन्टीफ तथा मोरोनी मिन्हास के निश्कर्शों की आलोचना करते हैं।

   परन्तु यह स्पश्ट है कि साधन–प्रतिलोमता की स्थिति में हेक्सर–ओहलिन मॉडल, अंतरराश्ट्रीय व्यापार की संरचना तथा दिशा के निर्धारण में महत्वहीन हो जाता है।

4. ओहलिन के अनुसार दो देशों के बीच साधनों की कीमतों में सापेक्षिक अंतर का कारण साधनों की उपलब्धता में सापेक्षिक अन्तर है। अर्थात् साधनों के मूल्य निर्धारण में माँग की अपेक्षा पूर्ति अधिक महत्वपूर्ण है। परन्तु यदि माँग की दशाएँ पूर्ति की अपेक्षा साधनों के कीमत निर्धारण में अधिक महत्वपूर्ण हो जाएँ तो सम्भव है कि पूँजी–प्रधान देश श्रम–प्रधान वस्तु का निर्यात करने लगे, जो कि ओहलिन की परिकल्पना के विपरीत है।

लियोन्टीफ ने अपने आनुभविक जाँच में यह पाया कि अमेरिका एक पूँजी प्रधान देश होते हुए भी, श्रम–प्रधान वस्तु का निर्यात तथा पूँजी गहन वस्तु का आयात करता है। इसी को 'लियोन्टीफ विरोधाभास' कहते हैं।

5. यदि उपभोक्ताओं के अधिमान और वस्तुओं की माँग पर भी विचार किया जाए तो वस्तु कीमत अनुपात लागत अनुपात से भिन्न हो सकता है। ऐसी स्थिति में ओहलिन का सिद्धान्त लागू नहीं होता है।

दो देशों में समान साधन अनुपात होते हुए भी उपभोक्ता के अधिमान, रुचि या आय–वितरण में अन्तर के कारण अंतरराश्ट्रीय व्यापार हो सकता है।

इस प्रकार दो देशों में साधन तथा वस्तु बाजारों में माँग दशाओं में सापेक्षिक भिन्नता भी अंतरराश्ट्रीय व्यापार का आधार हो सकती है।

दो A देश और B हैं, जो कि x और y का उत्पादन करते हैं। दोनों ही देशों का उत्पादन संभावना वक्र AB है। व्यापार से पूर्व देश A का उत्पादन तथा उपभोग का साम्य बिन्दु e पर तथा देश B का f पर है। स्पश्ट है कि देश A में वस्तु y के लिए तथा देश B में वस्तु x के लिए उपभोक्ताओं की रुचि अत्यन्त तीव्र है।

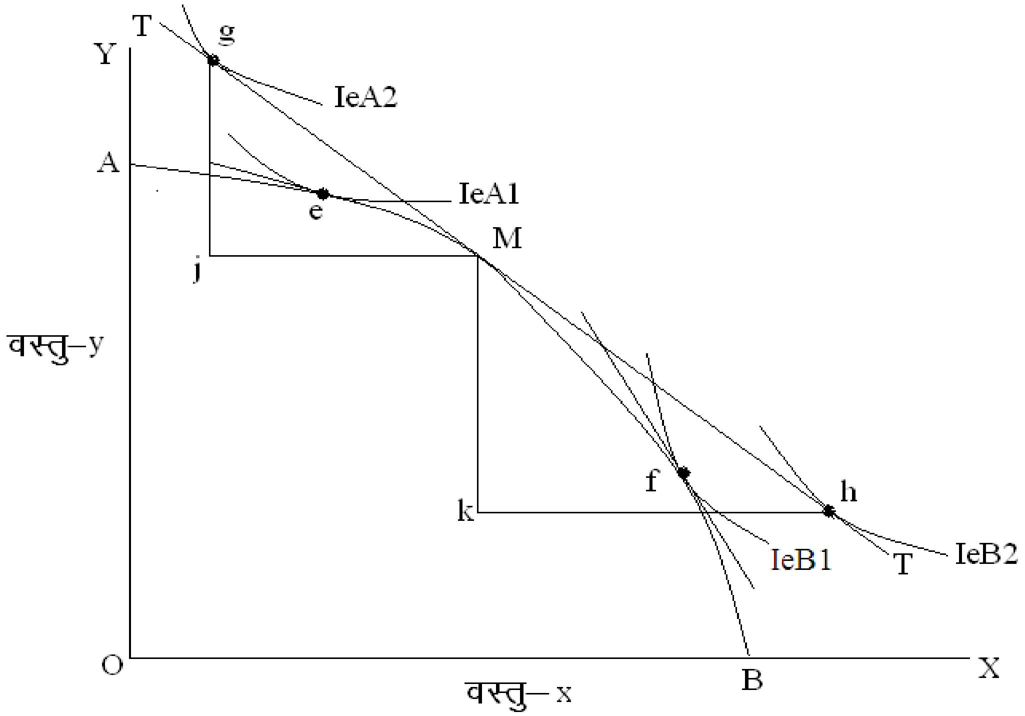

व्यापार शुरू होने के पश्चात् अंतरराश्ट्रीय व्यापार शर्त रेखा TT के अनुसार दोनों देश व्यापार करते हैं। दोनों देशों का उत्पादन का संतुलन बिन्दु M पर होगा। देश A , वस्तु x तथा देश B वस्तु y के उत्पादन में विशिश्टीकरण का प्रयास करता है। परन्तु व्यापार के पश्चात् दोनों देश अपने उत्पादन संभावना वक्र के बाहर बिन्दु पर उपभोग कर रहे हैं। देश A, बिन्दु g पर तथा देश B का संतुलन बिन्दु h पर होगा। स्पश्ट है कि साधन समानुपात भिन्न होने पर भी व्यापार हो सकता है।

6- साधनों में गुणात्मक भिन्नता, भिन्न उत्पादन तकनीक, उपभोक्ताओं की माँग में भिन्नता आदि कारणों से भी दो देशों की सापेक्षिक कीमतों में भिन्नता हो सकती है। ओहलिन भी इस तथ्य को स्वीकार करते हैं। परन्तु उनके अनुसार साधनों की उपलब्धता में अन्तर व्यापार के आधार का सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारण है।

7. विजनहोल्ड्स का कहना है कि वस्तुओं की कीमतें उनकी उत्पादन लागतों से निर्धारित नहीं होती है बल्कि उसकी उपभोक्ताओं के लिए उसकी उपयोगिता से। कच्चे माल और श्रम की कीमतें अंततः वस्तुओं की कीमतों पर निर्भर करती हैं।
8. आधुनिक सिद्धान्त भी स्थैतिक है क्योंकि यह उत्पादन के साधनों की मात्रा, उपभोक्ताओं की आय तथा पसन्दगी, उत्पादन फलन इत्यादि दिया हुआ मान लेता है।

4.8 अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के आधुनिक सिद्धांत की आनुभविक जाँच

जो सिद्धान्त व्यावहारिक स्थितियों की व्याख्या जितने ही बेहतर ढंग से करेगा वह उतना ही अधिक उपयोगी होगा। सर्वप्रथम मैकडूगल ने व्यापार सिद्धान्तों के सत्यापन का प्रयास आनुभाविक जाँच के आधार पर किया। बाद में अनेक अर्थशास्त्रियों ने आधुनिक व्यापार सिद्धान्त को आधुनिक प्रयासों की कसौटी पर कसने का प्रयास किया।

4.8.1 लियोन्टीफ का विरोधाभास

हेक्सर–ओहलिन सिद्धान्त के सत्यापन के संदर्भ में पहला व्यापक अध्ययन 1951 में लियोन्टीफ ने किया। लियोन्टीफ ने संयुक्त राज्य अमेरिका, जो कि पूँजी प्रधान है, के आयातों–निर्यातों का अध्ययन किया। वे अपने अध्ययन में हेक्सर–ओहलिन के सिद्धान्त के विपरीत निश्कर्श पर पहुँचते हैं। अमेरिका पूँजी प्रधान देश होते हुए भी श्रम प्रधान वस्तु का निर्यात तथा पूँजी प्रधान वस्तु का आयात करते हैं। अर्थात् निर्यात उद्योगों की अपेक्षा आयात प्रतियोगी उद्योंग सापेक्षतया अधिक पूँजी–गहन है। लियोन्टीफ के शब्दों में "श्रम के अंतरराश्ट्रीय विभाजन में अमेरिका की भागीदारी उत्पादन के पूँजी–गहन तरीकों की अपेक्षा श्रम–गहन तरीकों के विशिश्टीकरण पर आधारित है।" चूँकि लियान्टीफ के निश्कर्श हेक्सर–ओहलिन के निश्कर्शों के विपरीत थे, इसलिए इसे 'लियोन्टीफ विरोधाभास' कहा गया।

4.8.2 अन्य अध्ययन

लियोन्टीफ के अध्ययन से प्रोत्साहित होकर अनेक देशों में हेक्सर–ओहलिन सिद्धान्त का परीक्षण अर्थशास्त्रियों ने किया। जापान के दो अर्थशास्त्री **टेटमोटो तथा इशिमूरा** ने जापान के व्यापार–ढाँचे का अध्ययन किया और लियोन्टीफ–विरोधाभास की पुश्टि की। अध्ययन के अनुसार जापान एक श्रम–प्रधान देश है, जबकि यह पूँजी–गहन वस्तुओं का निर्यात करता है। उसी प्रकार **स्टोप्लर और रोस्कैम्प** ने पूर्वी जर्मनी के अध्ययन में पाया कि पूर्वी जर्मनी पूँजी गहन वस्तु का निर्यात करता है और श्रम गहन वस्तु का आयात, जबकि पूर्वी जर्मनी वास्तव में एक पूँजी–प्रधान देश नहीं है। इसी प्रकार **वाल** ने कनाडा के अमेरिका के साथ व्यापार ढाँचे के अध्ययन में पाया कि कनाडा के निर्यात उसके आयातों की अपेक्षा अधिक पूँजी–गहन थे। जबकि अमेरिका, कनाडा से अधिक पूँजी प्रधान देश है।

आर0 भारद्वाज ने भारत के अमेरिका के साथ व्यापार ढाँचे के अध्ययन मे पाया कि भारत के आयातों की अपेक्षा, निर्यात अधिक पूँजी–गहन थे। जबकि भारत एक श्रम–गहन देश है। यह निश्कर्श हेक्सर–ओहलिन सिद्धान्त का खण्डन करता है।

4.8.3 लियोन्टीफ विरोधाभास की आलोचना

लियोन्टीफ विरोधाभास, हेक्सर–ओहलिन सिद्धान्त ने इस विरोधाभास के हल के लिए अनेक वैकल्पिक व्याख्याएँ प्रस्तुत की और हेक्सर–ओहलिन प्रमेय की रक्षा करने का प्रयास किया। लियोन्टीफ द्वारा लिए गए आँकड़ो की विश्वसनीयता तथा उपयुक्तता पर सवाल भी खड़े किय गए। कुछ आलोचको ने उनकी अध्ययन प्रणाली को भी चुनौती दी।

1. आलोचक लियोन्टीफ के जाँच करने की विधि को तर्कपूर्ण नहीं मानते। वास्तविक आयातों की जगह उनका अध्ययन निर्यात उद्योगों तथा प्रतियोगी आयात प्रतिस्थापन उद्योगों पर केन्द्रीत है। लियोन्टीफ ने जो मेथडोलॉजी अपनायी वह अमेरिका के वास्तविक आयातित वस्तुओं की पूँजी गहनता को नहीं बताता है। यदि वास्तविक आयातित वस्तुओं के पूँजी–श्रम अनुपात का अध्ययन किया जाता तो निश्चित ही वे आयात श्रम–गहन होता।

2. प्रो0 बुकानन ने लियोन्टीफ द्वारा पूँजी की माप को दोशपूर्ण बताया क्योंकि लियोन्टीफ ने पूँजी–गुणांक की नहीं बल्कि वांछित निवेश गुणांक की गणना की है। इस प्रकार विविध उद्योगों में पूँजी के टिकाऊपन पर ध्यान नहीं दिया है।
3. अनेक शोधकर्ताओं का कहना है कि यदि भौतिक पूँजी में मानव पूँजी को भी जोड़ दिया तो लियोन्टीफ विरोधाभास का समाधान हो जाएगा। वास्तव में निर्यात क्षेत्र में लगी 'मानव पूँजी' उच्चकोटि की है जिसकी उत्पादकता काफी अधिक है। इसलिए कैनन अमेरिकी निर्यातों को "श्रम–गहन" कहने की बजाए "मानव पूँजी गहन" वस्तु कहते हैं।
4. पी0टी0 एल्सवर्थ के अनुसार लियोन्टीफ को अमेरिका के निर्यात तथा विदेशी निर्यात की तुलना करनी चाहिए थी। आयात–प्रतिस्थापन के लिए श्रम–पूँजी अनुपात की गणना दूसरे देश की आगत–निर्गत सारणी के आधार पर करनी चाहिए थी क्योंकि अमेरिका अपने आयातों को प्रतिस्थापित करने के लिए जिन वस्तुओं का उत्पादन करेगा वे पूँजी–प्रधान ही होंगी।
5. हैबरलर के अनुसार लियोन्टीफ ने पूँजी में श्रम को छोड़कर उत्पादन के अन्य साधन, मशीनरी एवं प्लांट आदि को सम्मिलित किया जबकि प्राकृतिक सम्पदा, साहसी एवं प्रबंध को छोड़ दिया। इन अन्य साधनों के कारण उत्पादन फलन भिन्न–भिन्न देशों में समरूप नहीं है।
6. ट्राविस का कहना है कि प्रतिबंधित व्यापार नीति की अवस्था में साधन–समानुपाती सिद्धान्त व्यापार के वास्तविक प्रवाह को दर्शाने में असमर्थ होता है। ट्राविस के अनुसार लियोन्टीफ विरोधाभास प्रतिबंधित व्यापार नीति का ही परिणाम है।
7. लियोन्टीफ विरोधाभास अमेरिका ने निर्यातों तथा आयातों पर माँग के प्रभाव की उपेक्षा करता है। रोमने राबिन्सन तथा जोन्स सहित अनेक अर्थशास्त्रियों का विचार है कि लियोन्टीफ का विरोधाभास माँग की दशाओं का परिणाम है। पूँजी प्रचुर देश होने के बाद भी चूँकि अमेरिका की प्रति व्यक्ति आय काफी अधिक है, वहाँ पूँजी–प्रधान वस्तुओं की माँग अधिक हो सकती है।
8. लियोन्टीफ ने स्वयं ही इस विरोधाभास का हल ढूँढने का प्रयास किया। लियोन्टीफ के अनुसार मात्रात्मक रूप से अमरिका मे श्रम की आपूर्ति या उपलब्धता भले सीमित लगे परन्तु यदि श्रम की गुणवत्ता पर विचार किया जाए तो अमेरिकी श्रम अन्य देशों की तुलना में कई गुना अधिक कुशल है। फलस्परूप यहाँ श्रम की प्रभावी आपूर्ति, भौतिक उपलब्धता से तीन गुना अधिक है। यह अधिक उत्पादकता उद्याशीलता, श्रेश्ठ संगठन तथा बेहतर वातावरण का परिणाम है। इस प्रकार यदि श्रम की उत्पादकता का समायोजन कर दिया जाए तो अमेरिका पूँजी–प्रधान नहीं बल्कि श्रम–प्रधान देश होगा। ऐसी स्थिति में लियोन्टीफ के निश्कर्श हेक्सर–ओहलिन सिद्धान्त को पुश्ट करते हैं।

   परन्तु लियोन्टीफ की इस व्याख्या की अनेक अर्थशास्त्रियों ने आलोचना की। क्रेनिन ने अपने अध्ययन में पाया कि अमेरिकी श्रमिक, अन्य देशों में श्रमिकों की अपेक्षा मात्र 20 से 25% ही अधिक कुशल है, 300% नहीं, जैसा कि लियोन्टीफ का अनुमान है।
9. अन्य अध्ययनों में लियोन्टीफ–विरोधाभास के सम्बन्ध में अनेक अध्ययन इसका खण्डन करते हैं।

   जापान के अध्ययन में टाटेमोटो तथा इथीमूरा ने पाया कि जापान द्वारा अमरिका के निर्यातों का पूँजी–श्रम अनुपात अमेरिका के आयातों के पूँजी–श्रम अनुपास से कम था। यह निश्कर्श हेक्सर–ओहलिन सिद्धान्त के अनुरूप है।

पूर्वी जर्मनी पर किए गए अध्ययन में देखा गया कि उसका 75% व्यापार साम्यवादी देशों से होता है और पूर्वी जर्मनी अपने अन्य व्यापार भागीदारों से अधिक पूँजी–प्रचुर है। इस अध्ययन के निश्कर्श कि पूर्वी जर्मनी पूँजी–गहन वस्तु का निर्यात तथा श्रम गहन वस्तु का आयात करता है, ओहलिन प्रमेय से मेल खाता है।

आर0 भारद्वाज ने भारत के संदर्भ में भी यह देखा कि भारत के आयातों की अपेक्षा उसके निर्यात अधिक श्रम गहन थे। जहाँ तक अल्पविकसित देशों द्वारा पूँजी–गहन वस्तुओं के निर्यात करने का सवाल है तो यहाँ उल्लेखनीय है कि ये देश अधिकांशतः आयातित तकनीकी और मशीनरी का प्रयोग करते हैं और साथ ही पूँजी–प्रचुर विकसित देशों की बहुराश्ट्रीय कम्पनियाँ इन देशों में प्रत्यक्ष–विदेशी निवेश करके

वस्तुओं का उत्पादन तथा निर्यात करने में संलग्न रहती है। और फिर इन देशों में कई कारणों से साधन कीमतें सही साधन–अनुपात को नहीं दर्शाती हैं।

वास्तविक जीवन में हम देखते हैं कि भूमि प्रचुर देश आस्ट्रेलिया भूमि–प्रधान वस्तुओं जैसे ऊन, माँस और गेहूँ आदि का निर्यात करता है। ब्राजील और कोलम्बिया कॉफी के बड़े निर्यातक हैं। खाड़ी देश पेट्रोलियम उत्पादों के बड़े निर्यातक हैं। ये सभी हेक्सर–ओहलिन सिद्धान्त की पुश्टि करते हैं। इस सिद्धान्त के अनेक अपवाद / विरोधाभास विश्व व्यापार में पाए जा सकते हैं परन्तु इससे सिद्धान्त अवैध नहीं हो जाता है।

वनेक ने अपने अध्ययन में बताया कि अमेरिका में अनेक प्राकृतिक संसाधन और पूँजी परस्पर पूरक है। इसलिए अमेरिका का व्यापार ढाँचा ऐसा है कि वह अपने दुर्लभ प्राकृतिक संसाधनों को संरक्षित रखता है। दूसरे `शब्दों में अमेरिका प्राकृतिक संसाधन गहन उत्पादन का आयात करता है न कि पूँजी–गहन उत्पाद का।

4.9 सारांश

हेक्सर ओहलिन सिद्धान्त के अनुसार पूँजी आधिक्य देश, पूँजी गहन वस्तु के उत्पादन में विशिश्टीकरण करेगा और निर्यात करेगा तथा श्रम–प्रधान देश, श्रम–गहन वस्तु का उत्पादन तथा निर्यात करेगा। हेक्सर–ओहलिन मॉडल में साधन–सम्पन्नता या प्रचुरता की धारणा को दो अर्थों में लिया गया है– साधन कीमतों के रूप में तथा भौतिक पदों में । मूल्य मापदण्ड के अनुसार एक देश जिसमें पूँजी सापेक्षिक रूप से सस्ती और श्रम सापेक्षिक रूप से मंहगी है उसे पूँजी–प्रचुर देश कहा जाएगा भले ही इस देश में पूँजी और श्रम की उपलब्ध भौतिक मात्रा दूसरे देश के मुकाबले कितनी भी हो। भौतिक मापदण्ड के आधार पर एक देश सापेक्षिक रूप से पूँजी–प्रचुर देश होगा यदि दूसरे देश की अपेक्षा यहाँ पूँजी का अनुपात श्रम से अधिक है।

हेक्सर–ओहलिन का सिद्धान्त या प्रमेय कीमत–मापदण्ड का प्रयोग करने पर सिद्ध किया जा सकता है पर भौतिक मापदण्ड के साथ यह सिद्ध हो पाए, यह आवश्यक नहीं है। ओहलिन कीमत–मापदण्ड के आधार पर ही साधन–सम्पन्नता को परिभाशित करते हैं। उनके अनुसार यदि एक देश में पूँजी सापेक्षतया पूँजी सस्ती है तो वहाँ पूँजी की पूर्ति अवश्य ही अधिक होगी और यदि श्रम सापेक्षिक सस्ता है तो उस देश में श्रम की प्रचुरता होनी चाहिए। भौतिक मापदण्ड के रूप में साधन सम्पन्नता को परिभाशित करने पर यह सिद्धान्त केवल तभी वैध होगा जब माँग की प्रतिलोमता की स्थिति न हो – जबकि दोनों देशों में प्रत्येक वस्तु के लिए उपभोक्ताओं की रुचियाँ उपभोग अधिमान समान हो और आयात माँग की लोच इकाई के बराबर हो।

लियोन्टीफ ने अपने अध्ययन में हेक्सर–ओहलिन के सिद्धान्त के विपरीत निश्कर्श पर पहुँचते हैं। अमेरिका पूँजी प्रधान देश होते हुए भी श्रम प्रधान वस्तु का निर्यात तथा पूँजी प्रधान वस्तु का आयात करते हैं। अर्थात् निर्यात उद्योगों की अपेक्षा आयात प्रतियोगी उद्योंग सापेक्षतया अधिक पूँजी–गहन है। लियान्टीफ के निश्कर्श हेक्सर–ओहलिन के निश्कर्शों के विपरीत थे, इसलिए इसे 'लियोन्टीफ विरोधाभास' कहा गया।

4.10 शब्दावली

मूल्य के सामान्य साम्य सिद्धान्त– के अनुसार किसी वस्तु का मूल्य उसकी समग्र माँग तथा समपूर्ति द्वारा निर्धारित होती है।

कारक गहनता– उत्पादन में प्रयुक्त साधनों का अनुपात। यदि दो साधन श्रम और पूँजी है तो श्रम और पूँजी का अनुपात कारक महनता को व्यक्त करता है।

कारक गहनता की प्रतिलोमता– उस स्थिति में पायी जाती है जब एक समोत्पाद वक्र दूसरे समोत्पाद वक्र पर स्थित हो या उसे एक अधिक बिन्दुओं पर काटे। इस तरह पहले को एक साधन गहनता प्रतिलोमता तथा दूसरे को बहुसाधन गहनता प्रतिलोमता कहते हैं।

संविदा वक्र– किसी देश के दो वस्तुओं के समोत्पाद वक्रों के स्पर्श बिन्दुओं को मिलाने पर प्राप्त रेखा। संविदा वक्र के प्रत्येक बिन्दु पर पूँजी और श्रम की सीमांत उत्पादकता का अनुपात समान होता है इसलिए इसे उत्पादन के कुशलता बिन्दुओं का बिन्दूपथ कहते हैं।

लियोन्टीफ का विरोधाभास–लियोन्टीफ ने संयुक्त राज्य अमेरिका, जो कि पूँजी प्रधान है, के आयातों–निर्यातों का अध्ययन किया। लियोन्टीफ के अनुसार अमेरिका पूँजी प्रधान देश होते हुए भी श्रम प्रधान वस्तु का निर्यात तथा पूँजी प्रधान वस्तु का आयात करते हैं। चूँकि लियान्टीफ के निश्कर्श हेक्सर–ओहलिन के निश्कर्शों के विपरीत थे, इसलिए इसे 'लियोन्टीफ विरोधाभास' कहा गया।

4.11 संदर्भ /उपयोगी ग्रंथ सूची

31. *International Economics* ,Mannur .G .H,2001 .Ltd .Vikas Publishing House Pvt

32. International Economics ,Bo Sodersten ,1999 ,Macmillan

33. Paul Krugman and Maurice Obstfeld: *Theory and :International Economics ,PolicyDorling Kindersley India Pvt Ltd20 ,09.*

34. rles P KindlebCharegr ,Illinois ,.Irwin Inc .Richard D ,International Economics 1968

35. Dominik Salvatore, International Economics, John Willy & Sons, Inc., 2008

36. D. M. Mithani, International Economics, Himalaya Publishing House, Mumbai, 2006

37. सुदामा सिंह एवं एम०सी० वैश्य ,अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र ,ऑक्सफ़ोर्ड एंड आई०बी०एच० पब्लिकेशन , 2007 ,नई दिल्ली

38. एम०एल०झिंगन ,अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र ,वृंदा पब्लिकेशन2010 ,दिल्ली ,.

39. ज्ञानेंद्र सिंह कुशवाहा अंतर्राष्ट्रीय ,अर्थशास्त्रनई ,इंडिया लिमिटेड दि मैकमिलन कंपनी आफ , ,दिल्ली1979.

40. एच० एस० अग्रवाल ,बरला ०एस०तथा सी ,*अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र*, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा , .2003

4.12 अभ्यास प्रश्न

लघु–उत्तरीय प्रश्न–

1. लियोन्टीफ विरोधाभास पर टिप्पणी लिखिए।
2. लियोन्टीफ विरोधाभास की आलोचना लिखिए।
3. आधुनिक अंतरराश्ट्रीय व्यापार सिद्धान्त की मान्यताएँ बताइए।
4. विदेशी व्यापार के सामान्य संतुलन दृश्टिकोण पर टिप्पणी लिखिए।
5. साधन–गहनता की प्रतिलोमता क्या है?
6. साधन–प्रचुरता का क्या अर्थ है? समझाइए।
7. आधुनिक अंतरराश्ट्रीय व्यापार सिद्धान्त की आलोचना कीजिए।
8. आधुनिक अंतरराश्ट्रीय व्यापार सिद्धान्त की प्रतिश्ठित सिद्धान्त से तुलना कीजिए।

निबंधात्मक प्रश्न

1. हेक्सर–ओहलिन के अंतरराश्ट्रीय व्यापार सिद्धान्त का आलोचनात्मक मूल्यांकन कीजिए।
2. साधन–कीमत सामनीकरण प्रमेय की आलोचनात्मक विवेचना कीजिए।
3. चित्र की सहायता से आधुनिक अंतरराश्ट्रीय व्यापार सिद्धान्त की विवेचना कीजिए।
4. प्रतिश्ठित व्यापार सिद्धान्त तथा आधुनिक व्यापार सिद्धान्त की तुलना कीजिए तथा बताइए कि किस प्रकार से आधुनिक सिद्धान्त, प्रतिश्ठित सिद्धान्त से श्रेश्ठ है?
5. लियोन्टीफ विरोधाभास का परीक्षण कीजिए।

खंड 01: अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार सिद्धांत -01
इकाई- 5
अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का साधन कीमत समानीकरण सिद्धांत

2.49 प्रस्तावना
2.50 उद्देश्य
2.51 सैमुएलसन का साधन कीमत समानीकरण सिद्धांत
2.52 साधन कीमत समानीकरण प्रमेय की आलोचना
2.53 सारांश
2.54 शब्दावली
2.55 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
2.56 उपयोगी / सहायक ग्रन्थ
2.57 अभ्यास प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र के खंड एक "अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार सिद्धांत -01" से सम्बंधित यह पांचवीं इकाई है. इससे पहले की इकाईयों के अध्ययन के पश्चात् आप अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की प्रकृति, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के अलग सिद्धांत की आवश्यकता, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के प्रतिष्ठित सिद्धांत और आधुनिक सिद्धांत के बारे में बता सकते हैं. आप जान गए होंगे कि ओहलिन, रिकार्डो के तुलनात्मक लागत सिद्धान्त को अधूरा बताते हुए उसकी आलोचना करते हैं और तुलनात्मक लागतों में अन्तर के कारणों की व्याख्या करते हैं। विभिन्न देशों में साधन उपलब्धताओं में भिन्नता के कारण ही वस्तुओं की सापोक्षिक कीमतों में भिन्नता पायी जाती है जिससे देशों के बीच व्यापार सम्भव होता है।

यदि व्यापार हेक्सर ओहलिन सिद्धांत के अनुसार होता है तो साधन कीमत समानीकरण सिद्धांत के अनुसार बिना साधनों के एक दूसरे देश में गतिशील हुए साधन कीमतों में समानीकरण की प्रवृत्ति होगीऔर अंततःदोनों ही देश में साधनों की कीमतें वस्तु व्यापार के द्वारा समान हो जाएंगी।

प्रस्तुत इकाई में साधन कीमत समानीकरण सिद्धांत के बारे में विस्तार से बताया गया है. इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के समुएल्सन के साधन कीमत समानीकरण सिद्धांत के सम्बन्ध में स्पष्ट जानकारी प्राप्त कर सकेगें.

5.3 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के बाद आप

- साधन कीमत समानीकरण प्रमेय को समझ सकेंगे.

5.4 साधन कीमत समानीकरण प्रमेय

एली हेक्सर के अनुसार स्वतंत्र व्यापार से साधन कीमतों में पूर्ण समानता हो जाती है। दूसरी तरफ ओहलिन का कहना था कि व्यवहार में साधन–कीमतों में पूर्ण समानता सम्भव नहीं है। स्वतंत्र व्यापार से सिर्फ साधन–कीमत समानीकरण की प्रवृति आती है और सिर्फ आंशिक साधन कीमत समानीकरण ही सम्भव है। स्टॉलपर तथा सैम्युल्सन और ऊजावा ने भी बाद में अपने मॉडलों में आंशिक समानीकरण का ही समर्थन किया। सैम्युल्सन ने बाद में और लर्नर ने पूर्ण साधन–कीमत समानीकरण के मॉडल दिए।

आप 2×2×5 मॉडल (अर्थात 2 देश, 2 वस्तुएँ और 2 साधन) के द्वारा देखेंगे कि अंतरराश्ट्रीय व्यापार के फलस्परूप किस प्रकार साधन–कीमतों में समानीकरण होता है।

साधन कीमत समानीकरण के अनुसार अंतरराश्ट्रीय व्यापार साधनों की अंतरराश्ट्रीय गतिशीलता का प्रतिस्थापन है। दो देशों की बीच वस्तुओं का स्वतंत्र व्यापार तुलनात्मक लागतों की भिन्नता को समाप्त कर देता है और साधनो के सापेक्षिक मूल्यों में समानता स्थापित हो जाती है।

देश A एक श्रम–प्रचुर देश है और पूँजी–दुर्लभ। इसलिए श्रम सस्ता तथा पूँजी मंहगी है। अतः पूँजी–श्रम अनुपात (K/L) सापेक्षतया कम है। इसी प्रकार देश B में श्रम दुर्लभ और मंहगा तथा पूँजी प्रचुर और सस्ती है तथा पूँजी–श्रम अनुपात (K/L) सापेक्षतया अधिक है। यह स्थिति व्यापार से पहले की है। व्यापार के पश्चात देश A में पूँजी–श्रम अनुपात बढ़ेगा और देश B में कम होगा, जब तक कि K/L अनुपात दो देशों में बराबर नहीं हो जाता। वास्तव में व्यापार शुरु होने के पश्चात देश A श्रम–प्रधान वस्तु के उत्पादन में विशिश्टीकरण प्राप्त करेगा और उसका निर्यात करेगा। जिससे श्रम सापेक्षितया दुर्लभ होता जाएगा और उसकी कीमत बढ़ेगी। जबकि दुर्लभ साधन पूँजी सापेक्षिक रूप से प्रचुर हो जाएगी और इसकी कीमत गिरेगी। इसी प्रकार देश B में व्यापार के बाद पूँजी–प्रधान वस्तु के उत्पादन में विशिश्टीकरण से पूँजी की कीमत बढ़ेगी तथा दुर्लभ साधन श्रम सापेक्षतया प्रचुर हो जाएगा और उसकी कीमत घटेगी तथा इस प्रकार K/L घटेगा।

इस प्रकार व्यापार के परिणामस्वरूप बिना उत्पादन के संसाधनों की गति के दो देशों के बीच साधन कीमतें (K/L अनुपात) समान हो जाती है।

साधन–कीमत समानीकरण की प्रक्रिया को एडवर्थ–बाडले बाक्स–चित्र की सहायता से आप समझ सकते हैं।

दो देश A और B में वस्तु x तथा y का उत्पादन होता है। चित्र 5.6 में x और y का मूल बिन्दु क्रमशः 0 तथा 0^1 दिखाया गया है। पूँजी को उर्ध्व अक्ष तथा श्रम को क्षेतिज अक्ष पर लिया गया है। दोनों ही देशों में सदैव ही वस्तु x श्रम–गहन तथा वस्तु y पूँजी–गहन है। देश A श्रम–प्रचुर तथा देश B पूँजी–प्रचुर देश है।

चित्र 5.6 में बाक्स $OA0^1B$ देश A के साधन पूर्ति को देर्शाता है। संविद वक्र $Oe0^1$ है जो कि यह बताता है कि वस्तु x श्रम–गहन तथा वस्तु y पूँजी गहन है।

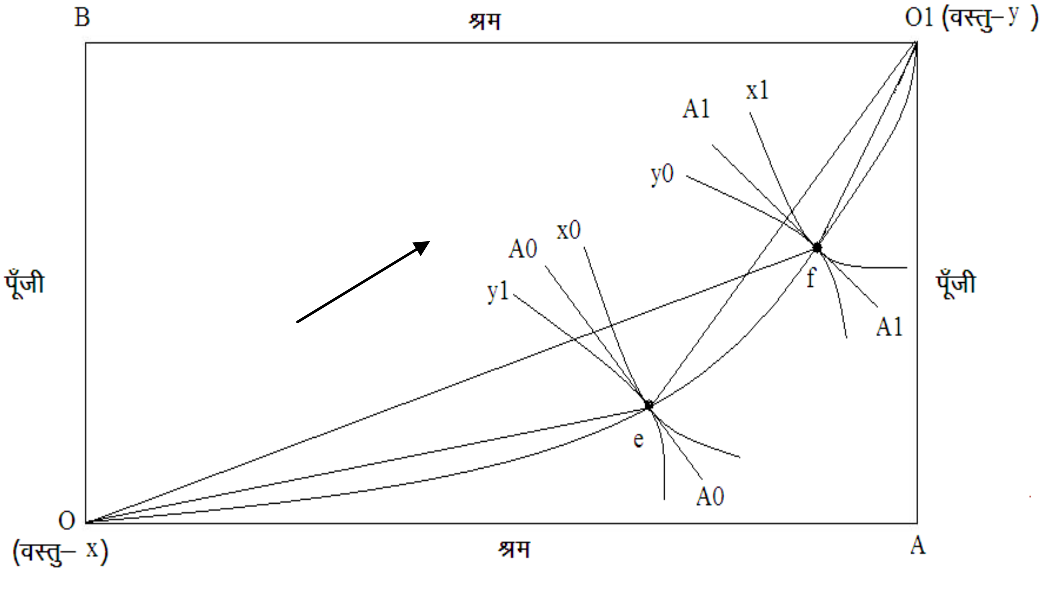

समोत्पाद वक्र X_0,X_1 वस्तु x के लिए तथा Y_0,Y_1 वस्तु y के लिए है।

व्यापार से पहले देश A, बिन्दु e पर उत्पादन करता है। जहाँ कि वस्तु x का समोत्पाद वक्र X_0, वस्तु y के समोत्पाद वक्र Y_0 को स्पर्श करता है। साधन कीमत रेखा P_0P_0 भी बिन्दु e पर दोनों वस्तुओं के

समोत्पाद वक्रों को स्पर्श कर रही है। बिन्दु e पर वस्तु x में पूँजी–उत्पाद अनुपात (K_x/L_x) वस्तु y के पूँजी–उत्पाद अनुपात (K_y/L_y) से कम है। जो कि यह स्पष्ट करता है कि वस्तु y पूँजी–गहन तथा वस्तु x श्रम–गहन है।

ज्यामितीय रूप में–

वस्तु x पूँजी श्रम अनुपात– $\frac{Kx}{Lx} = \angle eoA$ तथा $\frac{Ky}{Ly} = \angle eo'B$

चित्र में, $\angle eo^1B > \angle eoA$

अर्थात $\frac{Ky}{Ly} > \frac{Kx}{Lx}$

अर्थात वस्तु y पूँजी प्रधान तथा x श्रम–प्रधान है। व्यापार शुरु होने के पश्चात देश A वस्तु x के उत्पादन में विशिश्टीकरण प्राप्त करेगा और वह उत्पादन संसाधनों को वस्तु y से वस्तु x उद्योग में लगाएगा। परिणाम स्वरूप संविदा वक्र पर उसका उत्पादन का संतुलन e से बिन्दु f पर चला जाएगा। देश A द्वारा व्यापार के पश्चात वस्तु x का उत्पादन बढ़ाने पर बिन्दु f पर इसके उत्पादन पूँजी–श्रम अनुपात में वृद्धि हो गयी जबकि वस्तु y का उत्पादन घटाने से उसके उत्पादन पूँजी–श्रम अनुपात $(\frac{Ky}{Ly})$ में भी वृद्धि हो गयी।

बिन्दु f पर, $\angle FoA > \angle eoA$ तथा

$\angle fo^1B > \angle eo^1B$

स्पश्ट है कि व्यापार के पश्चात, श्रम–प्रचुर देश A में दोनों ही वस्तुओं के उत्पादन में पूँजी–श्रम अनुपात में वृद्धि हो गयी। यह साधन कीमत रेखा के ढाल में परिवर्तन से भी स्पश्ट है। व्यापार के पश्चात की साधन कीमत रेखा P_1P_1, व्यापार–पूर्व की की[illegible] P_0P_0 से अधिक तिरछी है।

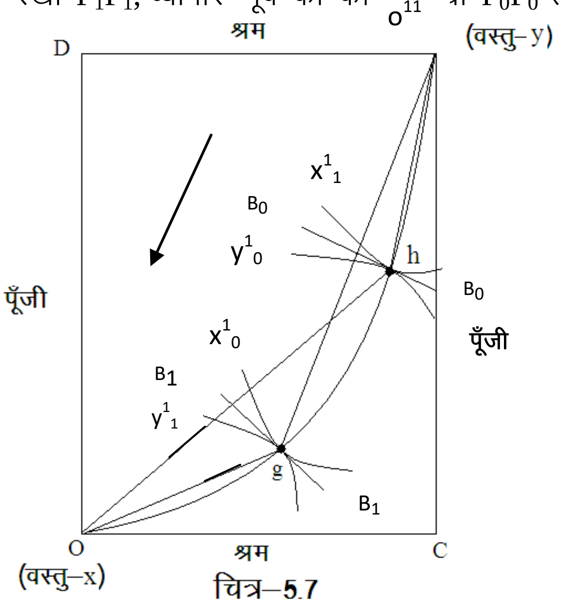

चित्र–5.7

चित्र 5.7 में, OCO^1D के बाक्स, देश B, जो कि पूँजी–प्रचुर देश है, के कुल संसाधन आपूर्ति को बताता है। संविदा वक्र O^1hO से स्पश्ट है कि वस्तु y, पूँजी गहन तथा वस्तु x, श्रम गहन है। व्यापार से पहले देश B बिन्दु h पर उत्पादन करता है, जहाँ दोनों वस्तुओं के समोत्पादन वक्र x_o तथा y_0 साधन कीमत रेखा P_0P_0, पर, बिन्दु h पर स्पर्श करते हैं। बिन्दु h पर, $\frac{Kx}{Lx}$ (X के उत्पादन में पूँजी–श्रम अनुपात)= $\angle hoe$ तथा $\frac{Kx}{Lx} = \angle ho^1D$

$\angle ho^{11}D > \angle hoe$

अर्थात् वस्तु y पूँजी–प्रधान तथा वस्तु x श्रम प्रधान है। व्यापार शुरु होने के पश्चात देश B, वस्तु y के उत्पादन में विशिश्टीकरण प्राप्त करने के लिए उसका उत्पादन बढ़कर और नया उत्पादन का संतुलन j बिन्दु पर होगा। फलस्वरूप देश B में वस्तु x तथा y दोनों में पूँजी–श्रम अनुपात में कमी आ जाती है।

बिन्दु j पर, $\frac{Kx}{Lx} = \angle joc$ तथा $\frac{Ky}{Ly} = \angle jo^{11}D$

चि0 में स्पश्ट है कि $\angle joc < \angle hoe$ तथा

$\angle jo^{11}D < \angle ho^{11}D$

स्पश्ट है कि व्यापार के पश्चात्, पूँजी–प्रचुर देश B में दोनों ही वस्तुओं के उत्पादन में पूँजी–श्रम अनुपात में कमी हो गयी। यह साधन की सापेक्षिक कीमत अनुपात रेखा के ढाल में परिवर्तन से भी स्पश्ट है। व्यापार के पश्चात P_1P_1, P_0P_0 से अधिक सपाट हो जाती है।

अब आप दोनों देशों के बाक्स चित्र को संयुक्त रूप से एक साथ दिखाकर साधन–कीमत समानीकरण को दिखा सकते हैं।

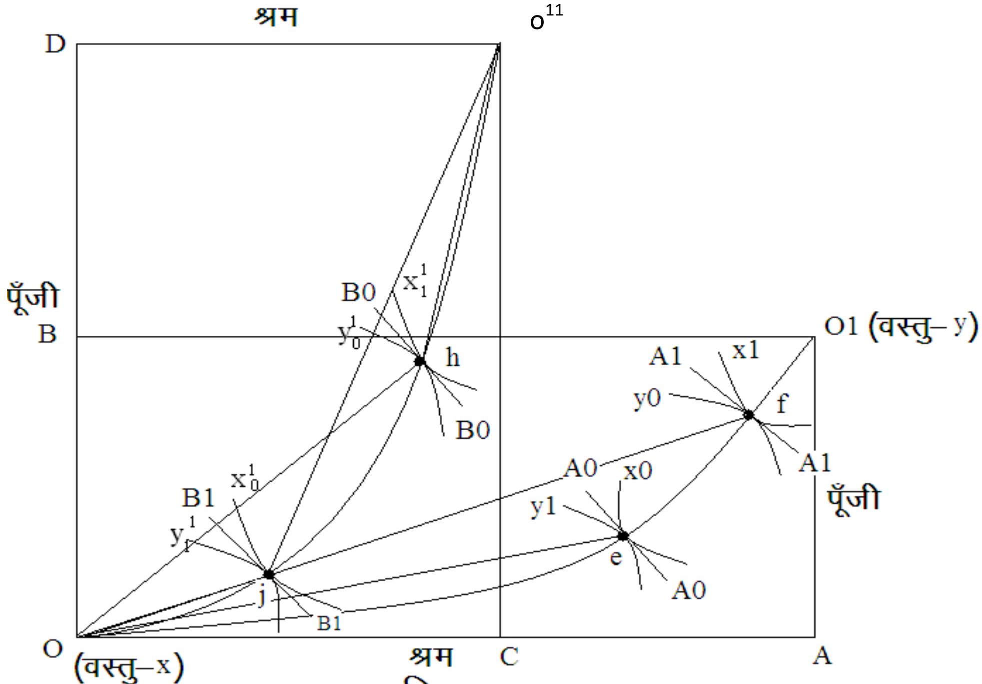

चित्र–5.8

चित्र 5.8 में दोनों देशों के बाक्स चित्रों को एक साथ दिखाया गया है। वस्तु x के लिए दोनों देशों का मूल बिन्दु o है। जबकि वस्तु y के लिए देश A का मूल बिन्दु o^1o तथा देश B मूल बिन्दु $o^{11}o$ है। देश A में वस्तु x तथा y के समोत्पाद वक्रों के स्पर्श बिन्दुओं से प्राप्त संविदा वक्र oeo^1 है जबकि देश B का संविदा वक्र ojo^{11} है। दोनों देशों के संविदा वक्र इस प्रकार से है कि दोनों ही देशों में सभी साधन–कीमत अनुपातों पर वस्तु x श्रम–गहन तथा वस्तु y पूँजी–गहन है क्योंकि दोनों वस्तुओं के उत्पादन फलन दोनों देशों में समान हैं, भले ही साधनों की कीमतों में भिन्नता हो।

व्यापार से पूर्व देश A, बिन्दु e तथा देश B, बिन्दु j पर उत्पादन कर रहा है। दोनों देशों में साधन कीमत अनुपात भिन्न है- देश A में A_oA_o तथा देश B में B_oB_o व्यापार से पूर्व साधन कीमत अनुपात को व्यक्त कर रही है।

व्यापार शुरू होने के बाद दोनों देशों में उत्पादन का संतुलन परिवर्तित हो जाता है और साधन कीमत अनुपात भी परिवर्तित हो जाता है. देश A में उत्पादन का संतुलन बिंदु E से बिंदु F पर तथा देश B में h से j पर चला जायेगा. साधन कीमत रेखा देश A में A_1A_1 तथा देश B में B_1B_1 हो जाती है। साधन–कीमत रेखा A_1A_1 तथा देश B_1B_1 में समानान्तर है। अर्थात् दोनों का ढाल बराबर है जो यह प्रदर्शित करता है कि व्यापार के पश्चात्, व्यापार के कारण दोनों देंशों में साधनों की कीमतें समान हो जाएगी। चित्र में व्यापार के पश्चात् देश A में वस्तु x के उत्पादन में पूँजी–श्रम अनुपात $(\frac{Kx}{Lx})_A = \angle fOA$ तथा देश में पूँजी–श्रम अनुपात $(\frac{Ky}{Ly})_B = \angle joA$

चूँकि $\angle fOA = \angle joA$

अतः वस्तु y में भी, दोनों देशों में, व्यापार के पश्चात् साधन–कीमत अनुपात समान हो जाता है।

अतः स्पश्ट है कि देशों के बीच संसाधनों की आवाजाही न होने पर भी अंतरराश्ट्रीय व्यापार साधन–कीमतों में समानीकरण ले आता है और इस अर्थ में वस्तु और सेवाओं में अंतरराश्ट्रीय व्यापार श्रम और पूँजी की अंतरराश्ट्रीय गतिशीलता का स्थानापन्न है।

5.4 साधन कीमत समानीकरण प्रमेय की आलोचना

साधन–कीमत समानकरण प्रमेय के अनुसार–व्यापार के पश्चात् दोनों देशों में वस्तु के उत्पादन में पूँजी–श्रम अनुपात समान होगा। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि वास्तविक जगत में भी व्यवहार में साधन कीमत समानीकरण सम्भव है। यह प्रमेय वास्तव में जिन मान्यताओं पर आधारित है वे अवास्तविक है और ऐसे अनेक बिन्दु हैं जो कि साधन–कीमत समानीकरण में अवरोध पैदा करते हैं–

1. व्यापार में सम्मिलित सभी देशों में उत्पादन फलन समरूप न होने की स्थिति में यह सिद्धान्त खण्डित हो जाता है। वास्तव में वस्तुओं के उत्पादन के लिए भौतिक जलवायु और सामाजिक तथा बौद्धिक वातावरण अलग–अलग देशों में उत्पादन फलन समरूप नहीं हो सकते।
2. यह सिद्धान्त पूर्ण प्रतियोगिता तथा उत्पादन में पैमाने के समान प्रतिफल की मान्यता पर आधारित है परन्तु वास्तविक विश्व में अपूर्ण तथा एकाधिकारिक प्रतियोगिता की स्थिति पायी जाती है तथा साथ ही बहुत सारी वस्तुओं के उत्पादन में बढ़ते हुए प्रतिफल नियम भी लागू होता है।
3. यह सिद्धान्त यह मान लेता है कि पूरी तरह से स्वतंत्र व्यापार हो रहा है साथ ही व्यापार से परिवहन लागतें भी शून्य है। परन्तु वास्तविक जगत में अनेक प्रकार के प्रशुल्क तथा गैर–प्रशुल्क बाधाएँ व्यापार में आती ही हैं और फिर परिवहन लागत शून्य नहीं हो सकती । व्यापार प्रतिबन्धों और परिवहन लागतों की उपस्थिति में साधन कीमत समानीकरण सम्भव नही होगा। इसी कारण ओहलिन पूर्ण साधन कीमत समानीकरण की सम्भावना से इन्कार करते हैं। साधन कीमतों में पूर्ण समानता तथी सम्भव है जब उत्पादन के साधन स्वयं पूर्ण रूप से गतिशील हों।
4. इस सिद्धान्त क लिए यह भी आवश्यक है कि दोनों देश दोनों वस्तुओं का उत्पादन करें। यदि एक देश एक वस्तु के उत्पादन में पूर्ण विशिष्टीकरण प्राप्त करता है तो यह सिद्धान्त असफल हो जाता है।
5. साधन कीमतों में समानता के लिए यह जरूरी है कि साधनों की संख्या वस्तु की संख्या से अधिक नहीं होनी चाहिए। अनेक वस्तुओं, देशों तथा साधनों की स्थिति में साधन कीमतों की समानता संभव नहीं है।
6. यह सिद्धान्त संसाधनों की मात्रा को प्रत्येक देश में स्थिर मान लेता है जो कि अवास्तविक है।
7. साधन–प्रतिलोमता की स्थिति में यह सिद्धान्त लागू नहीं होता है क्योंकि इस स्थिति में पूँजी सम्पन्न देश पूँजी प्रधान तकनीकी का प्रयोग करके पूँजी गहन वस्तु का उत्पादन व निर्यात करेगा किन्तु श्रम प्रधान देश श्रम प्रधान तकनीकी से उसी वस्तु का उत्पादन करता है।
8. यह एक स्थैतिक सिद्धान्त है। यह एक दिए हुए समय में एक दी हुई संतुलन की स्थिति की कुछ विशेषताओं का केवल अध्ययन करता है। दी हुई तकनीक पर संसाधनों इत्यादि के दिए होने पर

व्यापार का प्रभाव क्या होगा, परन्तु वास्तविक जगत में चीजें तेजी से बदलती रहती हैं। ऐसे में वस्तुओं और सेवाओं में व्यापार के जरिए साधन कीमत में पूर्ण समानता संभव नहीं है।

इन तमाम आलोचनाओं के बावजूद इतना अवश्य कहा जा सकता है कि देशों की बीच संसाधनों की अगतिशीलता हो तो, वस्तुओं व सेवाओं का अंतरराष्ट्रीय व्यापार साधन कीमत समानीकरण के सबसे बेहतर स्थितियाँ पैदा करता है। निःसंदेह व्यापार के अभाव में साधन मूल्यों की भिन्नता और अधिक हो सकती है।

5.5 सारांश

हेक्सर ओहलिन सिद्धान्त के अनुसार पूँजी आधिक्य देश, पूँजी गहन वस्तु के उत्पादन में विशिश्टीकरण करेगा और निर्यात करेगा तथा श्रम–प्रधान देश, श्रम–गहन वस्तु का उत्पादन तथा निर्यात करेगा। साधन कीमत समानीकरण प्रमेय के अनुसार अंतरराश्ट्रीय व्यापार साधनों की अंतरराश्ट्रीय गतिशीलता का प्रतिस्थापन है। दो देशों की बीच वस्तुओं का स्वतंत्र व्यापार तुलनात्मक लागतों की भिन्नता को समाप्त कर देता है और साधनो के सापेक्षिक मूल्यों में समानता स्थापित हो जाती है। देशों के बीच संसाधनों की आवाजाही न होने पर भी अंतरराश्ट्रीय व्यापार साधन–कीमतों में समानीकरण ले आता है और इस अर्थ में वस्तु और सेवाओं में अंतरराश्ट्रीय व्यापार श्रम और पूँजी की अंतरराश्ट्रीय गतिशीलता का स्थानापन्न है। साधन–कीमत समानकरण प्रमेय के अनुसार–व्यापार के पश्चात् दोनों देशों में वस्तु के उत्पादन में पूँजी–श्रम अनुपात समान होगा।

5.6 शब्दावली

साधन कीमत समानीकरण– दो देशों की बीच वस्तुओं का स्वतंत्र व्यापार तुलनात्मक लागतों की

5.7 उपयोगी/सहायक ग्रंथ

1. *International Economics* ,Mannur .G .H,2001 .Ltd .Vikas Publishing House Pvt
2. International Economics ,Soder stenBo,1999 ,Macmillan
3. Paul Krugman and Maurice Obstfeld: *Theory and :International Economics ,PolicyDorling Kindersley India Pvt Ltd20 ,09.*
4. Dominik Salvatore, International Economics, John Willy & Sons, Inc., 2008
5. सुदामा सिंह एवं एम०सी० वैश्य ,अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र ,ऑक्सफ़ोर्ड एंड आई०बी०एच० पब्लिकेशन , 2007 ,नई दिल्ली
6. एम०एल०झिंगन ,अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र ,वृंदा पब्लिकेशन2010 ,दिल्ली ,.

5.8 अभ्यास प्रश्न

निबंधात्मक प्रश्न

साधन–कीमत सामनीकरण प्रमेय की आलोचनात्मक विवेचना कीजिए।

खंड 01: अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार सिद्धांत -01

इकाई- 6

स्टोप्लर - सैमुएलसन प्रमेय तथा रिब्जिन्सकी प्रमेय

6.1 प्रस्तावना
6.2 उद्देश्य
6.3 विपरीत साधन गहनता
6.4 स्टोपलर-सैमुएलसन प्रमेय
6.5 रिब्जिन्सकी प्रमेय
6.6 सारांश
6.7 शब्दावली
6.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
6.9 उपयोगी / सहायक ग्रन्थ
6.10 अभ्यास प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र के खंड एक "अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार सिद्धांत -01" से सम्बंधित यह पांचवीं इकाई है. इससे पहले की इकाईयों के अध्ययन के पश्चात् आप अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की प्रकृति, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के अलग सिद्धांत की आवश्यकता, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के प्रतिष्ठित सिद्धांत और आधुनिक सिद्धांत के बारे में बता सकते हैं. आप जान गए होंगे कि व्यापार हेक्सर ओहलिन सिद्धांत के अनुसार होता है तो साधन कीमत समानीकरण सिद्धांत के अनुसार बिना साधनों के एक दूसरे देश में गतिशील हुए साधन कीमतों में समानीकरण की प्रवृत्ति होगी और अंततःदोनों ही देश में साधनों की कीमतें वस्तु व्यापार के द्वारा समान हो जाएंगी।

प्रस्तुत इकाई में स्टोप्लर - सैमुएलसन प्रमेय तथा रिब्जिन्सकी प्रमेय के बारे में विस्तार से बताया गया है. इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप स्टोप्लर - सैमुएलसन प्रमेय तथा रिब्जिन्सकी प्रमेय के सम्बन्ध में स्पष्ट जानकारी प्राप्त कर सकेगें.

6.1 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के बाद आप

- स्टोप्लर - सैमुएलसन प्रमेय समझ सकेंगे.
- रिब्जिन्सकी प्रमेय को समझ सकेंगे.

6.2 विपरीत साधन गहनता

हेक्सर–ओहलिन सिद्धान्त की वैधता के लिए यह आवश्यक है कि दो देशों में एक वस्तु के उत्पादन–फलन समान हो एवं कारक–गहनता की प्रतिलोमता हो। अर्थात् दो वस्तुओं के समोत्पाद

वक्र एक–दूसरे को केवल एक ही बार काटे। कारण–गहनता की प्रतिलोमता की स्थिति में, अर्थात् जब दो समोत्पाद वक्र एक दूसरे को एक से अधिक बार काटेंगे, हेक्सर–ओहलिन सिद्धान्त अवैध हो जाता ळें हेक्सर–ओहलिन सिद्धान्त की वैधता के लिए यह आवश्यक है कि दो देशों में एक वस्तु के उत्पादन–फलन समान हो एवं कारक–गहनता की प्रतिलोमता हो। अर्थात् दो वस्तुओं के समोत्पाद वक्र एक–दूसरे को केवल एक ही बार काटे। कारण–गहनता की प्रतिलोमता की स्थिति में, अर्थात् जब दो समोत्पाद वक्र एक दूसरे को एक से अधिक बार काटेंगे, हेक्सर–ओहलिन सिद्धान्त अवैध हो जाता है।

6.3 स्टोपलर-सैमुएलसन प्रमेय

एली हेक्सर के अनुसार स्वतंत्र व्यापार से साधन कीमतों में पूर्ण समानता हो जाती है। दूसरी तरफ ओहलिन का कहना था कि व्यवहार में साधन–कीमतों में पूर्ण समानता सम्भव नहीं है। स्वतंत्र व्यापार से सिर्फ साधन–कीमत समानीकरण की प्रवृति आती है और सिर्फ आंशिक साधन कीमत समानीकरण ही सम्भव है। स्टॉलपर तथा सैम्युल्सन और ऊजावा ने भी बाद में अपने मॉडलों में आंशिक समानीकरण का ही समर्थन किया। सैम्युल्सन ने बाद में और लर्नर ने पूर्ण साधन–कीमत समानीकरण के मॉडल दिए।

आप 2×2×5 मॉडल (अर्थात 2 देश, 2 वस्तुएँ और 2 साधन) के द्वारा देख कि अंतरराश्ट्रीय व्यापार के फलस्परूप किस प्रकार साधन–कीमतों में समानीकरण होता है। साधन कीमत समानीकरण के अनुसार अंतरराश्ट्रीय व्यापार साधनों की अंतरराश्ट्रीय गतिशीलता का प्रतिस्थापन है। दो देशों की बीच वस्तुओं का स्वतंत्र व्यापार तुलनात्मक लागतों की भिन्नता को समाप्त कर देता है और साधनो के सापेक्षिक मूल्यों में समानता स्थापित हो जाती है।

अंतर्राष्ट्रीय व्यापार और कारक कीमतों में सापेक्ष परिवर्तन किस तरह से आय के वितरण को प्रभावित करेंगे, यह हेक्सर ओहलिन सिद्धांत के आधार पर डब्ल्यूएफ स्टॉपलर और पॉल सैमुएलसन द्वारा तैयार किया गया था। इन लेखकों द्वारा विकसित प्रमेय में कहा गया है कि मुक्त अंतर्राष्ट्रीय व्यापार शुरू होने से अपेक्षाकृत प्रचुर कारक को लाभ होगा और उत्पादन के अपेक्षाकृत दुर्लभ कारक को नुकसान होगा।

मान्यताएं :

1. विश्लेषण के लिए विचार किए गए दो व्यापारिक देशों में से एक, दो वस्तुओं-कपड़ा और स्टील का उत्पादन करता है, और केवल दो कारकों-श्रम और पूंजी को नियोजित करता है।

2. दोनों वस्तुओं में से प्रत्येक का उत्पादन कार्य पहली डिग्री का समरूप है। इसका तात्पर्य यह है कि उत्पादन पैमाने पर निरंतर रिटर्न द्वारा नियंत्रित होता है।
3. श्रम और पूंजी दोनों पूर्णतः नियोजित हैं।
4. उत्पादन के दो कारक आपूर्ति में तय होते हैं।
5. पूर्ण प्रतिस्पर्धा की स्थितियाँ उत्पाद और कारक बाज़ार दोनों में मौजूद हैं।
6. दिया गया देश श्रम-प्रचुर और पूंजी-कमी वाला है।
7. कपड़ा श्रम प्रधान वस्तु है जबकि स्टील पूंजी प्रधान वस्तु है।

8. व्यापार की अंतर्राष्ट्रीय शर्तें निश्चित हैं।
9. कोई भी वस्तु दूसरी वस्तु के उत्पादन में इनपुट नहीं है।
10. दोनों कारक दो उद्योगों या क्षेत्रों के बीच गतिशील हैं लेकिन ये दोनों देशों के बीच गतिशील नहीं हैं।
11. परिवहन लागत शुन्य है।

उपरोक्त मान्यताओं को देखते हुए, स्टॉपलर- सैमुएलसन प्रमेय को चित्र में दिखाए गए एजवर्थ बॉक्स के माध्यम

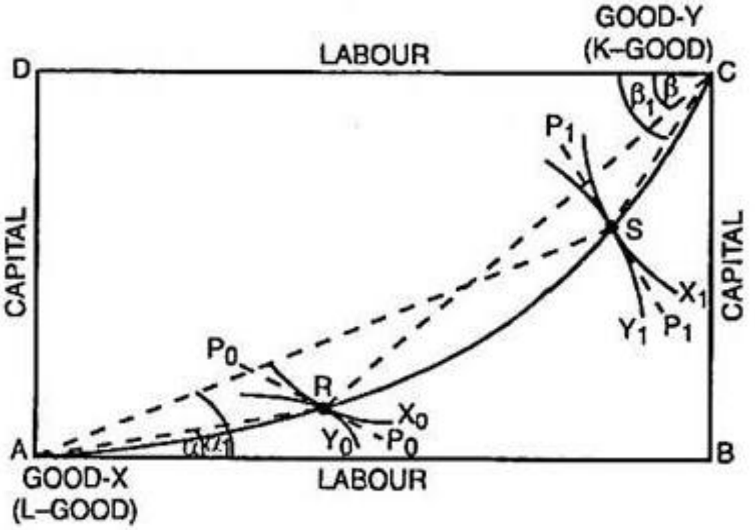

से समझाया जा सकता है।

चित्र में, एजवर्थ बॉक्स दर्शाता है कि दिया गया देश श्रम-प्रचुर और पूंजी-दुर्लभ है। A श्रम-गहन वस्तुओं-कपड़ा का उद्गम है और C पूंजी-गहन वस्तु-इस्पात का उद्गम बिंदु है। एसी नीचे की ओर झुका हुआ गैर-रैखिक अनुबंध वक्र है। व्यापार के अभाव में, उत्पादन आर पर होता है, जो कपड़े के समोत्पद वक्र x_0, स्टील के समोत्पद वक्र Y 0 और कारक मूल्य रेखा $P_0 P_0$ की स्पर्शरेखा का बिंदु है ।

R पर कपड़े में KL अनुपात = रेखा AR का ढलान = Tan α

R पर स्टील में केएल अनुपात = लाइन आरसी का ढलान = टैन β

जब व्यापार शुरू होता है, तो यह श्रम-अधिशेष देश कपड़े (एल-गुड) के उत्पादन का विस्तार करता है और स्टील (के-गुड) का उत्पादन कम कर देता है। उत्पादन अब एस पर होता है, जो कपड़े के उच्च समोत्पद वक्र X 1 , स्टील के निचले समोत्पद वक्र Y 1 और कारक मूल्य रेखा P1P1 की स्पर्शरेखा का बिंदु है ।

S पर कपड़े में केएल अनुपात = लाइन SS का ढलान = टैन α_1

S पर कपड़े में KL अनुपात = रेखा SC का ढलान = Tanβ_1

Tan α_1 > Tan α और Tan β_1 > Tan β के बाद से, इस देश में दोनों वस्तुओं में केएल अनुपात बढ़ जाता है। कारक मूल्य रेखा $P_1 P_1$ मूल कारक मूल्य रेखा $P_0 P_0$ से अधिक तीव्र है । यह दर्शाता है कि श्रम की कीमत पूंजी की कीमत के सापेक्ष बढ़ती है।

जैसे-जैसे निर्यात योग्य वस्तु कपड़े का उत्पादन बढ़ता है, संसाधनों को इस्पात उद्योग से कपड़ा उद्योग की ओर मोड़ दिया जाता है। कपड़े के बढ़ते उत्पादन और इस उद्योग में संसाधनों के विचलन से स्टील की तुलना में कपड़े की कीमत में वृद्धि होगी। इसे चित्र 8.11 के माध्यम से दिखाया जा सकता है।

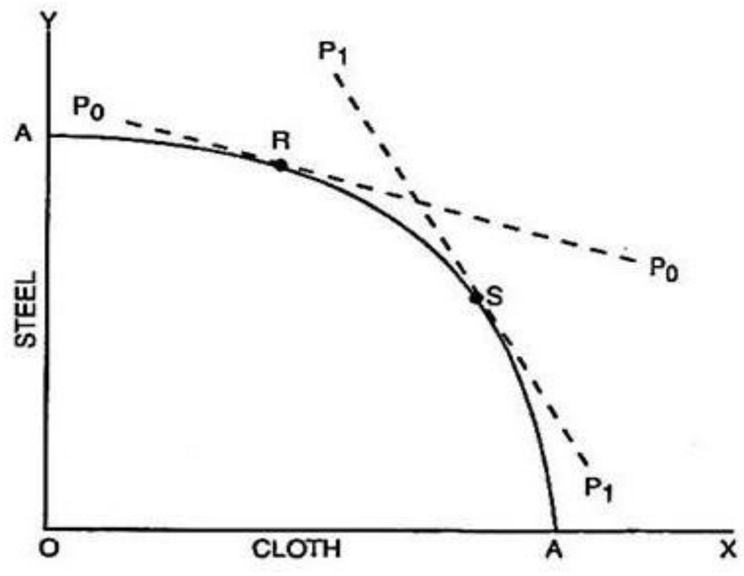

चित्र में क्षैतिज पैमाने पर श्रम वस्त कपड़ा और ऊर्ध्वाधर पैमाने पर पूंजी वस्त स्टील को मापता है। AA उत्पादन संभावना वक्र है। इसकी ढलानें दर्शाती हैं कि यह देश श्रम-प्रचुर और पूंजी-कमी वाला है। व्यापार (अर्थात् निरंकुशता) के अभाव में, उत्पादन R पर होता है। यह बिंदु चित्र में बिंदु R से मेल खाता है। चूंकि

व्यापार शुरू होने के बाद कपड़े का उत्पादन बढ़ाया जाता है, इसलिए उत्पादन S पर होता है। यह बिंदु चित्र में बिंदु S से मेल खाता है। S पर उत्पादन संभावना वक्र का ढलान R पर इसके ढलान से अधिक है। इसे $P_0 P_0$ की तुलना में मूल्य रेखा $P_1 P_1$ की अधिक स्थिरता द्वारा दर्शाया जाता है । यह दर्शाता है कि कपड़े की कीमत बढ़ती है जबकि स्टील की कीमत गिरती है।

दो वस्तुओं की कीमतों में इस तरह के सापेक्ष परिवर्तन इस्पात उद्योग से कपड़ा उद्योग की ओर संसाधनों के अधिक विचलन को बढ़ावा देते हैं। विस्तारित कपड़ा उद्योग अनुबंधित इस्पात उद्योग द्वारा निकाले जा रहे श्रमिकों की तुलना में अधिक श्रमिकों को रोजगार देना चाहता है। इसके परिणामस्वरूप श्रम की कीमत की बोली बढ़ती है। इसी समय, इस्पात उद्योग पूंजी जारी करता है जिसे कपड़ा उद्योग केवल पूंजी की कम कीमत पर ही अवशोषित कर सकता है। श्रम की उच्च कीमत (मजदूरी दर) के साथ-साथ श्रम के बढ़े हुए रोजगार का तात्पर्य यह है कि राष्ट्रीय आय में श्रम की पूर्ण आय हिस्सेदारी बढ़ जाती है। दूसरी ओर, पूंजी के कम रोजगार के साथ-साथ इसकी कीमत (ब्याज दर) में गिरावट से पूंजी का पूर्ण हिस्सा कम हो जाता है। इससे स्टॉपलर-सैमुअलसन प्रमेय का निष्कर्ष निकलता है कि अंतर्राष्ट्रीय व्यापार से प्रचुर कारक को लाभ होगा और दुर्लभ कारक को नुकसान होगा।

स्टॉपलर-सैमुअलसन प्रमेय कुछ महत्वपूर्ण निहितार्थों की ओर ले जाता है .व्यापार उत्पादन के उस कारक के कल्याण में वृद्धि लाता है जिसका उपयोग दुर्लभ कारक की कीमत पर बढ़ते उद्योग में गहनता से किया जाता है। कुल मिलाकर, समुदाय के कल्याण में शुद्ध वृद्धि हुई है। चूँकि व्यापार राष्ट्रीय आय में प्रचुर कारक का हिस्सा बढ़ाता है, आय का वितरण अधिक न्यायसंगत हो जाता है। प्रमेय एक महत्वपूर्ण नीतिगत निहितार्थ की ओर ले जाता है कि विकास और समान आय वितरण के दोहरे उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए कम विकसित देशों में आयात प्रतिस्थापन के बजाय निर्यात प्रोत्साहन की रणनीति अधिक उपयुक्त है।

यह प्रमेय सुझाव देता है कि टैरिफ और अन्य प्रतिबंधात्मक या सुरक्षात्मक उपायों को कम करने से आयात कम हो जाएगा। इससे निर्यात के विस्तार के अवसर भी सीमित हो जायेंगे। यह प्रचुर कारक की वास्तविक आय को दुर्लभ कारक की तुलना में अपेक्षाकृत कम रखेगा। परिणामस्वरूप, आय वितरण असमान होने के अलावा विकास प्रक्रिया धीमी हो जाएगी। केल्विन लैंकेस्टर, लॉयड मेट्ज़लर और जगदीश भगवती जैसे लेखकों द्वारा स्टॉपलर-सैमुअलसन प्रमेय की आलोचना, संशोधन और विस्तार किया गया। मेट्ज़लर ने व्यापार की निश्चित शर्तों की धारणा को खारिज कर दिया और तर्क दिया कि टैरिफ लगाने से, विदेशी देश के एक बेलोचदार प्रस्ताव वक्र को देखते हुए, देश के निर्यात की आंतरिक कीमत में वृद्धि के माध्यम से टैरिफ लगाने वाले देश के व्यापार की शर्तों में सुधार होगा। देश के आयात की आंतरिक कीमत में गिरावट।

ऐसी स्थिति में, आयात-विकल्पों के उत्पादन में गिरावट आएगी और आय निर्यात योग्य वस्तु के उत्पादन में अपेक्षाकृत गहनता से उपयोग किए जाने वाले कारक के पक्ष में वितरित हो जाएगी। केल्विन लैंकेस्टर ने इस विचार को स्वीकार नहीं किया कि सुरक्षा के परिणामस्वरूप आय का असमान वितरण होगा। जगदीश भगवती

ने इस प्रमेय की सार्वभौमिक वैधता को स्वीकार नहीं किया। उन्होंने अधिक सघन रूप से नियोजित कारक की आय पर सुरक्षा के संभावित वैकल्पिक प्रभावों पर चर्चा की। उनके शब्दों में, "...सुरक्षा (निषेधात्मक या अन्यथा) वस्तु के उत्पादन में नियोजित कारक तीव्रता की वास्तविक मजदूरी को बढ़ाएगी, कम करेगी या अपरिवर्तित छोड़ देगी, क्योंकि सुरक्षा उस वस्तु की सापेक्ष कीमत को बढ़ाती है, कम करती है या अपरिवर्तित छोड़ देती है।"

6.5 सारांश

अंतर्राष्ट्रीय व्यापार और कारक कीमतों में सापेक्ष परिवर्तन किस तरह से आय के वितरण को प्रभावित करेंगे, यह हेक्सर ओहलिन सिद्धांत के आधार पर डब्ल्यूएफ स्टॉपलर और पॉल सैमुएलसन द्वारा तैयार किया गया था। इन लेखकों द्वारा विकसित प्रमेय में कहा गया है कि मुक्त अंतर्राष्ट्रीय व्यापार शुरू होने से अपेक्षाकृत प्रचुर कारक को लाभ होगा और उत्पादन के अपेक्षाकृत दुर्लभ कारक को नुकसान होगा।

6.6 शब्दावली

साधन कीमत समानीकरण– दो देशों की बीच वस्तुओं का स्वतंत्र व्यापार तुलनात्मक लागतों की भिन्नता को समाप्त कर देता है और साधनो के सापेक्षिक मूल्यों में समानता स्थापित हो जाती है।

6.7 उपयोगी / सहायक ग्रंथ

1. *International Economics* ,annurM .G .H, .Ltd .Vikas Publishing House Pvt 2001
2. International Economics ,stenBo Soder,1999 ,Macmillan
3. Paul Krugman and Maurice Obstfeld: *Theory and :International Economics ,PolicyDorling Kindersley India Pvt Ltd20 ,09.*
4. Dominik Salvatore, International Economics, John Willy & Sons, Inc., 2008
5. सुदामा सिंह एवं एम०सी० वैश्य ,अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र ,ऑक्सफ़ोर्ड एंड आई०बी०एच० पब्लिकेशन 2007 ,नई दिल्ली ,
6. एम०एल०झिंगन ,अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र ,वृंदा पब्लिकेशन2010 ,दिल्ली ,.

5.9 अभ्यास प्रश्न

1. स्टोप्लर - सैमुएलसन प्रमेय की व्याख्या कीजिये .

2. रिब्जिन्सकी प्रमेय के बारे में विस्तार से विवेचना कीजिये .

खंड 01: अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार सिद्धांत -02

खंड-02 अंतर्राष्ट्रीय व्यापार सिद्धांत के भाग-02 से संबंधित है। यह इकाई 01 में उत्पादन उपभोग तथा व्यापार में सामान्य संतुलन की व्याख्या से शुरू होता है। इकाई 02 में अवधारणाओं जैसे व्यापार अनधिमान वक्र तथा प्रस्ताव पर संक्षिप्त टिप्पणी की गई है। इकाई 03, नए तथा पूरक अंतर्राष्ट्रीय व्यापार सिद्धांतों से संबंधित है जिनमें व्यापार का आधार मांग ढांचा,साधन उपलब्धता, असमान विनिमय तथा मानव पूंजी है। इकाई 04, अंतर उद्योग तथा अन्त्रा उद्योग व्यापर ,इकाई 05तकनीकी प्रगति का अंतर्राष्ट्रीय व्यापार पर प्रभाव तथा इससे संबंधित सिद्धांतों की विवेचना करता है। और इकाई 06 में 'अपूर्ण बाजार तथा वस्तु विभेद का अंतरराष्ट्रीय व्यापार में महत्व' को दर्शाया गया है।

खंड 01: अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार सिद्धांत -02

इकाई-01

उत्पादन,उपभोग व अंतरराष्ट्रीय व्यापार में संतुलन

प्रस्तावना

उत्पादन,उपभोग और व्यापार का सामान्य संतुलन

उत्पादन संभावना वक्र

समान प्रतिफल का नियम या स्थिर अवसर लागत और उत्पादन संभावना वक्र

घटते हुए प्रतिफल का नियम या बढ़ती अवसर लागत और उत्पादन संभावना वक्र

वृद्धिमान पैमाने का प्रतिफल या घटती अवसर लागत और उत्पादन संभावना वक्र

उत्पादक का संतुलन

समोत्पाद वक्र

रेखीय समोत्पाद वक्र

उन्नतोदर समोत्पाद वक्र

प्रतिस्थापन की सीमान्त दर (MRTS)

साधन गहनता

उत्पादक का संतुलन

बाक्स – चित्र

समुदाय अनधिमान वक्र

सारांश

शब्दावली

संदर्भ ग्रंथ सूची

अभ्यास प्रश्न

1.1 प्रस्तावना (Introduction)-

इससे पहले की इकाईयों के अध्ययन के पश्चात् आप अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की प्रकृति, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के अलग सिद्धांत की आवश्यकता, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के प्रतिष्ठित सिद्धांत और आधुनिक सिद्धांत के बारे में बता सकते हैं. आप जान गए होंगे कि ओहलिन, रिकार्डो के तुलनात्मक लागत सिद्धान्त को अधूरा बताते हुए उसकी आलोचना करते हैं और तुलनात्मक लागतों में अन्तर के कारणों की व्याख्या करते हैं।

अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का क्लासिकी सिद्धांत व्यापार करने वाले देशों के विशिष्टीकरण के विश्लेषण के लिए अति सलीकरण करने वाली और प्रतिबंधक मान्यताओं पर बहुत अधिक निर्भर था। यह इस महत्वपूर्ण प्रश्न का भी उत्तर नहीं देता था कि व्यापार में शामिल वस्तुओं की विनिमय की दर ठीक-ठाक क्या है? हैबर्लर, लियोनटिफ, मार्शल, एजवर्थ, लर्नर और मीड आदि ने नव क्लासिकी मॉडल में रेखा गणितीय तकनीकों के प्रयोग के द्वारा व्यापार करने वाले देशों में सामान्य व्यापार संतुलन की व्याख्या करने का प्रयत्न किया। इन रेखा गणितीय तकनीकों में उत्पादन संभावना वक्र, समुदाय अनधिमान वक्र, व्यापार अनाधिमान वक्र, और प्रस्ताव वक्र शामिल है। वर्तमान अध्याय इन विश्लेषणात्मक उपकरणों और अंतरराष्ट्रीय व्यापार में सामान्य संतुलन के अध्ययन का प्रयत्न करता है।

1.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के बाद आप -

- अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के मांग पक्ष व पूर्ति पक्ष के विश्लेषणात्मक यंत्रों को समझ सकेंगे.
- अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के विश्लेषण में उत्पादन संभावना वक्र, समोत्पाद वक्र और समुदाय अनधिमान वक्र के प्रयोग के बारे में जान सकेंगे.
- बाक्स – चित्र और प्रस्ताव वक्र जैसे प्रयुक्त महत्वपूर्ण यंत्रों के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के विश्लेषण में प्रयोग तथा उपयोगिता के बारे में जान सकेंगे.

उत्पादन संभावना वक्र:

किसी देश द्वारा प्रत्येक वस्तु की कितनी मात्रा का उत्पादन किया जायगा यह उसे संसाधनों की उपलब्धता तथा उसकी तकनीकी ज्ञान पर निर्भर करता है। संसाधन सम्पन्नता का अर्थ है देश के पास उपलब्ध कुल संसाधनों की मात्रा। प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों या रिकार्डों के संदर्भ में बात करें तो प्रत्येक देश कितना उत्पादन करेगा यह उसकी श्रम की कुल मात्रा पर निर्भर करेंगा, यदि उत्पादन तकनीकी दी हुई है। अन्य शब्दों में, उत्पादन संभावना वक्र यह बताता है कि कोई देश उपलब्ध प्रौद्योगिकी से अपने उत्पादन के संसाधनों का कुशलतम प्रयोग करके दो वस्तुओं के किन वैकल्पिक संयोगो का उत्पादन कर सकता है। स्पष्ट है कि वक्र के सभी बिन्दुओं पर देश के समस्त संसाधन पूर्ण रोजगार में होंगे।

समान प्रतिफल का नियम या स्थिर अवसर लागत और उत्पादन संभावना वक्र

उत्पादन संभावना वक्र या प्रतिस्थापन वक्र या रूपान्तरण वक्र अवसर लागत पर आधारित है। वस्तु X की अवसर लागत, वस्तु Y की वह मात्रा है जो कि वस्तु X की एक अतिरिक्त इकाई का उत्पादन करने के लिए छोड़ी जाती है। उदाहरणार्थ, यदि 5 इकाई X के उत्पादन के लिए 10 इकाई Y का त्याग करना पड़े तो IX की अवसर लागत 2Y होगी (5X=10Y). अर्थात् X और Y का विनिमय अनुपात होगा 1X=2Y. उत्पादन संभावना वक्र की ढाल एक वस्तु की उस मात्रा को बताती है जो एक देश को किसी दूसरी वस्तु की अतिरिक्त इकाई पाने के लिए छोड़नी पड़ती है।

इसका आकार मुख्यतः उत्पादन के पैमाने के प्रतिफल पर निर्भर करता है। यदि उत्पादन में समान प्रतिफल का नियम क्रियाशील होता है या स्थिर अवसर लागत है तो उत्पादन संभावना वक्र एक सीधी रेखा होगा। जैसा कि चित्र–2.1 में प्रदर्शित है।

इस स्थिति में, वस्तु X तथा Y की सीमान्त प्रतिस्थापन दर $(\Delta Y/\Delta X)$ उत्पादन संभावना वक्र AB पर सदैव स्थिर रहेगी। अर्थात अवसर लागत उत्पादन परिवर्तन के साथ स्थिर रहेगी। उत्पादन संभावना वक्र के सीधी रेखा या स्थिर अवसर लागत का अर्थ है उत्पादन के सभी संसाधन सभी वस्तुओं के उत्पादन में समान रूप से दक्ष है। परन्तु यह एक वास्तविक मान्यता नहीं है।

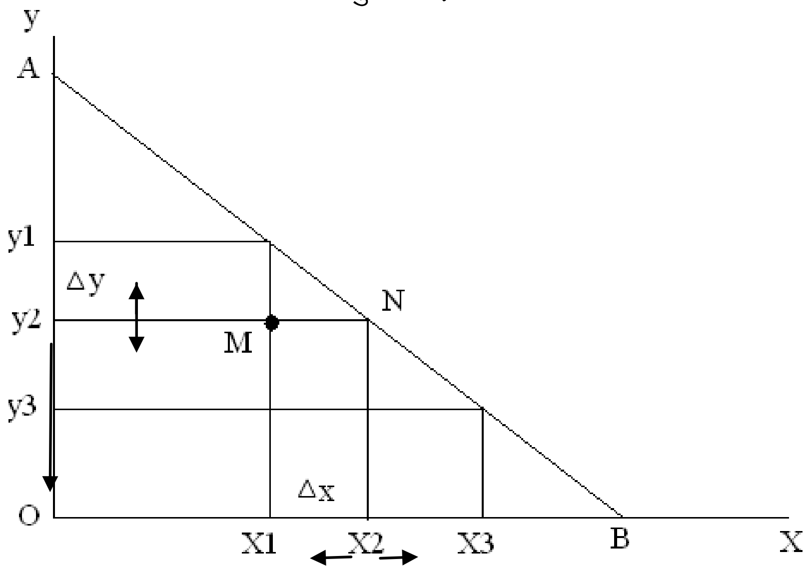

चित्र–2.1

घटते हुए प्रतिफल का नियम या बढ़ती अवसर लागत और उत्पादन संभावना वक्र

यदि उत्पादन में लागत वृद्धि नियम या घटते हुए प्रतिफल का नियम लागू हो तो वस्तु X और Y की सीमान्त प्रतिस्थापन दर $(\Delta Y/\Delta X)$ क्रमशः बढ़ती जाएगी उत्पादन संभावना का आकार मूल बिन्दु के प्रति अवतल या नतोदर होगा जैसा कि चित्र–2.2 से स्पष्ट है। वस्तु X की प्रत्येक अगली इकाई के लिए वस्तु Y की उत्तरोत्तर अधिक इकाईयाँ त्याग करनी पड़ रही है। अर्थात् वस्तु X की, वस्तु Y के पदों में, अवसर लागत लगातार बढ़ रही, है, जैसे–जैसे हम वस्तु X का उत्पादन बढ़ाते है तथा Y का उत्पादन कम करते हैं।

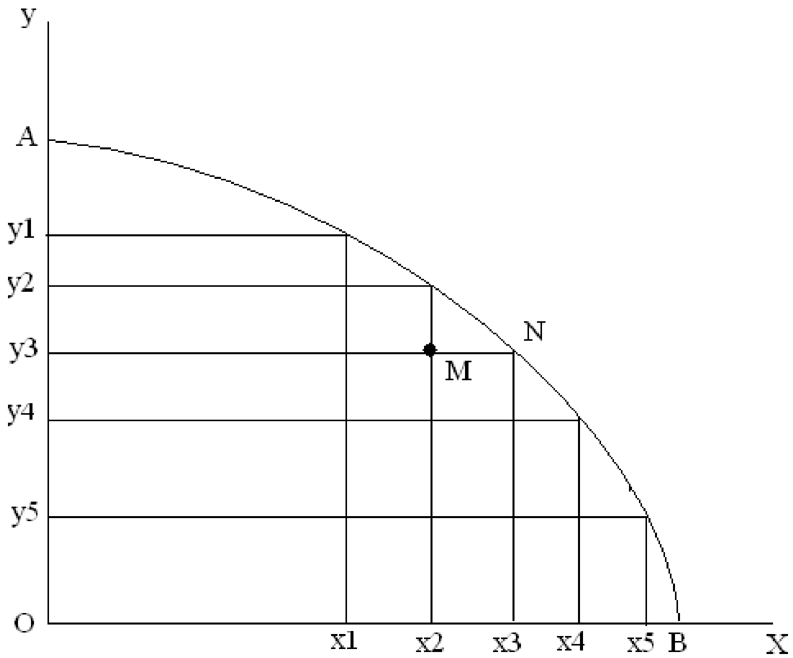

चित्र–2.2

इस स्थिति में उत्पादन संभावना वक्र का आकार या इसकी अवतलता (वक्रता) उत्पादन की स्थितियों पर निर्भर करेगी – कि उत्पादन के साधन आसानी से एक उद्योग से दूसरे वस्तु उद्योग में आ जा सकते हैं। अल्पकाल में, हम यह मान सकते हैं कि अर्थव्यवस्था की ग्राह्यता कम होगी और दी हुई स्थिति से एक वस्तु का उत्पादन बढ़ाने पर उनकी अवसर लागत में तीव्र वृद्धि होगी। जबकि दीर्घकाल में अर्थव्यस्था की ग्राह्यता अधिक होने की संभावना होनी है जिससे एक वस्तु की अवसर लागत कम होगी। जैसा कि चित्र–2.3 में दिखाया गया है। AB अल्पकाल में तथा CD दीर्घकाल में उत्पादन संभावना वक्र के आकार को प्रदर्शित करता है।

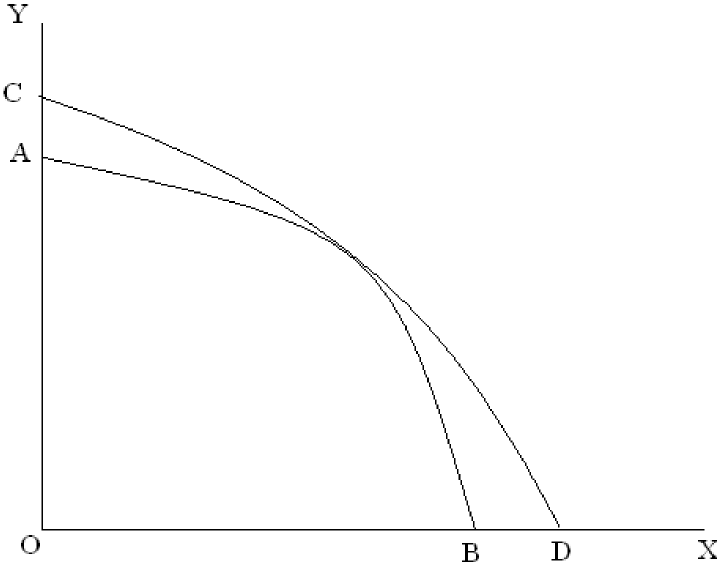

चित्र–2.3

2.3.3 वृद्धिमान पैमाने का प्रतिफल या घटती अवसर लागत और उत्पादन संभावना वक्र

यदि उत्पादन में लागत ह्रास नियम या वृद्धिमान पैमाने का प्रतिफल लागू होता है तो उत्पादन संभावना वक्र मूलबिन्दु के प्रति उन्नतोदर होगा। इस स्थिति मे सीमान्त प्रतिस्थापन की दर $(\Delta Y/\Delta X)$

क्रमशः घटती जाएगी। जैसा कि चित्र 2.3 में प्रदर्शित है। वस्तु– X की प्रत्येक अगली इकाई के लिए वस्तु– Y की उत्तरोत्तर कम इकाईयाँ त्याग करनी पड़ रहीं है। अर्थात् वस्तु X की, Y के पदों में, अवसर लागत लगातार कम हो रही है, जैसे–जैसे हम X का उत्पादन बढ़ाते हैं।

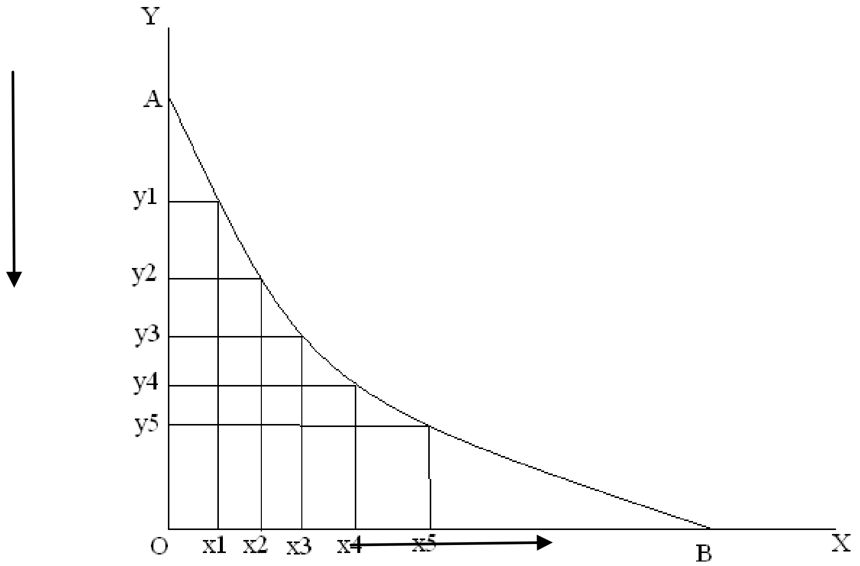

चित्र–2.4

एक बन्द अर्थव्यवस्था में अंतर्राष्ट्रीय व्यापार न होने की स्थिति में, एक देश अपने उत्पादन संभावना वक्र के किसी बिन्दु पर उत्पादन करेगा। यदि वह उत्पादन संभावना वक्र (AB) के किसी भी बिन्दु पर उत्पादन कर रहा है ता इसका अर्थ है उसके समस्त संसाधन पूर्ण रोजगार में है। दिए हुए संसाधनों की स्थिति में स्पष्ट है कि वह अपने उत्पादन संभावना वक्र के किसी बाहर स्थित बिन्दु पर उत्पादन नहीं कर सकता है। वह AB वक्र के अंदर के किसी बिन्दु पर उत्पादन कर सकता है जैसे चित्र–2.1 तथा चित्र–2.2 में बिन्दु M पर। परन्तु यह अनुकूलतम या दक्ष बिन्दु नहीं है क्योंकि वह वस्तु Y की उतनी मात्रा के साथ X की अधिक मात्रा का उत्पादन कर सकता है इसलिए उत्पादक M की अपेक्षा N पर उत्पादन करेगा। AB वक्र के अंदर के किसी बिन्दु पर, जैसे चित्र–2.1 तथा चित्र–2.2 में बिन्दु M पर, समस्त संसाधन पूर्ण रोजगार में नहीं हैं।

उत्पादक का संतुलनः

परिवर्तनशील अवसर लागतों की स्थिति में वस्तुओं की सापेक्षिक कीमतों की विशेष भूमिका होती है। कीमतों के परिवर्तन की स्थिति में उत्पादक अपने लाभ को अधिकतम करने के लिए उत्पादन को पुनः समायोजित करते हैं; जैसा कि चित्र–2.5 में स्पष्ट है।

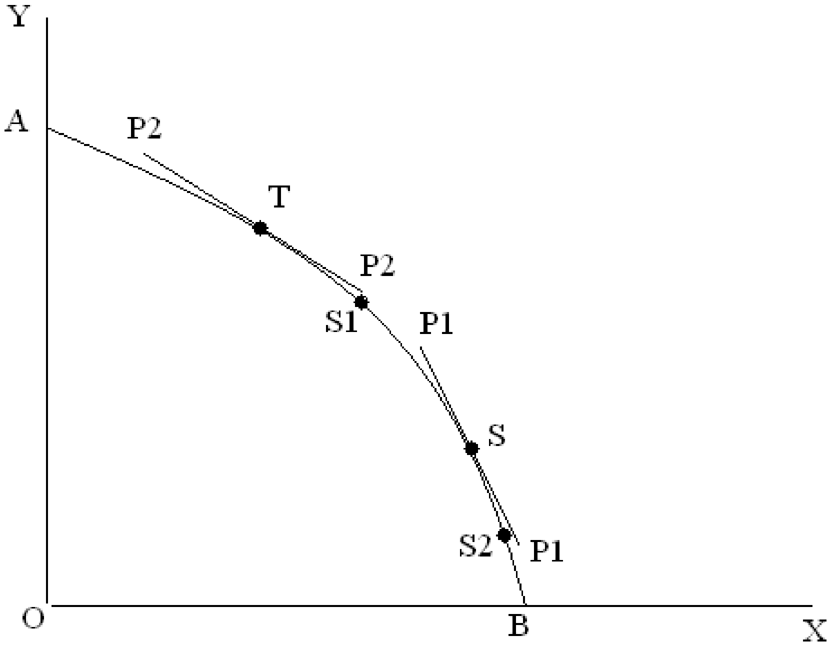

चित्र–2.5

मान लिया एक अर्थव्यवस्था में किसी समय घेरलू सापेक्षिक कीमत रेखा P_1P_1 है। इस स्थिति में उत्पादक S बिन्दु पर संतुलन में होंगे जहाँ कीमत रेखा P_1P_1की ढाल उत्पादन संभावना वक्र बिन्दु की ढाल के बराबर है। यदि उत्पादक दी हुई कीमतों की स्थिति में S_1 बिन्दु पर उत्पादन करेगा तो वस्तु X की लागत उसकी कीमत से कम होगी और वह उत्पादन वढ़ाकर अपने लाभ अधिकतम कर सकता है। जबकि S_2 बिन्दु पर वस्तु X की उत्पादन लागत उसकी कीमत से ज्यादा होगी। सिर्फ S बिन्दु पर सापेक्षिक कीमतें, अवसर लागत के बराबर है और लाभ अधिकतम है।

यदि कीमतें परिवर्तित होकर PP_1 हो जाय तो इसका अर्थ है वस्तु–Y की कीमत X के सापेक्ष बढ़ गयी। ऐसी स्थिति में उत्पादक अपने लाभ को अधिकतम करने के लिए संसाधनों का पुर्नआवंटन करेंगे और नए अनुकूलतम बिन्दु T पर उत्पादन करेंगे, जहाँ कीमत, अवसर लागत के बराबर है।

2.4 समोत्पाद वक्रः

उत्पादन फलन उत्पादन तथा उत्पादन के साधन आगतों के बीच तकनीकी संबंधों को दर्शाता है। उत्पादन फलन एक उद्योग फर्म की तकनीकी को बताता है। उत्पादन फलन में तकनीकी रूप से सभी विधियाँ सम्मिलित होती हैं। यदि सिर्फ दो साधन श्रम (L) तथा पूँजी (L) हो तो उत्पादन–फलन को इस प्रकार प्रदर्शित किया जा सकता है–

$Q= f (L, K)$

जहाँ Q उत्पादन है।

एक समोत्पाद वक्र, उत्पादन के साधनों के सभी संयोगो अर्थात् तकनीकी रूप से दक्ष सभी विधियों को दर्शाता है जिससे कि उत्पादन का एक समान स्तर प्राप्त होता है। समोत्पाद वक्र का आकार साधनों की स्थानापन्नता के अंश पर निर्भर करता है। समोत्पाद वक्र का ढाल उत्पादन के साधनों की स्थानापन्नता के अंश को बताता है।

2.4.1 रेखीय समोत्पाद वक्र

यदि दो साधनों श्रम (L) और पूँजी (K) के बीच पूर्ण स्थानापन्नता हो तो समोत्पाद वक्र एक सीधी रेखा होगी जैसा कि चित्र–2.6 में है। इसे रेखीय समोत्पाद वक्र कहते हैं।

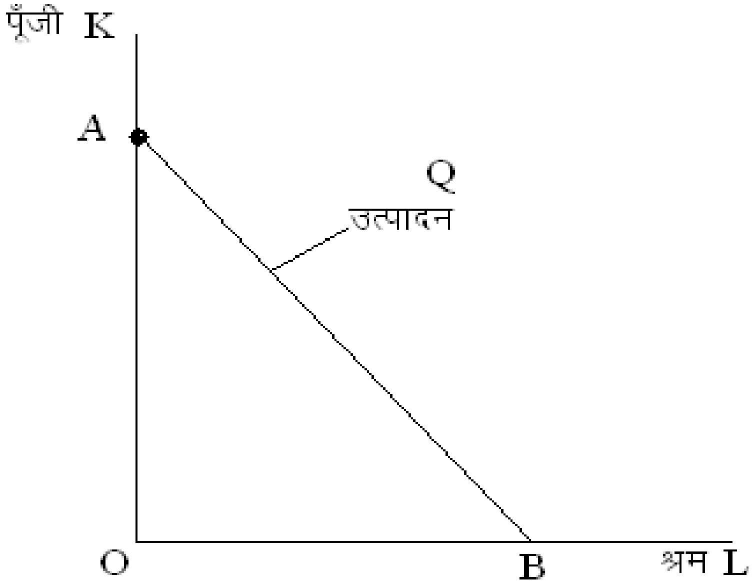

चित्र–2.6

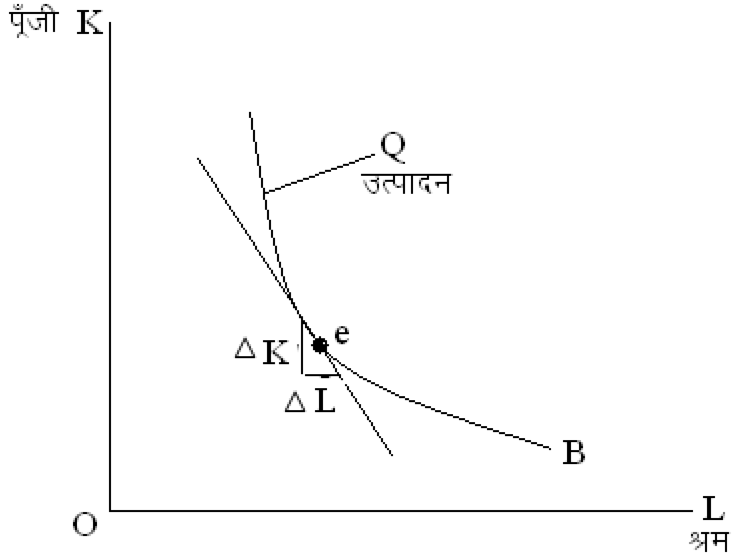

चित्र–2.7

उन्नतोदर समोत्पाद वक्र

यदि उत्पादन के साधनों (श्रम और पूँजी) के बीच एक निश्चित सीमा के भीतर सतत् स्थानापन्नता हो तो समोत्पाद वक्र मूलबिन्दु के प्रति उत्तल होगा जैसा कि चित्र–2.7 में है।

2.4.3 प्रतिस्थापन की सीमान्त दर (MRTS)

समोत्पाद वक्र के ढाल को तकनीकी प्रतिस्थापन की दर या प्रतिस्थापन की सीमान्त दर (MRTS) . कहा जाता है। समोत्पाद वक्र पर हम जैसे–जैसे नीचे की ओर आते हैं समोत्पाद वक्र का ढाल कम होता जाता है जोकि K तथा L के बीच प्रतिस्थापन की बढ़ती अठिनाइयों के बताता है। संकेतात्मक रूप से–

$$MRTS_{L,K,} = -\frac{\Delta K}{\Delta L}$$

साधन गहनता

मूल बिन्दु से समोत्पाद वक्र पर खींची गयी रेखा का ढाल किसी उत्पादन विधि की साधन गहनता को बताती है। इस प्रकार साधन गहनता पूँजी श्रम अनुपात है।

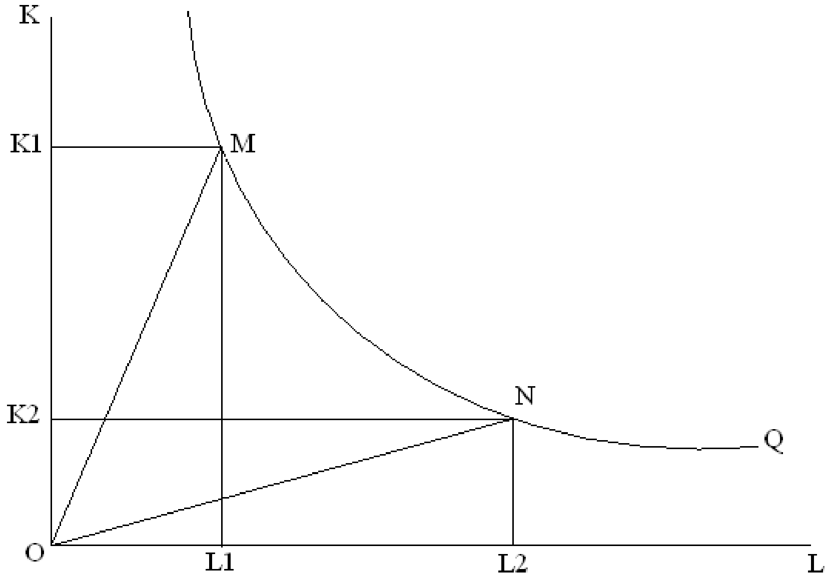

चित्र 2.8

चित्र 2.8 में OM उत्पादन प्रविधि अत्यधिक पूँजी प्रधान तथा ON उत्पादन प्रविधि अत्यधिक श्रम प्रधान है। समोत्पाद वक्र का ऊपर का भाग अत्यधिक पूँजी प्रधान प्रविधियों को तथा नीचे का भाग अधिक श्रम प्रधान प्रविधियों को सम्मिलित करता है।

2.4.5 उत्पादक का संतुलनः

उत्पादन की दी हुई मात्रा, अर्थात् समोत्पाद वक्र के दिए होने पर, उत्पादन के लिए कुशलतम साधन संयोग (अर्थात् उत्पादक का संतुलन) वहाँ होगा जहाँ साधन कीमत रेखा या सम लागत रेखा समोत्पाद वक्र को स्पर्श करती है। चित्र–2.9 मे e बिन्दु पर उत्पादक संतुलन में होगा जहाँ उसका लाभ अधिकतम होगा। बिन्दु e पर साधन कीमत रेखा AB का ढाल (P_L/P_K) समोत्पाद वक्र के ढाल ($\Delta K/\Delta L$) के बराबर है।

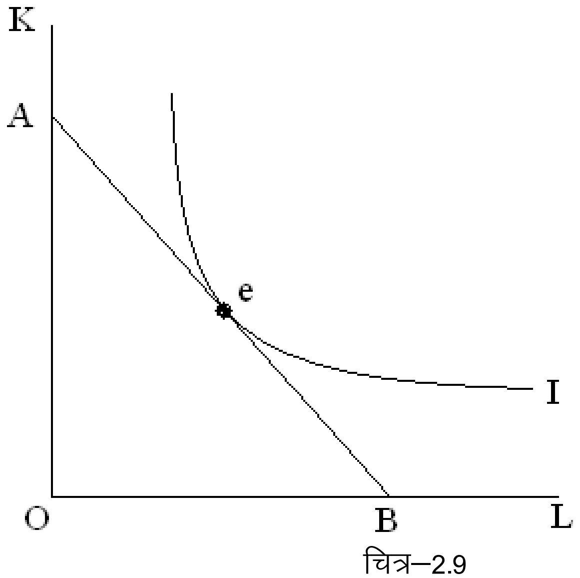

चित्र–2.9

$$\frac{PL}{PK} = \frac{\Delta K}{\Delta L} = MRS_{LK}$$

P_L – श्रम की कीमत

P_K – पूँजी की कीमत

2.4.6 रैखिक समरूप समोत्पाद वक्रः

यदि सभी आगतों को एक निश्चित अनुपात k से बढ़ाया जाय और उत्पादन में भी यदि उसी अनुपात, K, के बराबर वृद्धि होती है, तो उत्पादन फलन रैखिक समरूप होगा।

गणितीय रूप में

$$kQ = f(kL, kK)$$

यदि उत्पादन में पैमाने का स्थिर प्रतिफल क्रियाशील होता है अर्थात् यदि रेखीय समरूप उत्पादन फलन हो तो, जैसे–जैसे दो साधनों को एक ही अनुपात में लगाया जाता है तो दोनों साधनों की सीमान्त उत्पादकताएँ अपरिवर्तित रहती हैं। दूसरे शब्दों में श्रम तथा पूँजी की सीमान्त उत्पादकता इस पर निर्भर करेगी कि श्रम–पूँजी अनुपात क्या है। चित्र 2.10 में मूल बिन्दु से खीचीं गयी रेखा OR_1 एक निश्चित पूँजी–श्रम अनुपात को व्यक्त करती है। अर्थात् बिन्दु A, B तथा C तीनों पर पूँजी तथा श्रम का एक ही अनुपात में संयोग है। अतः तीनों ही बिन्दुओं पर श्रम तथा पूँजी की सीमान्त उत्पादकता एक समान है।

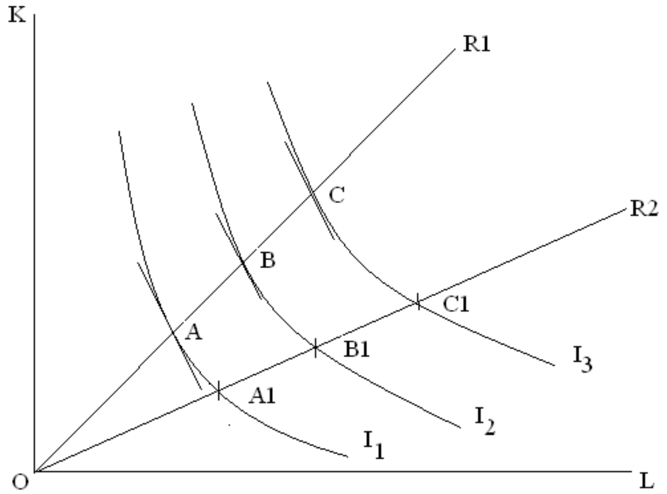

चित्र–2.10

इसी प्रकार OR_2 के साथ A_1, B_1 तथा C_1 बिन्दुओं पर श्रम की सीमान्त उत्पादकता समान है उसी प्रकार इन सभी बिन्दुओं पर पूँजी की सीमान्त उत्पादकता भी समान है। अत O से खीचीं गयी रेखा OR_1 तथा OR_2 के साथ उत्पादन के दो साधन की सीमान्त उत्पादकता समान है।

बाक्स चित्र

बाक्स या संदूक चित्र की सहायता से उत्पादन फलनों तथा उत्पादन के साधनों की कुल मात्रा के बीच अंर्तसंबंध का अध्ययन किया जाता है। इससे दो वस्तुओं के उत्पादन में प्रयुक्त आगतों के कुशलतम संयोंगो को भी प्रदर्शित किया जाता है। बाक्स या संदूक चित्र का प्रयोग सर्वप्रथम एजवर्थ ने किया इसलिए इसे एजवर्थ संदूक चित्र भी कहा जाता है.

चित्र 2.11 में बाक्स चित्र को दिखाया गया है। क्षैतिज अक्ष पर श्रम तथ उर्घ्व अक्ष पर पूँजी की मात्रा ली गयी है। बाक्स चित्र देश में उपलब्ध समस्त संसाधनों की मात्रा को बताता है। OA अर्थव्यवस्था में उपलब्ध समस्त पूँजी तथा OB कुल श्रम की मात्रा को मापता है। विकर्ण OO^1 अर्थव्यवस्था की सम्पूर्ण साधन गहनता को बताता है।

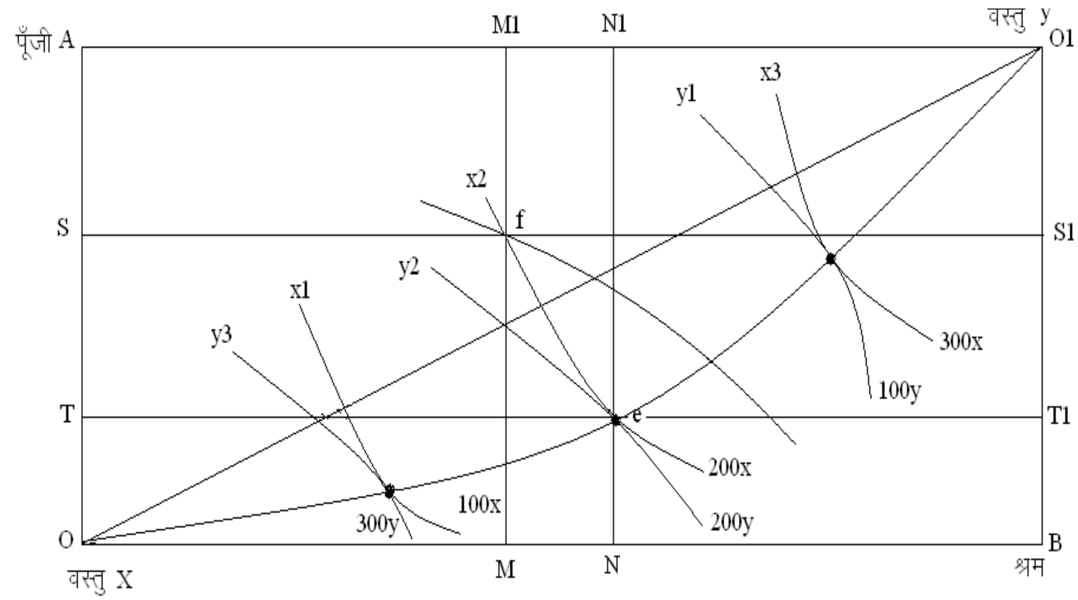

चित्र 2.11

माना दो वस्तुओं X और Y का उत्पादन हो रहा है। X वस्तु के उत्पादन को मूल बिन्दु O से तथा Y वस्तु के उत्पादन को मूल बिन्दु O^1 से मापते है। इस प्रकार O मूल बिन्दु से X के समोत्पाद वक्रों के समूह को तथा O^1 से Y के समोत्पाद वक्रों के समूह को खींचा जा सकता है।

समोत्पाद वक्रों को रेखीय समरूप उत्पादन फलन के अनुरूप खींचा गया है अर्थात् समोत्पाद वक्र X_1 की अपेक्षा X_2 दुगुनी तथा X_3 तिगुनी मात्रा को प्रदर्शित करता है। उसी प्रकार समोत्पाद वक्र Y_1 की अपेक्षा Y_2 दुगुनी तथा Y_3 तिगुनी मात्रा को प्रदर्शित करता है।

बाक्स के अंदर कोई भी बिन्दु दोनों वस्तुओं X तथा Y के एक निश्चित संयोग को व्यक्त करता है। साथ ही यह भी बताता है कि इन वस्तुओं के उत्पादन में साधनों का संयोग क्या है। बिन्दु e पर 200X तथा 200Y का उत्पादन हो रहा है। 200X के उत्पादन के लिए OM श्रम तथा OT पूँजी और 200Y के उत्पादन के लिए बचे हुए श्रम O^1N^1 तथा बची हुई पूँजी O^1T^1 का इस्तेमाल हो रहा है। बिन्दु e पर X वस्तु का समोत्पाद वक्र तथा Y वस्तु का समोत्पाद वक्र स्पर्श कर रहा है। यह उत्पादन के अनुकूलतम दक्ष साधन संयोग को बताता है। इन दोनों ही उत्पादन स्थितियों में सीमान्त उत्पादन स्थिति में सीमान्त उत्पादकताओं के अनुपात समान हैं। अतः दोनों वस्तुओं के उत्पादन में, उत्पादन के साधनों की सापेक्षिक दक्षता समान है तथा संसाधनों का आवंटन अनुकूलतम है।

यदि हम बाक्स में दो समोत्पादक वक्रों के सभी स्पर्श बिन्दुओं को मिलाएँ तो हमें एक वक्र OO^1 प्राप्त होगा, जिसे **'आकुंचित वक्र' (Contract Curve)** कहते हैं। इस वक्र पर स्थित सभी बिन्दु दक्ष बिन्दु है जो कि उत्पादन तथा साधनों के दक्ष संयोगो को प्रदर्शित करते हैं। OO^1 वक्र से इतर कोई भी बिन्दु उससे कम दक्ष होगा और अनुकूलतम संयोग को प्रदर्शित नहीं करेगा। जैसे बिन्दु f दक्ष बिन्दु नहीं है क्योंकि X वस्तु की उसी (X_2समोत्पाद वक्र पर) मात्रा के साथ Y वस्तु की अधिक मात्रा प्राप्त की जा सकती है यदि उत्पादन बिन्दु e पर हो।

आकुंचित वक्र की व्युत्पति सिर्फ उत्पादन की तकनीकी दशाओं के आधार पर की जाती है। वक्र OO^1 पर कौन सा बिन्दु अन्य की उपेक्षा बेहतर होगा यह माँग दशाओं पर निर्भर करेगा।

समुदाय अधिमान वक्रः

यदि हम किसी एक उपभोक्ता के माँग को दिखाते हैं तो इसके लिए तटस्थता या अधिमान वक्र का प्रयोग करते है जो कि उपभोक्ता के माँग–कारकों को दर्शाता है। परन्तु अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार में हम पूरे समुदाय या राष्ट्र के माँग कारकों को दर्शाने के लिए समुदाय अधिमान वक्र का प्रयोग करते है। जिस प्रकार से कुछ निश्चित मान्यताओं के अंतर्गत एक उपभोक्ता के लिए अधिमान वक्र खीचें जाते हैं उसी

प्रकार पूरे समुदाय या राष्ट्र के लिए खींचे जा सकते हैं। परन्तु समुदाय अधिमान वक्र के लिए और कठोर मान्यताओं का सहारा लेना पड़ेगा।

समुदाय अधिमान वक्र दो वस्तुओं के उन विभिन्न संयोगों को दर्शाता है जिससे समुदाय या राष्ट्र के उपभोक्ताओं को समान संतुष्टि मिलती है। यदि हम यह मान लें कि किसी देश में आय–वितरण में परिवर्तन नहीं होता है तो हम एक देश के समुदाय अधिमान मानचित्र को खींच सकते हैं।

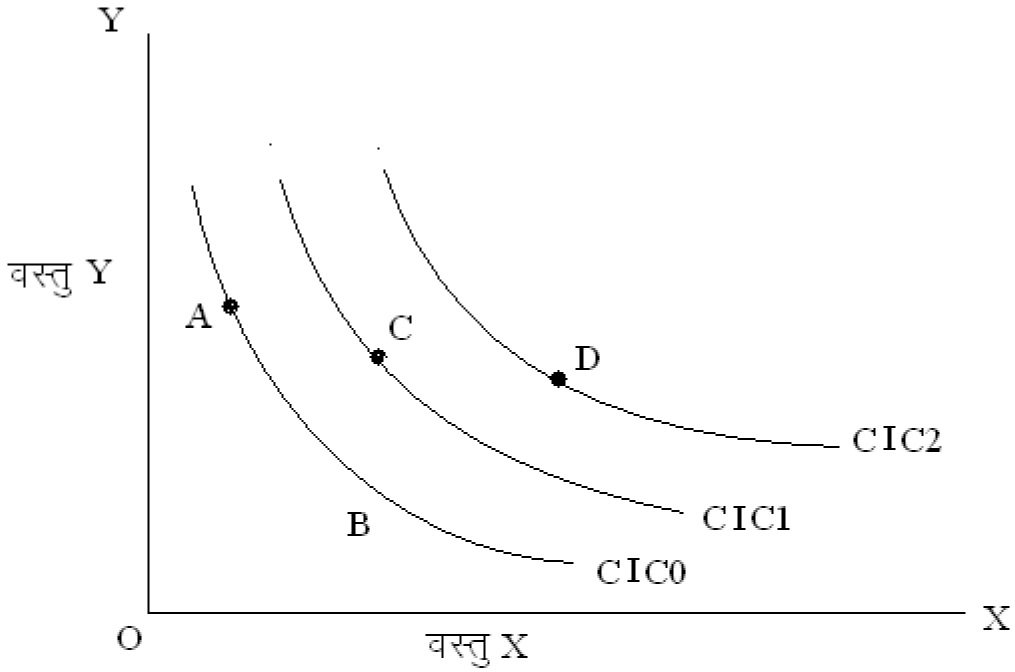

चित्र 2.12

इन अधिमान वक्रों की विशेषताएँ वहीं हैं जो व्यक्ति अधिमान वक्रों की होती है। इनकी चार मुख्य विशेषताएँ हैं–

(1) ये बाएं से दायें नीचे की ओर झुके हुए होते हैं।
(2) ये मूल–बिन्दु के प्रति उन्नतोदर (Convex) होते हैं।
(3) आय–वितरण स्थिर होने की दशा में दो समुदाय अधिमान वक्र एक दूसरे को काट नहीं सकते।
(4) ऊपर स्थिर समुदाय अधिमान वक्र नीचे के वक्र की अपेक्षा संतुष्टि के उच्चतर स्तर को व्यक्त करता है।

चित्र 2.12 में CIC_0, CIC_1, CIC_2 समुदाय अधिमान वक्रों का मानचित्र दिखाया गया है। वक्र CIC_0 पर स्थित बिन्दु A तथा B के संयोग समान संतुष्टि के स्तर को व्यक्त कर रहे हैं जब कि संयोग C, A तथा B की अपेक्षा और संयोग D संयोग C की अपेक्षा अधिक संतुष्टि के स्तर को प्रदर्शित करता है।

यदि विभिन्न समुदाय अधिमान वक्र अलग–अलग आय वितरण को प्रदर्शित करें तो वे एक दूसरे को काट सकते हैं परन्तु यदि एक राष्ट्र के सभी निवासियों की प्राथमिकताएँ तथा रुचियाँ एक जैसी मान ली जाएं और सभी आय स्तरों पर आय वितरण का स्तर समान हो तो समुदाय अधिमान वक्र एक दूसरे को नहीं काटेंगे।

समुदाय अधिमान वक्र के किसी बिन्दु की ढाल उसकी सीमान्त प्रतिस्थापन दर को बताती है। वस्तु X की वस्तु Y के लिए प्रतिस्थापन की सीमान्त दर (MRSxy) Y की वह मात्रा है जिसको वस्तु X की एक अतिरिक्त इकाई प्राप्त करने के लिए उपभोक्ता छोड़नें को तैयार है, जिससे उसकी संतुष्टि का स्तर समान बना रहे।

उपभोक्ता संतुलन

एक देश के समुदाय अधिमान मान चित्र के दिये हुए होने पर देश के उपभोक्ता का संतुलन वहाँ होगा अर्थात उसे अधिकतम संतुष्टि वहाँ प्राप्त होगी जहाँ घरेलू कीमत रेखा किसी समुदाय अधिमान वक्र को स्पर्श करती है अर्थात् जहाँ समुदाय अधिमान वक्र का ढाल, घरेलू कीमत रेखा के ढाल के बराबर है।

चित्र 2.13 में, बिन्दु e पर,

समुदाय आधिमान वक्र का ढाल $MRSxy = \frac{Px}{Py}$ = कीमत रेखा का ढाल

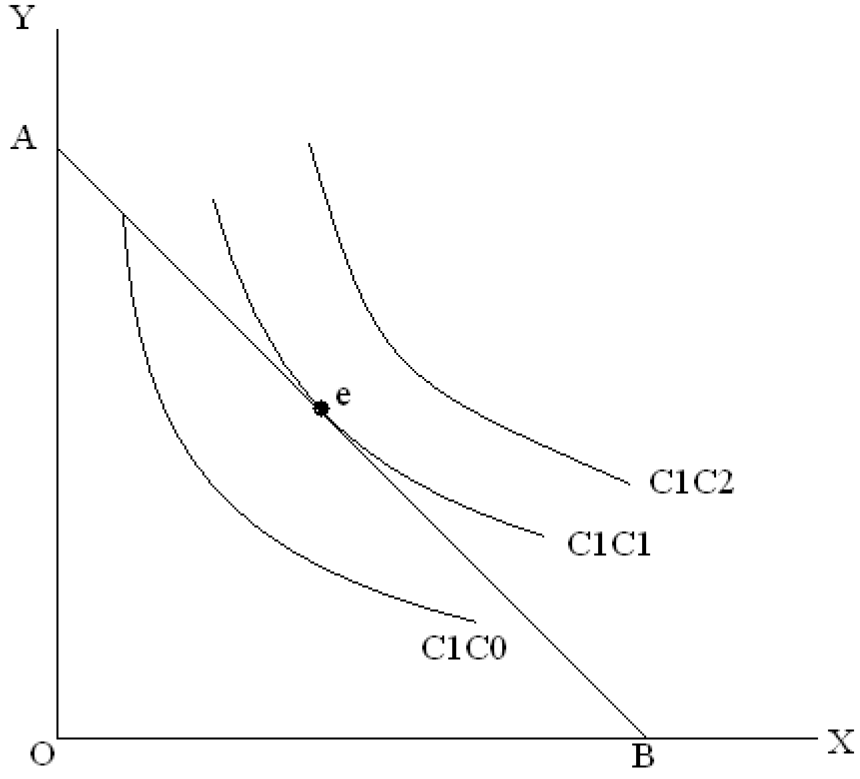

चित्र 2.13

अर्थात् बिन्दु e पर देश के उपभोक्ता संतुलन में है।

वास्तव में समुदाय अधिमान वक्र की धारणा बहुत संतोषजनक नहीं है। किसी समुदाय या राष्ट्र के भीतर संतुष्टि की अन्तर वैयक्तिक तुलना काफी कठिन है। एक वस्तु की समान मात्रा के उपभोग से दो व्यक्तियों को अलग–अलग संतुष्टि प्राप्त हो सकती है। यदि समाज में एक ही उपभोक्ता है तो व्यक्तिगत तथा समुदाय अधिमान वक्र में कोई अन्तर नहीं होगा।

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में समुदाय अधिमान वक्रों का प्रयोग व्यापार से पूर्व तथा व्यापार के पश्चात् राष्ट्र किस प्रकार संतुलन में आते हैं और उनके कल्याण में वृद्धि होती है, इसे स्पष्ट करने के लिए किया जाता है।

1.3 उत्पादन,उपभोग और व्यापार का सामान्य संतुलन-

जे.ई. मीड ने दो व्यापारिक देशों से जुड़े उत्पादन, उपभोग और व्यापार के सामान्य संतुलन को समझाने के लिए उत्पादन संभावना वक्र, सामुदायिक उदासीनता वक्र और प्रस्ताव वक्र जैसे विश्लेषणात्मक उपकरणों को इकट्ठा किया। चित्र का उपयोग दो व्यापारिक देशों A और B से संबंधित सामान्य संतुलन स्थिति को समझाने के लिए किया जाता है।

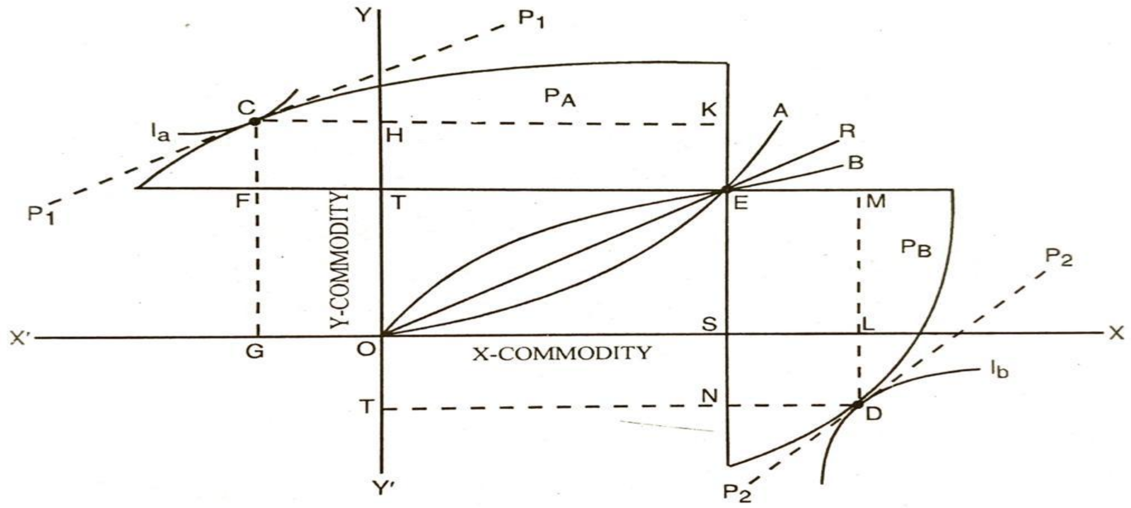

चित्र में, वस्तु X को क्षैतिज पैमाने X'OX पर मापा जाता है और वस्तु Y को ऊर्ध्वाधर पैमाने YOY' पर मापा जाता है। OA और OB क्रमशः दो देशों A और B के प्रस्ताव वक्र हैं। ये वक्र एक दूसरे को E पर काटते हैं। यह संतुलन विनिमय बिंदु है और दो वस्तुओं X और Y के बीच अंतर्राष्ट्रीय मूल्य अनुपात को अंतर्राष्ट्रीय विनिमय अनुपात रेखा OR के ढलान द्वारा मापा जाता है। संतुलन में, देश A, X की OS मात्रा का निर्यात करता है और Y की ES मात्रा का आयात करता है। P A देश A का उत्पादन खंड है और P B देश B का उत्पादन खंड है। दोनों का उद्गम बिंदु E पर है। I a देश A का सामुदायिक उदासीनता वक्र है। घरेलू मूल्य अनुपात रेखा P 1 P 1 देश A, Ia की स्पर्शरेखा है और इस देश में उत्पादन संभावना वक्र C पर है। अतः C इस देश के उपभोग और उत्पादन संतुलन का बिंदु है। X वस्तु का उत्पादन CK है और इसकी खपत CH है ताकि निर्यात के लिए बची हुई X की मात्रा HK (= OS) हो। देश A में Y वस्तु का उत्पादन CF है लेकिन इसकी खपत CG है ताकि Y वस्तु की FG (= ES) मात्रा की मांग आयात के माध्यम से पूरी हो सके। I b देश B का सामुदायिक उदासीनता वक्र है । देश B से संबंधित घरेलू मूल्य अनुपात रेखा P 2 P 2 , I b के स्पर्शरेखा है और D पर इस देश का उत्पादन संभावना वक्र है। यह उत्पादन और उपभोग संतुलन का बिंदु है यह देश। एक्स वस्तु का उत्पादन डीएन है लेकिन इसकी खपत डीटी है ताकि अतिरिक्त मांग एनटी को देश ए से आयात के माध्यम से पूरा किया जा सके। देश B, Y वस्तु की DM मात्रा का उत्पादन करता है, जिसमें से DL मात्रा की खपत घर पर होती है और शेष मात्रा LM निर्यात के लिए होती है। इस प्रकार संतुलन की स्थिति में, देश B का निर्यात Y की मात्रा LM (= ES) है और आयात NT (= OS) है।

चित्र दर्शाता है कि दोनों देश एक साथ उपभोग, उत्पादन और व्यापार संतुलन की स्थिति में हैं। सामान्य संतुलन की स्थिति में, न केवल उनके संबंधित निर्यात और आयात के बीच उचित संतुलन होता है, बल्कि दो वस्तुओं के अंतरराष्ट्रीय मूल्य अनुपात के साथ एक्स और वाई के घरेलू मूल्य अनुपात की समानता भी होती है।

यह इस तथ्य से स्पष्ट है कि P1P1 और P2P2 देशों A और B की घरेलू मूल्य अनुपात रेखाएं या विनिमय अनुपात रेखाएं अंतरराष्ट्रीय विनिमय अनुपात रेखा के समान ही ढलान रखती हैं। उपभोग, उत्पादन

और व्यापार संतुलन के परिणामस्वरूप, दोनों देश अपने-अपने उच्चतम संभव सामुदायिक उदासीनता वक्र के साथ-साथ उच्चतम उत्पादन सीमाओं की ओर बढ़ते हैं। यह दोनों देशों के लिए अंतर्राष्ट्रीय व्यापार से होने वाले लाभ को दर्शाता है।

सारांश

अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र में कुछ व्यष्टि तथा समष्टि सिद्धांतों के विश्लेषणात्मक यंत्रों का अर्थशास्त्रीयों ने विभिन्न सिद्धान्तों में उपयोग किया है. उत्पादन संभावना वक्र यह बताता है कि कोई देश उपलब्ध प्रौद्योगिकी से अपने उत्पादन के संसाधनों का कुशलतम प्रयोग करके दो वस्तुओं के किन वैकल्पिक संयोगो का उत्पादन कर सकता है। स्पष्ट है कि वक्र के सभी बिन्दुओं पर देश के समस्त संसाधन पूर्ण रोजगार में होंगे। यह अवसर लागत पर आधारित है। इसका आकार मुख्यतः उत्पादन के पैमाने के प्रतिफल पर निर्भर करता है।

एक समोत्पाद वक्र, उत्पादन के साधनों के सभी संयोगो अर्थात् तकनीकी रूप से दक्ष सभी विधियों को दर्शाता है जिससे कि उत्पादन का एक समान स्तर प्राप्त होता है। समोत्पाद वक्र का आकार साधनों की स्थानापन्नता के अंश पर निर्भर करता है। समोत्पाद वक्र के ढाल को तकनीकी प्रतिस्थापन की दर या प्रतिस्थापन की सीमान्त दर (MRTS) कहा जाता है। मूल बिन्दु से समोत्पाद वक्र पर खींची गयी रेखा का ढाल किसी उत्पादन विधि की साधन गहनता को बताती है। इस प्रकार साधन गहनता पूँजी श्रम अनुपात है।

बाक्स या संदूक चित्र की सहायता से उत्पादन फलनों तथा उत्पादन के साधनों की कुल मात्रा के बीच अंर्तसंबंध का अध्ययन किया जाता है। इससे दो वस्तुओं के उत्पादन में प्रयुक्त आगतों के कुशलतम संयोंगो को भी प्रदर्शित किया जाता है।

समुदाय अधिमान वक्र दो वस्तुओं के उन विभिन्न संयोगों को दर्शाता है जिससे समुदाय या राष्ट्र के उपभोक्ताओं को समान संतुष्टि मिलती है। अन्र्तराष्ट्रीय व्यापार में समुदाय अधिमान वक्रों का प्रयोग व्यापार से पूर्व तथा व्यापार के पश्चात् राष्ट्र किस प्रकार संतुलन में आते हैं और उनके कल्याण में वृद्धि होती है, इसे स्पष्ट करने के लिए किया जाता है।

प्रस्ताव वक्र के द्वारा हम यह दिखाते हैं कि यदि दो देश आपस में व्यापार करते हैं तो किस प्रकार से माँग तथा पूर्ति की अंर्तक्रिया से साम्य अन्र्तराष्ट्रीय व्यापार शर्त का निर्धारण होता है। इसकी सहायता से व्यापार से होने वाले लाभों को भी दिखाया जा सकता है।

1.4 शब्दावली-

अवसर लागत-_एक वस्तु की अवसर लागत किसी दूसरी वस्तु की वह मात्रा है जिसे पहली वस्तु का उत्पादन करने के लिए छोड़ना पड़ता है।

उत्पादन संभावना वक्र- वह वक्र जो यह बताता है कि एक देश उपलब्ध श्रेष्ठतम तकनीकी व अपने सभी संसाधनों का उपयोग करते हुए वस्तुओं के वैकल्पिक संयोगों के द्वारा जिन्हें वह उत्पादित कर सकता है|

सामुदायिक उदासीनता वक्र- एक सामुदायिक उदासीनता वक्र या सामाजिक उदासीनता वक्र दो वस्तुओं के ऐसे संयोजनों को दर्शाता है जो समान संतुष्टि प्रदान करते हैं|

प्रस्ताव वक्र- प्रस्ताव वक्र एक प्रकार के उत्पाद की मात्रा को दर्शाता है जिसे एक एजेंट दूसरे प्रकार के उत्पाद की प्रत्येक मात्रा के लिए निर्यात करेगा ("प्रस्ताव") जिसे वह आयात करता है|

समोत्पाद वक्रः दो साधनों के विभिन्न संयोगो बिन्दुपथ जिससे कि उत्पादन का एक समान स्तर प्राप्त होता है।

तकनीकी प्रतिस्थापन की दर (MRTS): L की K के लिए तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमांत दर का अर्थ है L की एक इकाई K की कितनी इकाईयों के लिए प्रयोग हो सकती है जिससे की उत्पादन समान रहे.

$$MRTS_{LK} = \Delta K/\Delta L$$

साधन गहनताः साधन गहनता पूँजी श्रम अनुपात को बताती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची-

H. G. Mannur, International Economics, Vikas Publishing House Pvt. Ltd. 2001

Bo Sodersten, International Economics, Macmillan, 1999

Paul Krugman and Maurice Obstfeld: International Economics: Theory and Policy, Dorling Kindersley India Pvt Ltd, 2009.

Charles P Kindleberger, International Economics, Richard D. Irwin Inc., Illinois, 1968

Dominik Salvatore, International Economics, John Willy & Sons, Inc., 2008

सुदामा सिंह एवं एम०सी० वैश्य, अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, ऑक्सफ़ोर्ड एंड आई०बी०एच० पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2007

एम० एल० झिंगन, अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, वृंदा पब्लिकेशन, दिल्ली, 2010.

अभ्यास प्रश्न

1. सामान्य संतुलन कैसे निर्धारित किया जा सकता है?
2. उत्पादन,उपभोग और व्यापार के संबंध में मीड के मत की व्याख्या करें।

<u>इकाई-02</u>

व्यापार तटस्थ रेखाएं तथा प्रस्ताव वक्र

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 व्यापार अनधिमान वक्र

  2.3.1 मान्यतायें

  2.3.2 विशेषताएं

2.4 प्रस्ताव वक्र

  2.4.1 प्रस्ताव वक्र की लोच

<u>2.5 सारांश</u>

<u>2.6 शब्दावली</u>

<u>2.7 संदर्भ ग्रंथ सूची</u>

<u>2.8 अभ्यास प्रश्न</u>

2.1 प्रस्तावना

पिछले अध्यायों में हमने अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के तुलनात्मक लाभ सिद्धांत के विस्तार में यह अध्ययन किया कि वास्तविक विनिमय की दर का संतुलन बिंदु क्या होगा। जिसके लिए अर्थशास्त्रीयों द्वारा कुछ अवधारणाओं जैसे व्यापार की शर्तें, प्रस्ताव वक्र, व्यापार अनधिमान वक्र इत्यादि को प्रस्तुत किया गया। इस अध्याय में प्रस्ताव वक्र, व्यापार अनधिमान वक्र के बारेमें बताया गया है।

2.2 उद्देश्य

इस अध्याय को पढ़ने के बाद आप व्यापार उदासीनता वक्र और प्रस्ताव वक्र की अवधारणा को समझने में सक्षम हो जाएंगे|

2.3 व्यापार अनधिमान वक्र (Trade Indifference Curve)

लिओन्टिफ (Leontief) और लर्नर (Lerner) जैसे लेखकों के द्वारा व्यापार अनधिमान वक्र का उपकरण आरम्भ में बनाया गया था। बाद में जे. ई. मीड (J.E. Meade) ने 1952 में अपनी पुस्तक 'A Geometry of International Trade' में इसे पूरी तरह विकसित किया। यह उपकरण दिखाता है कि यदि आय का एक विशेष स्तर दिया गया है तो एक देश और अन्य देश के अन्तर्राष्ट्रीय विनिमय में व्यापार की किन शर्तों पर एक देश न तो पहले से अधिक न अच्छी और न ही बुरी स्थिति में होगा। व्यापार अनधिमान वक्र ऐसी व्यापार की अवस्थाओं का मार्ग है जिन्हें एक देश समान अधिमान देता है और इसलिए वह उनके सम्बन्ध में उदासीन है। दूसरे शब्दों में, व्यापार अनधिमान वक्र ऐसे आयात-निर्यात संयोगों को प्रकट करता है जिनके बारे में वह देश उदासीन है। यदि उत्पादन सम्भावना वक्र दिया गया है तो एक देश किसी समुदाय अनाधिमान वक्र तक पहुंच सकता है और सन्तुष्टि के किसी स्तर को प्राप्त कर सकता है, यदि निर्यात-आयात संयोग व्यापार अनधिमान वक्र द्वारा निर्धारित किये गये हैं ।

2.3.1 मान्यतायें (Assumption)-

व्यापार अनधिमान वक्रों को निम्नलिखित मान्यताओं के आधार पर बनाया जा सकता है :

1.दो देश A और B दो वस्तुओं— कपड़े और स्टील में व्यापार करते हैं।

2.कपड़ा देश A की निर्यात योग्य और देश B की आयात योग्य वस्तु है और स्टील देश A की आयात योग्य और देश B की निर्यात योग्य वस्तु है।

3. बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता है।

4. बाहरी बचतों (economies) और अबचतों (diseconomies) का अभाव है।

5. प्रत्येक देश में व्यक्तियों की रुचियां और अधिमान एक समान हैं।

6.कीमतों में लोचशीलता है जिससे संसाधनों का पूर्ण रोज़गार हो सकता है।

7. समुदाय अनधिमान वक्रों को व्यक्तिगत अनधिमान वक्रों से निकाला जा सकता है और ये ऋणात्मक ढ़ाल वाले मूल बिन्दु की और उत्तल (convex) वक्र हैं।

8.साधन की प्राप्तियां और तकनीक दिये गये होने पर उत्पादन सम्भावना वक्र को निर्धारित किया जा सकता है।

9. उत्पादन बढ़ती हुई लागतों पर किया जाता है जिससे उत्पादन सम्भावना वक्र ऋणात्मक ढाल वाला मूलबिन्दु की ओर अवतल (concave) वक्र है।

व्यापार अनधिमान वक्र को उत्पादन सम्भावना वक्र और समुदाय अनधिमान वक्र की सहायता से निकाला जा सकता है जिसे चित्र में दिखाया गया है।

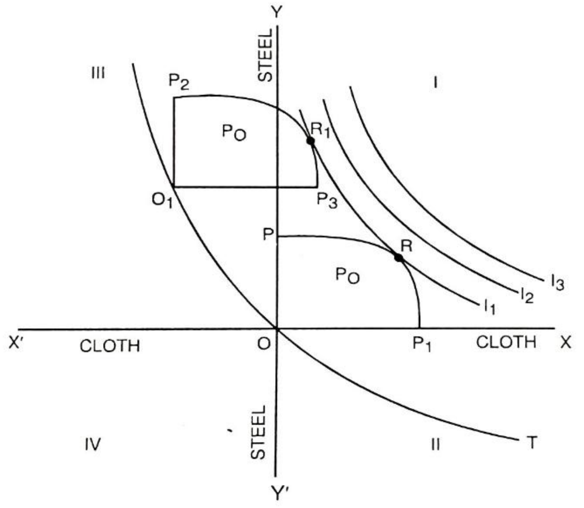

चित्र में समान्तर अक्ष XOX' पर वस्तु कपड़ा मापा गया है। यह देश A की निर्यात योग्य और देश B की आयात योग्य वस्तु है। वस्तु स्टील को उदग्र अक्ष YOY' पर मापा गया है। यह देश B की निर्यात योग्य और देश A की आयात योग्य वस्तु है। i^1, i^2 और i^3 समुदाय अनधिमान वक्र हैं। PP^1उत्पादन सम्भावना वक्र अथवा अवसर लागत वक्र है। POP^1 क्षेत्र उत्पादन खण्ड P^0 को प्रकट करता है। उत्पादन सम्भावना वक्र सबसे ऊंचे सम्भव समुदाय अनधिमान वक्र i^1 को R पर स्पर्श करता है। यह बिन्दु देश A में कपड़े और स्टील की उपभोग और उत्पादित मात्राओं को दर्शाता है। यदि उत्पादन खण्ड P^0 को सरकाया जाता है और इसका मूलबिन्दु O से O^1 तक सरक जाता है तो उत्पादन सम्भावना वक्र समुदाय अनधिमान वक्र i^1 को R^1 पर स्पर्श करता है। अब उपभोग और उत्पादन को बिन्दु R^1 द्वारा दिखाया जा सकता है। मूल बिन्दुओं O और O^1 से व्यापार अनधिमान वक्र T का मार्ग निर्धारित किया जा सकता है। चित्र दर्शाता है कि व्यापार अनधिमान वक्र की ढाल ऋणात्मक है।

ऊपर बताये गये ढंग के आधार पर i^2 और i^3 समुदाय अनधिमान वक्रों के अनुरूप व्यापार अनधिमान वक्र भी बनाये जा सकते हैं। एक ही व्यापार अनधिमान वक्र के साथ, देश विभिन्न व्यापार स्थितियों के सम्बन्ध में उदासीन है। जितना व्यापार अनधिमान वक्र ऊंचे स्तर पर हो देश उतनी ही अच्छी स्थिति में है और विलोमश:। इसी प्रकार देश B का व्यापार अनधिमान चित्र भी बनाया जा सकता है। उस देश के समुदाय : अनधिमान चित्र को उस उद्देश्य के लिए चतुर्थक III में देश A के समुदाय अनधिमान चित्र के विपरीत रखा जा सकता है।

2.3.2 विशेषताएं (Properties) –

एक व्यापार अनधिमान वक्र के मुख्य गुण निम्नलिखित हैं :

1.प्रत्येक समुदाय अनधिमान वक्र के अनुरूप एक व्यापार अनधिमान वक्र है। जितना समुदाय अनधिमान वक्र अधिक ऊंचा हो उतना ही उससे सम्बन्धित व्यापार अनधिमान वक्र भी ऊंचा होता है और विलोमशः ।

2.किसी बिन्दु पर व्यापार अनिधमान वक्र की ढ़ाल उसके अनुरूप समुदाय अनधिमान वक्र और उत्पादन सम्भावना वक्र की ढ़ाल के समान होती है। इसका अर्थ है T की O पर ढ़ाल R पर i^1 के और O^1 पर T की ढ़ाल R^1 पर i^1 की ढाल के समान है (चित्र)।

3. यदि समुदाय अनधिमान वक्र की ढ़ाल ऋणात्मक हो तो उसके अनुरूप व्यापार अनधिमान वक्र की ढ़ाल भी ऋणात्मक होती है।

4. यदि समुदाय अनधिमान वक्र मूल बिन्दु की ओर उत्तल है तो इसके अनुरूप व्यापार अनधिमान वक्र भी मूलबिन्दु की ओर उत्तल होता है।

2.4 प्रस्ताव वक्र (Offer Curve)-

किसी देश के व्यापार संतुलन का विश्लेषण करने के लिए, एक अन्य उपकरण जो कार्यरत है वह है Offer Curve या, अधिक सटीक रूप से, किसी देश का Trade Offer Curve। व्यापार प्रस्ताव वक्र इंगित करता है कि एक देश किसी अन्य वस्तु की निश्चित मात्रा के बदले में किसी विशेष वस्तु की कितनी मात्रा की पेशकश करने को तैयार है। दूसरे शब्दों में, प्रस्ताव वक्र एक देश द्वारा दूसरे देश से उनके उत्पादों की विभिन्न सापेक्ष कीमतों पर मांगी गई किसी विशेष वस्तु की विभिन्न मात्रा को दर्शाता है। यही कारण है कि प्रस्ताव वक्र को पारस्परिक मांग वक्र के रूप में भी जाना जाता है। प्रस्ताव वक्र की अवधारणा मूल रूप से मार्शल और एडगेवर्थ द्वारा दी गई थी।

किसी देश के प्रस्ताव वक्र की व्युत्पत्ति के लिए, यह माना जाता है कि दो देश A और B हैं। कपड़ा A की निर्यात योग्य वस्तु है (और B की आयात योग्य है), जबकि स्टील B की निर्यात योग्य वस्तु है (और A की आयात योग्य है)| यदि कपड़े की कीमत स्टील की कीमत के सापेक्ष बढ़ती रहती है, तो देश A का प्रस्ताव वक्र स्थिर लागत स्थितियों के तहत चित्र 4.5 में दिखाए अनुसार प्राप्त किया जा सकता है।

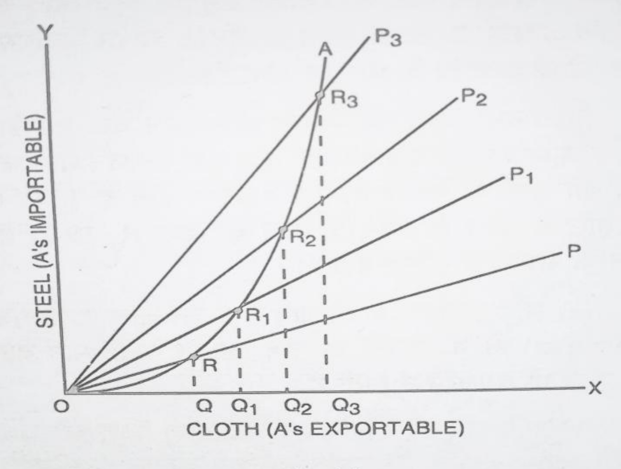

Fig. 4.5

चित्र 4.5 में, कपड़ा (A की निर्यात योग्य) क्षैतिज पैमाने पर मापा जाता है और स्टील (A की आयात योग्य) ऊर्ध्वाधर पैमाने पर मापा जाता है। मूलतः दो वस्तुओं का मूल्य अनुपात रेखा OP के ढलान से दर्शाया जाता है। यदि कपड़े की कीमत स्टील की कीमत के सापेक्ष अधिक बढ़ जाती है, तो मूल्य-अनुपात रेखा या अंतर्राष्ट्रीय विनिमय अनुपात रेखा का ढलान अधिक और तीव्र हो जाता है जैसा कि OP1 , OP2 और OP3 रेखाओं द्वारा दिखाया गया है । जैसे-जैसे कपड़े की कीमत स्टील की तुलना में अधिक बढ़ती है, देश B में कपड़े की मांग घटती दर से बढ़ती है।

दूसरी ओर, देश A बढ़ती दर पर अधिक मात्रा में स्टील को अवशोषित कर सकता है। यदि R, R1 , R2 और R3 विनिमय के बिंदु हैं, तो A और B के बीच आदान-प्रदान की गई मात्राएँ कपड़े की OQ और R पर स्टील की RQ, कपड़े की OQ 1 और R1 पर स्टील की R1 Q1 हैं । कपड़े का OQ 2 और R2 पर कपड़े का R2 Q2 और कपड़े का OQ3 और R3 पर स्टील का R3 Q3 । देश द्वारा प्रस्तावित कपड़े की अतिरिक्त मात्रा, स्टील की अतिरिक्त मात्रा के बदले में कमी। R, R1 , R2 और R3

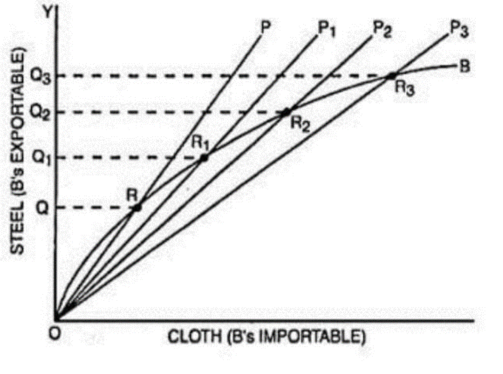

Fig. 4.6

को जोड़कर , देश A के प्रस्ताव वक्र ओए को निर्धारित करना संभव है। यह बढ़ती दर पर सकारात्मक रूप से ढलान करता है।

देश B के प्रस्ताव वक्र की व्युत्पत्ति चित्र 4.6 के माध्यम से दिखाई गई है। चित्र 4.6 में, कपड़े (B का आयात योग्य) को क्षैतिज पैमाने पर और स्टील (B के निर्यात योग्य) को ऊर्ध्वाधर पैमाने पर मापा जाता है। जैसे-जैसे स्टील की कीमत कपड़े की कीमत के सापेक्ष बढ़ती है, मूल्य अनुपात रेखाओं की स्थिरता कम हो जाती है। OP, OP1 , OP2 और OP3 मूल्य-अनुपात रेखाएं हैं। चूंकि स्टील की कीमत अधिक दर से बढ़ रही है, देश A में इसकी मांग घटती दर से बढ़ सकती है।

देश B द्वारा पेश की गई स्टील की अतिरिक्त मात्रा A द्वारा पेश किए गए कपड़े की निश्चित मात्रा को देखते हुए कम और कम होती जाती है। यदि मूल्य अनुपात रेखाओं OP, OP1, OP2 और R, R1 , R2 और R3 बिंदुओं पर विनिमय होता है। OP3 , कपड़े की मात्रा RQ, R1 Q1 , R 2 Q2 और R3 Q3 के लिए क्रमशः स्टील की OQ, OQ1 , OQ2 और OQ3 की पेशकश की जाती है । बिंदु R, R 1 , R 2 और R 3 को मिलाकर देश B का प्रस्ताव वक्र OB निर्धारित किया जा सकता है। यह प्रस्ताव वक्र भी देश बी के दृष्टिकोण से बढ़ती दर पर लेकिन देश ए के बिंदु से घटती दर पर सकारात्मक रूप से ढलान पर है।

2.4.1 प्रस्ताव वक्र की लोच-

प्रस्ताव वक्र की लोच की अवधारणा एचजी जॉनसन द्वारा गढ़ी गई थी। प्रस्ताव वक्र की लोच को आयात में आनुपातिक परिवर्तन और निर्यात में आनुपातिक परिवर्तन के अनुपात से मापा जाता है। दो व्यापारिक देशों के ऑफर वक्र की लोच को उनके संबंधित ऑफर वक्र पर विशिष्ट बिंदुओं पर मापा जा सकता है जैसा कि चित्र में दिखाया गया है। 4.7 और 4.8.

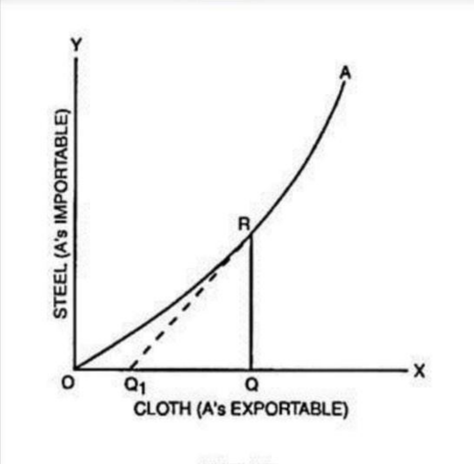

Fig. 4.7

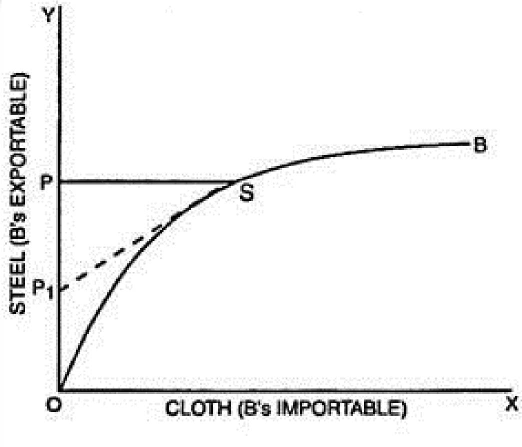

Fig. 4.8

R = (δM/δX) पर OA की लोच।

X/M = (RQ/RQ1) × (OQ/RQ) = OQ/OQ1 > 1

बिंदु आर के दाईं ओर, प्रस्ताव वक्र अधिक से अधिक लोचदार हो जाता है। बिंदु R के बाईं ओर विनिमय होने पर लोच कम हो जाती है। चित्र 4.8 में, OB देश B का प्रस्ताव वक्र है।

S = (δM/δX) पर OB की लोच।

$X/M = (PS/PP1) \times OP/PS = OP/OP1 > 1$

इस वक्र के साथ लोच गुणांक, बिंदु S के बाईं ओर घटता है और बिंदु S के दाईं ओर बढ़ता है।

2.5 सारांश-

व्यापार अनधिमान वक्र ऐसी व्यापार की अवस्थाओं का मार्ग है जिन्हें एक देश समान अधिमान देता है और इसलिए वह उनके सम्बन्ध में उदासीन है। दूसरे शब्दों में, व्यापार अनधिमान वक्र ऐसे आयात-निर्यात संयोगों को प्रकट करता है जिनके बारे में वह देश उदासीन है।

एक देश का प्रस्ताव वक्र एक ओर विभिन्न अर्न्तराष्ट्रीय कीमतों (व्यापार - शर्त) पर आयातित वस्तु के बदले देश द्वारा निर्यात - वस्तु की प्रस्तातिव मात्रा को व्यक्त करता है और दूसरी ओर यह विभिन्न अर्न्तराष्ट्रीय कीमतों पर उस देश की विदेशी वस्तु (आयात) की मांग को प्रदर्शित करता है। इस प्रकार प्रस्ताव वक्र में मांग और पूर्ति दोनों के ही तत्व विद्यामान होते हैं। इसलिए इसे प्रस्ताव वक्र के साथ-साथ प्रतिपूरक मांग वक्र भी कहा जाता है।

2.7 संदर्भ ग्रंथ सूची-

H. G. Mannur, International Economics, Vikas Publishing House Pvt. Ltd. 2001

Bo Sodersten, International Economics, Macmillan, 1999

Paul Krugman and Maurice Obstfeld: International Economics: Theory and Policy, Dorling Kindersley India Pvt Ltd, 2009.

Dominik Salvatore, International Economics, John Willy & Sons, Inc., 2008

सुदामा सिंह एवं एम०सी० वैश्य, अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, ऑक्सफ़ोर्ड एंड आई०बी०एच० पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2007

एम० एल० झिंगन, अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, वृंदा पब्लिकेशन, दिल्ली, 2010.

2.8 अभ्यास प्रश्न

1. व्यापार अनधिमान वक्र से आप क्या समझते हैं।
2. प्रस्ताव वक्र पर टिप्पणी कीजिए।
3. किसी देश के लिए प्रस्ताव वक्र का सचित्र वर्णन कीजिए।

इकाई- 03

अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के कुछ नवीन सिद्धांत (Some New Theories of International Trade)

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 लिंडर का मांग सिद्धांत और व्यापार ढंग
3.3.1 मान्यताएं
3.3.2 सिद्धांत की व्याख्या
3.3.3 आलोचना
3.4 कैनन का मानव पूंजी सिद्धांत
3.4.1 मान्यताएं
3.4.2 सिद्धांत की व्याख्या
3.5 क्रेविस का उपलब्धता सिद्धांत
3.5.1 सिद्धांत की व्याख्या
3.5.2 आलोचना
3.6 इमैनुएल का असमान विनिमय सिद्धांत
3.6.1 इमैनुएल के सिद्धांत की मान्यताएँ
3.6.2 सिद्धांत की व्याख्या
3.6.3 इमैनुएल के सिद्धांत की आलोचना
3.7 सारांश
3.8 शब्दावली
3.9 संदर्भ ग्रंथ सूची
3.10 अभ्यास प्रश्न

3.1 प्रस्तावना (Introduction)-

हेक्शर-ओलिन सिद्धांत के अनुसार व्यापार का ढंग मूल रूप में साधन अनुपातों और साधन गहनताओं से निर्धारित होता है। परंतु अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के काफी महत्वपूर्ण भाग की मूल H-O सिद्धांत द्वारा व्याख्या नहीं की जा सकती। इन अंतरालों को दूर करने के लिए कई नए सिद्धांत अथवा उपकल्पनाएं प्रस्तुत की गई हैं। कुछ लेखक उन्हें वैकल्पिक व्यापार सिद्धांतों के रूप में देखते हैं परंतु यह व्याख्याएं क्योंकि संपूर्ण स्वरूप की नहीं है इसलिए इन्हें व्यापार के वैकल्पिक मॉडल मानने के बजाय H-O मॉडल के पूरक के रूप में मानना अधिक सही कहा जा सकता है। इनमें से कुछ पूरक व्यापार सिद्धांतों की इस अध्याय में विवेचना की गई है।

3.2 उद्देश्य (Learning Goals)-

प्रस्तुत अध्याय पढ़ने के पश्चात आप हेक्सर-ओलिन सिद्धांत के पूरक सिद्धांतों को अच्छी तरह से समझ सकेंगे।

3.3 लिंडर का मांग सिद्धांत और व्यापार ढंग (Linder's Theory of Demand and Trade Pattern)-

स्वीडन के अर्थशास्त्री एस.बी. लिंडर (S.B.Linder) ने 1961 में मांग के ढांचे के आधार पर अंतरराष्ट्रीय व्यापार की व्याख्या करने का प्रयत्न किया। उनके इस परिकल्पना को लिओनटीफ विरोधाभास के वैकल्पिक सिद्धांत के रूप में देखा जा सकता है। लिंडर के अनुसार एक विनिर्मित उत्पाद का सामान्य रूप से निर्यात नहीं किया जाएगा जब तक की घरेलू देश में उसके लिए मांग ना हो। वास्तव में, उत्पादों को मूल रूप से इसीलिए उत्पादित किया जाता है ताकि घरेलू आवश्यकताओं को पूरा किया जा सके। केवल बाद में उत्पाद को अन्य देशों को निर्यात किया जाता है। इस सिद्धांत में विचार प्रकट किया गया है कि आय का सामान स्तर रखने वाले देशों में मांग का ढांचा और अन्य देशों के साथ व्यापार की प्रवृत्ति एक जैसी होती है।

3.3.1 मान्यताएं (Assumption)-

यह सिद्धांत निम्नलिखित मान्यताओं पर आधारित है:

1.एक देश का संभावित व्यापार उन वस्तुओं पर सीमित होता है जिनके लिए घरेलू मांग होती है।

2. दो व्यापार करने वाले देश ऐसी वस्तुओं के व्यापार में लगे होते हैं जिनके लिए मांग उनके घरेलू बाजारों में विद्यमान होती है।

3.वस्तुओं की घरेलू मांग प्रति व्यक्ति आय के स्तर द्वारा निर्धारित होती है।

4.विस्तृत रूप में दो देशों में संभावित व्यापार आए के समान स्तरों से प्रभावित होता है।

लिंडर के अनुसार, प्राथमिक वस्तुओं में व्यापार आवश्यक रूप में प्राकृतिक संसाधनों की सापेक्ष बहुलता पर निर्भर होता है। विनिर्मित वस्तुओं में व्यापार, दूसरी ओर, पैमाने की बचतों, प्रबंधकीय कुशलताओं, पूंजी और कुशल श्रम की उपलब्धि, तकनीकी श्रेष्ठता इत्यादि तत्वों के समूह से निर्धारित होता है। लिंडर ने दो देशों के मध्य व्यापार की बनावट की चर्चा नहीं की। उनके सिद्धांत का संबंध विशेष रूप से उन देशों में विनिर्मित वस्तुओं की मात्रा के साथ है|

3.3.2 सिद्धांत की व्याख्या (Explanation) –

लिंडर के सिद्धांत के विश्लेषणात्मक ढांचे की व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है। निर्यात के रूप में विनिर्माणों में व्यापार के लिए पूर्व शर्त 'घरेलू मांग' का विद्यमान होना है। यह अनेक कारणे से हो सकती है - (अ) विदेशी व्यापार केवल घरेलू व्यापार का विस्तार है।(ब) वर्तमान उद्योगों पर नव प्रवर्तन कर रहे केंद्र है, तथा घरेलू बाजार ऐसे नहीं है, इसलिए उत्पादक केवल विदेशी बाजार पर निर्भर नहीं रहना चाहते हैं। इससे यह बारे में निष्कर्ष प्राप्त होता है कि घरेलू मांग ढांचा संभावित निर्यात वस्तुओं के विस्तार को निर्धारित करता है। एक देश केवल वही वस्तुओं का निर्यात करेगा जिसके लिए इसकी बड़ी और सक्रिय घरेलू मांग है।जब केवल घरेलू बाजार के लिए उत्पादन अधिक होता है तो फर्म पैमाने की किफायते उपलब्ध करा सकती है और लागते कम कर विदेशी बाजार में प्रवेश कर सकती है।

लिंडर के अनुसार,एक देश अपनी अधिक वस्तुओं को उन देशों को निर्यात करेगा जिनके आय स्तर और मांग ढांचे निर्यातक देशों के समान हैं। लिंडर इसे 'अधिमान समानता' कहता है। यह अधिमान समानता

अतिव्यप्ति मांगो को ओर ले जाती है। लिंडर यह तर्क देता है एक दिए हुए देश में अन्य बाते समान रहने पर,उच्च आय वर्गों में उपभोक्ता उच्च गुणवत्ता की वस्तुओं को मांग करते हैं और जो निम्न आय वर्ग में होते है जहा औसतन निम्न-आय देश निम्न गुणवता की वस्तुओं की मांग करने की प्रवृत्ति रखते है और उच्च आय देश उच्च गुणवत्ता वस्तुओं की।इसका यह अर्थ नही है की उच्च- आय देश निम्न गुणवत्ता वस्तुओं की मांग नही करते है और निम्न-आय देश उच्च गुणवत्ता वस्तुओं की मांग नही करते।वास्तव में,आय वितरण किसी भी समाज में समान नहीं है। इसी कारण विभिन्न देशों में अधिमान समानता होती है,और मांग ढांचे अतिव्यप्त होते है। इसी कारण से इन देशों के बीच व्यापार संबंध पाए जाते है,और प्रत्येक देश अपनी घरेलू मांग को पूरा करने के पश्चात विभिन्न प्रकार की विनिर्मित वस्तुओं को उत्पादित और निर्यात करता है।

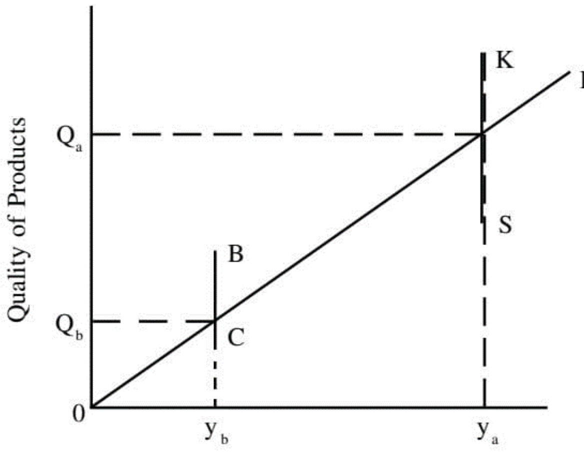

लिंडर के अधिमान समानता अथवा अतिव्याप्ति मांग सिद्धांत को निम्न चित्र द्वारा समझाया गया है।

हम दो देश अमेरिका (A) और ब्रिटेन (B) लेते है।प्रति व्यक्ति आय क्षैतीज अक्ष पर और गुणवत्ता अनुलंब लक्ष पर ली गई है। किरण QR इस संबंध को दर्शाती है।उच्च प्रति व्यक्ति आय OTa वाला देश A उच्च गुणवत्ता वाली वस्तुएं OQa मांगता है,जबकि निम्न प्रति व्यक्ति OQb वाला देश B,निम्न गुणवत्ता वाली वस्तुएं OQb मांगता है।यदि प्रत्येक देश में सभी व्यक्तियों के बीच आय का समान वितरण हो तो दोनो देशों के बीच कोई व्यापार नही होगा क्योंकि प्रत्येक देश के निवासियों द्वारा मांगी गई केवल एक स्टैंडर्ड गुणवत्ता वाली वस्तु को उत्पादित करेगा।

वास्तव में यहां पर आय का वितरण असमान है।इसलिए प्रत्येक देश में गुणवत्ता वाली दोनो वस्तुएं मांगी जाती है। मान लीजिए की देश A में आय- वितरण से KS रेंज में दोनो वस्तुओं के लिए मांग की जाती है,जबकि देश B में BC रेंज है।दोनो देशों में अतिव्याप्त मांग की रेंज BC=KS है। क्योंकि मांगो की अतिव्यप्ति है,इसीलिए दोनो देशों के बीच व्यापार संभव है।उच्च प्रति व्यक्ति आय वाला देश ए,उच्च गुणवत्ता वाली वस्तु OQa को निम्न प्रति व्यक्ति आय वाले देश B को उसके उच्च आय वर्गों में उपभोक्ताओं को मांग पूरी करने के लिए निर्यात करेगा।दूसरी ओर निम्न प्रति व्यक्ति आय देश B,निम्न गुणवता वाली वस्तु OQb उच्च प्रति व्यक्ति आय वाले देश A को उसके निम्न प्रति व्यक्ति आय देश B,निम्न गुणवता वाली वस्तु OQb उच्च प्रति व्यक्ति आय वाले देश A को उसके निम्न आय वर्गो में उपभोक्ताओं की मांग पूरी करने के लिए निर्यात करेगा। एक व्यापार करने वाले देश के संभावित निर्यात रेंज की वस्तु सरंचना में जितनी अधिक अतिव्यप्ति होगी,उतनी ही अधिक व्यापार की मात्रा होगी।जितनी अधिक व्यापार की संभावित मात्रा होगी,उतना ही व्यापार करने वाले देश में आय स्तर ऊंचा होगा और जितनी अधिक व्यापार की संभावित मात्रा होगी,उतनी ही अधिक व्यापार की वास्तविक मात्रा होगी।

3.3.3 आलोचना(Criticism)

लिंडर का सिद्धांत हेक्शर-ओलिन के सिद्धांत पर सुधार है। हेक्शर-ओलिन सिद्धांत इस परिकल्पना पर आधारित है की साधन संपन्नताओ में भेदों से दो देशों की बीच व्यापार पाया जाता है। लिंडर का सिद्धांत इस बात पर बल देता है की व्यापार तब होता जब साधन संपन्नताएं समान होती है। लिंडर का सिद्धांत आधुनिक किस्म का है जो विकसित देशों के बीच विनिर्माणों में व्यापार की बड़ी मात्रा के कारणों की व्याख्या करता है।परंतु इसकी कुछ कमियां भी है। जो इस प्रकार है:

1. यह सिद्धांत "गुणवत्ता" शब्द के अर्थ को स्पष्ट नही करता और गुणवता को कैसे मापा जाता ,इसकी व्याख्या नही करता ।
2. यह सिद्धांत इस बात की भी व्याख्या नही करता की गुणवत्ता केवल प्रति व्यक्ति आय के साथ ही क्यों परिवर्तित होती है और व्यापार को प्रभावित करती है।
3. लिंडर का सिद्धांत यह व्याख्या नही करता है की किस कारण एक देश अपनी वस्तु जो वह निर्यात करता है,उसके लिए वह घरेलू बाजार का विकास करेगा।
4. लिंडर उन शर्तो की भी व्याख्या नही करता है जिनके अंतर्गत व्यापार कर रहे देश व्यापार की मात्रा को प्रभावित करने की संभावना रख सकते हैं।
5. लिंडर का सिद्धांत व्यापार की मात्रा पर प्रदर्शनकारी प्रभाव के प्रभाव का भी अध्ययन नही करता है
6. प्रतिनिधि मांग की अवधारणा कमजोर है क्योंकि यह लीडर द्वारा सही ढंग से परिभाषित नही की गई है।

3.4 कैनन का मानव पूंजी सिद्धांत (Kenen's Theory of Human Capital)-

पी.बी.कैनन ने 1965 में एक लेख में अंतरराष्ट्रीय व्यापार में मानव पूंजी की भूमिका की विवेचना की है। वह भौतिक पूंजी की अपेक्षा मानव पूंजी को अपने सिद्धांत का मुख्य तत्व मानते हैं। मानव पूंजी श्रम शक्ति की शिक्षा तथा प्रशिक्षण में निवेश द्वारा निर्मित होती है। शिक्षा और प्रशिक्षण जो कौशल निर्मित करते हैं लंबे समय तक रहते हैं तथा श्रम शक्ति की उत्पादकता बढ़ाते हैं। श्रम की किस्म में जो मजदूरी भिन्नताएं पाई जाती हैं वे शिक्षा और प्रशिक्षण में भिन्नताओं के कारण होती हैं।

कैनन के अनुसार भूमि और श्रम उत्पादन के दो मौलिक साधन हैं लेकिन वे पूंजी लगाए बिना सुधारे नहीं जा सकते। कैनन पूंजी को 'प्रतिक्षा' का समरूप स्टॉक मानते हैं, जैसा कि हेक्शर-ओलिन मॉडल में है। पूंजी, उत्पादन प्रक्रिया में भूमि और श्रम पर लागू होने से प्रवेश करती है। श्रम शक्ति को दिए गए शिक्षा और प्रशिक्षण पूंजी पर श्रम का लागू होना है।पूंजी को भूमि या प्राकृतिक साधनों के साथ मिलकर मशीनों का निर्माण होता है। इस प्रकार, जब सुधरी हुए श्रम को सुधरी हुई भूमि के साथ मिलाया जाता है तो उत्पादन बढ़ता है। सामान्य तौर से, देशों की विभिन्न उत्पादन संभावनाएं होती हैं, क्योंकि उनकी श्रम, भूमि और पूंजी की संसाधन संपन्नताएं अलग-अलग होती हैं। यद्यपि दो देशों के पास समान संसाधन संपन्नताएं पाई जाती हैं फिर भी श्रम और पूंजी के सुधारने के बीच प्राप्य पूंजी के आवंटन के कारण वह अपनी उत्पादन संभावनाओं में भिन्न हो सकते हैं। अपने तर्क को सिद्ध करने के लिए कैनन अल्पविकसित देशों का उदाहरण देते हैं जो पूंजी की अपनी सीमित पूर्तियों को मानव पूंजी की अपेक्षा भौतिक पूंजी को सुधारने में आवंटित करते हैं। परिणामस्वरुप भौतिक पूंजी पर उनकी प्रतिफल की दर बहुत नीची होती है इसलिए वह भौतिक पूंजी पर प्रतिफल को बढ़ाने के लिए श्रम शक्ति पर पूंजी को लागू करने का सुझाव देते हैं। इसके पश्चात कैनन पूंजी और उत्पादन के बीच संबंध के अपने विचार के आधार पर अंतरराष्ट्रीय व्यापार के सिद्धांत को प्रतिपादित करते हैं।

3.4.1 मान्यताएं (Assumption)-

यह सिद्धांत निम्नलिखित मान्यताओं पर आधारित है:

1. दोनों देशों के बीच असुधरा हुआ श्रम और असुधरी हुई भूमि समान पाए जाते हैं।
2. देश के अंदर श्रम गतिशील है।
3. मार्केट प्रतियोगी है।
4. मांग स्थितियां समान हैं, और
5. दोनों देशों में उत्पादन फलन समरूप है।

3.4.2 सिद्धांत की व्याख्या (Explanation) –

यह मान्यताएं दी होने पर, कैनन के सिद्धांत में दो देशों के बीच व्यापार खुलने पर वस्तु कीमतों तथा सुधरी हुई भूमि और श्रम की सेवाओं की कीमतों में सामानता हो जाएगी। क्योंकि ब्याज की दर साधन सेवा की कीमत नहीं है इसलिए यह जरूरी तौर से दोनों के बीच सामान नहीं होगी। जहां तक व्यापार की शर्तों की बात है उनका पूर्वानुमान दोनों देशों में निबल साधन अनुपातों द्वारा होगा, जहां साधन सुधरे हुए श्रम तथा सुधरी हुई भूमि की मात्राएं हैं। निबल साधन अनुपात दोनों मूल साधनों, श्रम एवं भूमि को सुधारने के लिए पूंजी के आवंटन पर, पूंजी की पूर्ति पर, तथा असुधरे हुए साधनों की मूल संपन्नताओं पर निर्भर करते हैं।

कैनन का सिद्धांत अंतर्राष्ट्रीय व्यापार सिद्धांत को महत्वपूर्ण योगदान देता है। यह उत्पादन प्रक्रिया में मानव-पूंजी के मूल्य को शामिल करके नई दिशा प्रदान करता है, जो आगे अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के ढांचे को प्रभावित करता है।

3.5 क्रेविस का उपलब्धता सिद्धांत (The Kravis Theory of Availability)-

हेक्सर-ओलिन के अंतरराष्ट्रीय व्यापार के सिद्धांत का एक महत्वपूर्ण विस्तार अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का उपलब्धता सिद्धांत है। यह मत इरविंग बी. क्रेविस (Irving B. Kravis) द्वारा दिया गया था। क्रेविस के अनुसार, व्यापार का ढंग वस्तुओं की घरेलू उपलब्धता अथवा गैर उपलब्धता से निर्धारित होता है। H-O सिद्धांत के इस सामान्य निष्कर्ष, कि श्रम-बहुल देश की श्रम-गहन वस्तुओं का निर्यात करते हैं, का परीक्षण करते हुए क्रेविस ने यह पाया कि उन उद्योगों में भी निर्यात करने वाले उद्योग प्राय: अपेक्षाकृत ऊंची मजदूरी का भुगतान करते हैं। क्रेविस ने इस प्रकार यह जोर दिया कि राष्ट्र उन वस्तुओं का निर्यात करेंगे जो घरेलू देश में तत्काल उपलब्ध हैं। इसके विपरीत वे उन उत्पादों के आयात का झुकाव रखते हैं जिनकी घरेलू पूर्ति उनकी मांग से कम होती है। उनके अनुसार, अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का आवश्यक आधार वस्तुओं का देश के अंदर उपलब्ध न होना है। घरेलू देश में वस्तुओं की गैर उपलब्धता या तो निरपेक्ष या फिर सापेक्ष अर्थों में हो सकती है। पहली अवस्था में कुछ वस्तुएं जैसे अमेरिकी अर्थव्यवस्था में हीरे बिल्कुल उपलब्ध नहीं है। सापेक्ष अर्थ में गैर उपलब्धता प्रकट करती है कि उत्पादों की घरेलू पूर्ति मांग की तुलना में कम है और यह की उन वस्तुओं का अतिरिक्त उत्पादन घरेलू देश में बहुत ऊंची लगतों पर संभव हो सकता है। ऐसी हालत में तुलनात्मक लाभ का नियम अपने आप में आ जाता है और देश इस बात को तरजीह देते हैं कि ऐसे उत्पादों को बहुत ऊंची लागतों पर देश के अंदर पैदा करने के बजाय विदेशों से आयात किया जाए।

क्रेविस का विचार है कि कुछ विशिष्ट उत्पादों का एक विशेष देश के अंदर उपलब्ध होना या ना होना प्राकृतिक संसाधनों, तकनीकी प्रगति, उत्पाद विभिन्नता और सरकारी नीति से प्रभावित होता है।

प्राकृतिक संसाधन (Natural Resources) - यदि एक देश में कच्चे लोहे, बॉक्साइट और तेल जैसे खनिज पदार्थ काफी उपलब्ध हैं तो वह उत्पाद जिनका उत्पादन करने में इन पदार्थों की बड़ी मात्रा में प्रयोग होता है, घरेलू देश के अंदर ही पैदा किए जाएंगे।इन उत्पादों के उत्पादन का एक भाग विदेशों को निर्यात कर दिया जाएगा। इसके विपरीत यदि एक दिए गए देश में वन्य उत्पादों की कमी है तो उनकी कमी इन्हें विदेश से आयात करके दूर की जा सकती है। इस प्रकार एक विशेष देश के व्यापार का ढंग प्राकृतिक संसाधनों की सापेक्ष बहुलता अथवा दुर्लभता से प्रभावित होता है।

तकनीकी प्रगति (Technological Progress)- तकनीकी प्रगति कारक उपयोग, कारक लागत, उत्पादन के पैमाने में विस्तार और उत्पाद की गुणवत्ता में सुधार पर महत्वपूर्ण प्रभाव डाल सकती है। सामान्य तौर पर, तकनीकी प्रगति से कुछ श्रेणियों के उत्पादों की घरेलू उपलब्धता में काफी वृद्धि हो सकती है, जिनकी अधिशेष मात्रा विदेशों में निर्यात की जा सकती है।

उत्पाद विभेदन (Product Differentation)- विभिन्न देशों के निर्माता विभिन्न प्रकार के उत्पाद बनाने के इच्छुक हैं। ऐसी वस्तुओं का उत्पादन एक विशिष्ट नवप्रवर्तक देश को अस्थायी एकाधिकार प्रदान करता है और यह विदेशी बाजारों में अपनी विशेष उत्पाद विविधता का निपटान करता है।

सरकारी नीति (Government Policy)- टैरिफ और गैर-टैरिफ व्यापार प्रतिबंध वस्तुओं के अंतर्राष्ट्रीय प्रवाह को प्रतिबंधित करते हैं। ओपेक जैसे अंतरराष्ट्रीय कार्टेल भी प्रतिबंधात्मक नीति उपायों का पालन करते हैं और उत्पादों की एक बड़ी श्रृंखला की उपलब्धता अंतरराष्ट्रीय स्तर पर प्रभावित होती है।

जबकि प्राकृतिक संसाधन, तकनीकी प्रगति और उत्पाद भेदभाव मिलकर संभवतः अंतर्राष्ट्रीय व्यापार की मात्रा में विस्तार करते हैं, देशों द्वारा लगाए गए व्यापार प्रतिबंधों का व्यापार पर सीमित प्रभाव पड़ता है।

3.5.1 सिद्धांत की व्याख्या (Explanation) –

क्रैविस के व्यापार की उपलब्धता सिद्धांत को एक काल्पनिक उदाहरण के माध्यम से समझाया जा सकता है। ऐसा माना जाता है कि चार देश हैं-A, B, C और D। दो वस्तुएं हैं, गेहूं और स्टील। दोनों वस्तुओं के उत्पादन के लिए श्रम और पूंजी की आवश्यकता होती है। इसके अलावा, गेहूं के उत्पादन के लिए उपजाऊ कृषि भूमि की आवश्यकता होती है जबकि इस्पात के उत्पादन के लिए लौह अयस्क की आवश्यकता होती है। चार देशों में से A, B और C कृषि भूमि से संपन्न हैं।

देश B, C और D लौह अयस्क से संपन्न हैं। इन कारक बंदोबस्तों को देखते हुए, देश A केवल गेहूं का उत्पादन कर सकता है और देश D केवल स्टील का उत्पादन कर सकता है। देश C और D गेहूं और इस्पात दोनों का उत्पादन कर सकते हैं। अब उपलब्धता सिद्धांत के अनुसार, देश A देश D को गेहूं निर्यात करेगा और देश A देश D को स्टील निर्यात करेगा। चूंकि B और C दोनों वस्तुओं का उत्पादन करने में सक्षम हैं, इसलिए उनके बीच व्यापार उनके संबंधित तुलनात्मक लागत लाभ द्वारा नियंत्रित किया जाएगा।

मान लीजिए कि देश B में गेहूं और स्टील के बीच घरेलू विनिमय अनुपात गेहूं की 6 इकाई = स्टील की 1 इकाई है। यह देश C में गेहूं की 3 इकाइयां = स्टील की 1 इकाई है। यदि अंतर्राष्ट्रीय विनिमय अनुपात गेहूं की 4

इकाइयों = स्टील की 1 इकाई पर तय होता है, तो देश B देश C को गेहूं निर्यात करेगा और देश B देश B को स्टील निर्यात करेगा। कारक अनुपात दृष्टिकोण के संबंध में आर. फाइंडले द्वारा उपलब्धता दृष्टिकोण पर चर्चा की गई है। यह माना जाता है कि दो देश A और B दो वस्तुओं, गेहूं और स्टील का उत्पादन कर सकते हैं। उनके पास श्रम, पूंजी और लौह अयस्क की समान संपदा है। हालाँकि, देश B के पास देश A की तुलना में अधिक कृषि भूमि है।

इन दोनों देशों के बीच व्यापार के पैटर्न को निम्न चित्र के माध्यम से समझाया जा सकता है। दिए गए चित्र में, स्टील को क्षैतिज पैमाने पर और गेहूं को ऊर्ध्वाधर पैमाने पर मापा जाता है। दो देशों में श्रम, पूंजी और लौह अयस्क की समान उपलब्धता और देश B में गेहूं उत्पादक भूमि की अपेक्षाकृत बड़ी उपलब्धता को देखते हुए, AA1 देश A का उत्पादन संभावना वक्र है और A1B देश B का उत्पादन संभावना वक्र है। P0P0 और P1P1 व्यापार रेखाओं की शर्तें हैं जिनका ढलान समान है।

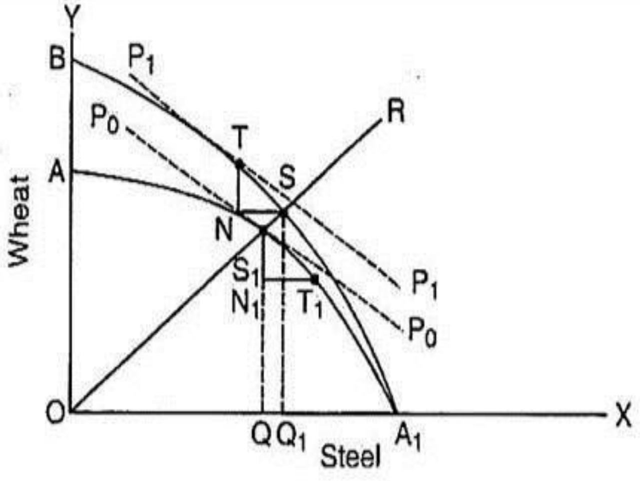

मूल से शुरू होने वाली रेखा OR इन देशों में दो वस्तुओं के मांग अनुपात को दर्शाती है। OR, AA1 और A1B को क्रमशः S1 और S पर प्रतिच्छेद करता है। बिंदु S1 इंगित करता है कि देश A को OQ मात्रा में स्टील और S1Q मात्रा में गेहूं की आवश्यकता है। बिंदु S इंगित करता है कि देश B को OQ 1 मात्रा में स्टील और SQ 1 मात्रा में गेहूं की आवश्यकता है। देश A में उत्पादन का बिंदु T1 है । इस प्रकार देश A के पास आवश्यक मात्रा से अधिक मात्रा में स्टील है । इस देश में स्टील की अतिरिक्त उपलब्धता देश B को निर्यात की जाएगी। देश B में उत्पादन का बिंदु T है। इस बिंदु पर देश B के पास अपनी घरेलू आवश्यकता से अधिक TN मात्रा में गेहूं है। इस देश में गेहूं की अतिरिक्त उपलब्धता देश A को निर्यात की जाएगी।

आर. फाइंडले का तर्क है कि उपलब्धता दृष्टिकोण में कारक अनुपात दृष्टिकोण पर श्रेष्ठता है। हालाँकि दो देशों के पास श्रम और पूंजी की समान बंदोबस्ती है, फिर भी देश A पूंजी-गहन कमोडिटी स्टील का उत्पादन और निर्यात करता है और देश B अपेक्षाकृत कम पूंजी-गहन कमोडिटी गेहूं का उत्पादन और निर्यात करता है। यह कारक अनुपात सिद्धांत से पूरी तरह सुसंगत नहीं है। हालाँकि, उपलब्धता सिद्धांत मानता है कि इन दोनों देशों के बीच व्यापार पैटर्न देश बी में अधिक भूमि और देश ए में लौह अयस्क की उपलब्धता से नियंत्रित होता है। इस प्रकार क्राविस का उपलब्धता सिद्धांत कारक अनुपात सिद्धांत से बेहतर प्रतीत होता है।

3.5.2 आलोचना(Criticism)-

इसमें कोई संदेह नहीं है, क्राविस का उपलब्धता सिद्धांत व्यापार के पैटर्न की अधिक सटीक और विशिष्ट व्याख्या प्रदान करता है। यह, कुछ मामलों में, तुलनात्मक लागत और कारक अनुपात दोनों दृष्टिकोणों से भी बेहतर है। लेकिन व्यापार के इस मॉडल में कुछ कमज़ोरियाँ हैं।

सीमित प्रयोज्यता- इस मॉडल में एक देश में अधिक भूमि तथा दूसरे देश में अधिक लौह अयस्क की उपलब्धता के आधार पर व्यापार के पैटर्न को समझाया जाता है। उत्पाद-विशिष्ट संसाधनों की संख्या काफी बड़ी हो सकती है। ऐसी स्थिति में व्यापार पैटर्न का निर्धारण बहुत कठिन और जटिल होने की संभावना है। ऐसी स्थिति में तुलनात्मक लाभ पर आधारित बहु-वस्तु दृष्टिकोण अधिक उपयुक्त प्रतीत हो सकता है।

पद्धतिगत कमजोरी- हालाँकि जगदीश भगवती ने उपलब्धता सिद्धांत के संबंध में कई परिकल्पनाएँ प्राप्त करने का प्रयास किया जैसे: 1.आयात योग्य वस्तुओं की आपूर्ति की घरेलू अस्थिरता; 2. आयात योग्य वस्तुओं की आपूर्ति की घरेलू लोच पर विदेशी की अधिकता; 3.देश में तकनीकी प्रगति की समग्र औसत दर की तुलना में घरेलू देश के निर्यात उद्योगों में तकनीकी प्रगति की उच्च दर; 4. घरेलू निर्यात उद्योगों में तकनीकी प्रगति की दर विदेशों में समान उद्योगों में तकनीकी प्रगति की दर से अधिक है; और 5. निर्यात वस्तुओं में उन सामग्रियों के उपयोग की तीव्रता जो स्वदेश में अपेक्षाकृत प्रचुर मात्रा में हैं। हालाँकि, न तो ऐसी परिकल्पनाएँ व्यवस्थित रूप से तैयार की गई हैं, न ही इनका वैज्ञानिक परीक्षण किया गया है।

मांग पैटर्न की उपेक्षा- यह सिद्धांत मानता है कि उपलब्धता कारक का आधार प्राकृतिक संसाधन, तकनीकी प्रगति, उत्पाद भेदभाव और सरकारी नीतियां हैं। विदेशों में मांग का पैटर्न या उपभोक्ता की प्राथमिकताएं व्यापार पैटर्न को प्रभावित करने में एक बहुत ही महत्वपूर्ण कारक है। हालाँकि, क्राविस के दृष्टिकोण में इस कारक को नजरअंदाज कर दिया गया है।

उन्नत देशों के बीच व्यापार के लिए प्रासंगिक नहीं- उन्नत देशों में आम तौर पर समान कारक बंदोबस्ती और तकनीकी जानकारी होती है। उपलब्धता कारक उनके व्यापार के पैटर्न पर महत्वपूर्ण प्रभाव नहीं डाल सकता है। उसी तरह, कम विकसित देशों के बीच व्यापार भी उपलब्धता कारक पर आधारित नहीं हो सकता है क्योंकि उनके पास भी आम तौर पर समान कारक बंदोबस्ती होती है। केवल उत्तर और दक्षिण के बीच व्यापार के मामले में उपलब्धता कारक की कुछ प्रासंगिकता हो सकती है।

सीमित अनुभवजन्य समर्थन- क्रैविस की उपलब्धता के सिद्धांत की वैधता संदिग्ध है क्योंकि इसके लिए बहुत सीमित अनुभवजन्य समर्थन मिला है।

3.6 इमैनुएल का असमान विनिमय सिद्धांत (Emmannuel's Theory of Unequal Exchange)-

अर्थशास्त्रियों के एक बड़े समूह के बीच यह मजबूत राय रही है कि अंतर्राष्ट्रीय व्यापार उन्नत देशों के हाथों कम विकसित देशों के शोषण का एक स्रोत रहा है। इमैनुएल ने विकसित और कम विकसित देशों के बीच उत्पादों के असमान अंतर्राष्ट्रीय विनिमय के आधार पर व्यापार की शर्तों में गिरावट और परिणामस्वरूप कम विकसित देश के शोषण को समझाने का प्रयास किया। उनके बीच असमान आदान-प्रदान का मूल कारण, अन्य चीजें समान रहने पर, उनके वेतन स्तरों में व्यापक असमानताएं रही हैं।

अपने विश्लेषण में, इमैनुएल ने उत्पाद मूल्य निर्धारण के मार्क्सवादी सिद्धांत का सहारा लिया है जो मानता है कि बड़े अधिशेष मूल्य उत्पन्न करने के लिए श्रमिकों को पूंजीपतियों द्वारा निर्वाह मजदूरी का भुगतान किया जाता है। जैसे-जैसे विकसित देशों में तकनीकी सुधार हो रहे हैं, प्रति मानव-घंटे उत्पादकता में काफी सुधार हो रहा है।

दूसरी ओर, कम विकसित देशों में प्रति मानव-घंटे उत्पादकता कम तकनीकी दक्षता के कारण बहुत कम है। ये देश तकनीकी प्रगति का लाभ सुरक्षित करने में विफल रहे हैं। यह तकनीकी कमी के कारण है कि कम विकसित देशों में उत्पादन का पूर्ण और सापेक्ष स्तर कम रहता है।

हालाँकि, कम वेतन स्तर के कारण इन देशों में उत्पादन लागत और उत्पाद की कीमतें कम रहती हैं। इसके विपरीत, विकसित देशों में मजदूरी का स्तर अपेक्षाकृत अधिक है, लागत और उत्पाद की कीमतें अधिक हैं। विकसित देशों से उच्च कीमत वाले उत्पादों को आयात करने के लिए, कम विकसित देशों को अपने कम कीमत वाले निर्यात योग्य सामानों को बड़ी मात्रा में निर्यात करना पड़ता है। इस प्रकार, विकसित और कम विकसित देशों के बीच असमान आदान-प्रदान उनके वेतन स्तरों में असमानताओं के कारण उत्पन्न होता है।

3.6.1 इमैनुएल के सिद्धांत की मान्यताएँ-

इमैनुएल का असमान विनिमय का सिद्धांत निम्नलिखित मान्यताओं पर आधारित है:

1. अंतर्राष्ट्रीय आदान-प्रदान दो देशों A और B के बीच होता है। जबकि देश A एक विकसित देश है, देश B कम विकसित है।
2. विनिमय दो वस्तुओं, X और Y से संबंधित है|
3. पूंजी देशों के बीच गतिशील है।
4. श्रम देशों के बीच गतिशील नहीं है।
5. जबकि कम विकसित देशों में मजदूरी का स्तर कम है, विकसित देशों में यह अपेक्षाकृत अधिक है।
6. कम विकसित देशों में उत्पाद की कीमतें कम हैं लेकिन विकसित देशों में ये अधिक हैं।
7. मजदूरी का स्तर उत्पाद की कीमतों से स्वतंत्र है।
8. दोनों देशों में मुनाफ़े की दरें बराबर हैं।
9. प्रत्येक देश एक विशिष्ट उत्पाद के उत्पादन और विनिमय में माहिर है।
10. मुक्त अंतर्राष्ट्रीय व्यापार है।
11. परिवहन लागत का अभाव है।

3.6.2 सिद्धांत की व्याख्या (Explanation) –

A और B के बीच असमान आदान-प्रदान और परिणामस्वरूप कम विकसित देश B के लिए व्यापार की शर्तों में गिरावट को एक काल्पनिक उदाहरण के माध्यम से समझाया जा सकता है। ऐसा माना जाता है कि देश A वस्तु X के उत्पादन में माहिर है, जबकि B वस्तु Y के उत्पादन में माहिर है। दोनों देशों के लोग X और Y दोनों वस्तुओं का उपभोग करते हैं।

देश A में मजदूरी का स्तर ऊंचा है और ऐसा माना जाता है कि उस देश में लोग X की 5 इकाइयां और Y की 5 इकाइयां खरीद सकते हैं, कम मजदूरी वाले देश B में लोग X की 2 इकाइयां और Y की 2 इकाइयां

खरीद सकते हैं। कीमत प्रत्येक देश में प्रति इकाई मजदूरी और प्रति इकाई लाभ की दर से गठित किया जाता है। दोनों देशों में लाभ की दर (π) बराबर मानी गई है। देश A में X की कीमत को P xA द्वारा तथा देश B में Y की कीमत को P yB द्वारा दर्शाया जाता है।

Pxa = (1+ π)(5Px+5Py) ………………..1

Pyb = (1+ π)(2Px+2Py) …………………2

1 को 2 के द्वारा विभक्त करने से हम पाते हैं

2Pxa = 5Pyb

यह दर्शाता है कि देश B को X की 2 इकाइयाँ आयात करने के लिए Y की 5 इकाइयाँ निर्यात करनी होंगी। यह दर्शाता है कि दोनों देशों के बीच आदान-प्रदान असमान है और व्यापार की शर्तें विकसित देश A के लिए अनुकूल हैं और कम विकसित के लिए प्रतिकूल हैं।

इसे दिए गए चित्र के माध्यम से भी समझाया गया है। चित्र में व्यापार की शर्तों को क्षैतिज पैमाने पर और दो देशों में उत्पादों की कीमतों को ऊर्ध्वाधर पैमाने पर मापा जाता है। कम विकसित देश बी के उत्पाद वाई की कीमत दी जानी चाहिए और इसे क्षैतिज रेखा PBPB द्वारा दर्शाया जाता है। मूल रूप से विकसित देश A में वस्तु X की कीमत वक्र P_{A0} के माध्यम से व्यक्त की जाती है और व्यापार की शर्तें T_0 हैं।

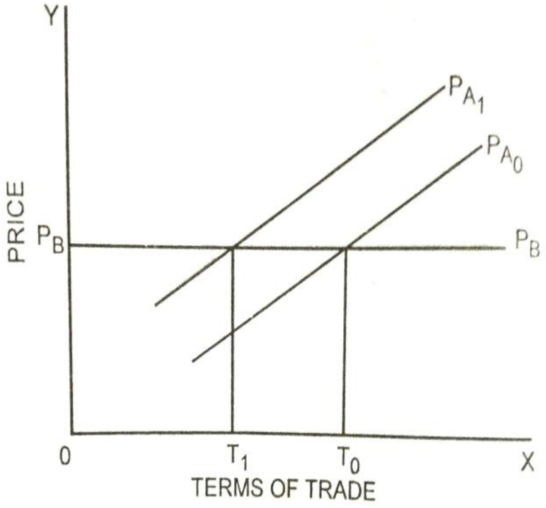

जैसे ही देश A में मजदूरी और लागत में वृद्धि होती है, उत्पाद X की कीमत बढ़ जाती है और A की उच्च कीमत मूल्य वक्र P A1 के माध्यम से व्यक्त की जाती है और देश B के लिए व्यापार की शर्तें T 1 पर निर्धारित होती हैं। इस प्रकार दोनों देशों के बीच असमान आदान-प्रदान के कारण कम विकसित देश के लिए व्यापार की शर्तों में गिरावट आई है।

3.6.3 इमैनुएल के सिद्धांत की आलोचना-

असमान विनिमय के सिद्धांत पर निम्नलिखित मुख्य आधारों पर हमला किया गया है:

पूंजी की गतिशीलता पर प्रतिबंध- इमैनुएल का सिद्धांत मानता है कि पूंजी विभिन्न देशों के बीच गतिशील है। वास्तव में, मुक्त अंतर्राष्ट्रीय पूंजी प्रवाह पर विनिमय दर, विनिमय नियंत्रण, व्यापार और अन्य आर्थिक नीतियों के साथ-साथ राजनीतिक नीतियों जैसे कई प्रतिबंध हैं। इसलिए, असमान आदान-प्रदान न केवल वेतन अंतर के कारण हो सकता है बल्कि विभिन्न देशों में पूंजी की लागत में अंतर के कारण भी हो सकता है।

श्रम की अंतर्राष्ट्रीय गतिहीनता- इस सिद्धांत में यह धारणा ली गई है कि विभिन्न देशों में श्रम की गतिशीलता का अभाव है। यह माना जाता है कि निरंतर वेतन अंतर मूलतः श्रम गतिहीनता के कारण है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि अंतरराष्ट्रीय स्तर पर श्रम की गतिशीलता में गंभीर बाधाएं हैं लेकिन यह एक तथ्य है कि कम विकसित देशों से विकसित देशों की ओर कुशल और अकुशल दोनों प्रकार के श्रमिकों की पर्याप्त आवाजाही होती

है। हालाँकि इससे पूर्व में मजदूरी में थोड़ी वृद्धि हुई है, फिर भी विकसित देशों में मजदूरी के स्तर में कोई उल्लेखनीय गिरावट नहीं आई है। इस सिद्धांत में ली गई श्रम की अंतर्राष्ट्रीय गतिहीनता की धारणा मान्य नहीं है।

कम विकसित देशों का शोषण- इमैनुएल गरीब देशों के शोषण को असमान विनिमय का कारण बताते हैं। दरअसल गरीब देशों को ऐतिहासिक और कई अन्य कारणों से अमीर देशों के हाथों आर्थिक शोषण का सामना करना पड़ा। उनके शोषण के बावजूद, असमान आदान-प्रदान उनकी प्रगति की दिशा में बाधा नहीं बन सका।

लाभ की दर की समानता- इमैनुएल का सिद्धांत कम विकसित और विकसित देशों में लाभ की दर की समानता मानता है। वास्तव में, बाज़ारों के बड़े आकार, बहुराष्ट्रीय कंपनियों की वृद्धि और तकनीकी प्रगति के कारण मुनाफ़े की दरें काफी अधिक हैं। इसके विपरीत, पूंजी निर्माण की कम दर, तकनीकी पिछड़ेपन, बाजार की छोटी सीमा, आर्थिक और कठोरता और उच्च स्तर के जोखिम ने कम विकसित देशों में मुनाफे की दर को अपेक्षाकृत कम रखा है। इसलिए कम विकसित देशों में मुनाफ़े की दर की समानता की धारणा पूरी तरह से अवास्तविक है।

बहुत सीमित दृष्टिकोण- इमैनुएल ने अपने सिद्धांत में इस दृष्टिकोण पर बहुत अधिक जोर दिया है कि देशों के बीच असमान आदान-प्रदान विशेष रूप से विकसित और कम विकसित देशों के बीच वेतन अंतर से उत्पन्न होता है। वास्तव में, देशों के बीच असमान आदान-प्रदान आर्थिक, सामाजिक, तकनीकी और संस्थागत कारकों की बहुलता के परिणामस्वरूप होता है। असमान विनिमय के लिए जिम्मेदार उन सभी कारकों को इमैनुएल ने नजरअंदाज कर दिया है।

प्रतिबंधित दायरा- यह सिद्धांत मानता है कि विकसित और कम विकसित देशों के बीच असमान आदान-प्रदान उनके बीच वेतन अंतर का परिणाम है। विकसित देशों में वेतन अंतर बहुत कम है लेकिन फिर भी उनके बीच असमान आदान-प्रदान पाया जाता है। इसी तरह, अल्प विकसित देशों में वेतन का स्तर आम तौर पर कम है लेकिन उनके बीच भी असमान आदान-प्रदान मौजूद है। इमैनुएल ने अपने विश्लेषण के दायरे को यह कहकर बहुत सीमित कर दिया कि असमान विनिमय केवल कम विकसित और विकसित देशों के बीच मौजूद है।

कोई मुक्त व्यापार नहीं- इमैनुएल का मानना है कि व्यापार पर कोई टैरिफ और गैर-टैरिफ प्रतिबंध नहीं हैं। दरअसल, विकसित और कम विकसित दोनों देश व्यापार प्रतिबंधों का सहारा लेते हैं। व्यापारिक देशों द्वारा व्यापार पर लगाई गई बाधाओं को नजरअंदाज करना इमैनुएल के लिए यथार्थवादी नहीं था।

परिवहन लागत- पारंपरिक सिद्धांतकारों की तरह, इमैनुएल भी परिवहन लागत के अभाव को मानते हैं। वास्तविक जीवन में, परिवहन लागत निश्चित रूप से मौजूद होती है और देशों के बीच व्यापार प्रवाह पर उनका काफी प्रभाव पड़ता है।

व्यापार की प्रतिकूल शर्तों का सीमित दृष्टिकोण- इमैनुएल ने कम विकसित देशों के मामले में व्यापार की प्रतिकूल शर्तों के लिए वेतन अंतर के परिणामस्वरूप होने वाले असमान विनिमय को ही जिम्मेदार ठहराया। हालाँकि, सिंगर, प्रीबिश और फ्लेमिंग जैसे लेखकों ने कहा कि कम विकसित देशों के व्यापार की शर्तों में ऐतिहासिक गिरावट औद्योगिक देशों में उत्पाद सुधार, तकनीकी प्रगति, प्राथमिक उत्पादों के अधिशेष उत्पादन, मांग की कम आय लोच जैसे कारकों के कारण थी। असंतुलित विकास, आयात और विदेशी निवेश का प्रभाव, सिंथेटिक उत्पादों की वृद्धि, क्षेत्रीय आर्थिक समूह, बहुराष्ट्रीय कंपनियों की वृद्धि और विकसित देशों की

संरक्षणवादी नीतियां। केवल वेतन अंतर को कम विकसित दुनिया में व्यापार की प्रतिकूल शर्तों, शोषण और गरीबी का कारण मानना बहुत अदूरदर्शिता है।

3.7 सारांश-

प्राथमिक वस्तुओं में व्यापार आवश्यक रूप में प्राकृतिक संसाधनों की सापेक्ष बहुलता पर निर्भर होता है। विनिर्मित वस्तुओं में व्यापार, दूसरी ओर, पैमाने की बचतों, प्रबंधकीय कुशलताओं, पूंजी और कुशल श्रम की उपलब्धि, तकनीकी श्रेष्ठता इत्यादि तत्वों के समूह से निर्धारित होता है। मानव पूंजी श्रम शक्ति की शिक्षा तथा प्रशिक्षण में निवेश द्वारा निर्मित होती है। शिक्षा और प्रशिक्षण जो कौशल निर्मित करते हैं लंबे समय तक रहते हैं तथा श्रम शक्ति की उत्पादकता बढ़ाते हैं। श्रम की किस्म में जो मजदूरी भिन्नताएं पाई जाती हैं वे शिक्षा और प्रशिक्षण में भिन्नताओं के कारण होती हैं।

व्यापार का ढंग वस्तुओं की घरेलू उपलब्धता अथवा गैर उपलब्धता से निर्धारित होता है। कि राष्ट्र उन वस्तुओं का निर्यात करेंगे जो घरेलू देश में तत्काल उपलब्ध हैं। इसके विपरीत वे उन उत्पादों के आयात का झुकाव रखते हैं जिनकी घरेलू पूर्ति उनकी मांग से कम होती है।जैसे विकसित देशों में बड़े अधिशेष मूल्य उत्पन्न करने के लिए श्रमिकों को पूंजीपतियों द्वारा निर्वाह मजदूरी का भुगतान किया जाता है। जैसे-जैसे विकसित देशों में तकनीकी सुधार हो रहे हैं, प्रति मानव-घंटे उत्पादकता में काफी सुधार हो रहा है। दूसरी ओर, कम विकसित देशों में प्रति मानव-घंटे उत्पादकता कम तकनीकी दक्षता के कारण बहुत कम है। ये देश तकनीकी प्रगति का लाभ सुरक्षित करने में विफल रहे हैं। यह तकनीकी कमी के कारण है कि कम विकसित देशों में उत्पादन का पूर्ण और सापेक्ष स्तर कम रहता है।

3.8 शब्दावली-

मानव पूंजी - मानव पूंजी ज्ञान, कौशल, अनुभव और सामाजिक गुणों का योग है कि एक व्यक्ति किसी ऐसे तरीके से आर्थिक मूल्य पैदा करता है कि उसकी काम करने की क्षमता का योगदान है।

श्रम गहनता- श्रम गहन से तात्पर्य एक ऐसी प्रक्रिया या उद्योग से है जिसे अपनी वस्तुओं या सेवाओं के उत्पादन के लिए बड़ी मात्रा में श्रम की आवश्यकता होती है।

पूंजी गहनता- पूंजी गहनता एक ऐसी स्थिति है जहां अर्थव्यवस्था में प्रति श्रमिक पूंजी बढ़ रही है। इसे पूंजी तीव्रता में वृद्धि भी कहा जाता है|

3.9 संदर्भ ग्रंथ सूची-

Bo Sodersten, International Economics, Macmillan, 1999

Paul Krugman and Maurice Obstfeld: International Economics: Theory and Policy, Dorling Kindersley India Pvt Ltd, 2009.

Dominik Salvatore, International Economics, John Willy & Sons, Inc., 2008

सुदामा सिंह एवं एम०सी० वैश्य, अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, ऑक्सफ़ोर्ड एंड आई०बी०एच० पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2007

एम० एल० झिंगन, अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, वृंदा पब्लिकेशन, दिल्ली, 2010.

3.10 अभ्यास प्रश्न

3.10.1 लघु उत्तरात्मक प्रश्न

1.लिंडर के व्यापार के सिद्धांत में 'अधिमान समानता' और 'मांग की आति-व्याप्तता' की धारणाओं की व्याख्या करें।

2.इमैनुएल के असमान वितरण के सिद्धांत में क्या कमियां हैं?

3.कैनन के मानव पूंजी सिद्धांत पर टिप्पणी करें।

4.क्रेविस के व्यापार के सिद्धांत की व्याख्या करें तथा इसकी आलोचनाओं का वर्णन करें।

3.10.2 दीर्घ उत्तरात्मक प्रश्न

1.क्रेविस के व्यापार के सिद्धांत की व्याख्या करें तथा इसकी आलोचनाओं का वर्णन करें।

2.इमैनुएल के असमान वितरण के सिद्धांत की व्याख्या और आलोचना करें।

<u>इकाई-05</u>

<u>अंतरा उद्योग व्यापार, लियोंतिफ विरोधाभास</u>

5.1 प्रस्तावना
5.2 उद्देश्य
5.3 तकनीकी प्रगति आधारित अंतर्राष्ट्रीय व्यापार
5.4 तकनीकी अंतराल अथवा नकल अंतराल सिद्धांत
मान्यताएं
व्याख्या
आलोचनाएं
5.5 वर्नन का वस्तु चक्र सिद्धांत
मान्यताएं
व्याख्या
आलोचनाएं
5.6 सारांश
5.7 शब्दावली
5.8 संदर्भ ग्रंथ सूची
5.9 अभ्यास प्रश्न

अंतरा-उद्योग व्यापार (Intra-Industry Trade)-

क्लासिकी, नव-क्लासिकी, हेक्शर-ओलिन, सेम्युएल्सन और अन्य मॉडल दो देशों के बीच अंतर-उद्योग व्यापार की व्याख्या करते हैं। अंतर-उद्योग अंतर्राष्ट्रीय व्यापार की एक ऐसी स्थिति है जहां एक उद्योग की वस्तु का एक भिन्न उद्योग की वस्तु के साथ विनिमय किया जाता है। उदाहरण के लिए भारतीय चावल का जर्मन मशीनरी के साथ व्यापार का होना। अंतर उद्योग अंतर्राष्ट्रीय व्यापार पूर्ण प्रतियोगिता की मान्यता पर आधारित है। दूसरी ओर अंतरा-उद्योग अंतर्राष्ट्रीय व्यापार, एक उद्योग में विभेदीकृत वस्तुओं के मध्य व्यापार है जो समान होती है परंतु समरूप नहीं होतीं। उदाहरण के लिए जर्मन कारों का फ्रांसीसी कारों के साथ व्यापार। अंतरा-उद्योग व्यापार विशिष्टीकरण और बढ़ रहे श्रम विभाजन के कारण होता है जो बाजार के आकार पर निर्भर करता है। शीघ्र आर्थिक वृद्धि और विश्व अर्थव्यवस्था के वैश्वीकरण के साथ अंतरा-उद्योग व्यापार मध्यवर्ती और अंतिम वस्तुओं में फैल गया है। यह ऊंची परिवहन लागतों के कारण सीमा-व्यापार के रूप में तथा फलों और सब्जियों की ऊंची भंडारण लागत के कारण मौसमी व्यापार के रूप में देशों के बीच में फैला है।
अंतर उद्योग व्यापार भिन्न-भिन्न कारणों से पैदा होता है।

पहला, पैमानों की बचतों के कारण देश संभवतः वस्तु की कुछ विशेष किस्मों का उत्पादन करते हैं जबकि अन्य देशों से वस्तु की कुछ अन्य किस्मों का आयात करते हैं।

दूसरा, एकाधिकार प्रतियोगिता बाजार में वस्तु विभेद के कारण अंतरा-उद्योग व्यापार की हालतें पैदा हो जाती हैं।

तीसरा, वस्तुओं का कुछ अनुपात देशों के द्वारा सदा आयात किया जाता है क्योंकि कुछ लोग सदा आयातित वस्तुओं की खरीद के लिए उत्सुकता दिखाते हैं।

चौथा, बहुदेशीय कंपनियां लागत को न्यूनतम करने के लिए बड़े पैमाने पर वस्तुओं के कलपुर्जे का उत्पादन विभिन्न देशों में करती हैं और तब उनका कुछ अन्य कलपुर्जो के साथ विनिमय करने के लिए उनका निर्यात करती हैं।

पांचवा, व्यापार करने वाले देशों के अंदर विभिन्न क्षेत्रों में परिवहन लागत के ढांचे में अंतर कुछ क्षेत्रों के उत्पादों के निर्यात देश के कुछ अन्य क्षेत्र में उनसे मिलते-जुलते उत्पादों के आयात के लिए मार्ग तैयार करते हैं।

छठा, व्यापार करने वाले देश के विभिन्न क्षेत्रों में मौसम के अन्तरों के कारण भी अंतरा-उद्योग व्यापार की हालतें पैदा हो जाती हैं। इस संबंध में **सौडर्स्टन** और **रीड** ने टिप्पणी की है, "अन्तरा-उद्योग व्यापार की व्याख्याओं में वस्तु विभेद, पैमाने की बचतों,एकाधिकार प्रतियोगिता अथवा अल्पाधिकार व्यवहार, बहुदेशीय कंपनियों की कार्यशैली इत्यादि में से कुछ या सारे तत्व शामिल होते हैं।"

अंतरा-उद्योग व्यापार के विरुद्ध जो तुलनात्मक लाभों को प्रकट करता है, अंतरा-औद्योगिक व्यापार तुलनात्मक लाभ को प्रकट नहीं करता। व्यापार करने वाले देशों में कुल मिलाकर पूंजी-श्रम अनुपात समान हो सकता है परंतु विदेश में वस्तु विभेद और मांग का ढंग लगभग लगातार अंतरा-उद्योग व्यापार को पैदा कर सकते हैं। यह पैमाने की बचतों के कारण ही है कि प्रत्येक देश अपने लिए उत्पादों का एक बड़ा विस्तार पैदा करता चला जाता है और उनके दूसरे देश के उत्पादों के साथ विनिमय करता चला जाता है।

लियोन्टीफ का विरोधाभास

हेक्सर–ओहलिन सिद्धान्त के सत्यापन के संदर्भ में पहला व्यापक अध्ययन 1951 में लियोन्टीफ ने किया। लियोन्टीफ ने संयुक्त राज्य अमेरिका, जो कि पूँजी प्रधान है, के आयातों–निर्यातों का अध्ययन किया। वे अपने अध्ययन में हेक्सर–ओहलिन के सिद्धान्त के विपरीत निश्कर्श पर पहुँचते हैं। अमेरिका पूँजी प्रधान देश होते हुए भी श्रम प्रधान वस्तु का निर्यात तथा पूँजी प्रधान वस्तु का आयात करते हैं। अर्थात् निर्यात उद्योगों की अपेक्षा आयात प्रतियोगी उद्योंग सापेक्षतया अधिक पूँजी–गहन है। लियोन्टीफ के शब्दों में ”श्रम के अंतरराश्ट्रीय विभाजन में अमेरिका की भागीदारी उत्पादन के पूँजी–गहन तरीकों की अपेक्षा श्रम–गहन तरीकों के विशिश्टीकरण पर आधारित है।” चूँकि लियान्टीफ के निश्कर्श हेक्सर–ओहलिन के निश्कर्शों के विपरीत थे, इसलिए इसे ‘लियोन्टीफ विरोधाभास’ कहा गया।

अन्य अध्ययन

लियोन्टीफ के अध्ययन से प्रोत्साहित होकर अनेक देशों में हेक्सर–ओहलिन सिद्धान्त का परीक्षण अर्थशास्त्रियों ने किया। जापान के दो अर्थशास्त्री **टेटमोटो तथा इशिमूरा** ने जापान के व्यापार–ढाँचे का अध्ययन किया और लियोन्टीफ–विरोधाभास की पुश्टि की। अध्ययन के अनुसार जापान एक श्रम–प्रधान देश है, जबकि यह पूँजी–गहन वस्तुओं का निर्यात करता है। उसी प्रकार **स्टोप्लर और रोस्कैम्प** ने पूर्वी जर्मनी के अध्ययन में पाया कि पूर्वी जर्मनी पूँजी गहन वस्तु का निर्यात करता है और श्रम गहन वस्तु का आयात, जबकि पूर्वी जर्मनी वास्तव में एक पूँजी–प्रधान देश नहीं है। इसी प्रकार **वाल** ने कनाडा के अमेरिका के

साथ व्यापार ढाँचे के अध्ययन में पाया कि कनाडा के निर्यात उसके आयातों की अपेक्षा अधिक पूँजी–गहन थे। जबकि अमेरिका, कनाडा से अधिक पूँजी प्रधान देश है।

आर0 भारद्वाज ने भारत के अमेरिका के साथ व्यापार ढाँचे के अध्ययन मे पाया कि भारत के आयातों की अपेक्षा, निर्यात अधिक पूँजी–गहन थे। जबकि भारत एक श्रम–गहन देश है। यह निश्कर्श हेक्सर–ओहलिन सिद्धान्त का खण्डन करता है।

लियोन्टीफ विरोधाभास की आलोचना

लियोन्टीफ विरोधाभास, हेक्सर–ओहलिन सिद्धान्त ने इस विरोधाभास के हल के लिए अनेक वैकल्पिक व्याख्याएँ प्रस्तुत की और हेक्सर–ओहलिन प्रमेय की रक्षा करने का प्रयास किया। लियोन्टीफ द्वारा लिए गए आँकड़ो की विश्वसनीयता तथा उपयुक्तता पर सवाल भी खड़े किय गए। कुछ आलोचको ने उनकी अध्ययन प्रणाली को भी चुनौती दी।

10. आलोचक लियोन्टीफ के जाँच करने की विधि को तर्कपूर्ण नहीं मानते। वास्तविक आयातों की जगह उनका अध्ययन निर्यात उद्योगों तथा प्रतियोगी आयात प्रतिस्थापन उद्योगों पर केन्द्रीत है। लियोन्टीफ ने जो मेथडोलॉजी अपनायी वह अमेरिका के वास्तविक आयातित वस्तुओं की पूँजी गहनता को नहीं बताता है। यदि वास्तविक आयातित वस्तुओं के पूँजी–श्रम अनुपात का अध्ययन किया जाता तो निश्चित ही वे आयात श्रम–गहन होता।
11. प्रो0 बुकानन ने लियोन्टीफ द्वारा पूँजी की माप को दोशपूर्ण बताया क्योंकि लियोन्टीफ ने पूँजी–गुणांक की नहीं बल्कि वांछित निवेश गुणांक की गणना की है। इस प्रकार विविध उद्योगों में पूँजी के टिकाऊपन पर ध्यान नहीं दिया है।
12. अनेक शोधकर्ताओं का कहना है कि यदि भौतिक पूँजी में मानव पूँजी को भी जोड़ दिया तो लियोन्टीफ विरोधाभास का समाधान हो जाएगा। वास्तव में निर्यात क्षेत्र में लगी 'मानव पूँजी' उच्चकोटि की है जिसकी उत्पादकता काफी अधिक है। इसलिए कैनन अमेरिकी निर्यातों को "श्रम–गहन" कहने की बजाए "मानव पूँजी गहन" वस्तु कहते हैं।
13. पी0टी0 एल्सवर्थ के अनुसार लियोन्टीफ को अमेरिका के निर्यात तथा विदेशी निर्यात की तुलना करनी चाहिए थी। आयात–प्रतिस्थापन के लिए श्रम–पूँजी अनुपात की गणना दूसरे देश की आगत–निर्गत सारणी के आधार पर करनी चाहिए थी क्योंकि अमेरिका अपने आयातों को प्रतिस्थापित करने के लिए जिन वस्तुओं का उत्पादन करेगा वे पूँजी–प्रधान ही होंगी।
14. हैबरलर के अनुसार लियोन्टीफ ने पूँजी में श्रम को छोड़कर उत्पादन के अन्य साधन, मशीनरी एवं प्लांट आदि को सम्मिलित किया जबकि प्राकृतिक सम्पदा, साहसी एवं प्रबंध को छोड़ दिया। इन अन्य साधनों के कारण उत्पादन फलन भिन्न–भिन्न देशों में समरूप नहीं है।
15. ट्राविस का कहना है कि प्रतिबंधित व्यापार नीति की अवस्था में साधन–समानुपाती सिद्धान्त व्यापार के वास्तविक प्रवाह को दर्शाने में असमर्थ होता है। ट्राविस के अनुसार लियोन्टीफ विरोधाभास प्रतिबंधित व्यापार नीति का ही परिणाम है।
16. लियोन्टीफ विरोधाभास अमेरिका ने निर्यातों तथा आयातों पर माँग के प्रभाव की उपेक्षा करता है। रोमने राबिन्सन तथा जोन्स सहित अनेक अर्थशास्त्रियों का विचार है कि लियोन्टीफ का विरोधाभास माँग की दशाओं का परिणाम है। पूँजी प्रचुर देश होने के बाद भी चूँकि अमेरिका की प्रति व्यक्ति आय काफी अधिक है, वहाँ पूँजी–प्रधान वस्तुओं की माँग अधिक हो सकती है।
17. लियोन्टीफ ने स्वयं ही इस विरोधाभास का हल ढूँढने का प्रयास किया। लियोन्टीफ के अनुसार मात्रात्मक रूप से अमरिका मे श्रम की आपूर्ति या उपलब्धता भले सीमित लगे परन्तु यदि श्रम की गुणवत्ता पर विचार किया जाए तो अमेरिकी श्रम अन्य देशों की तुलना में कई गुना अधिक कुशल है। फलस्परूप यहाँ श्रम की प्रभावी आपूर्ति, भौतिक उपलब्धता से तीन गुना अधिक है। यह अधिक उत्पादकता उद्याशीलता, श्रेश्ठ संगठन तथा बेहतर वातावरण का परिणाम है। इस प्रकार यदि श्रम की उत्पादकता का समायोजन कर दिया जाए तो अमेरिका पूँजी–प्रधान नहीं बल्कि श्रम–प्रधान देश होगा। ऐसी स्थिति में लियोन्टीफ के निश्कर्श हेक्सर–ओहलिन सिद्धान्त को पुश्ट करते हैं।

परन्तु लियोन्टीफ की इस व्याख्या की अनेक अर्थशास्त्रियों ने आलोचना की। क्रेनिन ने अपने अध्ययन में पाया कि अमेरिकी श्रमिक, अन्य देशों में श्रमिकों की अपेक्षा मात्र 20 से 25% ही अधिक कुशल है, 300% नहीं, जैसा कि लियोन्टीफ का अनुमान है।

18. अन्य अध्ययनों में लियोन्टीफ–विरोधाभास के सम्बन्ध में अनेक अध्ययन इसका खण्डन करते हैं।

जापान के अध्ययन में टाटेमोटो तथा इथीमूरा ने पाया कि जापान द्वारा अमरिका के निर्यातों का पूँजी–श्रम अनुपात अमेरिका के आयातों के पूँजी–श्रम अनुपास से कम था। यह निश्कर्श हेक्सर–ओहलिन सिद्धान्त के अनुरूप है।

पूर्वी जर्मनी पर किए गए अध्ययन में देखा गया कि उसका 75% व्यापार साम्यवादी देशों से होता है और पूर्वी जर्मनी अपने अन्य व्यापार भागीदारों से अधिक पूँजी–प्रचुर है। इस अध्ययन के निश्कर्श कि पूर्वी जर्मनी पूँजी–गहन वस्तु का निर्यात तथा श्रम गहन वस्तु का आयात करता है, ओहलिन प्रमेय से मेल खाता है।

आर0 भारद्वाज ने भारत के संदर्भ में भी यह देखा कि भारत के आयातों की अपेक्षा उसके निर्यात अधिक श्रम गहन थे। जहाँ तक अल्पविकसित देशों द्वारा पूँजी–गहन वस्तुओं के निर्यात करने का सवाल है तो यहाँ उल्लेखनीय है कि ये देश अधिकांशतः आयातित तकनीकी और मशीनरी का प्रयोग करते हैं और साथ ही पूँजी–प्रचुर विकसित देशों की बहुराश्ट्रीय कम्पनियाँ इन देशों में प्रत्यक्ष–विदेशी निवेश करके वस्तुओं का उत्पादन तथा निर्यात करने में संलग्न रहती है। और फिर इन देशों में कई कारणों से साधन कीमतें सही साधन–अनुपात को नहीं दर्शाती हैं।

वास्तविक जीवन में हम देखते हैं कि भूमि प्रचुर देश आस्ट्रेलिया भूमि–प्रधान वस्तुओं जैसे ऊन, माँस और गेहूँ आदि का निर्यात करता है। ब्राजील और कोलम्बिया कॉफी के बड़े निर्यातक हैं। खाड़ी देश पेट्रोलियम उत्पादों के बड़े निर्यातक हैं। ये सभी हेक्सर–ओहलिन सिद्धान्त की पुश्टि करते हैं। इस सिद्धान्त के अनेक अपवाद / विरोधाभास विश्व व्यापार में पाए जा सकते हैं परन्तु इससे सिद्धान्त अवैध नहीं हो जाता है।

वनेक ने अपने अध्ययन में बताया कि अमेरिका में अनेक प्राकृतिक संसाधन और पूँजी परस्पर पूरक है। इसलिए अमेरिका का व्यापार ढाँचा ऐसा है कि वह अपने दुर्लभ प्राकृतिक संसाधनों को संरक्षित रखता है। दूसरे `शब्दों में अमेरिका प्राकृतिक संसाधन गहन उत्पादन का आयात करता है न कि पूँजी–गहन उत्पाद का।

इकाई-05

तकनीकी प्रगति एवं अंतर्राष्ट्रीय व्यापार

(Technological Progress and International Trade)

5.10 प्रस्तावना

5.11 उद्देश्य

5.12 तकनीकी प्रगति आधारित अंतर्राष्ट्रीय व्यापार

5.13 तकनीकी अंतराल अथवा नकल अंतराल सिद्धांत

मान्यताएं

व्याख्या

आलोचनाएं

5.14 वर्नन का वस्तु चक्र सिद्धांत

मान्यताएं

व्याख्या

आलोचनाएं

5.15 सारांश

5.16 शब्दावली

5.17 संदर्भ ग्रंथ सूची

5.18 अभ्यास प्रश्न

4.1 प्रस्तावना (Introduction)

हेक्शर-ओलिन सिद्धांत बहुत प्रबंधात्मक मान्यताओं पर आधारित है कि दो देश हैं जहां श्रम और पूंजी की मात्राएं स्थिर हैं, रुचियां अपरिवर्तित हैं, प्रौद्योगिकी और पैमाने के प्रतिफल स्थिर हैं तथा परिवहन लागत शून्य है। वास्तव में यह सभी घटक जो व्यापार को प्रभावित करते हैं निरंतर परिवर्तित होते रहते हैं इसलिए यह लाभदायक होगा कि इनमें से कुछ मान्यताओं को शिथिल कर दिया जाए ताकि साधन संपन्नताओं, रुचियों, परिवहन लागतों, प्रौद्योगिकी आदि के प्रभावों का अध्ययन अंतर्राष्ट्रीय व्यापार पर किया जा सके। यह अध्याय अंतर्राष्ट्रीय व्यापार पर तकनीकी प्रगति के प्रभावों की व्याख्या करता है तथा इसके अंतर्गत दिए गए कुछ सिद्धांतों की विवेचना करता है।

4.2 उद्देश्य (Learning Goals)-

प्रस्तुत इकाई पढ़ने के पश्चात,

आप तकनीकी प्रगति का अंतरराष्ट्रीय व्यापार पर प्रभाव तथा इससे संबंधित कुछ सिद्धांतों को आप समझ सकेंगे।

4.3 तकनीकी प्रगति आधारित अंतर्राष्ट्रीय व्यापार (Trade Based on Technological Progress)

श्रम, पूंजी व प्राकृतिक संसाधनों की सापेक्ष उपलब्धता में अंतर के अलावा राष्ट्रों के बीच पैमाने की मितव्ययिताएं (पैमाने के बढ़ते प्रतिफल या घटती लागतें), विभेदीकृत उत्पाद, रुचियों में परिवर्तन, भिन्न-भिन्न मांग स्थितियां, तकनीकी में गतिशील परिवर्तन, परिवहन लागतों में अन्तर, शोध व विकास खर्च में अन्तर आदि का अस्तित्व, अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का एक अलग निर्धारक हो सकता है। रिकार्डो और हेक्शर ओलिन सिद्धांत स्थिर उत्पादन की तकनीकी मान्यता पर आधारित है। आगे चलकर व्यापार पर प्रौधोेगिकीय परिवर्तन के प्रभाव का विश्लेषण पोसनर तथा वर्नन जैसे अर्थशास्त्रियों द्वारा किया जाता है। इनके सिद्धांत समय को मौलिक रूप से अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के निर्धारण में शामिल करते हैं अतः यह स्थैतिक हेक्शर ओलिन सिद्धांत के गतिशील विस्तार माने जा सकते हैं।

4.4 तकनीकी अंतराल अथवा नकल अंतराल सिद्धांत (Technological Gap or Imitation Gap Theory)

पोसनर ने तकनीकी अंतराल सिद्धांत 1961 में विकसित किया था जिसके अनुसार, तकनीकी परिवर्तन एक निस्तर चलने वाली प्रक्रिया है। औद्योगिकृत राष्ट्रों में तकनीकी नवप्रवर्तन को ''वस्तुओं की नई किस्मो के उत्पादन'' अथवा ''वर्तमान वस्तुओं के उत्पादन के नए तरीकों'' में व्यक्त किया जा सकता है। पोसनर के अनुसार, देशों में हो रहे तकनीकी नवप्रवर्तन के निर्माण विस्तार में लगने वाला समय, व्यापार के स्वरूप को प्रभावित करता है

4.4.1 मान्यताएं (Assumptions)

पोसनर के सिद्धांत की प्रमुख मान्यताएं निम्नलिखित हैं-

1. दो देश हैं।
2. दोनों देशों में समान साधन सम्पन्नताएं हैं।
3. दोनों देशों में मांग स्थितियां समान हैं।
4. दोनों देशों में व्यापार से पहले साधन-कीमत अनुपात समान हैं।
5. दोनों देशों में तकनीक विभिन्न भिन्न-भिन्न हैं।

4.4.2 व्याख्या

यदि देशों के साधन अनुपात और रुचियां समान भी हो तो भी आविष्कार और नवप्रवर्तन व्यापार को पैदा कर सकते हैं। जब एक फर्म किसी नए उत्पाद या उत्पादन के नए ढंग का विकास करती है, जो घरेलू बाजार में लाभदायक बन

जाती है तो वह अपने उत्पादन का प्रचार कर वस्तु का विदेशी बाजार को निर्यात करती है, जिससे यह फर्म अस्थायी एकाधिकार को प्राप्त करती हैं जिसे प्रायः कॉपीराइट्स और पेटेन्ट अधिकारों से सुरक्षित रखा जाता है। नवप्रवर्तन कर रही फर्म या निर्यातक देश को शेष विश्व पर तुलनात्मक लाभ तब तक प्राप्त होता है जब तक कि आयातक देश उत्पादन की नई प्रक्रियाएं नहीं सीख लेते अथवा उत्पादों की नई किस्मों की नकल नहीं कर सकते हैं

तकनीकी नवप्रवर्तन (नए उत्पाद या उत्पादन विधि) के प्रकट होने तथा विदेशी उत्पादक द्वारा इनके प्रतिस्थापकों को बाजार में लाने के बीच लगा समय का अंतराल तकनीकी अंतराल या अनुकरण अंतराल को प्रकट करता है। इस अवधि में इस दूसरे देशों में नए वस्तु के आयात होते रहते हैं। पोसनर ने अनुकरण अंतराल को तीन भागों में विधरित किया है

प्रथम, विदेशी प्रतिक्रिया अंतराल, किसी विदेशी फर्म द्वारा वस्तु की नई किस्म या नई उत्पादन तकनीक विकसित करने में लगा समय होता है।

दूसरा, घरेलू प्रतिक्रिया अंतराल, अन्य घरेलू उत्पादकों द्वारा अनुकरण करने, घरेलू बाजार में अपना प्रमुत्व स्थापित करने तथा विदेशी बाजार में इसे बनाए रख सकने में लगा समय होता है।

तीसरा, मांग अंतराल घरेलू उपभोक्ताओं द्वारा नई वस्तु के लिए रुचि प्राप्त करने में लगा समय होता है।

पोसनर ने नवप्रवर्तन व नकल अंतराल के एकीकरण को गतिशीलता का नाम दिया। एक गतिशील देश वह है जो अधिक दर पर नवप्रवर्तन करता है और अधिक गति से विदेशी नवप्रवर्तनों की नकल करता है। यदि दो व्यापार करने वाले देशों में से किसी देश में गतिशीलता का अंश अधिक है तो वह उसके बाजारों में विस्तार तथा परिणामस्वरूप व्यापार शेष में लाभ का अनुभव करेगा।

पोसनर के अनुसार, तकनीकी नवप्रवर्तन के द्वारा व्यापार उत्पन्न होगा यह इस बात पर निर्भर करेगा कि मांग और नकल अंतरालों का शुद्ध प्रभाव क्या है| यदि मांग अंतराल, अनुकरण अंतराल से अधिक है या बराबर है अर्थात् घरेलू उपभोक्ता नई वस्तु को अपनने में देरी करते हैं तथा घरेलू उत्पादक नई वस्तु का शीघ्र उत्पादन करना प्रारम्भ कर देते हैं तो इससे पहले की विदेश में नए वस्तु की मांग हो वे नई तकनीकी को अपना लेंगे-इस अवस्था में तकनीकी नवप्रवर्तन व्यापार को पैदा नहीं करेंगे। इसके विपरीत यदि नकल अंतराल, मांग अंतराल की अपेक्षा अधिक लम्बा है तो नवप्रवर्तन से व्यापार के पैदा होने का झुकाव होगा।अनुकरण अंतराल, मांग अंतराल से जितना अधिक होगा, विदेश में नई वस्तु का आयात उतनी ही दीर्घ अवधि तक रहेगा। (तथा जब अनुकरण व मांग अंतराल समान होते हैं तो नई वस्तु के आयात समाप्त हो जाएंगे।) इस प्रकार दो देशों के मध्य व्यापार का स्वरूप दो अंतरालों की सापेक्ष अवधि पर निर्भर होगा।

पोसनर द्वारा दिए गए व्यापार सिद्धांत की व्याख्या चित्र के द्वारा की जा सकती है। चित्र में समय को समानान्तर को अक्ष पर तथा देश A का अनुकरण कर रहे देश B के विरुद्ध व्यापार शेष को अनुलम्ब अक्ष पर लिया गया है| देश A वस्तु X के लिए नवप्रवर्तन करने वाला देश है। बिंदु t_1 तक दोनों देशों के बीच वास्तु X कोई व्यापार नहीं है। बिंदु t_1 पर देश बिंदु A नए उत्पाद को बाजार में दाखिल करता है। अनुकरण कर रहे देश बिंदु B के उपभोक्ताओं को जब नए उत्पाद का पता लगता है तो वे इसका उपभोग शुरू कर देते हैं। देश B में मांग अंतराल देश के (X) निर्यातों की मात्रा को

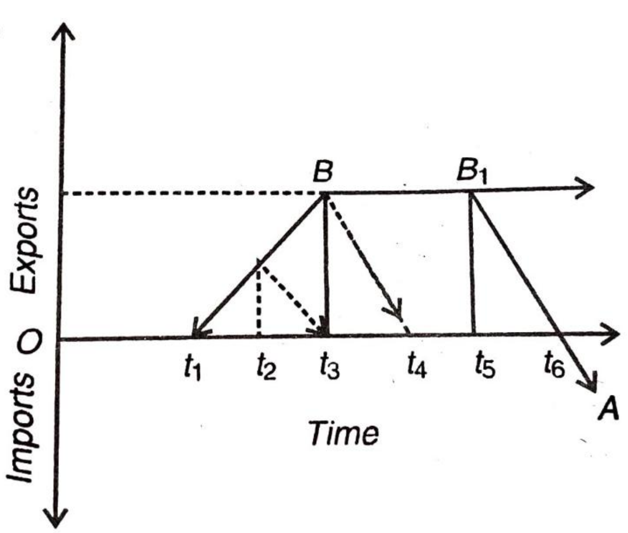

निर्धारित करेगा (t_1B की ढ़लान को)| अनुकरण अंतराल यह निर्धारित करेगा कि कितनी समय अवधि तक देश B वस्तु का आयात देश A से करेगा तथा A के निर्यातों की मात्रा भी। यदि B देश में वस्तु का कोई अनुकरण नहीं होता तो देश A उसका निर्यात करता रहेगा जबतक अवधि t_3 निर्यात की अधितम सीमा B तक नहीं पहुंचे जाते हैं। t_1 से t_3 तक का समय मांग अंतराल है| यदि A देश में उत्पादक नई वस्तु को t_3 समय तक उत्पादित करगा करना शुरू कर देते हैं तो देश A के निर्यात कम हो जाएंगे और वे समय t_4 पर बंद भी हो जाएंगे। ऐसी स्थिति में अनुकरण अंतराल t_3 t_4 मांग अंतराल t_1 t_3 से छोटा होगा।

यदि अनुकरण अंतराल लंबा है और उत्पादक t5 समय तक नई वस्तु के नव प्रवर्तन को अपना नहीं सकते तो देश B अपने अधिकतम स्तर B1 तक निर्यात करता रहेगा। जब B देश वस्तु का उत्पादन पर करना प्रारंभ कर देता है तो अनुकरण अंतराल छोटा हो जाता है तथा A से निर्यात कम होने लगते हैं और t6 पर बन्द हो जाते हैं जब वस्तु का पूरी तरह से अनुकरण हो जाता है। यदि B देश में उत्पादक वस्तु में नया नवप्रवर्तन करते हैं जिससे इनकी वस्तु A देश की वस्तु से बेहतर होती है तो B देश इस वस्तु के साथ देश A के मार्केट में प्रवेश करेगा। ऐसी स्थिति में, देश A इस वस्तु का देश B से आयात करना प्रारंभ कर देगा जैसा t6 से नीचे A तक तीर दर्शाता है।

नवप्रवर्तन और अनुकरण की दोनों धारणाओं को पोसनर एक एकल गतिशीलता की धारणा में इकट्ठा करते हैं। पोसनर एक देश की अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में गतिशीलता को, जिस दर पर वह देश नवप्रवर्तन करते हैं तथा जिस गति से वह विदेशी नवप्रवर्तनों का अनुकरण करते हैं उसके फलन के रूप में परिभाषित करते हैं। यदि दो व्यापार कर रहे देश की गतिशीलता की अवस्था समान है तो उनमें व्यापार बिना भुगतान शेष की कठिनाइयों के होगा तथा प्रत्येक देश में नव परावर्तन का दूसरे देश में शीघ्रता से अनुकरण होने के कारण व्यापार से दोनों देशों में विकास होता है।यदि एक व्यापार कर रहे देश की गतिशीलता की अवस्था दूसरे देश की अपेक्षा अधिक है तो दूसरा देश अपने व्यापार शेष को घाटे में पाएगा क्योंकि वह नई वस्तु की अधिक मात्रा आयात करेगा और अपने व्यापार शेष को सुधारने के लिए काम अनुकूल कीमतों पर अपनी परंपरागत वस्तुएं पहले देश को निर्यात करेगा जिससे नव प्रवर्तन और अनुकरण के गतिशील कारकों के कारण परंपरागत वस्तुओं में व्यापार को प्रोत्साहन मिलता है।

4.4.3 आलोचनाएं (Criticism)

यह सिद्धांत क्लासिकी तथा हेक्शर-ओलिन सिद्धांतों की तुलना में अधिक वास्तविक है क्योंकि यह अंतरराष्ट्रीय व्यापार पर तकनीकी परिवर्तन के प्रभाव का विश्लेषण करता है परंतु इसकी कुछ कमियां है जिसके कारण इसकी आलोचनाएं की जाती हैं-

यह तकनीकी अंतराल अथवा नकल अंतराल का ठीक-ठीक विश्लेषण नहीं करता है।

यह इस बात की व्याख्या करने में असफल है कि तकनीकी अंतराल क्यों पैदा होता है और इन्हें समय उपरांत कैसे समाप्त किया जा सकता है? तथा दोनों देशों में नव प्रवर्तनों के प्रतियोगात्मक ढांचे क्या है?

4.5 वर्नन का वस्तु चक्र सिद्धांत (Vernon's Product Cycle Theory)

रेयमंड वर्नन (Vernon) ने 1966 में अपने एक लेख 'International Investment and International Trade in the Product Cycle' में अमेरिकी अर्थव्यवस्था पर आधारित उत्पाद चक्र परिकल्पना प्रस्तुत किया। यह सिद्धांत इस बात की व्याख्या करता है कि एक नई वस्तु अपने विकास के दौरान अवस्थाओं की श्रेणियों अथवा चक्र से गुजरता है जिसमें उत्पाद का उत्पादन और निर्यात आरंभ में नव प्रवर्तन करने वाले देश के द्वारा किया जाता है तथा अंत में

वह इस उत्पाद अथवा इस उत्पाद की विभेदीकृत किस्म का आयात करता पाया जाता है। यह सिद्धांत उत्पादन में नवाचार व उसके बाद के प्रसार तथा उत्पादन में प्रयुक्त विभिन्न कारकों के महत्व को दर्शाता है।

4.5.1 मान्यताएं (Assumptions)

1. प्रारंभ में पूंजी-समृद्ध देशों में नई वस्तुएं विकसित होती हैं।
2. फर्मों द्वारा नई वस्तु का विकास अथवा नवप्रवर्तन कुछ वास्तविक अथवा काल्पनिक एकाधिकारात्मक लाभ के आधार पर किया जाता है।
3. नवप्रवर्तन का प्रोत्साहन घरेलू बाजार की आवश्यकता और अवसरों द्वारा प्रदान किया जाता है।
4. नव प्रवर्तन करने वाली कर्मों के पास विदेशी बाजारों की स्थितियों के बारे में सूचना नहीं होती है।
5. एक उन्नत देश में नव प्रवर्तन करने वाली फर्मों में घरेलू वातावरण अन्य उन्नत देशों से बिल्कुल भिन्न है।
6. प्रतिद्वंदी उत्पादकों का होना,निर्यात के लिए वस्तु के निर्माण को प्रोत्साहित करता है।

4.5.2 व्याख्या (Explanation)

वर्नन के अनुसार प्रारंभ में अमेरिका जैसे पूंजी समृद्धि देश में नई वस्तुओं का विकास होता है क्योंकि इनका अनुसंधान व विकास (Research and Development) में तुलनात्मक लाभ होता है। जिन नई वस्तुओं के विकास की संभावना होती है वह उपभोक्ता वस्तुएं होती हैं जिनकी घरेलू बाजार पर अच्छी पकड़ होती है जैसे इलेक्ट्रॉनिक वस्तुएं, सिंथेटिक वस्तुएं,फिल्में टिकाऊ उपभोक्ता वस्तुएं, ऑफिस मशीनरी और संयंत्र इत्यादि। उपभोक्ता वस्तुओं में अत्यधिक ऊंची प्रति व्यक्ति आय वाले देश नई वस्तुओं की बिक्री के लिए अवसर प्रदान करते हैं फिर पूंजी समृद्धि देश ऐसे नव प्रवर्तनों को प्रेरित करते हैं जो पैमाने की मितव्ययिताओं के साथ संबंध होते हैं। प्रारंभ में घरेलू स्थान को प्राथमिकता देते हैं,एक बार जब देश में नई वस्तु के क्रय विक्रय की प्रक्रिया चालू होती है जो नई वस्तु के जीवन में चक्र के रूप में देश के अंतरराष्ट्रीय व्यापार के प्रवाह को प्रभावित करती है। प्रत्येक वस्तु का एक निश्चित जीवन चक्र होता है जो उसके विकास से शुरू होता है और धीरे-धीरे फिर से गायब हो जाता है।

वर्नन द्वारा एक वस्तु के जीवन चक्र में निम्नलिखित अवस्थाओं का सुझाव दिया गया है-

1. पहली अवस्था (घरेलू बाजार में नए उत्पाद का प्रवेश)- इस अवस्था में विकसित देशों के उत्पादकों द्वारा ऊंची आय और श्रम बचाने वाले उत्पादों को विकसित किया जाता है क्योंकि ऐसे देश उनके निर्माण के लिए अच्छी तरह संपन्न होते हैं। आरंभ में उत्पादों को घरेलू बाजार में दाखिल किया जाता है। घरेलू बाजार में अच्छी प्रतिक्रिया व भरपूर घरेलू मांग उत्पाद को सफल बनाती है।

2.दूसरी अवस्था (निर्यात का प्रारंभ)- जब घरेलू बाजार में उत्पाद स्वीकृति को पा लेते हैं तो उन्हें ऐसे देश को निर्यात किया जाता है जहां रुचियां और आय के स्तर समान होते हैं। नव प्रवर्तन करने वाले उत्पादक कुछ समय के लिए घरेलू और विदेशी बाजारों में लगभग एक अधिकार की स्थिति प्राप्त करते हैं। इसका एकाधिकार निम्न बातों पर निर्भर करेगा - विदेशी बाजारों के में मांग में वृद्धि, विकसित वस्तु की प्रकृति जिस गति के साथ अन्य देश नई प्रौद्योगिकी को प्राप्त करते हैं, पेटेंट अधिकारों की प्रभावशीलता, पैमाने की किफायतों का फैलाव तथा उद्योग का संगठन।

3. तीसरी अवस्था (नई वस्तु का प्रसार)- इस अवस्था में नए उत्पादों के विदेशी बाजार इतने बड़े हो जाते हैं कि विदेशी उन्हें अथवा उनके निकट प्रतिस्थापकों को तैयार करना शुरू कर देते हैं। इसके परिणामस्वरुप विश्व बाजार में नवप्रवर्तन करने वाले देश के निर्माताओं का भाग घटने लगता है परंतु फिर भी वह उत्पाद की काफी बड़ी मात्राओं की विश्व बाजार में पूर्ति करते हैं।

4.चौथी अवस्था (तकनीकी अंतराल का काम होना)- जैसे-जैसे देशों के मध्य तकनीकी अंतराल कम होता जाता है नवप्रवर्तन करने वाला देश तुलनात्मक लाभ होने लगता है।

5.पांचवी अवस्था (उत्पाद मानकीकरण)- जब नई वस्तु के क्षेत्र में प्रौद्योगिकी सामान्य और अधिकतर मानकीकृत हो जाती है तो नव प्रवर्तक देश अपने तुलनात्मक लाभ को खो देता है।दूसरे देशों द्वारा अधिक अनुकरण से वह वस्तु के अंततः शुद्ध आयातक बन जाते हैं। वर्नन के अनुसार जब वस्तु मानकीकृत हो जाती है तो अल्प विकसित देशों के उत्पादक नव प्रवर्तक फर्म से उन्नत प्रौद्योगिकी उधार लेकर उसे सस्ते श्रम के साथ मिलाकर अपनी वस्तु को उन्नत देशों के अपने प्रतियोगिकी को की तुलना में कम कीमत पर बेचते हैं। इस प्रकार उन्नत देशों को अपनी वस्तु निर्यात करके तुलनात्मक लाभ उठाते हैं। जैसे-जैसे प्रौद्योगिकी और अनुकरण अंतराल कम होते जाते हैं वैसे ही वस्तु अंतराल कम होता है तथा वस्तु उत्पादित करने का तुलनात्मक लाभ भी एक देश से दूसरे देश को परिवर्तित होता है।

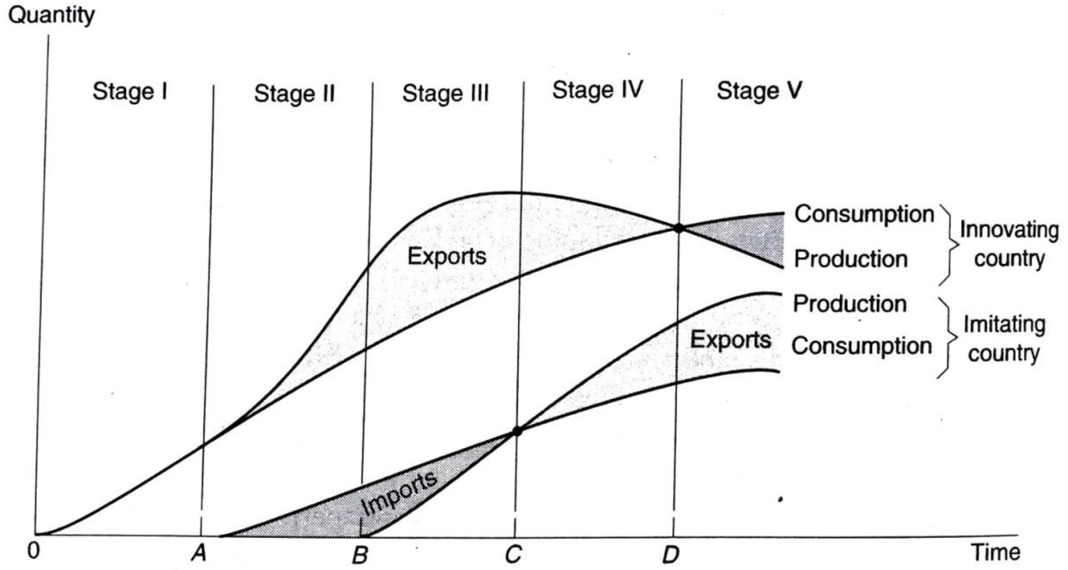

उत्पाद चक्र मॉडल को चित्र के माध्यम से दर्शाया जा सकता है जो नव परावर्तन तथा अनुकरण करने वाले देश के दृष्टिकोण से पांच भिन्न-भिन्न चरणों की व्याख्या करता है। प्रथम चरण (समय OA) में उत्पाद का उत्पादन तथा उपभोग नव प्रवर्तन करने वाले देश में ही किया जाता है। दूसरे चरण (समय AB) में नव प्रवर्तन करने वाले देश में नए उत्पाद के उत्पादन में सुधार होता है तथा घरेलू व विदेशी प्रति मांग को समायोजित करने के लिए उत्पादन में तेजी से वृद्धि होती है। तीसरे चरण (समय BC) में उत्पाद मानकीकृत हो जाता है तथा अनुकरण करने वाला देश घरेलू खपत के लिए उत्पाद का उत्पादन शुरू कर देता है। चौथे चरण (समय CD) में अनुकरण करने वाला देश नए उत्पाद का निर्यात नवप्रवर्तन करने वाले देश को करने लगता है तथा पांचवें चरण (समय D के बाद) में अन्य विदेशी बाजारों को भी निर्यात करने लगता है।

वर्नन का उत्पादन चक्र मॉडल तकनीकी अंतराल मॉडल का एक विस्तार है। इस मॉडल का पूरा ढांचा अमेरिका के अनुभव पर आधारित है। उस पूंजी समृद्ध देश के द्वारा कुशल मानवीय संसाधनों ,ऊंची प्रति व्यक्ति आय और बड़े घरेलू बाजार के लाभों के कारण बहुत से उत्पादों के नवप्रवर्तन किए गए। उस देश ने तुलनात्मक लाभ खो दिया जब पहले अन्य विकसित देशों ने नए उत्पादों का विकास किया और बाद में जब वस्तुएं मानकीकृत हो गई तो कम विकसित देश भी नए उत्पादों का विकास करने लगे। उत्पाद चक्र मॉडल परंपरावादी तुलनात्मक लागत लाभ के सिद्धांत और साधन अनुपातों के सिद्धांत का खंडन नहीं करता। नए उत्पाद के नवप्रवर्तन से तुलनात्मक लाभ इसकी वैज्ञानिक और तकनीकी

कुशलताओं की अपेक्षाकृत बहुलता के कारण स्थापित हुए। अपने तुलनात्मक लाभ के कारण नवप्रवर्तन करने वाला देश अपेक्षाकृत कम लागत पर उत्पादन और निर्यात करने के योग्य हो जाता है।

4.5.3 आलोचनाएं (Criticism)-

इस मॉडल की दोषपूर्ण मान्यताओं के कारण इसकी आलोचना की गई है-

1. इनकी यह मान्यता गलत है कि नवप्रवर्तन करने वाली फर्म को अन्य देशों में विद्यमान हालातों के बारे में ज्ञान नहीं।
2. नवप्रवर्तन करने वाले देश के घरेलू वातावरण और अन्य विकसित देशों के वातावरण में कोई महत्वपूर्ण अंतर नहीं होता क्योंकि उन सब में नए उत्पादों के नवप्रवर्तन के लिए मूल ढांचा विद्यमान होता है।
3. यह आवश्यक नहीं है कि नवप्रवर्तन आरंभ में पूंजी बहुल देशों में ही किए जाएं। हाल के समय में कई विकसित देशों में नवप्रवर्तन श्रम की बचत के विचार से नहीं बल्कि पूंजी और प्राकृतिक संसाधनों की बचत की दृष्टि से किए गए हैं।
4. यह मानना गलत है कि नवप्रवर्तन करना केवल विकसित विश्व तक ही सीमित है। ब्राजील, दक्षिण कोरिया, चीन और भारत जैसे कम विकसित देश भी उत्पादों को अपने स्थानीय हालातो के अनुरूप ढालते और नवप्रवर्तन करते हैं।
5. नव प्रवर्तन आवश्यक नहीं कि घरेलू बाजार द्वारा प्रस्तुत अवसरों से ही प्रोत्साहित हो बल्कि यह विदेशों में निर्यातों को अधिकतम करने के विचार से भी प्रेरित होते हैं।

4.6 सारांश-

यदि देशों के साधन अनुपात और रुचियां समान भी हो तो भी आविष्कार और नवप्रवर्तन व्यापार को पैदा कर सकते हैं। जब एक फर्म किसी नए उत्पाद या उत्पादन के नए ढंग का विकास करती है, जो घरेलू बाजार में लाभदायक बन जाती है तो वह अपने उत्पादन का प्रचार कर वस्तु का विदेशी बाजार को निर्यात करती है| एक नई वस्तु अपने विकास के दौरान अवस्थाओं की श्रेणियों अथवा चक्र से गुजरता है जिसमें उत्पाद का उत्पादन और निर्यात आरंभ में नव प्रवर्तन करने वाले देश के द्वारा किया जाता है तथा अंत में वह इस उत्पाद अथवा इस उत्पाद की विभेदीकृत किस्म का आयात करता पाया जाता है।

4.7 शब्दावली-

नव प्रवर्तन - को ''वस्तुओं की नई किस्मो के उत्पादन'' अथवा ''वर्तमान वस्तुओं के उत्पादन के नए तरीकों'' में व्यक्त किया जा सकता है।

उत्पाद की विभेदीकृत किस्म- वस्तुएँ एक-दूसरे के निकट स्थानापन्न (Close Substitute) तो होती हैं परन्तु वे समरूप (Homogeneous) नहीं होतीं और उनमे रंग, नाम, पैकिंग, क्वालिटी आदि का अन्तर पाया जाता है।

4.8 संदर्भ ग्रंथ सूची-

Bo Sodersten, International Economics, Macmillan, 1999

Paul Krugman and Maurice Obstfeld: International Economics: Theory and Policy, Dorling Kindersley India Pvt Ltd, 2009.

Dominik Salvatore, International Economics, John Willy & Sons, Inc., 2008
सुदामा सिंह एवं एम०सी० वैश्य, अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, ऑक्सफ़ोर्ड एंड आई०बी०एच० पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2007
एम० एल० झिंगन, अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, वृंदा पब्लिकेशन, दिल्ली, 2010.

4.9 अभ्यास प्रश्न-

4.9.1 लघु उत्तरीय प्रश्न-

1. व्यापार के नकल अंतराल मॉडल की संक्षिप्त व्याख्या करें।
2. उत्पाद चक्र से आप क्या समझते हैं।
3. तकनीकी प्रगति तथा अंतरराष्ट्रीय व्यापार' पर टिप्पणी करें।

4.9.2 दीर्घ उत्तरीय प्रश्न-

1. पोसनर के तकनीकी अंतराल मॉडल की व्याख्या करें।
2. वर्णन के उत्पाद चक्र मॉडल की स्पष्ट व्याख्या करें।

<u>इकाई- 06</u>

अपूर्ण बाजार, वस्तु विभेद तथा अंतरराष्ट्रीय व्यापार

प्रस्तावना
उद्देश्य
वस्तु विभेदीकरण पर आधारित व्यापार
अंतरा-उद्योग व्यापार
अंतरा-उद्योग व्यापार की माप
सारांश
शब्दावली
संदर्भ ग्रंथ सूची
अभ्यास प्रश्न

5.1 प्रस्तावना (Introduction)

पिछले अध्यायों में क्लासिकल तथा हेक्शर-ओलिन सिद्धांतों का उनके विभिन्न संसोधनों तथा विस्तारों के साथ विस्तृत विश्लेषण किया गया है। अनेक अर्थशास्त्रियों द्वारा उन प्रत्येक धारणाओं अथवा मान्यताओं (जिन पर हेक्शर-ओलिन सिद्धांत आधारित है) को शिथिल करने पर अंतर्राष्ट्रीय व्यापार पर पड़ने वाले प्रभावों की जांच की गई। उत्पाद तथा कारक बाजार में पूर्ण प्रतिस्पर्धा की धारणा आज के अंतरराष्ट्रीय व्यापार में मेल नहीं खाता है क्योंकि व्यापार का एक महत्वपूर्ण हिस्सा उत्पाद भेदभाव और पैमाने की अर्थव्यवस्थाओं पर आधारित है। यह अध्याय अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के एक बड़े हिस्से के आधार के रूप में अपूर्ण प्रतिस्पर्धा के महत्व को दर्शाता है,जिस पर आधारित अंतरा-उद्योग व्यापार की विस्तृत विवेचन इस अध्याय में की गई है।

5.2 उद्देश्य (Learning Goals)-

इस अध्याय को पढ़ने के पश्चात आप यह समझने में सक्षम हो जाएंगे कि उत्पाद विभेदीकरण किस प्रकार अंतरा-उद्योग व्यापार को जन्म देता है।

5.3 वस्तु विभेदीकरण पर आधारित व्यापार (Trade Based on Product Differentiation)-

आज आधुनिक अर्थव्यवस्थाओं के उत्पादन का एक बड़ा हिस्सा समरूप उत्पादन के बजाय विभेदित उत्पाद को प्रदर्शित करता है।इस प्रकार विभिन्न कारें रेंज रोवर,फरारी,बोलेरो इत्यादि एक समान नहीं हैं। परिणामस्वरुप अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के एक बड़े हिस्से में एक ही उद्योग (व्यापक उत्पाद समूह) के विभेदित उत्पादों का आदान-प्रदान शामिल हो सकता है और होता भी है। यह अंतरराष्ट्रीय व्यापार का एक बड़ा हिस्सा है जो पूरी तरह से अलग-अलग उद्योगों में अंतर-उद्योग व्यापार के विपरीत एक ही उद्योग के विभेदीकृत उत्पादों में अंतरा-उद्योग व्यापार है।

5.4 अंतरा-उद्योग व्यापार (Intra-Industry Trade)-

क्लासिकी, नव-क्लासिकी, हेक्शर-ओलिन, सेम्युएल्सन और अन्य मॉडल दो देशों के बीच अंतर-उद्योग व्यापार की व्याख्या करते हैं। अंतर-उद्योग अंतर्राष्ट्रीय व्यापार की एक ऐसी स्थिति है जहां एक उद्योग की वस्तु का एक भिन्न उद्योग की वस्तु के साथ विनिमय किया जाता है। उदाहरण के लिए भारतीय चावल का जर्मन मशीनरी के साथ व्यापार का होना। अंतर उद्योग अंतर्राष्ट्रीय व्यापार पूर्ण प्रतियोगिता की मान्यता पर आधारित है। दूसरी ओर अंतरा-उद्योग अंतर्राष्ट्रीय व्यापार, एक उद्योग में विभेदीकृत वस्तुओं के मध्य व्यापार है जो समान होती है परंतु समरूप नहीं होतीं। उदाहरण के लिए जर्मन कारों का फ्रांसीसी कारों के साथ व्यापार। अंतरा-उद्योग व्यापार विशिष्टीकरण और बढ़ रहे श्रम विभाजन के कारण होता है जो बाजार के आकार पर निर्भर करता है। शीघ्र आर्थिक वृद्धि और विश्व अर्थव्यवस्था के वैश्वीकरण के साथ अंतरा-उद्योग व्यापार मध्यवर्ती और अंतिम वस्तुओं में फैल गया है। यह ऊंची परिवहन लागतों के कारण सीमा-व्यापार के रूप में तथा फलों और सब्जियों की ऊंची भंडारण लागत के कारण मौसमी व्यापार के रूप में देशों के बीच में फैला है।

अंतर उद्योग व्यापार भिन्न-भिन्न कारणों से पैदा होता है।

पहला, पैमानों की बचतों के कारण देश संभवतः वस्तु की कुछ विशेष किस्मों का उत्पादन करते हैं जबकि अन्य देशों से वस्तु की कुछ अन्य किस्मों का आयात करते हैं।

दूसरा, एकाधिकार प्रतियोगिता बाजार में वस्तु विभेद के कारण अंतरा-उद्योग व्यापार की हालतें पैदा हो जाती हैं।

तीसरा, वस्तुओं का कुछ अनुपात देशों के द्वारा सदा आयात किया जाता है क्योंकि कुछ लोग सदा आयातित वस्तुओं की खरीद के लिए उत्सुकता दिखाते हैं।

चौथा, बहुदेशीय कंपनियां लागत को न्यूनतम करने के लिए बड़े पैमाने पर वस्तुओं के कलपुर्जे का उत्पादन विभिन्न देशों में करती हैं और तब उनका कुछ अन्य कलपुर्जों के साथ विनिमय करने के लिए उनका निर्यात करती हैं।

पांचवा, व्यापार करने वाले देशों के अंदर विभिन्न क्षेत्रों में परिवहन लागत के ढांचे में अंतर कुछ क्षेत्रों के उत्पादों के निर्यात देश के कुछ अन्य क्षेत्र में उनसे मिलते-जुलते उत्पादों के आयात के लिए मार्ग तैयार करते हैं।

छठा, व्यापार करने वाले देश के विभिन्न क्षेत्रों में मौसम के अन्तरों के कारण भी अंतरा-उद्योग व्यापार की हालतें पैदा हो जाती हैं। इस संबंध में **सौडर्स्टन** और **रीड** ने टिप्पणी की है, "अन्तरा-उद्योग व्यापार की व्याख्याओं में वस्तु विभेद, पैमाने की बचतों,एकाधिकार प्रतियोगिता अथवा अल्पाधिकार व्यवहार, बहुदेशीय कंपनियों की कार्यशैली इत्यादि में से कुछ या सारे तत्व शामिल होते हैं।"

अंतरा-उद्योग व्यापार के विरुद्ध जो तुलनात्मक लाभों को प्रकट करता है, अंतरा-औद्योगिक व्यापार तुलनात्मक लाभ को प्रकट नहीं करता। व्यापार करने वाले देशों में कुल मिलाकर पूंजी-श्रम अनुपात समान हो सकता है परंतु विदेश में वस्तु विभेद और मांग का ढंग लगभग लगातार अंतरा-उद्योग व्यापार को पैदा कर सकते हैं। यह पैमाने की बचतों के कारण ही है कि प्रत्येक देश अपने लिए उत्पादों का एक बड़ा विस्तार पैदा करता चला जाता है और उनके दूसरे देश के उत्पादों के साथ विनिमय करता चला जाता है।

5.4.1 अंतरा-उद्योग व्यापार की माप (Measuring Intra-Industry Trade)-

अंतरा-उद्योग व्यापार के स्तर को मापने के लिए ग्रूबल(Grubel) और लॉयड(Loyd) ने सन् 1975 में अंतर उद्योग व्यापार सूचकांक विकसित किया।

$I = 1-(X-M)/(X+M)$

जहां I = उद्योग में अंतरा-औद्योगिक व्यापार का सूचक, X_i = उद्योग i के निर्यात, M_i = उद्योग i के आयात हैं। यदि एक देश वस्तु का निर्यात करता है या आयात करता है अथवा दोनों नहीं तो I शून्य के समान होगा (I=0) दूसरी ओर यदि i उद्योग में आयात और निर्यात समान है तो I इकाई के समान होगा (I=1)।

अंतरा-उद्योग व्यापार इसलिए होता है की देशी और विदेशी फर्में जो समान वस्तु की समरूप किस्में बनाती हैं एक दूसरे के राष्ट्रीय बाजार में प्रवेश कर जाएंगी। जब दो देशों में दो फार्मो की एक समान वस्तु के उत्पादन में एकाधिकार है तो व्यापार होने से प्रतियोगिता होती है जिससे दोनों फार्मो की कीमतें और लाभ कम हो जाएंगे परिणाम स्वरुप एक अधिकारी फॉर्म को हानि होती है परंतु दोनों देशों में उपभोक्ताओं को लाभ होता है।

प्रथम, ऐसा व्यापार दोनों देशों में कई किस्म की वस्तुएं उपलब्ध कराता है। व्यापार के फैलने से उत्पादकों को पैमाने की मितव्ययिताओं के लाभ प्राप्त होते हैं जिससे वस्तुओं के लागतें और कीमतें कम हो जाती

हैं।परिणामस्वरुप, कुछ उत्पादक उत्पादन बंद कर देते हैं। अतः दोनों देशों को लाभ होता है जब सस्ती और गुणवत्ता वाली वस्तुएं उपलब्ध होती हैं।

दूसरे, वस्तु विभेदीकरण से एक छोटा देश पैमाने के मितव्ययिताओं और विशिष्टीकरण द्वारा एक बड़े देश को कम दाम पर वस्तुएं बेंच सकता है और इस प्रकार अंतर्राष्ट्रीय व्यापार से लाभ प्राप्त कर सकता है।

तीसरे, अंतरा-उद्योग व्यापार समान साधन संपन्नताओं और समान आकार के दो देशों के बीच व्यापार की मात्रा में वृद्धि करता है।

अंतिम, विभेदीकृत वस्तुओं पर आधारित व्यापार उत्पादन लागत को कम करने के लिए विभिन्न देशों में पुर्जों के उत्पादन और उनके जुटाने में वृद्धि करता है, इससे बहुराष्ट्रीय निगमों द्वारा पुर्जों के व्यापार में बहुत वृद्धि हुई है।

5.5 सारांश-

अंतरा-उद्योग व्यापार का विकसित औद्योगिक देशों में विशेष रूप से विनिर्मित वस्तुओं के व्यापार में महत्त्व है। समय बीतने के साथ ये देश पूंजी और बहुत कुशल श्रम की उपलब्धि और अपने तकनीकी स्तरों में अधिक समान हो गये हैं। प्राय: एक उद्योग में कोई स्पष्ट तुलनात्मक लाभ नहीं है। इसलिये अधिकतर व्यापार उद्योगों के अन्दर दो-तरफा विनिमय का रूप धारण कर लेता है। अंतरा-उद्योग व्यापार से तात्पर्य एक ही उद्योग से संबंधित समान उत्पादों के आदान-प्रदान से है। यह शब्द आमतौर पर अंतर्राष्ट्रीय व्यापार पर लागू होता है , जहां एक ही प्रकार की वस्तुओं या सेवाओं का आयात और निर्यात दोनों किया जाता है।

5.6 शब्दावली-

वस्तु विभेद- वस्तु विभेद का अर्थ है कि वस्तुएँ एक-दूसरे के निकट स्थानापन्न (Close Substitute) तो होती हैं परन्तु वे समरूप (Homogeneous) नहीं होतीं और उनमे रंग, नाम, पैकिंग, क्वालिटी आदि का अन्तर पाया जाता है।

अपूर्ण बाजार- जब बाजार में क्रेताओ और विक्रेताओं की संख्या अपेक्षाकृत कम होती है अथवा क्रेताओ तथा विक्रेताओं को बाजार का पूर्ण ज्ञान नहीं होता या वस्तु विभेद की स्थिति पाई जाती है। इस प्रकार अपूर्ण बाजार में एक वस्तु की एक ही कीमत नहीं पाई जाती।

5.7 संदर्भ ग्रंथ सूची-

Bo Sodersten, International Economics, Macmillan, 1999

Paul Krugman and Maurice Obstfeld: International Economics: Theory and Policy, Dorling Kindersley India Pvt Ltd, 2009.

Dominik Salvatore, International Economics, John Willy & Sons, Inc., 2008

एम० एल० झिंगन, अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, वृंदा पब्लिकेशन, दिल्ली, 2010.

5.8 अभ्यास प्रश्न

1. अंतरा-उद्योग व्यापार का क्या अर्थ है?
2. अंतरा-उद्योग व्यापार के कारण और महत्व की व्याख्या करें।
3. अंतरा-उद्योग व्यापार पर अनुभव सिद्ध कार्य की विवेचना करें।

4. अंतरा-उद्योग व्यापार की मात्रा के अनुमान क्या है?

5.विभेदीकृत उत्पादों में व्यापार किन कारणों से किया जाता है?

खंड 03: व्यापार की शर्तें तथा विकास एवं व्यापार

इकाई- 01

व्यापार की शर्तों की विभिन्न अवधारणाएं

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 व्यापार शर्तों का अर्थ
1.4 व्यापार शर्तों की विभिन्न अवधारणाएं
    1.4.1 सकल वस्तु विनिमय व्यापार शर्त
    1.4.2 निबल वस्तु विनिमय व्यापार शर्त
    1.4.3 आय व्यापार शर्त (Income Terms of Trade)
    1.4.4 एकल साधनात्मक व्यापार शर्त
    1.4.5 द्विसाधनात्मक व्यापार शर्त
    1.4.6 वास्तविक लागत व्यापार शर्त
    1.4.7 उपयोगिता व्यापार शर्त
1.5 व्यापार शर्त के निर्धारित करने वाले घटक
1.6 सारांश
1.7 शब्दावली
1.8 सन्दर्भ /उपयोगी ग्रन्थ सुची
1.9 अभ्यास प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र के खंड तीन "व्यापार की शर्तों तथा विकास एवं व्यापार" से सम्बंधित यह पहली इकाई है। व्यापार की शर्तें (Terms of Trade) एक महत्वपूर्ण आर्थिक अवदान होती हैं, जो विभिन्न देशों के बीच अंतरराष्ट्रीय व्यापार के संदर्भ में महत्वपूर्ण होती हैं। यह आर्थिक सूचक होती है, जो दो देशों के बीच विदेशी वस्तुओं और सेवाओं की विनिमय दर को व्यक्त करती है।

प्रस्तुत इकाई में व्यापार की शर्तों का अर्थ और व्यापार की शर्तों के प्रमुख अवधारणों के बारे में विस्तार से बताया गया है. व्यापार की शर्तें एक महत्वपूर्ण आर्थिक सूचक हैं, जो देशों के बीच अंतरराष्ट्रीय व्यापार के प्रबंधन में मदद करती हैं। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप व्यापार की शर्तों का अर्थ एवं महत्व समझ सकेंगे और व्यापार की शर्तों की विभिन्न अवधारणाओं को समझ सकेंगे।

1.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के बाद आप,

- व्यापार की शर्तों का अर्थ एवं महत्व समझ सकेंगे।
- व्यापार की शर्तों की विभिन्न अवधारणाओं को समझ सकेंगे।

1.3 व्यापार की शर्तों का अर्थ

अंतर्राष्ट्रीय व्यापार की शर्तें इस बात से संबंध रखती हैं कि भिन्न-भिन्न देश किस प्रकार से अपनी अपनी वस्तुओं का विनिमय करते हैं। दो देशों के बीच होने वाले व्यापार से होने वाले लाभ का आकलन व्यापार शर्त की स्थिति के आधार पर किया जाता है। डेविड रिकार्डो और मिल के समय से ही अर्थशास्त्रियों ने देश में व्यापार की शर्तों के निर्धारण पर बहुत ध्यान दिया है। किसी समय पर व्यापार शर्त के आंकलन के लिए व्यापार शर्त का मापन किसी पूर्व समय (आधार वर्ष) के सापेक्ष किया जाता है। व्यापार शर्त के मापन हेतु सभी संबंधित चरों के आधार वर्ष के सूचकांक को 100 मान कर चालू वर्ष के लिए व्यापार शर्त के सूचकांक को ज्ञात कर लिया जाता है। हाल के वर्षों में अर्थशास्त्रियों ने दो कारणों से व्यापार की शर्तों में बहुत अधिक दिलचस्पी ली – प्रथम, व्यापार की शर्तें यह निर्धारित करती हैं कि व्यापार से होने वाला लाभ व्यापार करने वाले देशों में कैसे वितरित किए जाते हैं। दूसरे अंतरराष्ट्रीय व्यापार शर्तें चिरकालिक रूप से अल्प विकसित देशों के विरुद्ध रही हैं।

1.4 व्यापार शर्तों के विभिन्न अवधारणाएं

व्यापार की शर्तों की विभिन्न अवधारणाएं निम्नलिखित हैं:

1.4.1 सकल वस्तु विनिमय व्यापार शर्त (Gross Barter Terms of Trade)

व्यापार शर्त के इस अवधारणा का प्रतिपादन एस डब्ल्यू टासिंग ने 1927 में किया। इस अवधारणा के अंतर्गत किसी देश के व्यापार शर्त को उसके आयतों की मात्रा को निर्यातों की मात्रा के प्रतिशत के रूप में व्यक्त किया जाता है। इस अवधारणा के अनुसार व्यापार शर्त को गणितीय रूप में निम्नलिखित रूप में व्यक्त किया जाता है-

$$Tg = (Mq/Xq) \times 100$$

जहां पर , Tg सकल वास्तु विनिमय व्यापार शर्त को व्यक्त करता है, Mq आयतन की मात्रा सूचकांक को व्यक्त करता है तथा Xp निर्यातों की मात्रा सूचकांक को व्यक्त करता है।

यदि आयात के मात्रा सूचकांक में वृद्धि हो जाए तो व्यापार शर्त सूचकांक में वृद्धि हो जाएगी और यदि आयात के मात्रा सूचकांक में कमी हो जाए तो व्यापार शर्त सूचकांक में भी कमी हो जाएगी। ठीक इसी प्रकार यदि निर्यात के मात्रा सूचकांक में वृद्धि हो जाएतो व्यापार शर्त सूचकांक में कमी हो जाएगी और यदि निर्यात केमात्रा सूचकांक में कमी हो जाएतो व्यापार शर्त सूचकांक में वृद्धि हो जाएगी। व्यापार शर्त सूचकांक में वृद्धि होने पर व्यापार शर्त संबंधित देश के अनुकूल हो जाएगी और व्यापार शर्त सूचकांक में कमी होने पर व्यापार शर्त संबंधित देश के प्रतिकूल हो जाएगी।

1.4.2 निबल वस्तु विनिमय व्यापार शर्त (Net Barter Terms of Trade)

व्यापार शर्त की अवधारणा का भी प्रतिपादन टासिंग ने 1927 में किया था। इस अवधारणा के अंतर्गत किसी देश में व्यापार शर्त को उसके निर्यातों की कीमत को आया तो की कीमत के प्रतिशत के रूप में व्यक्त किया जाता है। इस अवधारणाके अनुसार व्यापार शर्त को गणितीय रूप में निम्नलिखित रूप में व्यक्त किया जाता है-

$$Tn = (Xp/Mp) \times 100$$

जहां पर, Tn निबंध वस्तु विनिमय व्यापार शर्ट को व्यक्त करता है, Xp निर्यातों की कीमत सूचकांक को व्यक्त करता है तथा Mp आयातो की कीमत सूचकांक को व्यक्त करता है।

यदि निर्यात के कीमत सूचकांक में वृद्धि हो जाए तो व्यापार शर्त सूचकांक में वृद्धि हो जाएगी और यदि निर्यात की कीमत सूचकांक में कमी हो जाएतो व्यापार शर्त सूचकांक में कमी हो जाएगी। ठीक इसी प्रकार यदि आयात के कीमत सूचकांक में वृद्धि हो जाए तो व्यापार शर्त सूचकांक में कमी हो जाएगीऔर यदि आयात की कीमत सूचकांक में कमी हो जाएतो व्यापार शर्त सूचकांक में वृद्धि हो जाएगी। व्यापार शर्त सूचकांक में वृद्धि होने पर व्यापार शर्त संबंधित देश के अनुकूल हो जाएगी और व्यापार शर्त सूचकांक में कमी होने पर व्यापार शर्त संबंधित देश के प्रतिकूल हो जाएगी । व्यापार शर्त की इस अवधारणा को वस्तु व्यापार शर्त(Commodity Terms of Trade) के नाम से भी जाना जाता है। वस्तुत: व्यापार शर्त की यही अवधारणा व्यावहारिक स्तर पर आधारभूत अवधारणा है।

1.4.3 आय व्यापार शर्त (Income Terms of Trade)

व्यापार शर्त के इस अवधारणा का प्रतिपादन जी. एस. डॉरेंस ने 1948-49 मैं किया था। इस अवधारणा के अंतर्गत किसी देश के व्यापार शर्त को उसके निर्यातों के मूल्य को आयतों की कीमत के प्रतिशत के रूप में व्यक्त किया जाता है। इस अवधारणा के अनुसार व्यापार शर्त को गणितीय रूप में निम्नलिखित रूप में व्यक्त किया जाता है।

$$Ti = (Xp/Mp) \times Xq = Tn \times Xp$$

जहां पर, Ti आए व्यापार शर्त को व्यक्त करता है, Xp निर्यातों की मात्रा सूचकांक को व्यक्त करता है, Xp निर्यात की कीमत सूचकांक को व्यक्त करता है तथा Mp आयतों की कीमत सूचकांक को व्यक्त करता है। वस्तुतः इस अवधारणा का प्रयोग संबंधित देश के आयात क्षमता के आंकलन के लिए किया जाता है।

1.4.4 एकल साधनात्मक व्यापार शर्त (Single Factorial Terms of Trade)

व्यापार शर्त के इस अवधारणा का प्रतिपादन जैकब वाईनर ने 1937 में किया था। इस अवधारणा के अनुसार व्यापारशर्त की गणितीय रूप में निम्नलिखित रूप में व्यक्त किया जाता है-

$$Tsf = (Xp/Mp) . Xz = Tn . Xz$$

जहां पर, Tsf एकल साधनात्मक व्यापार शर्ट को व्यक्त करता है, Xp निर्यातों की कीमत सूचकांक को व्यक्त करता है, Mp आयतन की कीमत सूचकांक को व्यक्त करता है तथा Xz निर्यात क्षेत्र की उत्पादकता सूचकांक को व्यक्त करता है।

1.4.5 द्विसाधनात्मक व्यापार शर्त (Double Factorial Terms of Trade)

- व्यापार क्षेत्र के इस अवधारणा का प्रतिपादन जैकब वाईनर ने 1937 में किया था।
- इस अवधारणा के अनुसार व्यापार शर्त को गणितीय रूप में निम्नलिखित रूप में व्यक्त किया जाता है-

$$Tdf = (Xp/Mp) \times Xz/Mz$$

जहां पर, Tdf द्विसाधनात्मक व्यापार शर्त को व्यक्त करता है, Xp निर्यातों की कीमत सूचकांक को व्यक्त करता है, Mp आयातों की कीमत सूचकांक को व्यक्त करता है, Xz निर्यात क्षेत्र की उत्पादकता सूचकांक को व्यक्त करता है तथा Mz आयात क्षेत्र की उत्पादकता सूचकांक को व्यक्त करता है।

1.94.6 वास्तविक लागत व्यापार शर्त (Real Cost Terms of Trade)

इस अवधारणा के अंतर्गत निर्यात क्षेत्र में लगे साधनों के उत्पादकता के साथ-साथ निर्यात क्षेत्र के निम्नलिखित रूप में व्यक्त किया जाता है-

Tr = (Xp/Mp) x Xz/Xr = Tn x Xz/Xr

जहां पर, Xr निर्यातों के उत्पादन के वास्तविक लगता को व्यक्त करता है।

1.4.7 उपयोगिता व्यापार शर्त (Utility Terms of Trade)

इस अवधारणा का प्रतिपादन द रॉबर्टसन ने किया था। वस्तुतः यह अवधारणा इस धारणा पर आधारित है कि निर्यात क्षेत्र में उत्पादन को प्राप्त करने के लिए घरेलू उपभोग में कमी होती है और इससे उपयोगिता में कमी होती है। इस अवधारणा के अनुसार व्यापार शर्त को गणितीय रूप में निम्नलिखित रूप में व्यक्त किया जाता है-

Tu = (Xp/Mp) x (Xz/Xr) x 1/Um = Tnx (Xz/Xr) x 1/Um

जहां पर, Um निर्यातों के उत्पादन के कारण उपयोगिता में होने वाली ह्वास को व्यक्त करता है।

1.5 व्यापार शर्त के निर्धारित करने वाले घटक-

व्यापार शब्द के निर्धारण में प्रमुख रूप से निम्नलिखित घटक उत्तरदाई होते हैं-

- आयतन एवं निर्यातों के मांग में विवरण
- प्रशुल्क
- अवमूल्यन
- आर्थिक विकास एवं समृद्धि

वस्तुत: व्यापार शर्त में होने वाला परिवर्तन किसी देश के आयातों एवं निर्यातों की मांग तथा पूर्ति में होने वाले परिवर्तन से निर्धारित होता है जो निम्नलिखित कारकों से निर्धारित होती है और यही कारक व्यापारशर्त को भी प्रभावित कर सकते हैं-

- जनसंख्या का आकार एवं उसमें वृद्धि
- निर्यात की आपूर्ति के लिए संसाधनों की उपलब्धता
- आयात एवं निर्यात किए जाने वाले वस्तुओं की प्रकृति
- औद्योगिक विविधता की स्थिति
- आयातित वास्तु के प्रति पसंदगी तथा आयात करने की क्षमता
- सरकार की व्यापार एवं वाणिज्यिक नीतियां

1.6 सारांश

व्यापार की शर्तें, अंतरराष्ट्रीय अर्थशास्त्र में मूल अवधारणा है, यह देश के निर्यात की मुकर्रर मूल्य हैं जो उसके आयात की तुलना में होते हैं। ये एक देश की आर्थिक कल्याण और वैश्विक बाजार में उसकी स्थिति

निर्धारित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। एक अनुकूल व्यापार की शर्तें मतलब होती है कि एक देश एक दिए गए निर्यात की मात्रा के लिए आयात की अधिक मात्रा प्राप्त कर सकता है, जिससे उसके जीवन गुणवत्ता को बढ़ावा मिलता है। उल्टे, एक अनुकूल व्यापार की शर्तें आर्थिक विकास और विकास को रोक सकती हैं। यह देशों के बीच अंतरराष्ट्रीय व्यापार की सुरक्षितता और सुधारने में मदद करती है और विश्व अर्थव्यवस्था के संतुलन को बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इसके अलावा, यह व्यापारिक निर्णयों को सहयोगपूर्ण और उद्धारणात्मक बनाने में मदद करती है, जिससे विदेशी मुद्रा वर्दी करने और आर्थिक स्थिरता प्राप्त करने में मदद मिलती है। इस प्रकार, व्यापार की शर्तें आर्थिक समृद्धि और अंतरराष्ट्रीय व्यापार के माध्यम से देशों के आर्थिक विकास के लिए महत्वपूर्ण हैं।

1.7 शब्दावली

व्यापार की शर्त : दो विभिन्न देशों के बीच व्यापार के दर में परिवर्तन को सूचित करने वाली शर्तें या मूल्य निर्धारण

व्यापार शर्त सूचकांक: का मतलब होता है "Trade Terms Index" या "व्यापार की शर्तों का सूचीकरण"। यह एक आर्थिक मातृका होती है जिसका उपयोग व्यापारिक लेन-देनों में व्यापार की शर्तों की मूल्यांकन और मूल्यांकन के लिए किया जाता है।

1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सुच

1. H. G. Mannur, *International Economics* ,Vikas Publishing House Pvt. Ltd. 2001
2. Bo Sodersten, International Economics ,Macmillan, 1999
3. Dominik Salvatore, International Economics, John Willy & Sons, Inc., 2008
4. D. M. Mithani, International Economics, Himalaya Publishing House, Mumbai, 2006
5. सुदामा सिंह एवं एम०सी० वैश्य, अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, ऑक्सफ़ोर्ड एंड आई०बी०एच० पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2007
6. एम०एल०झिंगन, अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, वृंदा पब्लिकेशन, दिल्ली, 2010.

1.6 अभ्यास प्रश्न

लघु उत्तरीय प्रश्न:

1. व्यापार की शर्तों से आप क्या समझते हैं ।
2. व्यापार की शर्तों से संबंधित विभिन्न अवधारणाओं की व्याख्या करें।
3. शुद्ध वस्तु विनिमय और सकल वस्तु विनिमय व्यापार शर्तों में भेद बताएं।

इकाई 02:
प्रेबिश-सिंगर विपरीत व्यापार शर्तों की अवधारणा

प्रस्तावना-

प्रेबिश-सिंगर सिद्धांत, अंतरराष्ट्रीय अर्थशास्त्र में मूलभूत अवधारणा है, जिसका मुख्य विषय है व्यापार की शर्तों के दुर्बल होने का प्राकृतिक घटना पर। इसका तर्क है कि समय के साथ, प्राथमिक वस्तु-निर्यात करने वाले देश अपने निर्यातों की मुकर्रर मूल्यों में उनके आयात की मनुफैक्चर वस्तु की मूल्यों की तुलना में कमी का सामना करते हैं। यह प्रतिज्ञा रौल प्रेबिश और सिंगर द्वारा 20वीं सदी के मध्य में विकसित की गई थी और यह वैश्विक आर्थिक असमानता के अध्ययन पर गहरा प्रभाव डाला है। दुर्बल होने वाली व्यापार की शर्तों का विकासशील देशों के लिए महत्वपूर्ण प्रभाव होते हैं, क्योंकि वे अक्सर कच्चे सामग्री और कृषि उत्पादों के निर्यात पर भारी डिपेंड करते हैं। प्रेबिश-सिंगर सिद्धांत इसे हाइलाइट करती है कि यह दीर्घकालिक प्रवृत्ति आर्थिक विकास को रोक सकती है, गरीबी को बढ़ावा देने, और वैश्विक आर्थिक असमानताओं को बनाए रखने में सहायक हो सकती है। दुर्बल होने वाली व्यापार की शर्तों की गतिकी को समझना नीतिकर्ताओं और अर्थशास्त्रीयों के लिए महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह विकसनशील विकास, व्यापार वार्ता, और वैश्विक स्तर पर आर्थिक असमानताओं को कम करने के लिए रणनीतियों को सूचित कर सकती है।

उद्देश्य-

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के बाद आप, व्यापार की शर्तें और उसका प्रभाव समझ पाएंगे। विकसित एवं विकासशील देश के बीच आर्थिक विभिन्नता को समझ पाएंगे।

प्रेबिश-सिंगर सिद्धांत की व्याख्या-

प्रेबिश-सिंगर सिद्धांत यह बताता है कि व्यापार की शर्तों का दीर्घकालिक रस अल्प विकसित देशों की वृद्धि को रोकने में एक महत्वपूर्ण घटक है। विश्व के परिसर और चक्रीय केंद्रों के बीच व्यापार की शर्तें विकसित देशों के पक्ष में स्थानांतरित हुई है। 1870 से 1940 के मध्य ब्रिटेन के निर्यात आंकड़ों के आधार पर रॉल प्रेबिश ने यह दर्शाया कि व्यापार की शर्तों का दीर्घकालिक झुकाव प्राथमिक वस्तुओं के विरोध और विनिर्मित तथा पूंजी वस्तुओं के पक्ष में रहा है। इस दृष्टिकोण का ह सिंगर ने पूर्ण समर्थन किया है।

प्रेबिश-सिंगर के अनुसार विकसित देशों में तकनीकी उन्नति हुई है जिसके फल कम विकसित देशों तक नहीं पहुंच पाए हैं।इसके अतिरिक्तऔद्योगिक देशों और औद्योगिक वस्तुओं के उत्पादन पर एकाधिकार नियंत्रण रहा है।वे वन निर्मित वस्तुओं की कीमतों में अपने पक्ष में तथा कम विकसित देशों के हितों के विरोध परिवर्तन कर सके।

मान्यताएं-

प्रेबिश-सिंगर सिद्धांत की मुख्य मान्यताएं निम्नलिखित हैं-

विकसित देशों में वृद्धि होती है तो एंजिल्स के नियम के कारण मांग का ढंग प्राथमिक उत्पादकों से विनिर्मित उत्पादकों की ओर सरक जाता है।

अल्प विकसित देश की प्राथमिक वस्तुओं के लिए मांग विकसित देशों में धीरे-धीरे बढ़ती है।
विकसित देशों की निर्यात वस्तुओं की मार्केट एकाधिकारात्मक है जबकि अल्प विकसित देशों की वस्तुओं की मांग प्रतियोगितात्मक है।
श्रमिक के अल्प विकसित देशों में मजदूरी काम है। इस कारण प्राथमिक वस्तुओं की कीमत कम होती है जो व्यापार की शर्तों में ह्रास लाती है।
विश्व में अल्प विकसित देशों की वस्तुओं के स्थानापन्न आ रहे हैं जो उनकी मांग को काम करते हैं।
विकसित देशों में निमृत वस्तुओं के उत्पादन उत्पादकता में वृद्धि के लाभ को कम कीमतों द्वारा अल्प विकसित देशों को नहीं देते हैं।
व्यापार की आई शर्तों में अर्ध विकसित देशों की आर्थिक वृद्धि में निर्धारक तत्व होते हैं।

व्याख्या-

प्रेबिश की यह मानता मान्यता है कि आयात करने की क्षमता अथवा व्यापार की आई शर्तें अल्प विकसित देशों की आय वृद्धि के निर्धारक तत्व है तथा व्यापार की शर्तें उत्पादकता लाभों को चक्रीय केंद्रों विकसित देशों से परिसर के देश अल्प विकसित को ले जाने वाले महत्वपूर्ण नाली है। उसका दवा है कि प्राथमिक वस्तुएं उत्पादित करने वाले अल्प विकसित देश विकसित देशों द्वारा किए गए विश्व के सुव्यवस्थित आर्थिक विकास के लाभों का हिस्सा पानी में असफल रहे हैं तथा उनके आयात करने के समर्थन में कमी आना इसका एक कारण है।

विकसित देशों की व्यापार शर्तों के दीर्घकालीन ह्रास के कारण निम्नलिखित है-

1. **उत्पादों के गुणात्मक सुधार का अभाव (Absence of qualitative improvement of products):** वन निर्मित वस्तुओं की तुलना में प्राथमिक वस्तुओं की नीचे कीमतों का मुख्य कारण यह है कि कम विकसित देश कोयला, कच्चा लोहा, चाय कॉफी, चावल आदि वस्तुओं का उत्पादन और निर्यात जारी रखे हुए हैं। इन वस्तुओं के गुणवत्ता लगभग वही है जो 50 साल पहले थी।
2. **तकनीकी उन्नति से लाभों का वितरण Distribution of gains from technical progress):** कम विकसित देशों में तकनीकी उन्नति से लाभ धनी देशों में उपभोक्ताओं को कम कीमतों पर प्राथमिक वस्तुओं के निर्यात के द्वारा प्राप्त हो गए हैं। इसकी तुलना में धनी देशों में तकनीकी उन्नति से लाभ ऊंचेआए स्तरो के रूप में वहां के उत्पादक अपने ही पास रख सके।
3. **स्नतपकारीवृद्धि (Immiserising Growth):** कम विकसित देशों की अंतर्राष्ट्रीय व्यापार शर्तों का ह्रास जगदीश भगवती के अनुसार स् प्रकार की स्नतपकार की वृद्धि की प्रक्रिया के कारण हो सकता है। अति निर्यात झुकाव युक्त विकास पर अत्यधिक बल और आयात प्रतियोगी उद्योगों के फैलाव के लिए पूरक संसाधनों की कमी न केवल उपभोग संतुलन के स्तर को कम करने का झुकाव रखते हैं बल्कि वह व्यापार की शर्तों में रस भी पैदा करते हैं।
4. **मांग की कम आए लचक (Low Income Elasticity of Demand):** कम विकसित देशों में व्यापार की शर्तों के ह्रास की एंजल के नियम के द्वारा भी व्याख्या की जा सकती है। इन देशों में खाद्य फसलों के उत्पादन की प्रधानता होती है। मांग की लचक के कम होने के कारण खेती वस्तुओं पर किए गए कुल खर्च का राष्ट्रीय आय में अनुपात विनिर्मित वस्तुओं पर किए गए खर्च के अनुपात की तुलना में काम हो जाता है। इससे बड़ा निर्यात योग्य अधिक के पैदा हो जाता है, जिसके कारण विदेशी बाजारों में बिक्री अपेक्षाकृत कम कीमतों पर की जाती है।

5. **आयतन का आयात प्रतियोगी उद्योगों पर प्रभाव (Impact of Imports on import-competing industries):** कम विकसित देशों के लिए व्यापार की शर्तों का प्रतिकूल होना विदेशी आयतों के स्वदेशी आयात प्रतियोगी उद्योगों पर नष्ट करने वाले प्रभाव के कारण भी हैं।उदाहरण के लिए, 19वीं शताब्दी में ब्रिटेन से मिलों द्वारा जारी तैयार सस्ते कपड़े द्वारा प्रतियोगिता से भारतीय दस्तकरियो का पतन हो गया था।
6. **कृषि उत्पादों के बड़े अधिक्य (Large Surpluses of Fram Products):** विकसित देशों में खदानोंडेयरी उत्पादों जैसे खेती उत्पादों में भारी भंडार पाए जाते हैं। इन उत्पादों को बड़े पैमाने पर एशिया और अफ्रीका के दुर्लभता ग्रस्त देशों में स्थानांतरित कर दिया जाता हैइससे खेती उत्पादों की अंतरराष्ट्रीय कीमत पर दबाव कार्य प्रभाव पड़ता है।
7. **मध्यवर्ती वस्तुओं की कमी (Shortage of Intermediary Goods):** एस.बी. लिण्डर ने कम विकसित देशों में प्रतिकूल व्यापार की शर्तों का कारण मध्यवर्ती वस्तुओं की कमी को माना है। मध्यवर्ती वस्तुओं की कम उपलब्धि के परिणाम स्वरुप विविधीकरण और रूपांतरण इन देशों में रुके रहते हैं।

8. **विदेशी निवेश पर प्रभाव (Impact of Foreign Investment):** सिंगर के अनुसार कम विकसित देशों की अर्थव्यवस्थाओं के व्यापार और विदेशी निवेश के लिए खुल जाने से विकसित देशों की अर्थव्यवस्थाओं पर मध्यवर्ती और उत्पादक वस्तुओं के निर्यातों के बड़े पैमाने पर फैलाव और उन निवेशों से भारी मात्रा से लाभों की प्राप्ति के रूप में संचयी गुणक प्रभाव हुआ है। कम विकसित देशों में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश बागान उद्योगों और खनिज क्षेत्र में किया गया है। इन्होंने विनिर्माण उद्योगों के विकास में कोई भूमिका नहीं निभाई।
9. **सिंथेटिक उत्पादों का विकास (Growth of Synthetic Products):** विकसित और कम विकसित देशों में तकनीकी विकास के कारण सिंथेटिक रबर, कृत्रिम रेशमी धागा, प्लास्टिक उत्पादों इत्यादि का उत्पादन किया जाने लगा है। इससे कम विकसित देशों के निर्यात की परंपरागत मदों के उत्पादन को भारी धक्का पहुंचा है।
10. **क्षेत्रीय आर्थिक ग्रुप (Regional Economic Groupings):** विकसित देशों में यूरोपीय संघ जैसे क्षेत्रीय आर्थिक रूपों के विकास से उनके आपस के व्यापार को प्रोत्साहन मिला है। परिणामस्वरुप कम विकसित देशों के निर्यात की वृद्धि धीमी पड़ गई है और उनके व्यापार की शर्तें पहले से बुरी हो गई है।
11. **संरक्षणात्मक नीतियां (Protectionist Policies):** जैसे ही कुछ विकासशील देशों ने अपने उद्योगों का विकास शुरू किया है, विकसित देशों ने संरक्षात्मक नीतियां अपना ली है।उन्होंने विकासशील देशों के निर्मित उत्पादों के विरुद्ध प्रशुल्क बढ़ा दिए हैं। परिणामस्वरुप व्यापार की शर्तें विकासशील देशों के विरुद्ध हो गई हैं।

<u>प्रेबिश-सिंगर की आलोचना–</u>

प्रदेश सिंगर सिद्धांत की कई आधारों पर आलोचना की गई है-

1. **निष्कर्ष का दृढ़ आधार नहीं (Not firm basis for inference) :** कम विकसित देशों के लिये व्यापार के पर शर्तों के दीर्घकालीन ह्रास का निष्कर्ष प्राथमिक वस्तुओं और विनिर्मित वस्तुओं के निर्यातों पर

आधारित है। इस की सम्बन्ध में यह याद रखना चाहिये कि कम विकसित देश प्राथमिक उत्पादों की व्यापक किस्मों का निर्यात करते हैं। में कभी-कभी वे कुछ विनिर्मित उत्पादों का भी निर्यात करते में हैं। साथ ही वे न केवल विनिर्मित वस्तुओं का बल्कि कई प्राथमिक उत्पादों का भी आयात करते हैं। इसलिये केवल प्राथमिक बनाम विनिर्मित निर्यातों के आधार पर व्यापार की की शर्तों के सम्बन्ध में पक्का निष्कर्ष निकालना उचित नहीं है।

2. **प्राथमिक उत्पादों के लाभों और हानियों का दोषपूर्ण विवरण (Faulty statement of gains and losses of primary exports) :** जगदीश भगवती ने बताया है कि इस सिद्धान्त में प्रयोग किया गया व्यापार की शर्तों का सूचक प्राथमिक उत्पादों के निर्यातकों के लाभ का अल्प-कथन (under-statement) करता है। प्राथमिक उत्पादकों की हानियों का मन (over- [statement) भी करता है।
3. **TOT का दोषपूर्ण सूचक (Faulty index of TOT):** प्रविश-सिंगर परिकल्पना ऐसे सूचक पर टिकी है जो ब्रिटिश वस्तु व्यापार शर्तों का उल्ट (Inverse) है। यह सूचक उत्पादों में गुणात्मक परिवर्तनों, उत्पादों की नई किस्मों के विकास, परिवहन जैसी सेवाओं इत्यादि की उपेक्षा करता है। 1870 से 1930 के समय के लिये ब्रिटिश व्यापार शर्तों के आधार पर सामान्य निष्कर्ष, किण्डलवर्नर (Kindelberger) के अनुसार, योरुप के अन्य विकसित देशों के लिये सत्य नहीं है।
4. **पूर्ति हालतों की उपेक्षा (Neglect of supply conditions) :** व्यापार की शर्तों को निर्धारित करने में प्रैबिश सिंगर सिद्धान्त केवल मांग की हालतों को ध्यान में रखता है। पूर्ति हालतों की, जिनमें लम्बे समय में महत्वपूर्ण परिवर्तन हो सकते हैं, उपेक्षा की गई है। वास्तव में सापेक्ष कीमतें न केवल मांग की हालतों पर बल्कि पूर्ति की हालतों पर भी निर्भर हैं।

5. **एकाधिकारी शक्ति का प्रभाव नहीं (Little effect of monopoly power):** इस सिद्धान्त के पक्ष में एक तर्क यह था कि कृषि की अपेक्षा उद्योग में एकाधिकारी शक्ति के ऊंचे दर्जे के कारण विकासशील देशों की व्यापार की शर्तों में दीर्घकालीन ह्रास हुआ। इस सम्बन्ध में यह दलील भी दी गई कि एकाधिकार तत्व के कारण हो तकनीकी उन्नति के लाभ कम विकसित देशों तक पहुंच नहीं सके। इस प्रकार की दलील का अनुभवसिद्ध प्रमाणों के द्वारा समर्थन नहीं किया गया।
6. **एंजल के नियम का लागू न होना (loapplicability of Engel's Law) :** विकसित देशों में प्राथमिक उत्पादों की मांग का दीर्घकालीन पतन एंजल के नियम के कारण माना गया था। परन्तु यह सत्य नहीं है क्योंकि यह नियम अनाज पर लागू होता है, कच्चे मालों पर नहीं, जो कम विकसित देशों के निर्यातों का काफी बड़ा अनुपात हैं।

व्यापार शर्तों में ह्रास के दुष्प्रभाव-

अल्प विकसित देशों की व्यापार शर्तों में ह्रास के निम्नलिखित दुष्प्रभाव पाए जाते हैं-

- **आयात क्षमता में गिरावट(Low Capacity to Import):** विकसित देशों से संबंधित अल्प विकसित देशकि निर्यात वस्तुओं की कीमतों में गिरावट से उनकी वस्तुएं आयात करने की क्षमता में कमी हुई है जिसके परिणामस्वरुप उनका भुगतान शेष की समस्याओं और बढ़ रहे बाह्य ऋणों का सामना करना पड़ता है।

- **भुगतान शेष के ऊंचे घाटे(Balance of Payments Deficits):** विकासशील देशों की व्यापार की शर्तों के ह्रास के कारण उनके आयात बिल और निर्यात से आय के बीच अंतराल बढ़ा है। इसके परिणामस्वरूप, अधिकतर कम विकसित देशों को बढ़ते हुए भुगतान शेष के घाटों की समस्या का सामना करना पड़ा है।
- **उधार लेने की कठोर शर्तों को लागू करना (Enforcement of stiff borrowing conditions):** व्यापारिक शर्तों में आ रहे बिगाड़ के कारण अल्प विकसित देशों की विदेशी कर्ज बाध्यताओं में वृद्धि हुई है। उन्हें आदर तथा विकास चुकता करने के लिए निर्यात में वृद्धि करने की आवश्यकता होती है जो वह अपनी विकसित देशों के साथ कमजोर सौदेबाजी शक्ति के कारण नहीं बढ़ा पाए। इसलिए उन्हें उधार लेने का सहारा लेना पड़ता है जो उनके व्यापार की शर्तों में और गिरावट लाता है।
- **विकास रोकना (Hampering Growth):** ऊंचे भुगतान शेष घाटे और बढ़ते कर्ज बड़े राजकोषीय घाटे लाते हैं क्योंकि अल्प विकसित देश अपने विकास और गैर विकास खर्चों को पूरा करने की स्थिति में नहीं होते हैं।यह, स्फ़ितिकिरि दबाव को लाते हैं । इस प्रकार व्यापार की शर्तें अल्प विकसित देशों में अधिक विकास की प्रक्रिया को रोकते हैं।

सारांश

प्रैबिश-सिंगर सिद्धान्त के विरुद्ध उठाई गई सभी आपत्तियों के होते हुए भी, इसके पक्ष में काफी अनुभवसिद्ध प्रमाण इकट्ठे हुए हैं। UNCTAD के द्वारा 1950-61 और 1960-73 की अवधियों के लिये किये गये अध्ययनों ने दर्शाया कि विकसित देशों की तुलना में कम विकसित देशों में व्यापार की शर्तों में सापेक्ष पतन हुआ था। थर्लवाल (Thirlwall) और बर्जविन (Bergevin) के द्वारा 1973-82 से की अवधि में किये गये अध्ययन ने यह प्रकट किया कि कम विकसित देशों की सभी प्राथमिक वस्तुओं के निर्यात के लिये व्यापार की शर्तों में वार्षिक पतन 0.36 प्रतिशत की दर पर हुआ। 1997 की UNDP की मानव विकास रिपोर्ट (Human Development Report) के अनुसार पिछले 25 वर्षों में सबसे कम विकसित देशों की व्यापार की शर्तों में कुल मिलाकर 50 प्रतिशत की कमी हुई।

अभ्यास प्रश्न

1. प्रैबिश-सिंगर सिद्धांत क्या है।
2. प्रैबिश-सिंगर की मान्यताएं क्या है।
3. विकासशील देशों में व्यापार की शर्तों के दीर्घकालीन ह्रास के कारण बताएं।
4. प्रैबिश-सिंगर के विरुद्ध क्या आपत्तियां उठाई जाती है?

इकाई 03:

अंतर्राष्ट्रीय व्यापार एवं आर्थिक विकास: व्यापार के स्थैतिक एवं गत्यात्मक लाभ

प्रस्तावना

आर्थिक विकास में विदेशी व्यापार की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। क्लास की तथा नव क्लास के अर्थशास्त्रियों ने देश के विकास में विदेशी व्यापार को इतना अधिक महत्व दिया कि इस वृद्धि का इंजन मन। इसके विपरीत मत रखने वालों का कहना है की ऐतिहासिक दृष्टि से विदेशी व्यापार ने अंतरराष्ट्रीय असमानता उत्पन्न की है।इसके परिणाम स्वरुप दरिद्र देश के बदले धनी देश और अधिक धनी बन गए हैं। इसलिए दृढ़ता

पूर्वक कहा गया है कि यदि अल्प विकसित देशों को अंतरराष्ट्रीय विशेष कारण में लाभों का परित्याग करना पड़े तो भी वह आयत स्थानापन नीतियों का अनुसरण करके आर्थिक विकास के दर बढ़ा सकते हैं।हम पहले इस बात पर विचार करेंगे कि अंतरराष्ट्रीय व्यापार किस प्रकार आर्थिक विकास में सहायक होता है,और फिर, इसके विरोधी मत पर की यह अल्प विकसित देशों के विकास में कहां तक बाधक हुआ है।

उद्देश्य

इकाई पढ़ने के पश्चात,

-आप अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का महत्व समझ सकेंगे

-व्यापार के स्थैतिक एवं गत्यात्मक लाभ को समझ सकेंगे

अंतर्राष्ट्रीय व्यापार एवं आर्थिक विकास: भूमिका

भिन्न-भिन्न देश एक दूसरे के साथ क्यों सौदे करते हैं, इसका मूल कारण व्यापार से लाभ है। क्लासिकी अर्थशास्त्रियों से पहले व्यापारवादियों के समय से यह विचार पाया जाता था कि निर्यात से एक देश धनी बनता है। आधुनिक समय में भी सभी विचारों के लेखक के विश्वास रखते हैं कि सभी अंतरराष्ट्रीय सौदे का आधार केवल लाभ है।

अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का महत्व

देश के लिए विदेशी व्यापार बहुत महत्व रखता है। यह विकास की लालसा उत्पन्न करता है,ज्ञान तथा अनुभव देता है,जो विकास को संभव बनाते हैं और इसे पूरा करने के साधन प्रदान करते हैं। हेबरलर का मत है "कुल मिलाकर मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचा हूं कि अंतरराष्ट्रीय व्यापार ने 19वीं तथा 20वीं शताब्दी में कम विकसित देशों में अत्यधिक योगदान दिया है और आशा की जा सकती है कि भविष्य में भी इतना बड़ा योगदान देगा और की आर्थिक विकास के दृष्टिकोण से सीमांत, साधारण संशोधनों तथा विचलनों के साथ ठोस मात्रा में विदेशी व्यापार की नीति श्रेष्ठतम है।"

<u>स्थैतिक लाभ-</u>

उत्पादन एवं कल्याण में वृद्धि: जब विदेश व्यापार के परिणामस्वरूप, किसी देश का एक निम्न उदासीनता कर्व से एक उच्चे उदासीनता कर्व पर चलता है, तो इससे सुझाव दिया जाता है कि लोगों का कल्याण बढ़ गया है। स्थायी व्यापार से होने वाले लाभों को दिखाने के लिए, हम एक उदाहरण लेते हैं। मान लें कि दो वस्त्र और गेंहूं की दो वस्त्र भारत और संयुक्त राज्य अमेरिका में उत्पन्न होती हैं, जब वे व्यापार में शामिल होते हैं। चित्र 23.8 से देखा जा सकता है कि व्यापार से पहले भारत वही निर्वाचन करेगा जिसके लिए बिंदु F पर संतुलन होता है (अर्थात् बिंदु F पर उत्पादन और उपभोक्ता बिंदु F पर उत्पादन और उपभोक्ता होता है), जहाँ मूल्य रेखा pp' को उत्पादन संभावना कर्व AB और उदासीनता कर्व IC1 को स्पर्श करती है।

मूल्य रेखा pp' की ढाल भारत में दो वस्त्रों की मूल्य अनुपात (या लागत अनुपात) को दर्शाती है। भारत को लाभ हो सकता है अगर अंतरराष्ट्रीय मूल्य अनुपात (व्यापार की शर्तों) घरेलू मूल्य अनुपात से pp' द्वारा प्रतिनिधित किया गया है से अलग हो। मान लें कि तय होने वाली व्यापार की शर्तें ऐसी होती हैं कि हम tt को व्यापार की

शर्त रेखा के रूप में प्राप्त करते हैं, जिसमें भारत और संयुक्त राज्य अमेरिका के बीच मूल्य अनुपात को प्रदर्शित किया गया है। अब tt' के रूप में दिए गए व्यापार की शर्त रेखा (अर्थात् नई मूल्य अनुपात रेखा) होती है। भारत त्याग की सट्टा रेखा tt को इसकी उत्पादन संभावना कर से संयुक्त होते समय बिंदु R पर उत्पादन करेगी।

बिंदु R पर, भारत उसे वस्त्र का अधिक उत्पादन करेगा, जिसमें उसका तुलनात्मक लाभहोता है, और गेहूं का कम उत्पादन करेगा, F पर की तुलना में। हालांकि भारत अपने उत्पादन संभावना घर पर अब बिंदु R पर उत्पादन करेगा, वहउसे बिंदु R द्वारा प्रतिनिधित्व किए गए गेहूं और वस्त्र की मात्रा उपभोग नहीं करेगा। नई मूल्य अनुपात जो व्यापारकी शर्त रेखा tt द्वारा प्रतिनिधित्व किया गयाहै, उन वेस्टन के उपभोग पर निर्भर करेगा, जो देश की मांग के पैटर्न पर निर्भर करेगा। इस कारक को शामिल करने के लिए हमने देश के सामाजिकउदासीनताकर IC1 और IC2 बनाए हैं। इन सामाजिक उदासीनता कर्वोन को दो वेस्टन की मांग को प्रतिनिधित्व करने वाले या दूसरे शब्दों में समाज के दो वेस्टन के बीच प्राथमिकता के पैमाने को प्रदर्शित करने के लिए उपयोग किया जाता है।

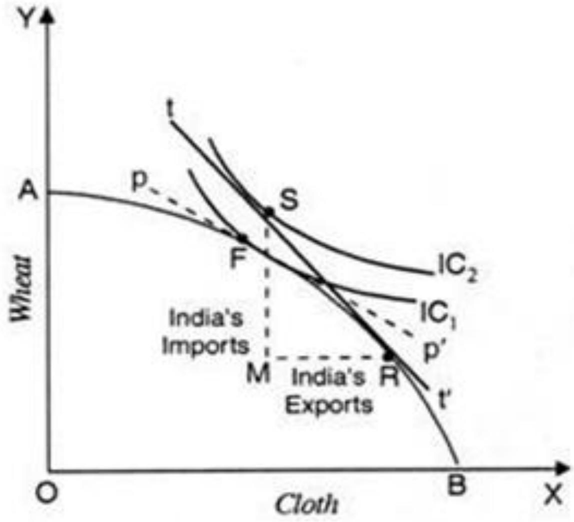

चित्र से पता चलता है कि ... ीनता कर्व IC2 के संवाद स्थान पर होती है, यानी बिंदु S ... गेंहू की मात्राएं उपभोग करेगा जैसा कि बिंदु S द्वारा प्र ... विशेषीकरण और व्यापार के परिणामस्वरूप भारत ने ... ता कर्व IC2 पर बिंदु S पर स्थानांतरित हो सका है। य ... सका सुझाव देता है कि व्यापार देश को अपनी उत्पादन संभावना कर्व से बाहर अपने उपभोग को बढ़ाने की संभावना देता है।

राष्ट्रीय आय में वृद्धि: अंतरराष्ट्रीय विशिष्टीकरण से सभी व्यापार करने वाले देशों में उत्पादन का फैलाव होता है। लोगों को रोजगार के बढ़ते हुए अवसर प्राप्त होते हैं। उत्पादन और रोजगार में वृद्धि से व्यापार करने वाले देशों की राष्ट्रीय आय में वृद्धि होती है।

गत्यात्मक लाभ

अंतर्राष्ट्रीय व्यापारसे प्रमुख प्रवाहित लाभ निम्नलिखित हैं-

- **तकनीकी विकास:** अंतर्राष्ट्रीय व्यापार से तकनीकी और वैज्ञानिक आविष्कार और नव प्रवर्तन को प्रेरणा मिलती है क्योंकि सभी देशों में उत्पादक उत्पादन के ऐसी तकनीक का विकास करने का प्रयत्न करते हैं जिनसे लागत को न्यूनतम किया जा सकता है और उत्पादन की गति को बढ़ाया जा सकता है। व्यापार के कारण विकसित टेक्नोलॉजी का विकसित देशों से कम विकसित देशों को स्थानांतरण होता है।

- **प्रतियोगिता में वृद्धि:** व्यापार प्रतियोगिता में तेजी लाता है जिससे सभी देश उत्पादित वस्तुओं की गुणवत्ता में सुधार करते हैं और उत्पादन कम से कम लागत पर प्राप्त कर सकते हैं। अंतरराष्ट्रीय प्रतियोगिता व्यापार करने वाले देशों के सभी उद्योगों की कार्य कुशलता में वृद्धि लाती है।
- **बाजार का विस्तार:** अंतर्राष्ट्रीय व्यापार से बाजार के आकार का विस्तार होता है। परिणाम स्वरुप उत्पादकों को उत्पादन केपैमाने, निवेश की मात्रा और रोजगार को बढ़ाने की प्रेरणा मिलती है।

- **निवेश में वृद्धि:** अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के कारण जब देश के अंदर उत्पादित वस्तुओं की मांग बढ़ती है तो निवेश को शक्तिशाली प्रेरणा मिलती है। निर्यात क्षेत्र में विकास से कई सहायक और पूरक उद्योगों का विस्तार होता है और निवेश के कई नए-नए अवसर पैदा होते हैं।अर्थव्यवस्था के निर्यात क्षेत्र में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश में भारी वृद्धि होती है।
- **संसाधनों का कुशल प्रयोग:** अंतर्राष्ट्रीय व्यापार उत्पादक संसाधनों के अधिक कुशल प्रयोग के लिए मार्ग तैयार करता है। जिन साधनों का पहला प्रयोग आर्थिक दृष्टि से लाभकारी नहीं माना जाता था, उनका भी शोषण और प्रयोग विदेशी बाजारों में मांग बढ़ जाने के फलस्वरूप आर्थिक दृष्टि से लाभकारी बन जाता है।
- **विकास को प्रेरणा:** निर्यात के लिए उत्पादन और वस्तुओं के अधिक आयतों से आर्थिक प्रणाली के अंदर समंजनों की श्रृंखला क्रियाशील हो जाती है जो अंत में व्यापार करने वाले देशों के विकास पर कुल मिलाकर तेजी लाने का प्रभाव डालती है।व्यापार न केवल निर्यात उद्योगों की वृद्धि को प्रेरणा देता है बल्कि मूलभूत ढांचे और सेवाओं के क्षेत्र के विकास को भी बढ़ावा देता है।

सारांश

एल्सवर्थ और क्लार्क लिथ मैं व्यापार के लाभों का इन शब्दों में कर दिया, "व्यापार एक गतिशील शक्ति है जो नव परिवर्तनों को तेजी देती है। उत्पादन के संगठन के नए ढंग व्यापार के द्वारा स्थानीय अर्थव्यवस्था तक फैलते हैं और व्यापार के प्रतियोगी शक्ति लागत की बचत करने वाले तकनीक को अपनाने की प्रेरणा देते हैं। व्यापार बहुत सी वस्तुओं के स्थानीय उत्पादन को ब्चत पूर्ण ढंग से करने को संभव बनाता है जिनका स्थानीय उत्पादन व्यापार के अभाव में संभव नहीं था।"

अभ्यास प्रश्न

लघु उत्तरीय प्रश्न:

1. व्यापार से लाभ के अर्थ की व्याख्या करें।
2. व्यापार से स्थैतिक एवं गत्यात्मक लाभो में भेद करें।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न:

1. व्यापार से स्थैतिक लाभों की स्पष्ट व्याख्या करें।
2. व्यापार से गत्यात्मक लाभों की स्पष्ट व्याख्या करें।

इकाई 04
आर्थिक विकास और अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 व्यापार पर वृद्धि के प्रभाव
4.4 संतापकारी वृद्धि
4.5 हिक्स मॉडल: तकनीकी प्रगति और अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार
4.5.1तकनीकी प्रगति का अर्थ
4.5.2 तकनीकी प्रगति का वर्गीकरण
4.6 मुल्यांकन
4.7 सारांश
4.8 शब्दावली
4.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सुची
4.10 उपयोगी सहायक ग्रन्थ
4.11 अभ्यास प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत अध्याय में उत्पादन, उपभोग तथा व्यापार की शर्तों पर साधन संचय या वृद्धि के प्रभावों का और आर्थिक वृद्धि पर तकनीकी प्रगति के प्रभावों का विश्लेषण किया जा रहा है।

4.2 उद्देश्य

व्यापार पर वृद्धि के प्रभाव को समझेंगे।
संतापकारी वृद्धि के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे।
हिल्स मॉडल समझेंगे। ।

4.3 व्यापार पर वृद्धि के प्रभाव

आर्थिक वृद्धि के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार पर उत्पादन और उपभोग के निम्नलिखित प्रभाव हैं:
साधन संचय अथवा वृद्धि के उत्पादन प्रभाव निर्यात्य वस्तुओं के घरेलू उत्पादन के व्यवहार पर बल देते हैं। निर्यात्य वस्तुओं का उत्पादन बढ़ने से व्यापार की मात्रा बढ़ती है और आयात वस्तुओं का उत्पादन बढ़ने से व्यापार की मात्रा घटती है। जोनसन' (Johnson)ने साधन वृद्धि के उत्पादन प्रभावों के पांच प्रकार बताए हैं :

(1) तटस्थ (Neutral)— जिस वृद्धि के परिणामस्वरूप निर्यात्य (exportable) और आयात्य (importable) वस्तुओं का उत्पादन एक जैसे अनुपात में बढ़ता है, वह तटस्थ वृद्धि होती है।

(2) व्यापार-उलट-झुकाव (Anti-trade-biased)—अथवा आयात झुकाव (Import-biased) - जिस वृद्धि के परिणामस्वरूप निर्यात्य वस्तुओं की अपेक्षा आयात्य वस्तुओं का उत्पादन अधिक अनुपात में बढ़ता है, वह व्यापार-उलट झुकाव अथवा आयात झुकाव वृद्धि होती है।

(3) व्यापारानुकूल झुकाव (Protrade-biased) — अथवा निर्यात झुकाव (Export-biased) - जिस वृद्धि के परिणामस्वरूप आयात्य वस्तुओं के उत्पादन की अपेक्षा निर्यात्य वस्तुओं का उत्पादन अधिक अनुपात में बढ़ता है, वह व्यापारानुकूल झुकाव अथवा निर्यात झुकाव वृद्धि होती है।

(4) अति-व्यापारानुकूल झुकाव (Ultra-protrade-biased) अथवा अतिनिर्यात झुकाव (Ultra-export-biased) – यह वृद्धि वह होती है जिसके परिणामस्वरूप आयात्य वस्तुओं का घरेलू उत्पादन घट जाता है।

(5) अति व्यापार उलट झुकाव (Ultra anti-trade-biased) - अथवा अति-आयात झुकाव (Ultra-import-biased)— वृद्धि वह होती है जिसके परिणामस्वरूप निर्यात्य वस्तुओं का उत्पादन घट जाता है। "औपचारिक भाषा में कहा जा सकता है कि आयात्य वस्तुओं की पूर्ति की उत्पादन लोच इकाई से कम हो तो व्यापारानुकूल झुकाव, इकाई के बराबर हो तो तटस्थ और इकाई सेअधिक हो तो व्यापार उलट-झुकाव प्रकार की वृद्धि कहलाती है। औपचारिक रूप से, अति व्यापारानुकूल झुकाव का अर्थ है आयात्य वस्तुओं की पूर्ति की ऋणात्मक उत्पादन लोच, और अति झुकाव व्यापार उलट झुकाव का अर्थ है निर्यात्य वस्तुओं की पूर्ति की ऋणात्मक उत्पादन लोच।"

4.4 संतापकारी वृद्धि (Immiserising Growth)

सन्तापकारी वृद्धि का सिद्धांत देश की व्यापार की शर्तों के ह्रास से संबंध रखता है जिसमें वृद्धि हो रही है। एज्वर्थ (Edgeworth) पहला अर्थशास्त्री था जिसने इस संभावना को बताया कि हो सकता है कि आर्थिक वृद्धि के परिणामस्वरूप वृद्धिशील देश की व्यापार शर्तें इस सीमा तक बिगड़ जाएं कि वृद्धि के फलस्वरूप होने वाले उत्पादन के लाभ को व्यापार की प्रतिकूल शर्तें समाप्त कर दें। जगदीश भगवती' ने इस स्थिति को 'सन्तापकारी वृद्धि' (Immiserising Growth) नाम दिया है।' उसके शब्दों में, आर्थिक विस्तार से उत्पादन बढ़ता है, पर हो सकता है कि उससे व्यापार शर्तें इतनी अधिक बिगड़ जाएं कि विस्तार के लाभदायक प्रभाव को समाप्त कर दें और वृद्धिशील देश की वास्तविक आय को घटा दें।"

4.5 हिक्स मॉडल: तकनीकी प्रगति और अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार

4.5.1 तकनीकी प्रगति का अर्थ

तकनीकी प्रगति या परिवर्तन में उत्पादन की नई विधियां खोजना, नई वस्तुएं विकसित करना और विपणन, प्रबंधन तथा संगठन की नई तकनीकें प्रस्तुत करना शामिल होता है। तकनीकी प्रगति उत्पादन फलन में परिवर्तन की पर्यायवाची है। जब तकनीकी प्रगति होती है तो इससे पूंजी और श्रम की उत्पादकता में वृद्धि होती है, दो आगतें (Inputs) मानते हुए इसे चित्र पर मूल (origin) की ओर शिफ्ट द्वारा और समोत्पाद वक्र (Isoquant) की ढलान में परिवर्तन द्वारा दर्शाया जाता है। यह बताता है कि अधिक उत्पादन या तो उन्हीं आगतों अथवा थोड़ी आगतों से किया जा सकता है।

4.5.2 तकनीकी प्रगति का वर्गीकरण

प्रो. हिक्स (John Hicks) प्रथम अर्थशास्त्री था जिसने तकनीकी प्रगति का तटस्थ, श्रम-बचतकारी और पूंजी-बचतकारी वर्गीकरण किया था। ऐसा परिवर्तन तटस्थ (Neutral) कहलाता है जो न तो पूंजी-बचतकारी हो और न ही श्रम- बचतकारी। हिक्स के अनुसार, वह तकनीकी प्रगति तटस्थ होती है जो श्रम तथा पूंजी की सीमान्त उत्पादकता को उसी अनुपात में बढ़ाती है, जब श्रम-पूंजी अनुपात तकनीकी परिवर्तन से पहले की स्थिति में हो। जो तकनीकी प्रगति स्थिर पूंजी श्रम, अनुपात पर श्रम की सीमान्त उत्पादकता की सापेक्षता में पूंजी की सीमान्त उत्पादकता को बढ़ाती है, वह तकनीकी प्रगति श्रम बचतकारी (Labour-saving) अथवा पूंजी प्रयोगकारी (Capital-using) होती हैं। जो तकनीकी प्रगति स्थिर पूंजी-श्रम अनुपात के रहते पूंजी की सीमान्त उत्पादकता की सापेक्षता में श्रम की सीमान्त उत्पादकता को बढ़ाती है, वह तकनीकी प्रगति पूंजी-बचतकारी (Capital-saving) अथवा श्रम-प्रयोगकारी (Labour-using) होती है।

इकाई 05

बाजार में हस्तक्षेप की आवश्यकता :संरक्षण

5.1 प्रस्तावना:

संरक्षण शब्द उस नीति की ओर संकेत करता है जिसके द्वारा घरेलू उद्योगों को विदेश की प्रतियोगिता से बचाया जा सकता है।इसका उद्देश्य यह है कम कीमत की वस्तुओं के आयात पर प्रतिबंध लगाए जाएं ताकि ऊंची कीमत की वस्तुओं का उत्पादन करने वाले घरेलू उद्योगों को बचाया जा सके।घरेलू उद्योगों को संरक्षण प्रदान करने का एक तरीका यह तो है कि आयात पर कितना शुल्क लगा दिए जाएं जिसे विदेशी वस्तुओं की कीमत, घरेलू वस्तुओं की कीमत से बढ़ जाए या दूसरा तरीका यह हैकी कोटा द्वारा उन्हें संरक्षण दिया जाएया अन्य करें प्रश्न प्रतिबंध लगाए जाएं।

5.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के बाद आप

-बाजार में हस्तक्षेप की आवश्यकता को समझ सकेंगे।

-संरक्षण के बारे में जान सकेंगे।

-विश्व उद्योग तर्क के बारे में जान सकेंगे।

तटकर और अभ्यांश के बारे में जान सकेंगे।

संरक्षण व संरक्षण के पक्ष में तर्क(Protection):

हबेर्लेर ने संरक्षण विषय तर्कों को दो वर्गों में विभाजित किया है:आर्थिक तथा गैर आर्थिक।

-आर्थिक तर्क:(Economic arguments)

संरक्षण के पक्ष में प्रायः निम्नलिखित तर्क दिए जाते हैं:

व्यापार शर्तों की तर्क (Terms of trade arguments):

किसी देश के भुगतान शेष से संतुलन को ठीक करने के लिए व्यापार की शर्तो का तर्क प्रस्तुत किया जाता है।तर्क किया हैआयात पर टैरिफ लगाने से देश की आयात से निर्यात की विनियम दर बेहतर हो जाती हैइसका मतलब यह है कि प्रशुल्क लगाने से व्यापार की शर्तें बेहतर हो जाती हैंक्योंकि विदेशी निर्यात कर्ता कोआयत शुक्ल के कुछ भाग का भुगतान करना पड़ता है। टैरिफ लगाने से व्यापार की शर्तों में जो सुधार होता है उसे चित्र एक में दर्शाया गया है।टैरिफ लगाने से पहले इंग्लैंडऔर जर्मनी के प्रस्ताव वक्र क्रमशःOEऔरOG हैं।व्यापार की प्रारंभिक शर्तें OT रेखा द्वारादी गई है।इंग्लैंड कपड़े की OCमात्रा निर्यात कर रहा है। और जर्मनी से लिनन की OL मात्रा आयात कर रहा है।मान लें कि जर्मनी की लिनन पर इंग्लैंड टैरिफ लगता है। यह इंग्लैंड के प्रस्ताव वक्रOE कोOE1 पर सरका देता है।इससे व्यापार की शर्तों OT से OT1 पर इंग्लैंड के पक्ष में हो जाती हैं अब इंग्लैंड OC1 कपड़ा निर्यात करता हैऔर बदले में जर्मनीOL1 से लिनन आयात करता हैअब यह पहले CC1 से कपड़ा कम निर्यात करता है औरLL1 कम लिनन आयात करता है।क्योंकि इंग्लैंड द्वारा टैरिफ लगाने से कपड़े की निर्यात में कमी जर्मनी से लाइनें के आयतन की मात्रा में कमी से अधिक है

(CC1>LL1),इसीलिए व्यापार की शर्तेनिश्चय से इंग्लैंड के पक्ष में हुई । पर जो देश प्रसिद्ध लगता है उसे पर कुछ प्रतिकूल प्रभाव भी पड़ता है।
प्रथम ,प्रशुल्क लगाने वाले देश की व्यापार शर्तों तो बेहतर हो जाती हैं परंतु व्यापार की मात्रा कम हो जाती है।दूसरा,प्रश्न लगाने से घरेलू उपभोक्ता के लिए आयातित वस्तु की कीमत बढ़ जाती है।तीसरा इसे दूसरे देश में प्रतिशोध की भावना जग जाती हैउपभोक्ता की संतुष्टि कम हो जाती है व्यापार की मात्रा घट जाने पर घरेलू संसाधनों का दोषपूर्ण आवंटन होता है और प्रतिशोध कार्य प्रश्न को से दोनों अर्थव्यवस्थाको हानि पहुंचती है।

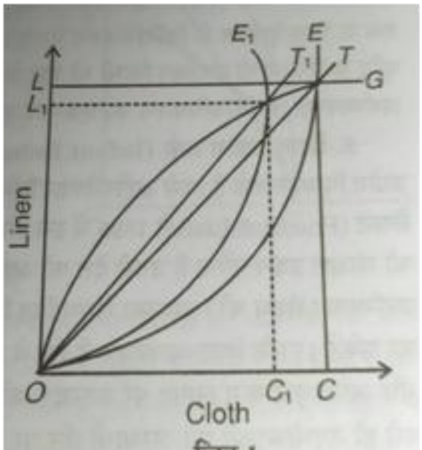

चित्र 1

सौदेबाजी का तर्क(Bargaining Argument)-तर्क यह दिया जाता है कि दूसरेदेश के साथव्यापार संबंधी बातचीतमेंसौदाकरने के लिए आवश्यक हैप्रश्न कोएक हथियार के रूप में प्रयोग किया जाता हैइस प्रकार इसका भय देश कोप्रेरित करता हैकि वहएक दूसरे कोपारस्परिक छूट दें।

राशिपातन विरोधी(anti dumping argument): तर्क इस प्रथा के विरुद्ध संरक्षण का पक्ष लिया जाता है राशि पाटन का अर्थ है परिवहन तथा स्थानांतरण की अन्य लगता का हिसाब लगाने के बाद किसी वस्तु को घरेलू बाजार की कीमत के मुकाबले विदेशी बाजार में कम कीमत पर बेचना।राशिपातन का उद्देश्य विदेशी बाजार मेंकम कीमत की वस्तुओं की भरमार करना हैइसके परिणाम स्वरूपआयत प्रतियोगी फ़र्मे तबाह हो जाती हैं।

विविधीकरण का तर्क(diversification argument): संरक्षण के पक्ष में एक या तर्क भी दिया जाता है कि संरक्षण से घरेलू उद्योगों का विविधीकरण होगा इसका मतलब यह है की अर्थव्यवस्था की संतुलित वृद्धि होनी चाहिए ताकि सभी क्षेत्र के साथ-साथ विकास हो इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए आवश्यक है कि कृषि और विनिर्माणकारी उद्योगोंको विदेशी प्रतियोगिता से संरक्षण प्रदान किया जाए तर्क सही है क्योंकि अनुभवइस बात का समर्थन करता है किजो देश संतुलित विकास नहीं करते, वे अंतरराष्ट्रीय आर्थिक हलचल सेजैसे की फसलों का फेल हो जाना मन्दि इस्फ़िति युद्धइत्यादिसे अधिक प्रभावित होते हैं

शिशु उद्योग तर्क(Infant industry argument) : संरक्षण के पक्ष में सबसे पुराना सर्वाधिक स्वीकृत तर्क शिशु उद्योग तर्क है इसे अलेक्जेंडर हैमिल्टन ने 1870 में व्यवस्थित रूप से प्रस्तुत किया और फ्रेडरिक लिस्ट ने1885 में से लोकप्रिय बनाया इसकी मान्यताया है कि जिस उद्योग तथा उद्योगों के ग्रुप को संरक्षण प्रदान करना है

उनसे देश को अध्यक्ष तुलनात्मक लाभ होता है इसलिए तरकीय दिया जाता है कि यदि उद्योगों को उनकी प्रारंभिकअवस्था मेंस्थापित विदेशी उत्पादकों से नहीं बचाया जाता है तो वह तुलनात्मक लाभ उठाने के लिए विकास नहीं कर सकेंगे। इसके लिए आवश्यक किया है कि वह इष्टतम जाकर तक विकसित हूं ताकि वह अत्यधिक दक्षता और प्रतियोगिता पूर्वक कार्य कर सके और अपेक्षाकृत कम लागत पर उत्पादन करें।शिशु उद्योगोंमें संसाधनों के प्रवाहको सुगम बनाने के लिए भी संरक्षण की जरूरत है।शिशु उद्योग संरक्षण के पक्ष में एक तरकीय हुई है कि जब कोई नया उद्योग शुरू होता है तो वह पैमाने की आंतरिक मित्यविताओ का लाभ नहीं उठा सकता और अपने विदेशी प्रतियोगिताओं के मुकाबले इसकी उत्पादन लागत भी अधिक होती है परंतु यदि इसी प्रकार की सुविधाएं जैसे सहाय किया विदेशी वस्तुओं पर भारी आयात शुल्क आदि प्रदान करके उसे संरक्षण दिया जाए तो वह अपना विस्तार करेगा और उसे पैमाने की आंतरिक मित्यविताये प्राप्त होगी।

आलोचनाएं:

अर्थशास्त्रियों ने संरक्षण के पक्ष में दिए गए शिशु उद्योग तर्क की कटु आलोचना की है

१.यह निर्णय करना कठिन है कि कुछ उद्योग को संरक्षण की जरूरत हैक्योंकि प्रारंभ में तो प्रत्येक उद्योग शिशु अवस्था में होता है।

२.किसी शिशु उद्योग को संरक्षण इस आश्वासन पर दिया जाता है कि जब उद्योग बड़ा हो जाएगा तो संरक्षण समाप्त किया जाएगा परंतु किसी विश्वसनीय कसौटी के अभाव के कारण इस संबंध में निर्णय कर पाना कठिन है।

३.यदि किसी उद्योग का कोई भाग अपने पैरों पर खड़ा भी हो जाए तो प्रश्न की आड़ में अनेक काम दक्ष फार्म में स्थापित हो जाती है जिसके कारण शुल्क समाप्त करना कठिन हो जाता है।

४.कुछ उद्योगपतिसंरक्षण के अंतर्गत एकाधिकार लाभ उठाने लगते हैं वह नहीं चाहते सिर्फ समाप्त किया जाए इसलिए वे विधायकों को रिश्वत देते हैं तथा देश की सामान्य राजनीति को भ्रष्ट बना देते हैं

५.हेबार्लर इस बात से सहमत नहीं है कि शिशु उद्योगों के विकास के परिणाम स्वरुप उत्पादन की आंतरिक तथा बाह्य मित्व्ययिताये की तथाकथितसंभावनाएं अस्पष्ट उलझी हुई तथा संदेह पूर्ण है।

पैमाने की मितव्ययिता (economies of scale):

हेच्शेर ओह्लिन सिद्धांत में देशों द्वारा व्यापार की जा रही दो वस्तुओं के उत्पादन में पैमाने के स्थिर प्रतिफलमां लिए जाते हैं। इसका मतलब या है कि दो वस्तुओं के उत्पादनमें अवसर लागत और सीमांत लागत स्थिर रहती हैजब उत्पादन पड़ता है। यह वास्तविक है क्योंकि बहुत से विकसित देशों के लागत फलनों के अनुभाविक अध्ययनों में यह पाया गया है कि पैमाने के बढ़ते प्रतिफल या घटती लगाते होते हैं पैमाने के बढ़ते प्रतिफल आंतरिक या बाहरी मित्यविताओ के कारण हो सकते हैं।परंतु एकफॉर्म को जो आंतरिकमित्यविताओप्राप्त होती है वह पूर्ण प्रतियोगिता की मान्यता के साथ मिल नहीं खाती है क्योंकि अंतत में एक फर्क को इतना बड़ा को बना देती हैकि वह एक अधिकार फॉर्म बन जाती है और अपनी वस्तु की कीमत को प्रभावित करती है। दूसरी ओरबाहरीमित्यविता पूर्ण प्रतियोगिता के साथ मेल खाती है क्योंकि यह उसे समय प्राप्त होती है जब एक उद्योग में सभी फॉर्मेट अपने उत्पादन स्तर के फैलने पर अपनी औसत लागत में कमी का अनुभव करती है/

प्रशुल्क:

प्रशुल्क को वस्तुओं पर लगाया गया एक कर या शुल्क है जब वे राष्ट्रीय सीमा में प्रवेश करती है या उसे छोड़ती हैं।इस अर्थ में प्रशुल्क से अभिप्राय आयात शुल्क व निर्यात शुल्क से है परंतु व्यावहारिक उद्देश्य के लिए,एक प्रशुल्क आयात शुल्क या सीमा शुल्क का पर्यायवाची है साथ ही साथइसको आम भाषा में तट कर भी कहते हैं।

प्रशुल्कों को अनेक प्रकार से वर्गीकरण किया गया है

१.उद्देश्यों के आधार पर

२.उत्पत्ति और निर्धारित स्थान के आधार पर

३.देशानुसार विभेद के आधार पर

४.प्रतिशोध के आधार पर

१.उद्देश्य के आधार पर प्रशुल्क को दो भागों में बांटा गया है

अ.राजस्व प्रशुल्क:राजस्व प्रशुल्क सरकार को राजस्व प्रदान करने के लिए होते हैं यह विलासिता की उपभोग वस्तुओं पर लगाए जाते हैं।

ब.संरक्षण प्रशुल्क: संरक्षण प्रचूरको का उद्देश्य शुल्कों द्वारा घरेलू उद्योग की जिन शाखों को संरक्षण दिया गया है उन्हें बनाए रखना और प्रोत्साहन देना होता है जिससे संरक्षितघरेलू उद्योगों काउत्पादन बढ़ता है।

२.उत्पत्ति और निर्धारित स्थान के आधार पर प्रशुल्क चार भागों में बांटे गए हैं:

अ.मुल्यानुसार प्रशुल्क:सर्वाधिक सामान्य प्रकार का आयात शुल्क मूल्य अनुसार प्रशुल्क है या आयातित वास्तु के कुल मूल्य की प्रतिशत के आधार पर लगाया जाता है

ब.विशेष प्रशुल्क: आयातित वस्तु की भौतिक इकाइयों पर लगाया जाता हैजैसे निश्चित रुपए प्रतीक टीवी सेट पर।

स.मिश्रित प्रशुल्क:प्राय सरकारीमिश्रित शुल्क लगती हैं। यह मूल्य अनुसार शुल्कों तथा परिणाम शुल्कों का मिश्रण होते हैं।

द.विसर्पी प्रशुल्क:कभी-कभी सरकारें ऐसे आयात शुल्क भी लगती है जो आयातित वस्तुओं की कीमतों के अनुसार बदलते हैं। यह विसर्पी प्रश्न कहलाते हैं । यह या तो परिणाम या मूल अनुसार होते हैं। सामान्य रूप से विसर्पी शुल्क परिणाम के आधार पर लगाए जाते हैं।

३.देशानुसार विभेद के आधार पर प्रशुल्क तीन प्रकार के होते हैं:

अ.एक कालम प्रशुल्क: जब परसल की एक सासंरक्षण विधि के रूप में आयात कोटा टैरिफ के विकल्प हैं। मान्य दर सभी सामान वस्तुओं पर लगाई जाती है चाहे वह किसी भी देश के आयात की गई हो तो इस कॉलम प्रश्न कहते हैं। यह गैर विभेदकारी प्रशुल्क होता है जिसकी रचना और लागू करना बहुत ही सरल और आसान होता है।

ब. दोहरे कालम शुल्क:इसके लिए कुछ यह सभी प्रकार की वस्तुओं के लिए शुल्क की दो भिन्न दरें होती हैं देश की सरकारी दो दलों की घोषणा प्रारंभ में और दूसरी व्यापार समझौता के अंतर्गत दरो का फैसला करने के बाद करती है।

च.बहु या तीन कलम प्रशुल्क:इसके अंतर्गत प्रत्येक वर्ग की वस्तु पर दो या दो से अधिक प्रशुल्क दरेंलागू की जाती हैं।परंतु सामान्य रीति प्रशुल्कों की तीन भिन्न सचिया रखने की है सामान्य मध्यवर्ती अधिमानी ।वर्तमान में सार्क देश एक दूसरे से अधिमानी प्रशुल्कों के आधार पर आयात करते हैं।

आयत कोटा:

संरक्षण विधि के रूप में आयात कोटा टैरिफ के विकल्प हैं। आयात कोटा के अंतर्गत प्राय 1 वर्ष के समय के दौरान मूल्य अथवा परिमाण के एक वस्तु की स्थिर मात्रा को देश के अंदर आयात करने की आज्ञा दी जाती है।

इस उद्देश्य के लिए सरकार एक आयत लाइसेंस जारी कर सकती है जिसे वह या तो प्रतियोगी कीमत पर आयात कर्ताओं को भेज सकती है या पहले जो आए और प्राप्त करें उसके आधार पर आयातकर्ताओं को दे सकती है वैकल्पिक तौर से आयातकर्ताओं द्वारा एक विशेष वास्तु केआयत को खरीदने के लिए सरकार उन्हें सीमित मात्रा में विदेशी विनिमय प्रदान करके आयात के मूल्य को सीमित कर सकती है आयत कोटा का उद्देश्य विदेशी प्रतियोगिता से घरेलू उद्योगों का संरक्षण तथा भुगतान शेष में संतुलनलाना होता है।१

१.Tariff quota :इस कोटा प्रणाली के अंतर्गत एक वस्तु की दी हुई मात्रा के बिना शुल्क किया सापेक्षतया नीचे शुल्क दर देने पर देश में प्रवेश की आज्ञा दी जाती है परंतु उसे मात्र से अधिक आयात पर सापेक्षतया ऊंची शुल्क दर ली जाती है।

२.Unilateral quota:कोटा की इस प्रणाली के अंतर्गत आयत की जाने वाली वस्तु की कुल मात्रा या मूल्य को अन्यदेश के साथ समझौता किए बिना कानून या डिग्री द्वारा निश्चित किया जाता है ।व्यापक कोटा के अंतर्गतकोटाकी पूरी राशि किसी भी एक देश के आयात से की जाती हैजबकि आवंटित कोटा प्रणाली के अंतर्गत कोटा की कुल मात्रा विभिन्न देशों के बीच बांट दी जाती है।

३.बहुपक्षीय कोटा: इस कोटा प्रणाली के अंतर्गत कोटा को एक या एक से अधिक देशों के साथ कुछ समझौते के अनुसार निश्चित किया जाता हैइसे एग्रीड कोटा भी कहा जाता हैया सहमत कोटा भी कहा जाता है।

४.मिश्रण कोटा :इस प्रणाली के अनुसार कोटा निश्चित करने वाले देश में घरेलू उत्पादक तैयार वस्तुओं का उत्पादन करने के लिए कुछ अनुपात में आयते कच्चे माल के साथ घरेलू कच्चे माल का प्रयोग करते हैं इस प्रकार आयात कोटा प्रणाली कोटा निश्चित करता देश को दो प्रकार से लाभ प्रदान करती हैप्रथम,यह कच्चे मालके घरेलू उत्पादकों का विदेशी प्रतियोगिता से संरक्षण करती है और दूसरा,यह देश के विदेशी विनिमय दर की बचत करती है।

५.लाइसेंसिंग :विभिन्न प्रकार की कोटा प्रणालियों को लागू करने की विधि है इस प्रकार के अंतर्गतआयत की जाने वाली वस्तु की मात्रा पहले ऊपर वर्णित कोटा प्रणालियों के आधार पर निर्धारित की जाती है,तब आया कि जाने वाली वस्तुओं की विशिष्ट मात्राओं के लिए सरकार द्वारा आयात लाइसेंस जारी किया गया।

इकाई 06

सीमा संघ सिद्धान्त एवं आर्थिक एकीकरण

6.1 प्रस्तावना
6.2 उद्देश्य
6.3 आर्थिक एकीकरण के प्रकार
6.4 आर्थिक एकीकरण के लाभ और उद्देश्य
6.5 सीमाशुल्क संघ की सिद्धान्त
6:6 कस्टम यूनियमन का आंशिक संतुलन सिद्धांत
6.7 कस्टम यूनियन का सामान्य संतुलन सिद्धांत
6.7.1 लिपसी मॉडल
6.7.2 वानेक मॉडल

प्रस्तावना :

आर्थिक एकीकरण परिभाषा को विभिन्न राष्ट्रों के बीच विशिष्ट प्रकार की व्यवस्था के रूप में संदर्भित किया जा सकता है। दी गई व्यवस्था को आम तौर पर राजकोषीय और मौद्रिक नीतियों के समन्वय के साथ-साथ संबंधित व्यापार बाधाओं के उन्मूलन या कमी को शामिल करने के लिए जाना जाता है। आर्थिक एकीकरण का उद्देश्य दिए गए समझौते में शामिल देशों के बीच समग्र व्यापार में वृद्धि करते हुए उत्पादकों और विक्रेताओं दोनों के लिए समग्र लागत को कम करना है।.आर्थिक एकीकरण का मतलब कल्याण के स्तर को बढ़ाने के लक्ष्य के साथ वितरकों और उपभोक्ताओं के लिए कम कीमतें लाना है, जबकि राज्यों की आर्थिक उत्पादकता में वृद्धि करना है। जैसा कि क्षेत्रीय अर्थव्यवस्थाएं आर्थिक एकीकरण पर सहमत होती हैं, व्यापार बाधाओं को राजनीतिक और आर्थिक समन्वय में समग्र वृद्धि के साथ गिरने के लिए जाना जाता है।

उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के पश्चात .

आप आर्थिक एकीकरण एवं सीमा संघ सिद्धांत को समझ सकेंगे।

आर्थिक एकीकरण के प्रकार (Types of Integration)

राष्ट्रों में आर्थिक एकीकरण के लिए पांच प्रकार को व्यवस्था है जो निम्न हैं-

1.अधिमानी व्यापारिक प्रणाली (Preferential Trading System)- यह 1732 में स्थापित ब्रिटिश राज्य के 48 देखें के बीच एकीकरण का सबसे पहला रूप थी। इसका उद्देश्य एक-दूसरे से आयात पर कम करके सदस्य राष्ट्र अधिमानी व्यवहार देना था, परंतु राष्ट्रमंडल अधिमानी प्रणाली के बाहर से आयात पर ऊंचे प्रशुल्क कायम रखना था। यह अधि एकीकरण को डोली किस्म थी जो गेट नियमों (GATT Rules) बनाने के बाद समाप्त हो गई।

2. मुक्त व्यापार क्षेत्र (Free Trade Area)—मुक्त व्यापार क्षेत्र आर्थिक एकीकरण का शिथिल रूप है। इसके अंतर्गत ग्रुप के सदस्य, आपस में तो प्रशुल्क तथा अन्य व्यापार बाधाएं समाप्त कर देते हैं, पर प्रत्येक सदस्य देश गैर-सदस्य देशों के साथ ब प्रगुक्त, व्यापार प्रतिबंध तथा वाणिज्यिक नौतियां बनाए रखता है। मुक्त व्यापार क्षेत्र में सदस्य देशों को आपस में सम्मिलित सीमा रखन की जरूरत नहीं। इसमें आर्थिक एकीकरण केवल अंतःक्षेत्र व्यापार (Intra-area Trade) पर आधारित है। यूरोपीय मुक्त व्या एसोसिएशन (European Free Trade Association) - EFTA) तथा दक्षिणी अमेरिको मुक्त व्यापार क्षेत्र (Latin American free Trade Area—LAPTA) जिनका स्थान 1980 में लेटिन अमेरिको एकीकरण एसोसिएशन (Latin American Integration Association) ने ले लिया। ये प्रादेशित आर्थिक एकीकरण के मुक्त व्यापार क्षेत्र के उदाहरण हैं।

3. कस्टम यूनियन (Customs Union) कस्टम यूनियन में भाग लेने वाले देश बाहर को दुनिया से आयात पर एक सांझ बढ़ प्रशुल्क और वाणिज्यक नीति अपनाते हैं और आपस के सभी प्रशुल्क तथा व्यापार प्रतिबंध समाप्त कर देते हैं। इस प्रकार कस्टम यूनि में, गैर-सदस्य देशों के साथ व्यापार संबंधों में यूनियन के सभी सदस्य एक इकाई के रूप में कार्य करते हैं। यूरोपीय समुदाय (European community) एक कस्टम यूनियन हैं I

4. सांझा बाजार ÷ सांझा बाजार सदस्य राष्ट्रों का एकीकृत बाजार क्षेत्र है जिसमें वस्तुएं , सेवाएं तथा उत्पादन के साधन बेरोकटोक आज सकते हैं। सांझे बाजार में , उत्पादन तथा साधन बाजार एकीकृत होते हैं। वास्तव में, सांझा बाजार कस्टम यूनियम नियम को और आगे बढ़ाता है क्योंकि यह सदस्य देशों में वस्तुओं के साथ साथ श्रम तथा पूंजी के भी बेरोकटोक आने जाने की जाने की अनुमति देता है।

5. आर्थिक यूनियन (Economic Union)-राष्ट्रों में आर्थिक एकीकरण का उच्चतम रूप आर्थिक यूनियन है। जैसा बाजार में होता है, वैसे ही आर्थिक यूनियन में भी उत्पादन तथा साधन बाजारों का एकीकरण तो होता ही है, परंतु इसके अतिरिक्त आर्थिक यूनियन ऐसी मौद्रिक, राजकोषीय तथा अन्य नीतियों में सामंजस्य स्थापित करती है जैसे विनिमय दर, परिवहन, औद्योगिक, सामाजिक नीतियां, आदि। इस प्रकार सांझा बाह्य प्रशुल्क तथा सांझी घरेलू नीतियां अपनाने के संबंध में आर्थिक यूनियन के सदस्य देशों के बीच काफी तालमेल होता है। यूरोपीय समुदाय (EC) का उद्देश्य अंततः ऐसी ही आर्थिक यूनियन बनाना है।

एकीकरण के लाभ या उद्देश्य (Benefits or Motives of Integration)

अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक एकीकरण के प्रादेशिक ग्रुप के सदस्यों को अनेक प्रकार से लाभ होता है :

(1) इससे सदस्य राष्ट्रों में संसाधनों का बेहतर आवंटन होता है।

(2) इससे प्रौद्योगिकीय परिवर्तन होते हैं और पूंजी का अंतर्वाह बढ़ता है, जिसके परिणामस्वरूप साधन आगतों की क्वालिटी और

(3) तुलनात्मक लाभों पर आधारित विशिष्टीकरण के कारण उत्पादन बढ़ता है।

(4) इससे सौदा करने की स्थिति बेहतर होने से व्यापार की मात्रा बढ़ती है।

दुनिया के साथ प्रदेशको व्यापार में सुधार होता है। यों में प्रतियोगिता बढ़ जाती है . इसलिए के भीतर अधिक है।

(5)देशों के बीच साधन गति बढ़ती है और बढ़िया वस्तुएं मिलती है तो रोजगारको और राजकोषीय नीतियों से लाभ प्राप्त होते हैं।

सीमाशुल्क संघ का सिद्धांत (THE THEORY OF CUSTOMS UNION)

कस्टम यूनियन सिद्धांत का व्यवस्थित विकास पहले पहल जैकब बाइनर (Jacob Viner) ने 1950 में यूनियन के वाइरियन विश्लेषण को बेहतर बनाने में मीड, लिप्सी, जॉनसन, कूपर, बनेक, भगवती आदि अन्य बहुत योगदान दिया। कस्टम यूनियन सिद्धांत का विकास दो रूपों में किया गया है आंशिक संतुलन सिद्धांत तथा सिद्धदा सिद्धांतों का अध्ययन किया जा रहा है और साथ-साथ उन संशोधन का भी अध्ययन किया होइन सिद्धांतों में किए गए हैं। इस अध्ययन से पहले कस्टम यूनियन को प्रमुख विशेषताओं पर एक बार नजर डाल प्रेयस्कर होगा।

लप्सी (Lipsey) कस्टम यूनियन सिद्धांत को इस प्रकार परिभाषित करता है, "यह प्रशुल्क सिद्धांत की वह शाखा है जिसका विभेदात्मक प्रशुल्कों के केवल कल्याण प्रभावों से है और भौगोलिक तौर से विभेदात्मक प्रशुल्कों के प्रभावों से नहीं है।

सिद्धांत की विशेषताएं (Features of Customs Union Theory)

कस्टम यूनियन की प्रमुख विशेषताएं हैं सदस्य देश बाकी शुल्क तथा व्यापार प्रतिबंध समाप्त कर दें। कस्टम यूनियन की स्थापना के परिणामस्वरूप सदस्य देशों के घरेलू बाजारों में सापेक्ष कीमतों में परिवर्तन होता है जो आगे व्यापार, उत्पादन तथा उपभोग को प्रभावित करते हैं। कस्टम यूनियन का सिद्धांत इन प्रभावों का विश्लेषण करता है कि संसाधन आवंटन पर, कस्टम यूनियन के सदस्यों के कल्याण पर तथा बाकी दुनिया पर इन प्रभावों का क्या असर पड़ता है।

कस्टम यूनियमन का आंशिक संतुलन सिद्धांत (partial Equilibrium Theory of Customs union)

कस्टम यूनियन सिद्धांत के प्रति आंशिक संतुलन दृष्टिकोण को वाइनर ने व्यापार निर्माण (trade creation) तथा व्यापार विचलन diversion) के रूप में विकसित किया था। वाइनर ने उनके केवल उत्पाद प्रभावों का अध्ययन किया था और लिप्सी तथा उनके उपभोग प्रभावों पर बल दिया। परंतु जोनसन ने आंशिक संतुलन विश्लेषण में इन दोनों सिद्धांतों को व्यवस्थित रूप से वाइनर के व्यापार निर्माण तथा व्यापार विचलन प्रभावों का संबंध अंतः देश प्रतिस्थापन (Inter-country Substitution) से है।

इसकी मान्यताएँ .

यूनियनका संतुलन विश्लेषण निम्न मान्यताओं पर आधारित है :

इसकी मान्यताएं (Assumptions)

1. दो देश हैं जिनमें से एक का नाम घरेलू (H) देश और दूसरे का साथी (Partner-P) देश है जो कस्टम यूनियन बनाते हैं।

2. एक और देश है जिसका नाम है बाकी दुनिया (W) ।

3. कस्टम यूनियन सांबा प्रशुल्क लगाता है।

4. किसी और प्रकार का व्यापार प्रतिबंध नहीं है।

5. कस्टम यूनियन केवल एक विशेष प्रशुल्क हो लगाती है।

6. तीनों ही देश केवल एक वस्तु X का हो उत्पादन करते हैं।

3. इस वस्तु का निम्नतम लागत देश W है और उच्चतम लागत देश H है।

8. कीमतें लागल द्वारा निर्धारित होती हैं।

9. इस वस्तु का उत्पादन स्थिर लागतों के अंतर्गत होता है।

10. H तथा W देशों के पूर्ति कक्र पूर्णतया लोचदार हैं।

11. वस्तु तथा साधन बाजारों में पूर्ण प्रतियोगिता है।

12. देश में पूर्ण साधन गतिशीलता है तथा देश की सीमाओं के बाहर साधन पूर्णरूप से अगतिशील है।

13. परिवहन लागत बिल्कुल नहीं हैं।

14. देश के कुल संसाधन स्थिर हैं।

15. संसाधन पूर्ण रोजगार में लगे हैं।

16. प्रौद्योगिकी दी हुई और स्थिर है।

17. घरेलू देश में संतुलित व्यापार है जिसके परिणामस्वरूप निर्यात तथा आयात एक-दूसरे के बराबर हैं।

कस्टम यूनियन के प्रभाव (Effects of Customs Union)

इन मान्यताओं के दिए हुए होने पर, कस्टम यूनियन का सिद्धांत व्यापार निर्माण तथा व्यापार विचलन के रूप में उत्पादन व्यापार पर कस्टम यूनियन के प्रभावों का विश्लेषण करता है। जब दो देशों अर्थात H तथा P के बीच कस्टम यूनियन बनाई जाती है, तो इन दोनों के आपसी आयातों पर से प्रशुल्क दिए जाते हैं परंतु बाकी दुनिया (W) के आयातों पर प्रशुल्क लगे रहते हैं। घरेलू देश (H) अब साथी देश (P) से वस्तु का निःशुल् करता है। इसके परिणामस्वरूप व्यापार निर्माण तथा व्यापार विचलन होता है।

व्यापार निर्माण (Trade Creation)

व्यापार निर्माण तब होता है जब घरेलू देश के उच्चतम लागत घरेलू वस्तु के उपभोग की जगह साथी देश (P) की निम्नत वस्तु का स्थानापन्न करती है। इससे आगे उत्पादन प्रभाव तथा उपभोग प्रभाव होता है। जब वस्तु X का उत्पादन घट जाता है या समाप्त हो जाता है और उसकी बजाय साथी देश से वस्तु आयात की जाती है तो उसे उत्पादन प्रभाव कहते हैं। जब घरेलू वस्तु पर साथी देश को स्थानापन्न वस्तु का उपभोग बढ़ जाता है, जो पहले ऊंची लागत पर मिलती थी तो यह उपभोग प्रभाव होता है प्रभाव तथा उपभोग प्रभाव दोनों मिलकर

कस्टम यूनियन के व्यापार निर्माण प्रभाव को व्यक्त करते हैं। उत्पादन प्रभाव तथा उप के अनुरूप, व्यापार निर्माण से दो प्रकार का लाभ होता है : पहला यह कि वस्तु की वास्तविक लागत में बचत होती है, जि घरेलू वस्तु उत्पादन ऊंची लागत से होता था और अब वही वस्तु साथी देश से कम दामों पर आयात की जाती है; और दूसरा उपभोक्ता बेशी में लाभ होता है क्योंकि उच्चतर लागत वस्तु की जगह कम लागत वस्तु स्थानापन्न की जाती है। इस प्रकार निर्माण विश्व कल्याण में सुधार करता है।

कस्टम यूनियन का व्यापार निर्माण प्रभाव चित्र में दिखाया गया है, जहां DH, घरेलू देश H में वस्तु X का मांग व SH उसका पूर्ति वक्र है। बाकी दुनिया (W) का पूर्ति वक्र क्षैतिज रेखा WS के रूप में दिखाया गया है, जिसका मतलब है वह OW कीमत पर चाहे जितनी मात्रा में वस्तु X की पूर्ति दे सकता है। इस प्रकार, साथी देश क्षैतिज रेखा PS, रेखा के रूप में दिखाया गया है, जिसका मतलब है कि OP को पर चाहे जितनी मात्रा में वस्तु X की पूर्ति दे सकता है। इस प्रकार वस्तु की कीमत H देश में अधिकतम OH है तथा W देश में निम्नतम OW है, जबकि साथी देश में कीमत मध्यवर्ती स्तर OP पर है।

कस्टम यूनियन बनने से पहले W देश से आयात पर H देश, WT प्रशुल्क लगा। - इसलिए बाकी दुनिया W का पूर्ति वक्र TSw +t बन जाता है। प्रशुल्क शामिल कीमत OT पर H देश वस्तु X की ON मात्रा को उपभोग करता है जिसमें से OM मात्रा का उत्पादन घरेलू रूप से होता है और MN मात्रा W देश से आयात की जाती है। देश H को चतुर्भुज ADKH के क्षेत्र के बराबर प्रशुल्क राजस्व प्राप्त होता है। इस कस्टम यूनियन पूर्व स्थिति में, देश व्यापार में शामिल नहीं है, क्योंकि उसकी प्रशुल्क पूर्व कीमत OP है जो W देश की OW कीमत से अधिक है, और जब H देश इस देश P की वस्तु पर WT प्रशुल्क लगाता है तो इस वस्तु की कीमत OT से अधिक बढ़ जाएगी (T तथा H के बीच एक क्षैतिज रेखा के विद्यमान होने की कल्पना कीजिए)। मानलीजिए कि H तथा T देश मिलकर कस्टम यूनियन बना लेते हैं और आपस में कोई प्रशुल्क नहीं रखते परन्तु W देश को आयात पर WT प्रशुल्क लगाते हैं। अब देश H केवल देश P से निःशुल्क (Duty Free) वस्तु X आयात करेगा और देश W से बिल्कुल यात नहीं करेगा। इस स्थिति से H देश के लिए कस्टम यूनियन के निम्न व्यापार निर्माण प्रभाव उत्पन्न होंगे।

कीमत प्रभाव (Price Effect) देश H वस्तु X को देश से अपेक्षाकृत कम कीमत OP पर आयात करता है जबकि कस्टम दुनियन बनने से पहले वह इसे अधिक ऊंची कीमत OT पर आयात करता था तो यह व्यापार निर्माण का कीमत प्रभाव है।

उत्पादन प्रभाव (Production Effect) - यूनियन बनने के बाद जब देश H का घरेलू उत्पादन OM से गिरकर OL रह जाता और देश P से आयात MN से बढ़कर LR हो जाते हैं। वाइनर का विश्लेषण केवल इस व्यापार निर्माण उत्पादन प्रभाव से संबंधित हैं।

उपभोग प्रभाव (Consumption Effect) – जब देश H में वस्तु X की कीमत OT से गिरकर OP हो जाती है, तो उसका परिणाम यह होता है कि वस्तु X का उपभोग ON से बढ़कर OR पर पहुंच जाता है अर्थात उपभोग की मात्रा NR अधिक हो जाती है

राजस्व प्रभाव (Revenue Effect) — कस्टम यूनियन बनने से पहले देश H का प्रशुल्क राजस्व ADEJ था। अब यह समाप्त हो जाता है क्योंकि वह देश H से वस्तु की कोई भी मात्रा आयात नहीं करता है।

कल्याण लाभ प्रभाव (Welfare Gain Effect)-उत्पादन, उपभोग और राजस्व प्रभावों से जॉनसन उपभोक्ता और उत्पादक नागः बोशियों (Surpluses) का प्रयोग करके व्यापार निर्माण का कुल लाभ निम्न प्रकार से मापता है :

उपभोग प्रभाव के कारण उपभोक्ता की वेशी में लाभ

मांग वक्र Dh के नीचे मापा गया=PTDF

उत्पादक की बेशी में घरेलू उत्पादन में कमी के कारण कमी = PTAB

सरकार के प्रशुल्क राजस्व में कमी जो उपभोक्ताओं को वापस हस्तांतरित की गई = ADEJ

कुल कल्याण लाभ प्रभाव = PTDF- PTAB - ADEJ = AAJB + ADEF

अथवा छायांकित त्रिभुज (a + b)

इन दो त्रिभुजों के आकार का जोड़ जो कस्टम यूनियन के व्यापार निर्माण कल्याण प्रभाव को मापता है, तीन घटकों पर निर्भर करता

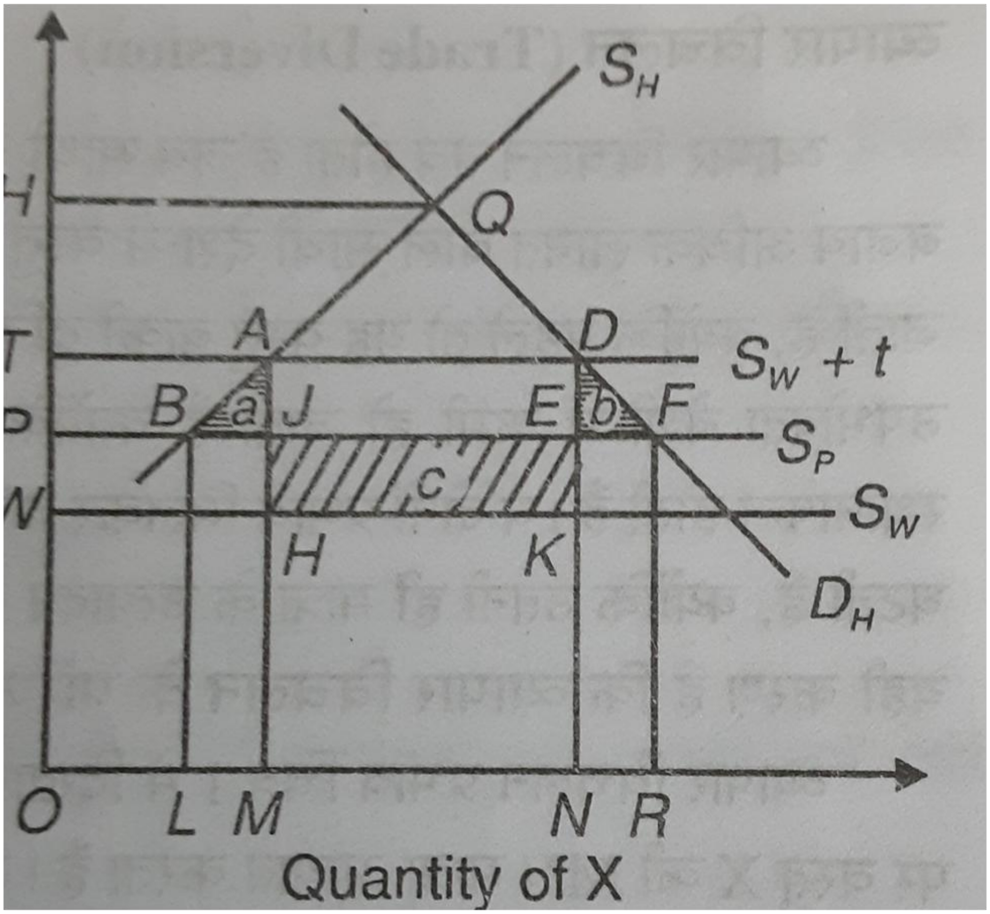

(1) कस्टम यूनियन बनाने से पहले देश H द्वारा लगाए गए प्रारंभिक प्रशुल्क WT की मात्रा; (2) यूनियन-पूर्व उत्पादन बिन्दु A पर पूर्ति वक्र S की लोच; और (3) यूनियन-पूर्व उपभोग बिन्दु D पर मांग वक्र D की लोच। कुल मिलाकर, प्रारंभिक प्रशुल्क जितना अधिक होगा उतने ही मांग और पूर्ति वक्र अधिक लोचशील होते हैं तथा उतना ही व्यापार निर्माण से कुल कल्याण लाभ अधिक देता है।

कस्टम यूनियन का सामान्य संतुलन सिद्धांत(General Equilibrium Theory of Customs Union)

कस्टम यूनियन का सामान्य संतुलन सिद्धांत अनेक अर्थशास्त्रियों द्वारा विकसित किया गया है। परंतु हम केवल दो - सबसे पहले और महत्वपूर्ण मॉडलों का विवेचन करेंगे : पहला, लिप्सी' का, और दूसरा वनेक का।

लिप्सी मॉडल : स्थिर अनुपात उपभोग

(The Lipsey Model: Fixed Proportion Consumption)

वाइनर का आंशिक संतुलन विश्लेषण इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि व्यापार विचलन से कल्याण कम होता है। लिप्सी पहले यह दर्शाता है कि व्यापार विचलन कैसे सामान्य संतुलन के रूप में कल्याण में हानि लाता है।

वानेक मॉडल (Vanek Model)

कस्टम यूनियन सिद्धांत के सामान्य संतुलन सिद्धांत को Vanek ने प्रस्ताव वक्र के, रूप में विकसित किया।

1.10 अभ्यास प्रश्न

1.कस्टम यूनियन क्या होती है? आंशिक संतुलन विश्लेषण के अंतर्गत कस्टम यूनियन के प्रभावों की विवेचना कीजिए।

2.सीमा शुल्क संघ से आप क्या समझते हैं? सामान्य संतुलन विश्लेषण द्वारा इसके प्रभावों की व्याख्या कीजिए।

3.क्या कस्टम यूनियन के निर्माण से संघ सदस्यों और बाकी विश्व के कल्याण में लाभ अथवा हानि होती है ?

4. आर्थिक्र एकीकरण से विकासशील देश जो लाभ उठा सकते हैं उनकी व्याख्या कीजिए।

<u>खंड 04:</u> विनिमय दर एवं भुगतान संतुलन

<u>इकाई</u>- 01

विनिमय दर निर्धारण के सिद्धांत

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 विनिमय दर
2.4 विनिमय दर निर्धारण के सिद्धांत
2.5 क्रय शक्ति समता सिद्धांत
2.6 भुगतान संतुलन सिद्धांत
2.7 विनिमय की साम्य दर
2.8 सारांश
2.9 शब्दावली
2.10 सन्दर्भ ग्रन्थ / उपयोगी सुची
2.11 अभ्यास प्रश्न

प्रस्तावना

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार एवं व्यापार नीति के **खंड चार के विनिमय दर एवं भुगतान संतुलन के 'विनिमय दर निर्धारण के सिद्धांत '** से सम्बंधित यह प्रथम इकाई है. इससे पहले की इकाईयों के अध्ययन के पश्चात् आप अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के विभिन्न सिद्धान्तों, व्यापार शर्तों, स्वतन्त्र व्यापार और संरक्षण तथा संरक्षण के विभिन्न उपायों के बारे में बता सकते हैं. आप जान गए होंगे की व्यापार की शर्तों के प्रतिकूल होने के कारण एक देश को भुगतान संतुलन के गंभीर संकट का भी सामना करना पड़ सकता है.

प्रस्तुत इकाई में हम अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से सम्बंधित एक महत्वपूर्ण संकल्पना विनिमय दर के बारे में अध्ययन करेंगे. इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप विनिमय दर निर्धारण के विभिन्न सिद्धांत के सम्बन्ध में स्पष्ट जानकारी प्राप्त कर सकेगें.

2.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के बाद आप –

- विनिमय दर के अर्थ एवं प्रकृति को समझ सकेंगे.
- विनिमय दर निर्धारण के सिद्धांत जान पाएंगे.
- क्रय शक्ति समता सिद्धांत को समझ सकेंगे.
- भुगतान संतुलन सिद्धांत को समझ सकेंगे.
- विनिमय की साम्य दर जान पाएंगे.

2.3 विदेशी विनिमय दर(FOREIGN EXCHANGE RATE)

विदेशी विनिमय दर अथवा विनिमय दर वह दर होती है जिस पर एक करेंसी को दूसरी करेंसी से विनिमय किया जाता है।एक करेसी में दूसरी करेंसी की कीमत होती है।इसे व्यक्त करने का प्रचलित तरीका यह है कि घरेलू करेंसी के रूप में विदेशी करेंसी की एक इकाई की कीमत।

विश्व विदेशी विनिमय बाजार में **हुंडी व्यापार** (Arbitrage)का मतलब है कि जिस बाजार में विदेशी करेंसी की कीमत कम हो वहां से विदेशी करेंसी खरीदी जाए और जहां उसकी कीमत अधिक है वहां उसे बेच दिया जाए। Arbitrage का परिणाम यह होता है कि करेंसीयों की विदेशी विनिमय दर के अंतर समाप्त हो जाते हैं और विश्व विदेशी विनिमय बाजार में एक ही विनिमय दर विद्यमान हो जाती है। विदेशी विनिमय दर निर्धारित करने के चार सिद्धांत है -

- मुक्त बाजार सिद्धांत
- टकसाल दर समता सिद्धांत
- क्रय शक्ति समता सिद्धांत
- भुगतान शेष सिद्धांत

2.4 मुक्त बाजार सिद्धांत या संतुलन विनिमय दर निर्धारण(Free market theory or equilibrium exchange rate):-

मुक्त बाजार में विदेशी विनिमय की मांग और पूर्ति विनिमय दर को निर्धारित करती हैं संतुलित विनिमय दर वह विनिमय दर होती है जिस पर विदेशी विनिमय की मांग विदेशी विनिमय के पूर्ति के बराबर हो जाए। अन्य शब्दों में यह वह दर होती है जो विदेशी विनिमय के लिए बाजार को समाशोधित करती है।

टकसाल दर समता सिद्धांत(The mint per theory):-

यह सिद्धांत अंतरराष्ट्रीय स्वर्ण मानक के कार्यकरण से संबंध रखता है इस प्रणाली के अंतर्गत जो करेंसी चलती थी उसे एक निश्चित दर पर सोने में बदला जा सकता था। करेंसी की एक इकाई का मूल्य सोने के निश्चित भार में होता था।देश का केंद्रीय बैंक हमेशा निर्धारित कीमत पर सोना खरीदने और बेचने को तैयार रहता था, **अर्थात जिस दर पर देश की मानक मुद्रा सोने में बदली जा सकती थी वह दर्शन की टकसाल दर कहलाती थी।**

यदि सोने की ब्रिटेन में सरकारी कीमत 6 पाउंड प्रति औंस है तो यह इंग्लैंड में सोने की टकसाल दर कीमत है और यदि अमेरिका में सोने की कीमत 36 डॉलर प्रति औंस है तो यह अमेरिका में सोने की टकसाल दर कीमत है। डॉलर तथा पाउंड के बीच विनिमय दर 36/6= 6 डालर= 1 पाउंड पर निश्चित होगी। इस दर को टकसाल दर समता अथवा विनिमय की टकसाल दर समता कहा जाता था।क्योंकि यह सोने की टकसाल कीमत पर आधारित थी। क्योंकि स्वर्ण मानक समाप्त हो गया है इसलिए टकसाल दर सिद्धांत बहुत पहले रद्द कर दिया गया आज किसी भी देश में स्वर्ण मानक नहीं है इसलिए अब यह सिद्धांत केवल शैक्षिक महत्व रखता है।

2.5 क्रय शक्ति समता सिद्धांत(The purchasing power parity theory):-

परवर्ती कागज करेंसी वाले देशों के बीच विनिमय दर निर्धारित करने के लिए गुस्ताव कैसल ने 1920 में क्रय शक्ति समता सिद्धांत विकसित किया था। इस सिद्धांत के अनुसार दो परवर्ती कागज करेंसीयों के बीच विनिमय दर को उनकी क्रय शक्तियों की समता निर्धारित करती है अन्य शब्दों में दो देशों के बीच विनिमय दर को उनके सापेक्ष कीमत स्तर निर्धारित करते हैं। इस सिद्धांत के अनुसार दो देशों के बीच विनिमय दर उसे बिंदु पर निर्धारित होती है जहां दोनों देशों की अपनी-अपनी क्रय शक्तियां समान होती हैं।यह क्रय शक्ति समता है जो

परिवर्तनशील क्षमता है और वैसी निश्चित क्षमता नहीं है जैसी स्वर्ण मानक(Gold standard)के अंतर्गत होती है इसलिए जब भी कीमत स्तर में परिवर्तन होता है तो हर परिवर्तन के साथ विनिमय दर भी बदल जाती है।

इस सिद्धांत को एक उदाहरण से स्पष्ट किया जा सकता है । मान लीजिए भारत और इंग्लैंड परवर्ती कागज मानक पर काम करते हैं और वस्तुओं का जो बंडल इंग्लैंड में 1£से खरीदा जा सकता है वहीं भारत में 18 रुपए में मिलता है। इस प्रकार क्रय शक्ति क्षमता सिद्धांत के अनुसार विनिमय की दर18रूपये =1 पाउंड होगी। यदि दोनों देशों में कीमत के स्तर वही रहे परंतु विनिमय दर16 रुपए =1 पाउंड हो जाए तो इसका मतलब है कि वस्तुओं के जिस बंडल को इंग्लैंड में1 पाउंड में खरीदा जा सकता है वही भारत में 16 रुपए में मिलेगा। यह विनिमय दर में अधिमूल्यन का उदाहरण है। इससे भारत में आयत को प्रोत्साहन मिलेगा और निर्यात हतोत्साहित हो जाएंगे परिणाम स्वरुप पाउंड की मांग बढ़ेगी और रुपए की मांग गिरेगी।यह प्रक्रिया अंत में 18रुपए =1पाउंड की विनिमय दर को पुनः स्थापित कर देगी।इसके विपरीत यदि विनिमय दर 20रुपए=1£हो जाए तो करेंसी का मूल्य गिर जाएगा।इसके परिणाम स्वरूप भारत से निर्यातों को प्रोत्साहन मिलेगा और आयात घटेंगे रुपए की मांग बढ़ेगी और पाउंड की मांग गिरेगी और अंत में विनिमय दर 18£=1 rs सामान्य दर जो सर्वप्रथम थी फिर से स्थापित हो जाएगी। संतुलन विनिमय दर निकालने के लिए निम्न सूत्र का प्रयोग करते हैं।

R=विदेशी करेंसी की घरेलू कीमत×घरेलू कीमत सूचक/विदेशी कीमत सूचक

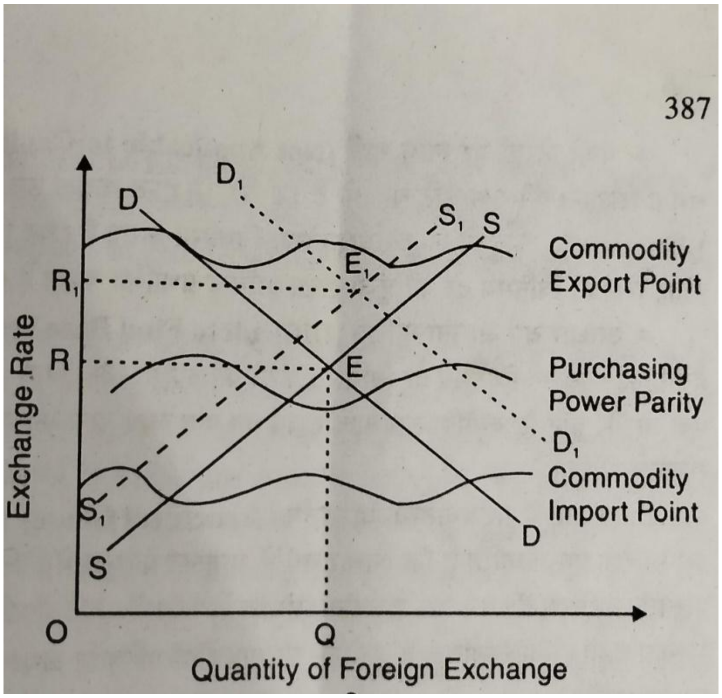

चित्र-2

क्रय शक्ति समता सिद्धांत को चित्र-2 में स्पष्ट किया गया है जहां विदेशी करेंसी का मांग वक्र DD है और SS करेंसी का पूर्ति वक्र है।OR विनिमय दर है जो दोनों वक्रों के आपसी कटान बिंदु E पर निर्धारित होती है और विदेशी विनिमय की मांग तथा पूर्ति OQ मात्रा के बराबर है। मान ले भारत में कीमत स्तर बढ़ता है और इंग्लैंड में स्थिर रहता है इससे भारतीय निर्यात इंग्लैंड में महंगे और भारत में इंग्लैंड के आयात सापेक्ष रूप से

सस्ते हो जाते हैं परिणाम स्वरुप पाउंड की मांग बढ़ती है और उसकी आपूर्ति कम हो जाती है। अब DD वक्र ऊपर की ओर D1D1 पर सरक जाता है और पूर्ति वक्र SS बाई ओर ऊपर को सरक जाता है नई संतुलन विनिमय दर प्रति पाउंड rs OR1 पर निर्धारित होती है जो नई क्रय शक्ति समता दर्शाती है। क्रयशक्ति क्षमता वक्र बताता है कि जब कीमत स्तर में सापेक्ष परिवर्तन होता है तो विनिमय दर इस वक्र पर सामान्य दर के ऊपर या नीचे बढ़ती घटती है परंतु क्रय शक्ति क्षमता वक्र एक सीमा के भीतर ही ऊपर या नीचे आ जा सकता है इसकी ऊपर और नीचे की सीमाओं को क्रमशः वस्तु निर्यात बिंदु तथा वस्तु आयात बिंदु निर्धारित करते हैं।

2.6 भुगतान संतुलन सिद्धांत

(Balance of payment theory):-

इस सिद्धांत के अनुसार मुक्त विनिमय दरों के अंतर्गत किसी देश की करेंसी की विनिमय दर उसके भुगतान शेष पर निर्भर करती है ।अनुकूल भुगतान शेष विनिमय दर को बढ़ाता है जबकि प्रतिकूल भुगतान शेष विनिमय दर को घटाता है।इस प्रकार इस सिद्धांत का मतलब है कि विदेशी विनिमय की मांग तथा पूर्ति विनिमय दर को निर्धारित करती है जब भुगतान शेष प्रतिकूल होता है तो इसका मतलब है कि विदेशी करेंसी की पूर्ति से उसकी मांग अधिक है इसके परिणाम स्वरूप विदेशी करेंसी की तुलना में घरेलू करेंसी का मूल्य गिर जाता है और परिणाम स्वरूप विनिमय दर गिर जाती है। इसके विपरीत यदि भुगतान शेष अनुकूल है तो इसका मतलब होता है की दी हुई विनिमय दर पर विदेशी करेंसी की मांग से विदेशी करेंसी की पूर्ति अधिक है। इसके परिणाम स्वरूप विदेशी करेंसी की तुलना में घरेलू करेंसी का मूल्य बढ़ जाता है और इसलिए विनिमय दर बढ़ जाती है।

जब प्रतिकूल भुगतान शेष की स्थिति में वास्तविक विनिमय दर संतुलित विनिमय दर से नीचे चली जाती है तो निर्यात बढ़ जाते है परिणामस्वरूप भुगतान शेष समाप्त हो जाता है तथा संतुलित विनिमय दर पुनः स्थापित हो जाती है। दूसरी ओर जब अनुकूल भुगतान शेष स्थिति के अंतर्गत विनिमय दर बढ़कर संतुलित विनिमय दर के ऊपर चली जाती है तो निर्यात घट जाते हैं। अन्त मे अनुकूल भुगतान से समाप्त हो जाता है और संतुलित विनिमय दर पुनः स्थापित हो जाती है। इस प्रकार किसी भी समय विनिमय दर को विदेशी विनिमय की मांग तथा पूर्ति निर्धारित करती है। यहां एक बात ध्यातव्य है कि इस संदर्भ में चार लोचे(Elasticity)प्रासंगिक हैं:

- निर्यातों की मांग की विदेशी लोच
- निर्यातों की पूर्ति की घरेलू लाेच
- आयतों की मांग की घरेलू लोंच
- आयतों की पूर्ति की विदेशी लोंच

यदि मांग की लोंच ऊंची हों और पूर्ति लोचे नीची तो विनिमय की दर संतुलित और स्थिर रहती है।

मान्यताएं:

यह सिद्धांत निम्नलिखित मान्यताओं पर आधारित:

- विश्व में मुक्त व्यापार होता है।
- पूर्ण प्रतियोगिता पाई जाती है।
- व्यापार पर कोई सरकारी नियंत्रण जैसे टैरिफ सब्सिडी आज नहीं पाए जाते हैं ।
- कीमत स्तर भुगतान शेष को प्रभावित नहीं करता।
- आयातित कच्चे माल की मांग बेलोच है।

व्याख्या:

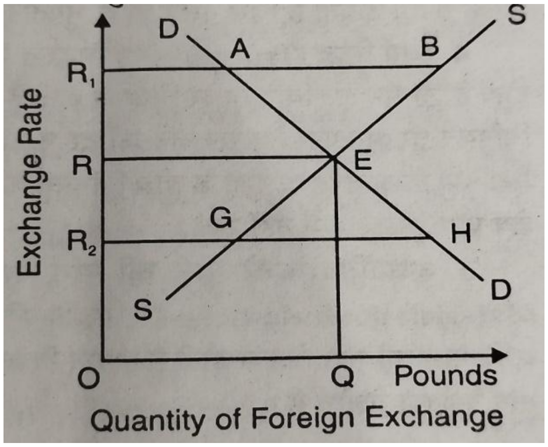

चित्र-3

यह मान्यताएं दी होने पर भुगतान शेष सिद्धांत के अंतर्गत विनिमय दर का निर्धारण चित्रा संख्या 3 में दिखाया गया है। DDविदेशी करेंसी का मांग वक्र है। यह नीचे दाएं और ढालू है। जब विनिमय दर बढ़ती है तो विदेशी करेंसी की मांग गिर जाती है और जब विनिमय दर गिरती है तो विदेशी करेंसी की मांग बढ़ जाती है।SS विदेशी करेंसी का पूर्ति वक्र है। यह बाई से दाएं और ऊपर की तरफ ढालूं है। इसका कारण यह है कि जब विनिमय दर गिरती है तो विक्रय के लिए प्रस्तुत विदेशी करेंसी की मात्रा अपेक्षाकृत कम होगी और विलोमशः। दोनों वक्र बिंदु A पर काटते हैं जहां संतुलन विनिमय दर निर्धारित होती है। इस दर पर विदेशी विनिमय की मांग तथा पूर्ति की मात्रा OQ के बराबर है। साथ ही बिंदु E ऐसा बिंदु है जहां भुगतान शेष संतुलन में है। यदि विनिमय दर OR से कम या अधिक ऊपर या नीचे होगी तो इसका मतलब है कि भुगतान शेष में असंतुलन है। उदाहरण के लिए यदि विनिमय दर बढ़कर OR1हो जाती है, तो इसका मतलब होगा कि भुगतान शेष में असंतुलन है।

<u>खंड 04:</u> विनिमय दर एवं भुगतान संतुलन
<u>इकाई</u>- 02
व्यापार संतुलन एवं भुगतान संतुलन

2.12 प्रस्तावना

2.13 उद्देश्य

2.14 भुगतान संतुलन

2.15 भुगतान संतुलन के घटक

2.4.1 वस्तु खाता

2.4.2 सेवा खाता

2.4.3 एकपक्षीय हस्तांतरण भुगतान

2.4.4 दीर्घकालिक पूजी खाता

2.4.5 अल्पकालिक पूजी खाता

2.4.6 अंतर्राष्ट्रीय तरलता भुगतान

2.16 व्यापार संतुलन

2.17 भुगतान संतुलन का मापन तथा विभिन्न अवधारणाएं

2.6.1 चालू खाते पर भुगतान संतुलन

2.6.2 पूंजी खाते पर भुगतान संतुलन

2.6.3 आधारभूत संतुलन

2.6.4 कुल भुगतान संतुलन

2.6.5 भुगतान संतुलन का लेखांकीय संतुलन

2.18 व्यापार संतुलन तथा भुगतान संतुलन में अंतर

2.19 भुगतान संतुलन का स्वायत्त तथा समायोजक लेनदेन

2.20 सारांश

2.21 शब्दावली

2.22 सन्दर्भ ग्रन्थ / उपयोगी सुची

2.23 अभ्यास प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार एवं व्यापार नीति के **खंड चार के विनिमय दर एवं भुगतान संतुलन के 'व्यापार संतुलन एवं भुगतान संतुलन'** से सम्बंधित यह दूसरी इकाई है. इससे पहले की इकाईयों के अध्ययन के पश्चात् आप अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के विभिन्न सिद्धान्तों, व्यापार शर्तों, स्वतन्त्र व्यापार और संरक्षण तथा संरक्षण के विभिन्न उपायों के बारे में बता सकते हैं. आप जान गए होंगे की व्यापार की शर्तों के प्रतिकूल होने के कारण एक देश को भुगतान संतुलन के गंभीर संकट का भी सामना करना पड़ सकता है.

प्रस्तुत इकाई में हम अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से सम्बंधित एक महत्वपूर्ण संकल्पना भुगतान संतुलन के बारे में अध्ययन करेंगे. इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप भुगतान संतुलन से सम्बंधित विभिन्न संकल्पनाओं के सम्बन्ध में स्पष्ट जानकारी प्राप्त कर सकेगें.

2.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के बाद आप –

- भुगतान संतुलन के अर्थ एवं प्रकृति को समझ सकेंगे.
- भुगतान संतुलन तथा व्यापर संतुलन में अंतर समझ सकेंगे.
- चालू खाता तथ पूंजी खाता में अंतर जान पाएंगे.
- भुगतान संतुलन के मापन की विधि जान पाएंगे.
- भुगतान संतुलन की विभिन्न अवधारणाएं समझ सकेंगे.

2.3 भुगतान संतुलन की परिभाषा

प्रत्येक देश का विश्व के अन्य देशों के साथ व्यापार होता है। आप जानते हैं कि कोई देश यदि वस्तुओं या सेवाओं को दूसरे देशों को बेचता है तो उसे 'निर्यात' कहते है तथा यदि दूसरे देशों से खरीदता है तो उसको 'आयात' कहते हैं। एक देश का विश्व के अन्य सभी देशों के साथ होने वाले समस्त प्रकार के लेन–देन, चाहे वह वस्तुओं के रूप में हो, सेवाओं के रूप में हो या फिर पूँजी के रूप में, का एक सुव्यवस्थित लेखा भुगतान–संतुलन है। भुगतान संतुलन एक दी हुई समयावधि में किसी देश द्वारा किए गए समस्त अंतर्राष्ट्रीय लेन–देन का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करता हो।

भुगतान–संतुलन का लेन–देन एक दिए हुए वर्ष में सभी विदेशी प्राप्तियों तथा भुगतानों को सम्मिलित करता हैं। भुगतान शेष लेखा की दोहरी–प्रविष्टि (Double Entry) बही खाता सिद्धान्त पर आधारित है, जिसमें प्रत्येक सौदा, बैलेंस शीट में क्रेडिट (लेनदरियाँ या प्राप्तियाँ) तथा डेबिट (देनदारियाँ या भुगतान) पक्ष में दर्ज किया जाता है। प्राप्तियों में विदेशी विनिमय के सभी प्रकार के अर्जन (earnings) तथा उधार (borrowings)सम्मिलित होते हैं जो कि क्रेडिट मद के रूप मे रिकार्ड किया जाता है। भुगतानो में विदेशी विनिमय के सभी प्रकार के व्यय तथा दिए गए उधार सम्मिलित किए जाते हैं और इसे डेबिट मद के रूप में रिकार्ड किया जाता है।

इस प्रकार सभी प्रकार की विदेशी प्राप्तियाँ एक वर्ष में हुए समस्त वित्तीय अंर्तप्रवाह को तथा समस्त भुगतान वित्तीय बर्हिप्रवाह को बताता है।

2.4 भुगतान संतुलन के घटक

भुगतान संतुलन के अंर्तगत मुख्यतः 6 प्रमुख खाते होते हैं–

1. वस्तु खाता
2. सेवा खाता
3. एकपक्षीय हस्तांतरण खाता
4. दीर्घकालिक पूँजी खाता
5. अल्पकालिक पूँजी खाता
6. अंतर्राष्ट्रीय तरलता खाता

2.4 .1 वस्तु खाता (Goods Account)

इसके अंर्तगत 'दृश्य' वस्तुओं का लेन–देन आता हे। व्यापारिक वस्तु के निर्यात से प्राप्त विदेशी मुद्रा को प्राप्तियों तथा उनके आयात पर व्यय विदेशी मुद्रा को भुगतानों के अंर्तगत सम्मिलित किया जाता है। यदि वस्तु के निर्यातों का मूल्य, वस्तुओं के आयातों के मूल्य से अधिक होगा तो वस्तु–खाता धनात्मक

होगा जो कि उस देश के 'पक्ष' में **या अनुकूल कहा** जाएगा, जबकि आयातों के मूल्य को निर्यातों के मूल्य से अधिक होने पर ऋणात्मक वस्तु–खाता उस देश के 'विपक्ष' में होगा।

2.4 .2 सेवा खाता (Service Account)

वस्तुओं की तरह ही सेवाओं का भी व्यापार – निर्यात–आयात - होता है। सेवा खाते मे एक देश द्वारा एक वर्ष के किए गए सभी सेवाओं के निर्यातों तथा आयातों का ब्यौरा होता है। चूँकि सेवाएँ वस्तुओं की तरह 'दृश्य' नहीं होती है इसलिए सेवाओं के लेन–देन को भुगतान संतुलन की अदृश्य मदें कहा जाता है । व्यापारिक वस्तुओं की तरह बंदरगाहों पर इनकी आवाजाही रिकार्ड नहीं की जाती है। सेवा खातें में मुख्यतः निम्नलिखित सेवाएँ **सम्मिलित** है –

(क) परिवहन, बैकिंग तथा बीमा
(ख) पर्यटन, यात्रा सेवाएँ, पर्यटनों द्वारा वस्तुओं एवं सेवाओं की खरीद
(ग) शिक्षा सेवाएँ
(घ) सरकरों द्वारा दूतावासों और उनके स्टाफ पर होने वाला व्यय
(ङ) डॉक्टर, इंजीनियर, वैज्ञानिक आदि विशेषज्ञों की सेवाएँ
(च) ब्याज, लाभ, लाभांश तथा रॉयल्टी - इन मदों को 'निवेश आय' कहा जाता है।

एक देश द्वारा परिवहन, बैंकिंग तथा बीमा सेवाओं से प्राप्त आय; पर्यटन, यात्रा सेवाएँ, विदेशी पर्यटकों द्वारा किए गए व्यय, विदेशी छात्रों द्वारा देश में किए गए व्यय; विदेशी सरकारों द्वारा उनके दूतावासों इत्यादि पर हुए व्यय; देश के डॉक्टरों, इंजीनियरों आदि विशेषज्ञों की प्राप्तिया; विदेशी देश से ब्याज, लाभ, लाभांश तथा रायल्टी के रूप में प्राप्त 'निवेश आय' सभी मिलाकर सेवा खाते पर या अदृश्य मदों से प्राप्त आय है। जबकि इन सभी अदृश्य मदों पर होने वाले व्यय एक देश के सेवाओं पर हुए भुगतानों को दर्शातां है। यदि सेवाओं के निर्यात (प्राप्तियों) तथा आयात (भुगतानों) का अंतर धनात्मक है तो यह उस देश के पक्ष में होगा और यदि भुगतान प्राप्तियों से अधिक है तो उस देश के सेवा–खाते पर घाटा होगा।

2.4 .3 एक पक्षीय हस्तांरण खाता (Unilateral Transfer Account)

इस खातें में सभी प्रकार के उपहार, अनुदान, सहायता इत्यादि सम्मिलित है। यह दो प्रकार का हो सकता है; एक सरकारी और दूसरा निजी। विदेश आर्थिक सहायता और अनुदान, या विदेश सैनिक सहायता और अनुदान एक देश की प्राप्तियों में सम्मिलित होगा, जबकि इस देश द्वारा दूसरे देशों को दी गयी आर्थिक तथा सैनिक सहायता व अनुदान उसके भुगतानों में सम्मिलित होंगे। चूँकि इनके बदले किसी प्रकार का भुगतान नहीं किया जाता है और यह सिर्फ एकपक्षीय प्रवाह को दर्शाता है, इसलिए इसे एकपक्षीय हस्तांतरण प्रप्तियाँ या भुगतान कहा जाता है।

2.4.4 दीर्घकालिक पूँजी खाता (Long term Capital Account)

इसके अंर्तगत उन विनियोगों को सम्मिलित किया जाता है जो एक वर्ष या उससे अधिक अवधि के लिए किए जाते है। इस खाते को तीन भागों में बाँटा जा सकता है–

(क) निजी प्रत्यक्ष निवेश
(ख) निजी पोर्टफोलियो निवेश
(ग) सरकारी उधार या ऋण

यदि देश के नागरिकों तथा कम्पनियों द्वारा विदेशों में प्रत्यक्ष निवेश किया जा रहा है तो यह डेबिट पक्ष (देनदारियों) में सम्मिलित होगा तथा यदि विदेशी नागरिक तथा कम्पनियाँ घरेलू देश में प्रत्यक्ष निवेश कर रही है तो यह भुगतान–संतुलन के क्रेडिट–पक्ष (लेनदारियों) में सम्मिलित होगा।

इसी प्रकार, देश के नागरिकों तथा कम्पनियों द्वारा विदेशी प्रतिभूतियों या स्टॉक या बॉन्ड या शेयर में किया गया निवेश डेबिट तथा विदेशियों द्वारा घरेलू प्रतिभूतियों, स्टॉक, बांड, शेयर इत्यादि में किया गया निवेश क्रेडिट पक्ष में सम्मिलित होगा।

प्रत्यक्ष निजी निवेश में पूँजी प्रवाह घरेलू देश और विश्व के अन्य देशों में लाभ दर के अंतर पर निर्भर करती है। यदि घेरलू पदेश में लाभ की दर (Profit rate) शेष विश्व से अधिक है तो देश के अंदर प्रत्यक्ष विदेश निवेश के रूप में पूँजी का अंर्तप्रवाह बढ़ेगा। इसी प्रकार, पोर्टफोलियो निवेश के अंर्तगत पूँजी का अंर्त या वाह्य प्रवाह घरेलू देश और शेष–विश्व में ब्याज दर,, लाभांश या पूँजी पर प्रतिफल की दर के बीच अंतर पर निर्भर करेगा।

यदि घरेलू देश द्वारा विदेशी सरकार या देश को ऋण दिया जाता है तो वह भुगतान–संतुलन के डेबिट तथा यदि विदेशी देश द्वारा घरेलू देश को ऋण दिया जाता है तो क्रेडिट पक्ष में सम्मिलित होगा।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि दीर्घकालिक पूँजी खाता देश के अंदर या बाहर नए पूँजी प्रवाह को सम्मिलित करता है। पूर्व के कुल दीर्घकालिक पूँजी निवेश का प्रभाव सेवा खाते के पूँजी सेवाओं से प्राप्त आय (निवेश आय) पर पड़ता है। यदि एक देश ऋण देने वाला और विदेशों में अत्यधिक पूँजी निवेश करने वाला देश है उसका दीर्घकालिक पूँजी खाते में घाटा हो सकता है परन्तु इससे सेवा खते में उसकी निवेश आय का प्राप्तियाँ बढ़ती है और यदि एक देश उधार लेने वाला और अत्यधिक विदेशी निवेश प्राप्त करने वाला देश है तो इससे उसके पूँजी खाते में अतिरेक होगा, परन्तु इससे निवेश आय के रूप में उस देश के भुगतान में वृद्धि होगी और सेवा खाते में वह घाटे का सामना कर सकता है।

2.4 .5 अल्पकालिक पूँजी खाता (Short term Capital Account)

इस खाते के अंर्तगत वे अल्पकालिक पूँजी मदें आती हैं जो कि एक वर्ष से कम की अवधि के लिए होती है। इसके अंर्तगत बैक जमाएं, सरकारों के अल्पकालीन बांड और अन्य अल्पकालिक भुगतान तथा प्राप्तियाँ आती हैं। अल्पकालिक पूँजी लेन–देन में ज्यादातर हिस्सा व्यापार तथा वाणिज्य के वित्तियन के लिए बैंक हस्तांतरण होते हैं।

कुछ देशों में, अल्पकालिक पूँजी खाते को "भूल–चूक" (Error and Qmissions) खाता भी कहा जाता है। कुल देशों में इसे "गैर विवरणी लेन–देन खाता" (Unrecorded transactions) कहते हैं।

इन खातों में अल्पकालिक पूँजी लेन–देन के अतिरिक्त निम्नलिखित मदें सम्मिलित होती हैं–

(क) सांख्यकीय और विवरणीय भूल (Statistical & Recording Errors)

(ख) स्मगलिंग

(ग) गैर–कानूनी तथा गोपनीय पूँजी प्रवाह

(घ) अपूर्ण अनुमान प्रक्रिया (Imperfect Estimation Procedures)

वास्तव में 'भूल–चूक' एक तरह से अप्रमाणित व्यवसायों से संबंधित लेन–देन को दर्शाते हैं।

2.4 .6 अर्न्तराष्ट्रीय तरलता खाता (International Liquidity Account)

यह खाता भुगतान–संतुलन के घाटे या अतिरेक के समायोजन से संबंधित है जो कि सीधे तौर पर विदेशी रिजर्वों में परिवर्तन को दर्शाता है। इसलिए यह एक तरह से आधिकारिक व्यवस्थापन खाता (Official Settlement Account) है। यह खाता अंर्तराष्ट्रीय दायित्वों के व्यवस्थापन के लिए अंर्तराष्ट्रीय स्तर पर स्वीकार्य सभी साधनों को सम्मिलित करता है।

यदि एक देश के ऊपर से सभी 5 खातों की प्राप्तियों का योग उसके कुल भुगतानों से कम है तो इसका अर्थ यह है कि डेबिट भुगतान के क्रेडिट प्राप्तियों से अधिक देने के कारण इसे भुगतान–संतुलन में घाटे का सामना करना पड़ रहा है। इस घाटे को पूरा करने के लिए यह देश निम्नलिखित में से किसी एक उपाय या तीनों उपायों का सहारा ले सकता है–

(क) घाटे के बराबर सोने का निर्यात या बिक्री

(ख) घाटे के बराबर पहले से संचित विदेशी मुद्रा भण्डार में से निकासी

(ग) घाटे के बराबर, मित्र देशों या अंर्तराष्ट्रीय संस्थाओं से अल्पकालिक या दीर्घकालिक उधार।

इस प्रकार, ऊपर के 5 खातों पर हुए घाटे का वित्तियन किया जा सकता है। अंर्तराष्ट्रीय तरलता खाते में क्रेडिट पक्ष में प्राप्तियों को दर्शाना उसी मात्रा में उस वर्ष में भुगतान–शेष के घाटे को बताता है।

ठीक इसी प्रकार यदि एक देश में भुगतान–संतुलन के 5 खातों की प्राप्तियों का योग उसके भुगतानों से अधिक है तो यह उसके भुगतान–शेष के अतिरेक को दर्शाता है और उतनी मात्रा के बराबर अंर्तराष्ट्रीय तरलता खाते के डेबिड पक्ष में भुगतान को दर्शाया जाएगा। यह डेबिट या भुगतान निम्नलिखित रूप में हो सकता है–

(क) अतिरेक के बराबर सोने की खरीद या आयात

(ख) विदेशी मुद्रा भण्डार में अतिरेक के बराबर वृद्धि

(ग) दूसरे देशों को, अतिरेक के बराबर के ऋण।

निम्नलिखित सारणी से आप भुगतान– संतुलन के विभिन्न खातों तथा अवधारणाओं को समझ सकते हैं–

सारणी 2.1 : भुगतान–संतुलन के विभिन्न खातें

	क्रेडिट (लेनदरियाँ)– प्राप्तियाँ	**डेबिट (देनदारियाँ) भुगतान**
(1) वस्तु–खाता	दृश्य वस्तुओं का निर्यात	दृश्य वस्तुओं का आयात
(2) सेवा–खाता	अदृश्य मदों या सेवाओं का निर्यात (क) परिवहन, बैकिंग तथा बीमा सेवाओं से प्राप्तियाँ (ख) विदेशियों द्वारा देश में पर्यटन, यात्रा सेवाएँ, वस्तुओं एवं सेवाओं की खरीद से हुई प्राप्तियाँ (ग) देश में पढ़ रहे विदेशियों द्वारा हुई प्राप्तियाँ (घ) डॉक्टर, इंजीनियर, वैज्ञानिक इत्यादि विशेषज्ञों की सेवाओं से विदेश में हुई प्राप्तियाँ (ङ)विदेशी सरकार द्वारा दूतावासों और उनके स्टाफ पर व्यय (च) भारतीय कंपनियों द्वारा विदेशों में किए गए दीर्घकालिक निवेशों से प्राप्त ब्याज, लाभ, लाभांश तथा रायल्टी	अदृश्य मदों या सेवाओं का आयात (क) परिवहन, बैकिंग तथा बीमा सेवाओं के लिए विदेशी देश का भुगतान (ख) पर्यटन, यात्रा सेवा, वस्तुओं एवं सेवाओं की भारतीय पर्यअकों द्वारा विदेशों में खरीद पर व्यय (ग) विदेशों में पढ़ रहे छात्रों द्वारा किया गया व्यय (घ) विदेशी डॉक्टर, इंजीनियर, वैज्ञानिकों द्वारा सेवाओं पर हुए भुगतान (ङ)घरेलू सरकार द्वारा दूतावास व स्टाफ पर व्यय (च) विदेशी कंपनियों द्वारा देश में किए गए दीर्घकालिक निवेशों से प्राप्त ब्याज, लाभ, लाभांश तथा रायल्टी का भुगतान।
(3) एकपक्षीय हस्तांतरण खाता	विदेशी सरकारों या निजी व्यक्तियों से प्राप्त उपहार, दान, अनुदान, सहायता इत्यादि।	घरेलू देश की सरकार या निजी व्यक्तियों द्वारा विदेशी सरकारों या व्यक्तियों को दिए गए उपहार, दान, सहायता इत्यादि।
(4) दीर्घकालिक पूँजी खाता	(क) विदेश के नागरिकों तथा कम्पनियों द्वारा किया गया प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (ख) विदेशी नागरिकों तथा फर्मों द्वारा घरेलू प्रतिभूतियाँ, बांडों, शेयरों इत्यादि में किया गया पोर्टफालियो निवेश (ग) घरेलू सरकार द्वारा विदेशी सरकारों या संस्थाओं से किया गया उधार	(क) घेरलू नागरिकों तथा कम्पनियों द्वारा विदेशों में किया गया प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (ख) घरेलू नागरिकों तथा फर्मों द्वारा विदेशों में प्रतिभूतियाँ, बांडों, शेयरों इत्यादि में किया गया निवेश (ग) विदेशी सरकारों द्वारा देश से लिया गया उधार
(5) भूल–चूक, जिसमें	(क) एक वर्ष से कम की अवधि के लिए विदेशों से प्राप्त बैंक जमाएँ इत्यादि।	(क)एक वर्ष से कम की अवधि के लिए विदेशी देश को किए गए अल्पकालिक

अल्पकालिक पूँजी खाता सम्मिलित हो	(ख) अप्रमाणित व्यवसायों से प्राप्तियाँ	बैंक हस्तांतरण (ख) अप्रमाणित व्यवसायों में किया गया भुगतान
(6) अंर्तराष्ट्रीय तरलता अनुपात	(क) सोने का निर्यात (ख) विदेशी मुद्रा भण्डार में कमी (ग) मित्र देशों या अंर्तराष्ट्रीय संस्थाओं से उधार	(क) सोने का अयात (ख) विदेशी मुद्रा भण्डार में वृद्धि (ग) विदेशी देशों को उधार

2.5 व्यापार संतुलन (Balance of Tarde)

जेम्स ई0 मीड तथा कुछ अन्य अर्थशस्त्रियों के अनुसार व्यापार संतुलन निर्यातित तथा आयातित वस्तुओं तथा सेवाओं का अंतर होता है। यदि एक देश के वस्तुओं और सेवाओं के कुल निर्यात उसके वस्तुओं और सेवाओं के कुल आयात से अधिक है तो व्यापार–संतुलन अतिरेक में या उस देश के पक्ष में होगा, परन्तु यदि कम है तो व्यापार–संतुलन में घाटा होगा, और यह स्थिति उस देश के प्रतिकूल होगी। सारणी 2.2 में, व्यापार शेष का घाटा रु 250 करोड़ के बराबर है।

कुछ अर्थशास्त्री सिर्फ व्यापारिक या दृश्य वस्तुओं के निर्यात तथा आयात के अन्तर को अर्थात् सिर्फ 'वस्तु–खाता' के अंतर को ही व्यापार–संतुलन के रूप में परिभाषित करते है। भारत में भी व्यापार–संतुलन का अर्थ वस्तु–खाते का अन्तर है अर्थात् सिर्फ वस्तुओं के निर्यातों और आयातों का अन्तर। सारणी 2.2 में वस्तु खाता में रु300 करोड़ का घाटा है जो कि व्यापार–संतुलन के घाटे को दिखा रहा है। यदि वस्तुओं का निर्यात वस्तुओं के आयात से अधिक होगा तो व्यापार–संतुलन में अतिरेक होगा और यह स्थिति देश के लिए अनुकूल होगी। परन्तु मीड के अनुसार व्यापार शेष की इस परिभाषा का महत्व कम है और राष्ट्रीय आय की गणना की दृष्टि से यह व्यापार शेष को मापने का गलत तरीका है। राष्ट्रीय आय की गणना में शुद्ध निर्यात या वस्तुओं और सेवाओं के निर्यातों और आयातों का अंतर (X-M) सम्मिलित होता है, **गणितीय रूप में**

$$Y=C+I+G+(X-M)$$

(X-M) या व्यापार–संतुलन राष्ट्रीय में हुई शुद्ध वृद्धि को बताता है।

2.6 भुगतान संतुलन का मापन तथा विभिन्न अवधारणाएं

सारणी 2.2 : भुगतान संतुलन की सारणी (करोड़ रुपये में)

	मुख्य खाते	क्रेडिट (प्राप्तियाँ)	डेबिट (भुगतान)	शुद्ध अतिरेक या घाटा
1.	वस्तु खाता	500	800	-300
2.	सेवा खाता	350	300	+50
I.	व्यापार शेष (1+2)	(850)	(1100)	(-250)
3.	एक पक्षीय हस्तांतरण खाता	150	100	+50
II.	चालू खाते पर भुगतान संतुलन (1+2+3)	(1000)	(1200)	(-200)
4.	दीर्घकालिक पूँजी खाता	300	175	+125
III.	आधारभूत संतुलन (1+2+3+4)	(1300)	(1375)	(-75)
5.	अल्पकालिक पूँजी खाता	75	50	+25
IV.	पूँजी खाते पर भुगतान संतुलन (4+5)	(375)	(225)	(+150)

V. (II+IV)	कुल भुगतान संतुलन (1+2+3+4+5)	1375	1425	-50
6.	अंतर्राष्ट्रीय तरलता खाता (विदेशी मुद्रा भण्डार में शुद्ध परिवर्तन)	50	-	-
VI.	भुगतान संतुलन (लेखांकन संतुलन)	(1425)	(1425)	(00)

2.6.1 चालू खाते पर भुगतान संतुलन

वस्तु खाता, सेवा खाता तथा एकपक्षीय हस्तांतरण खाता को सम्मिलित रूप से चालू खाते पर भुगतान संतुलन कहा जाता है। चालू खाते पर भुगतान–संतुलन शुद्ध विदेशी प्राप्तियों को दर्शाता है क्योंकि यह सकल राष्ट्रीय उत्पाद में विदेशी व्यापार के योगदान को बताता है। चालू खाता किसी भी देश के व्यापार से प्राप्त अर्जन (earning) तथा कुल व्ययों (spendings) को दर्शाता है। इस प्रकार चालू खाते का अतिरेक या घाटा किसी भी देश के भुगतान–संतुलन की स्थिति जानने का सबसे महत्वपूर्ण घटक होता है। सारणी 11.2 में चालू खाते पर `200 करोड़ का घाटा है जोकि देश के लिए प्रतिकूल स्थिति को बताता है।

2.6.2 पूँजी खाते पर भुगतान–संतुलन

दीर्घकालिक पूँजी खाता और अल्पकालिक पूँजी खाता का योग पूँजी खाते पर भुगतान–संतुलन होता है। इस प्रकार एक देश के पूँजी तथा निवेश से संबंधित सभी प्रकार के लेन–देन (चाहे वे निजी हों या सरकारी, दीर्घकालिक हो या अल्पकालिक, प्रत्यक्ष या पोर्टफोलियो, व्यक्तिगत या संस्थागत) भुगतान–संतुलन के पूँजी खाते के अंर्तगत आएंगे।

सारणी 11.2 में पूँजी खाते पर `150 करोड़ का अतिरेक है जो यह बताता है कि यह देश विश्व के शेष देशों में पूँजी निवेश या उधार लेने वाला देश है। जिससे भविष्य में इसके सेवा खाते में निवेश आय बढ़ेगी।

2.6.3 आधारभूत संतुलन

चालू खाते पर भुगतान–संतुलन तथा दीर्घकालिक पूँजी खाते का योग भुगतान–संतुलन का आधारभूत संतुलन कहा जाता है। इसमे अल्पकालिक पूँजी खाता सम्मिलित नहीं किया जाता है। सारणी 11.2 में आधारभूत संतुलन में `75 करोड़ का अतिरेक है।

2.6.4 कुल भुगतान संतुलन

चालू खाते तथा पूँजी खाते पर भुगतान–संतुलन का योग कुल भुगतान–संतुलन को बताता है। यह एक देश के शेष विश्व के साथ हुए सभी प्रकार के अंतर्राष्ट्रीय मौद्रिक लेन–देन को सम्मिलित करता है। यदि भुगतान–संतुलन की कुल प्राप्तियाँ उसके भुगतानों से अधिक है तो भुगतान–संतुलन घाटे में होगा। सारणी 11.2 में कुल भुगतान संतुलन में `50 करोड़ का घाटा है, जोकि चालू खाते के घाटे के कारण है, जोकि इस देश के लिए प्रतिकूल स्थिति को बताता है।

परन्तु कुल भुगतान–संतुलन का घाटा या अतिरेक उस देश के लिए बेहतर है या प्रतिकूल स्थिति को दर्शाता है यह इस बात पर निर्भर करेगा कि चालू खाते और पूँजी–खाते पर भुगतान–संतुलन की स्थिति क्या है?

यदि भुगतान–संतुलन का अतिरेक चालू खाते के अतिरेक के कारण है, परन्तु पूँजी–खाते के अतिरेक के कारण नहीं है तो यह स्थिति उस देश के लिए अनुकूल हो सकता है।

इसी प्रकार, यदि भुगतान–संतुलन का कुल घाटा चालू–खाते के घाटे के कारण है न कि पूँजी खाते के कारण तो यह उस देश के लिए प्रतिकूल स्थिति हो सकती है।

2.6.5 लेखांकन भुगतान–संतुलन

जब कुल भुगतान–संतुलन के असंतुलन (अतिरेक या घाटा) को दूर करने के लिए इसमें अंतर्राष्ट्रीय तरलता खाता जोड़ दिया जाता है तो लेखांकन की दृष्टि से भुगतान–संतुलन की समस्त प्राप्तियाँ (क्रेडिट–लेनदारियाँ) तथा भुगतानों (डेबिट–देनदारियाँ) के बराबर जो जाती है और भुगतान संतुलन, संतुलन में हो जाता है।

उल्लेखनीय है कि लेखांकन या बही खाता (Book-Keeping) की दृष्टि से भुगतान–संतुलन सदैव संतुलित होना चाहिए अर्थात् क्रेडिट और डेबिट पक्ष सदैव संतुलन में होते हैं।

सारणी 11.2 में भुगतान–संतुलन के पाँच खातों में हुए समस्त लेन–देन में भुगतान (डेबिट), प्राप्तियों से `50 करोड़ अधिक है अर्थात् भुगतान–शेष में `50 करोड़ का घाटा है। `50 करोड़ के बराबर की राशि अंतर्राष्ट्रीय तरलता खाते के क्रेडिट पक्ष में सम्मिलित होगी जिससे कि भुगतान–संतुलन लेखांकन की दृष्टि से संतुलन मे हो जाए। इसके लिए यह देश निम्नलिखित में से कोई भी उपाय कर सकता है, या तीनो के संयोग का सहारा ले सकता है –

(क) वह रु50 करोड़ के बराबर सोने का निर्यात करे, या

(ख) देश के विदेशी मुद्रा भण्डार से रु50 करोड़ का निकाले या

(ग) मित्र देशों या संस्थानों से रु50 करोड़ के बराबर उधार ले।

यदि उस देश के भुगतान–संतुलन के पाँच खातों को मिलाकर रु50 करोड़ का अतिरेक होता तो भुगतान–संतुलन को लेखांकन की दरुष्टि से संतुलित करने के लिए वह रु50 करोड़ के बराबर अंतर्राष्ट्रीय तरलता खाते के डेबिट पक्ष में सम्मिलित करेगा। वह देश इस अतिरेक को निम्नलिखित तरीके से खत्म कर सकता है–

(क) रु50 करोड़ के बराबर सोने की खरीद या आयात, या

(ख) देश के विदेशी मुद्रा भण्डार में रु50 करोड़ के बराबर वृद्धि,या

(ग) जरूरतमंद देशों को रु50 करोड़ के बराबर उधार देकर या विदेशी आय अर्जन या अल्पाकालिक परिसम्पत्तियाँ खरीद सकती है।

इस प्रकार अंतराष्ट्रीय तरलता खाता भुगतान–संतुलन को लेखांकन की दृष्टि से संतुलित करने के लिए भुगातन–संतुलन में उचित समायोजन करता है।

2.7 भुगतान–संतुलन तथा व्यापार–संतुलन में अन्तर

जैसा कि आपने देखा कि किसी देश का भुगतान शेष उसके किसी एक वर्ष में किए गए वस्तुओं सेवाओं तथा पूँजी के समस्त प्रकार के लेन–देन की प्राप्तियाँ और भुगतानों का व्यवस्थित रिकार्ड होता है। इस प्रकार भुगातन–संतुलन के अंतर्गत लेनदररियाँ तथा देनदारियों की समस्त मदें सम्मिलित होती हैं, जिनके कारण एक देश को भुगतान प्राप्त होते हैं या शेष विश्व को भुगातन करने पड़ते हैं।

जबकि एक देश का व्यापार–संतुलन का सम्बन्ध सिर्फ दृश्य वस्तुओं के निर्यातित तथा आयातित मूल्यों का अंतर होता है। इस अर्थ में व्यापार शेष का कोई विश्लेषणात्मक महत्व नहीं है। यदि व्यापार शेष को मीड के अर्थों में लिया जाय तो इसमें दृश्य और अदृश्य सेवाएँ वस्तुओं दोनों सम्मिलित होंगी। अर्थात् तब व्यापार शेष निर्यातित तथा आयातित वस्तुओं और सेवाओं के मूल्य का अंतर होगा। और इस अर्थ में, व्यापार शेष का राष्ट्रीय आय के निर्धारण में महत्वपूर्ण योगदान होगा।

स्पष्ट है कि व्यापार शेष, अपने दोनों ही अर्थों में भुगतान–संतुलन का एक हिस्सा हैं। भुगतान संतुलन एक बड़ी संकल्पना है जबकि व्यापार शेष उससे छोटी संकल्पना है। वास्तव में व्यापार–संतुलन किसी देश के भुगतान–संतुलन का सबसे बड़ा और महत्वपूर्ण हिस्सा होता है। अनुकूल भुगतान–शेष की स्थिति में भी व्यापार शेष प्रतिकूल हो सकता है और यह स्थिति उस देश के विरुद्ध हो सकती है। जबकि प्रतिकूल भुगतान–शेष की स्थिति मे भी व्यापार–संतुलन अनुकूल हो सकता है और यह स्थिति उस देश के लिए अनुकूल हो सकती है।

2.8 भुगतान संतुलन का स्वायत्त तथा समायोजक लेनदेन (Autonomuous and Accommodating trransactions)

यदि कोई लेन–देन, भुगतान–संतुलन के अन्य मदों के आकार को ध्यान में रखे बिना होता है तो उसे स्वायत्त लेन–देन कहते हैं अर्थात भुगतान–संतुलन के किसी भी खाते में जो लेन–देन स्वायत्त ढंग से होता है। इसे 'रेखा के ऊपर का लेन–देन' भी कहते हैं। भुगतान–शेष के प्रारम्भिक 5 खातों - वस्तु खाता, सेवा खाता, एकपक्षीय हस्तांतरण खाता, दीर्घकालिक ओर अल्पकालिक पूँजी खाता- में हुए लेन–देन 'स्वायत्त' या 'रेखा के ऊपर' का लेन–देन कहे जाते हैं। ये लेन–देन स्वायत्त आर्थिक गतिविधियों के फलस्वरूप होते हैं ओर ये भुगतान संतुलन की स्थिति से स्वतंत्र होते हैं अर्थात भुगतान–संतुलन के अतिरेक या घाटे को ध्यान में रखते हुए ये लेन–देन नहीं होते हैं बल्कि उससे पूरी तरह स्वतंत्र होते हैं।

छठां खाता, जो कि अंतर्राष्ट्रिय तरलता खाता है, समायोजक लेन–देन खाता है। जो कि भुगतान–शेष की स्थिति पर निर्भर करता है। यह भुगतान–संतुलन की स्थिति का परिणाम है। जबकि 'स्वायत्त' लेन–देन भुगतान–संतुलन की स्थिति का कारण होता है। 'स्वायत्त' लेन–देन के कारण ही भुगतान संतुलन में असंतुलन (अतिरेक या घाटा) पैदा होता है और इसी असंतुलन को दूर करने के लिए समायोजक लेन–देन खाते का सहारा लिया जाता है। इस लेन–देन की मात्रा स्वायत्त लेन–देन के कारण भुगतान–संतुलन में हुए अतिरेक या घाटे की मात्रा पर निर्भर करती है। समायोजक लेन–देन को 'रेखा के नीचे' का लेन–देन भी कहते हैं।

यदि कोई सोना निर्यातक देश दूसरे देश को सोने का निर्यात करता है तो यह उसके वस्तु–खाते के अंर्तगत उसकी प्राप्तियों में जुड़ेगा। यहाँ सोने का निर्यात एक स्वायत्त गतिविधि के रूप में या चालू खाता लेन–देन के रूप में है। परन्तु यदि एक देश अपने देश के भुगतान–शेष के असंतुलन (घाटे) को दूर करने के लिए सोने का निर्यात करता है तो यह उसके अंतर्राष्ट्रीय तरलता खाते के क्रेडिट पक्ष में अंकित होगा और यह समायोजक लेन–देन होगा। इसी प्रकार यदि एक देश अपने मित्र देश से या विश्व बैंक से अपने आधारिक संरचना (सड़क, सीवर, शिक्षा, स्वास्थ्य इत्यादि) के विकास के लिए उधार लेता है तो यह एक स्वायत्त लेन–देन है जो कि दीर्घकालिक पूँजी खाते के अंर्तगत क्रेडिट के रूप में सम्मिलित होगा। परन्तु यदि यह देश अपने स्वायत्त लेन–देन के फलस्वरूप उत्पन्न भुगतान–संतुलन के घाटे को दूर करने के लिए अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा–कोष, विश्व बैंक या किसी अन्य से उधार लेता है तो यह 'समायोजक' लेन–देन के अंर्तगत आएगा और उस देश के अंतर्राष्ट्रीय तरलता खाता में क्रेडिट के रूप में सम्मिलित होगा।

परन्तु 'स्वायत्त' और 'समायोजक' लेन–देन के मध्य स्पष्ट अन्तर करना आसान नहीं है। कोई भी देश अपने भुगतान–संतुलन की स्थिति को देखते हुए चालू खाते या पूँजी खाते पर इस प्रकार से लेन–देन कर सकता है कि भुगतान–संतुलन में असंतुलन उत्पन्न न हो। फिर भी, लेखांकन के उद्देश्य से चालू तथा पूँजी खाते पर होने वाले समस्त लेन–देनों को स्वायत्त तथा अंतर्राष्ट्रीय तरलता खाते के लेन–देन को 'समायोजक' लेन–देन कहना तर्कसंगत होगा। स्वायत्त लेन–देन के किसी भी असंतुलन के वित्तियन के लिए जान बूझकर किए जाने वाले लेन–देन समायोजक लेन–देन होता है।

2.9 सारांश

एक देश का विश्व के अन्य सभी देशों के साथ होने वाले समस्त प्रकार के लेन–देन, चाहे वह वस्तुओं के रूप में हो, सेवाओं के रूप में हो या फिर पूँजी के रूप में, का एक सुव्यवस्थित लेखा भुगतान–संतुलन है। भुगतान संतुलन एक दी हुई समयावधि में किसी देश द्वारा किए गए समस्त अंतर्राष्ट्रीय लेन–देन का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करता हो। भुगतान शेष लेखा की दोहरी–प्रविष्टि बहीखाता सिद्धान्त पर आधारित है, जिसमें प्रत्येक सौदा, बैलेंस शीट में क्रेडिट (लेनदरियाँ या प्राप्तियाँ) तथा डेबिट (देनदारियाँ या भुगतान) पक्ष में दर्ज किया जाता है। भुगतान शेष लेखा की दोहरी–प्रविष्टि (क्वनइसम मदजतल) बहीखाता सिद्धान्त पर आधारित है, जिसमें प्रत्येक सौदा, बैलेंस शीट में क्रेडिट (लेनदरियाँ या प्राप्तियाँ) तथा डेबिट (देनदारियाँ या भुगतान) पक्ष में दर्ज किया जाता है।

भुगतान–शेष के प्रारम्भिक 5 खातों– वस्तु खाता, सेवा खाता, एकपक्षीय हस्तांतरण खाता, दीर्घकालिक ओर अल्पकालिक पूँजी खाता– में हुए लेन–देन 'स्वायत्त' या 'रेखा के ऊपर' का लेन–देन कहे जाते हैं। ये लेन–देन स्वायत्त आर्थिक गतिविधियों के फलस्वरूप होते हैं ओर ये भुगतान संतुलन की स्थिति से स्वतंत्र होते हैं अर्थात भुगतान–संतुलन के अतिरेक या घाटे को ध्यान में रखते हुए ये लेन–देन नहीं होते हैं बल्कि उससे पूरी तरह स्वतंत्र होते हैं।

वस्तु खाता के अंर्तगत 'दृश्य' वस्तुओं का लेन–देन आता हे।सेवा खाते मे एक देश द्वारा एक वर्ष के किए गए सभी सेवाओं के निर्यातों तथा आयातों का ब्यौरा होता है। चूँकि सेवाएँ वस्तुओं की तरह 'दृश्य' नहीं होती है इसलिए सेवाओं के लेन–देन को भुगतान संतुलन की अदृश्य मदें कहा जाता है । एकपक्षीय हस्तांतरण खातें में सभी प्रकार के उपहार, अनुदान, सहायता इत्यादि सम्मिलित है। दीर्घकालिक पूँजी खाता के अंर्तगत उन विनियोगों को सम्मिलित किया जाता है जो एक वर्ष या उससे अधिक अवधि के लिए किए जाते है। इस खाते को तीन भागों में बाँटा जा सकता है–निजी प्रत्यक्ष निवेश, निजी पोर्टफोलियो निवेश सरकारी उधार या ऋण। अल्पकालिक पूँजी खाते के अंर्तगत वे अल्पकालिक पूँजी मदें आती हैं जो कि एक वर्ष से कम की अवधि के लिए होती है।यह खाता भुगतान–संतुलन के घाटे या अतिरेक के समायोजन से संबंधित है जो कि सीधे तौर पर विदेशी रिजर्वों में परिवर्तन को दर्शाता है। इसलिए यह एक तरह से सरकारी व्यवस्थापन लेखा है। यह खाता अंर्तराष्ट्रीय दायित्वों के व्यवस्थापन के लिए अंर्तराष्ट्रीय स्तर पर स्वीकार्य सभी साधनों को सम्मिलित करता है।

जेम्स ई0 मीड तथा कुछ अन्य अर्थशस्त्रियों के अनुसार व्यापार संतुलन निर्यातित तथा आयातित वस्तुओं तथा सेवाओं का अंतर होता है। कुछ अर्थशास्त्री सिर्फ व्यापारिक या दृश्य वस्तुओं के निर्यात तथा आयात के अन्तर को अर्थात् सिर्फ 'वस्तु–खाता' के अंतर को ही व्यापार–संतुलन के रूप में परिभाषित करते है। भारत में भी व्यापार–संतुलन का अर्थ वस्तु–खाते का अन्तर है अर्थात् सिर्फ वस्तुओं के निर्यातों और आयातों का अन्तर। व्यापार शेष, अपने दोनों ही अर्थों में भुगतान–संतुलन का एक हिस्सा हैं।

वस्तु खाता, सेवा खाता तथा एकपक्षीय हस्तांतरण खाता को सम्मिलित रूप से चालू खाते पर भुगतान संतुलन कहा जाता है। चालू खाते तथा पूँजी खाते पर भुगतान–संतुलन का योग कुल भुगतान–संतुलन को बताता है।कुल भुगतान–संतुलन का घाटा या अतिरेक उस देश के लिए बेहतर है या प्रतिकूल स्थिति को दर्शाता है यह इस बात पर निर्भर करेगा कि चालू खाते और पूँजी–खाते पर भुगतान–संतुलन की स्थिति क्या है? यदि भुगतान–संतुलन का अतिरेक चालू खाते के अतिरेक के कारण है, परन्तु पूँजी–खाते के अतिरेक के कारण नहीं है तो यह स्थिति उस देश के लिए अनुकूल हो सकता है।जब कुल भुगतान–संतुलन के असंतुलन (अतिरेक या घाटा) को दूर करने के लिए इसमें अंतर्राष्ट्रीय तरलता खाता जोड़ दिया जाता है तो लेखांकन की दृष्टि से भुगतान–संतुलन की समस्त प्राप्तियाँ (क्रेडिट–लेनदारियाँ) तथा भुगतानों (डेबिट–देनदारियाँ) के बराबर जो जाती है और भुगतान संतुलन, संतुलन में हो जाता है।

2.10 शब्दावली

भुगतान–शेष– किसी देश का भुगतान–शेष किसी दी हुई अवधि (जैसे एक वर्ष) में उस देश के नागरिकों द्वारा विश्व के अन्य देशों के नागरिकों के बीच हुए समस्त आर्थिक लेन–देन का व्यस्थित विवरण है।

व्यापार शेष– वस्तु खाते पर हुई प्राप्तियों तथा भुगतानों का अन्तर व्यापार–शेष कहलाता है। अर्थात सिर्फ दृश्य व्यापारिक वस्तुओं के निर्यात तथा आयात मूल्यों का अंतर व्यापार–शेष है। परन्तु व्यापक अर्थों में व्यापार–शेष वस्तुओं या सेवाओं के निर्यात तथा आयात मूल्यों का अंतर है।

भुगतान–संतुलन के स्वायत्त लेन–देन या 'रेखा के ऊपर' का लेन–देन - यदि कोई लेन–देन, भुगतान–संतुलन के अन्य मदों के आकार को ध्यान में रखे बिना होता है तो उसे स्वायत्त लेन–देन कहते हैं अर्थात भुगतान–संतुलन के किसी भी खाते में जो लेन–देन स्वायत्त ढंग से होता है। इसे **'रेखा के ऊपर का लेन–देन'** भी कहते हैं। भुगतान–शेष के प्रारम्भिक 5 खातों - वस्तु खाता, सेवा खाता, एकपक्षीय

हस्तांतरण खाता, दीर्घकालिक ओर अल्पकालिक पूँजी खाता- में हुए लेन–देन 'स्वायत्त' या 'रेखा के ऊपर' का लेन–देन कहे जाते हैं। ये लेन–देन स्वायत्त आर्थिक गतिविधियों के फलस्वरूप होते हैं ओर ये भुगतान संतुलन की स्थिति से स्वतंत्र होते हैं अर्थात भुगतान–संतुलन के अतिरेक या घाटे को ध्यान में रखते हुए ये लेन–देन नहीं होते हैं बल्कि उससे पूरी तरह स्वतंत्र होते हैं।

समायोजक लेन–देन या 'रेखा के नीचे' का लेन–देन - छठां खाता, जो कि अंतर्राष्ट्रिय तरलता खाता है, समायोजक लेन–देन खाता है। जो कि भुगतान–शेष की स्थिति पर निर्भर करता है। यह भुगतान–संतुलन की स्थिति का परिणाम है। जबकि 'स्वायत्त' लेन–देन भुगतान–संतुलन की स्थिति का कारण होता है। 'स्वायत्त' लेन–देन के कारण ही भुगतान संतुलन में असंतुलन (अतिरेक या घाटा) पैदा होता है और इसी असंतुलन को दूर करने के लिए समायोजक लेन–देन खाते का सहारा लिया जाता है। इस लेन–देन की मात्रा स्वायत्त लेन–देन के कारण भुगतान–संतुलन में हुए अतिरेक या घाटे की मात्रा पर निर्भर करती है। समायोजक लेन–देन को 'रेखा के नीचे' का लेन–देन भी कहते हैं।

2.11 संदर्भ ग्रंथ सूची

41. H. G. Mannur, *International Economics* ,Vikas Publishing House Pvt. Ltd. 2001

42. Bo Sodersten, International Economics ,Macmillan, 1999

43. Paul Krugman and Maurice Obstfeld: *International Economics: Theory and Policy, Dorling Kindersley India Pvt Ltd, 2009.*

44. Charles P Kindleberger, International Economics, Richard D. Irwin Inc., Illinois, 1968

45. Dominik Salvatore, International Economics, John Willy & Sons, Inc., 2008

46. सुदामा सिंह एवं एम०सी० वैश्य, अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, ऑक्सफ़ोर्ड एंड आई०बी०एच० पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2007

47. एम०एल०झिंगन, अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, वृंदा पब्लिकेशन, दिल्ली, 2010.

48. ज्ञानेंद्र सिंह कुशवाहा, अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, दि मैकमिलन कंपनी आफ इंडिया लिमिटेड, नई दिल्ली,1979.

2.12 अभ्यास प्रश्न

लघु उत्तरीय प्रश्नः

1. भुगतान सन्तुलन का अर्थ बताइए?
2. भुगतान संतुलन के अंर्तगत **कौन से** प्रमुख खाते होते हैं?
3. अर्न्तराष्ट्रीय तरलता खाता **से आप क्या समझते हैं?**
4. भुगतान–संतुलन तथा व्यापार–संतुलन में अन्तर स्पष्ट कीजिये.
5. 'स्वायत्त' तथ 'समायोजक' लेन–देन के मध्य अन्तर स्पष्ट कीजिये.
6. कुल भुगतान–संतुलन के असंतुलन से आप क्या समझाते हैं?
7. लेखांकन की दृष्टि से भुगतान–संतुलन सदैव संतुलित होता है. विवेचना कीजिये.

निबंधात्मक प्रश्न

1. "भुगतान संतुलन सदैव सन्तुलित रहता है" यदि ऐसा है तो फिर हम किसी देश के भुगतान–संतुलन में अतिरेक या घाटे की चर्चा क्यों करते हैं?

2. भुगतान–संतुलन के 'अतिरेक' तथा 'घाटे' से आप क्या समझते हैं? भुगतान–संतुलन का किस प्रकार का 'घाटा' अधिक खतरनाक है। क्या भुगतान–संतुलन का 'अतिरेक' किसी देश के लिए हमेशा अनुकूल होता है?

<u>खंड 04:</u> विनिमय दर एवं भुगतान संतुलन
<u>इकाई</u>- 03
भुगतान संतुलन में असाम्य

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 भुगतान संतुलन में असाम्य या असंतुलन
3.4 भुगतान संतुलन में निपटान तथा समायोजन
3.5 भुगतान संतुलन में असंतुलन के प्रकार
 3.5.1 अस्थायी या अल्पकालीन असंतुलन
 3.5.2 दीर्घकालीन या आधारभूत असंतुलन
 3.5.3 चक्रीय असंतुलन
 3.5.4 संरचनात्मक असंतुलन
3.6 भुगतान संतुलन में असंतुलन के कारण
3.7 भुगतान संतुलन के घाटे को दुर करने के उपाय
 3.7.1 विदेशी विनिमय दर में परिवर्तन
 3.7.2 अवमूल्यन
 3.7.3 आय में परिवर्तन
 3.7.4 प्रत्यक्ष नियंत्रण
 3.7.5 विनिमय नियंत्रण
 3.7.6 आयात–प्रतिस्थापन
 3.7.7 निर्यात को प्रात्साहन
 3.7.8 विदेशी पर्यटकों को प्रोत्साहन
3.8 सारांश
3.9 शब्दावली
3.10 सन्दर्भ ग्रन्थ / उपयोगी सुची
3.11 अभ्यास प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार एवं व्यापार नीति के **खंड चार, विनिमय दर एवं भुगतान संतुलन** के 'भुगतान संतुलन में घाटा एवं असाम्य' से सम्बंधित यह तीसरी इकाई है. इससे पहले की इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप भुगतान संतुलन और उसके विभिन्न घटकों के बारे में तथा व्यापार संतुलन के बारे में बता सकते हैं. आप जान गए होंगे कि एक देश के भुगतान संतुलन के गंभीर संकट का अर्थ क्या है. भुगतान संतुलन के घाटे से निपटने के लिए प्राय: देश विभिन्न प्रकार के व्यापारिक प्रतिबंधों का सहारा लेते हैं जैसे प्रशुल्क, कोटा,विनिमय नियंत्रण इत्यादि.

प्रस्तुत इकाई में हम भुगतान संतुलन के घाटा या असाम्य तथा इसके कारणों और समायोजन के उपायों के सन्दर्भ में अध्ययन करेंगे. इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप भुगतान असंतुलन कारणों और समायोजन के उपायों के सम्बन्ध में स्पष्ट जानकारी प्राप्त कर सकेगें.

3.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के बाद आप –

- भुगतान संतुलन के घाटा या असाम्य का अर्थ एवं प्रकृति को समझ सकेंगे.
- भुगतान संतुलन में असंतुलन के कारण को जान पाएंगे.
- भुगतान संतुलन में समायोजन के उपायों को समझ सकेंगे.

3.3 भुगतान संतुलन का असाम्य या असंतुलन

लेखा के अर्थ में किसी देश का भुगतान–संतुलन एक दिए हुए समय में आर्थिक लेन–देन जो कि वह शेष विश्व से करता है, का क्रमबद्ध विवरण है। और लेखा के अर्थ में यह सदैव ही संतुलित रहता है। जब विदेशी विनिमय की स्वायत्त पूर्ति (प्राप्तियाँ) एवं स्वायत्त माँग (भुगतान) बराबर हो तो भुगतान संतुलन में संतुलन होता है। परन्तु यदि भुगतान–संतुलन में अतिरेक या घाटा है तो दोनो ही दशाएँ असंतुलन की स्थिति को व्यक्त करती है। जब विदेशी विनिमय की स्वायत्त पूर्ति, स्वायत्त माँग से अधिक है तो अतिरेक तथा जब विदेशी विनिमय की स्वायत्त पूर्ति, स्वायत्त माँग से कम है तो भुगतान–संतुलन में घाटा होगा।

भुगतान–संतुलन में अतिरेक या घाटा स्वायत्त लेन–देनों का परिणाम है। यदि एक देश के स्वायत्त भुगतानों का मूल्य स्वायत्त प्राप्तियों के मूल्य से अधिक है, अर्थात भुगतान–संतुलन में घाटा है तो सामान्यतया इसे उस देश के लिए प्रतिकूल या ऋणात्मक स्थिति माना जाता है और यदि स्वायत्त प्राप्तियाँ, स्वायत्त भुगतानों से अधिक है, अर्थात भुगतान शेष में अतिरेक होता है तो उसे उस देश के लिए धनात्मक या अनुकूलतम स्थिति माना जाता है। परन्तु वास्तव में भुगतान–संतुलन का अतिरेक या घाटा उस देश के लिए अच्छा या बुरा यह उसकी 'स्थिति' (location) तथा 'अवधि' (duration) पर निर्भर करेगा।

यदि भुगतान–संतुलन के चालू खाते में अतिरेक है तो सामान्यतया यह अनुकूल स्थिति को दर्शाता है क्योंकि चालू खाते का अतिरेक एक देश को निर्यातों से कुल विदेशी मुद्रा की अर्जन–क्षमता (earning capacity) को दिखाता है। परन्तु यदि पूँजी खाते पर अतिरेक है तो यह उस देश के लिए अनुकूल स्थिति नहीं भी हो सकती है क्योंकि पूँजी खाते का अतिरेक उसके उधार लेने की क्षमता को बताती है जो कि उसके भविष्य की देनदारियों को बढ़ाती है। परन्तु यदि एक देश उधार या विदेशी निवेश से अपनी उत्पादक क्षमता में वृद्धि करने में सफल रहता है और ऋणात्मक ब्याज अदायगी की उसकी क्षमता बढ़ जाती है तो पूँजी खाते का घाटा भी उसके लिए अच्छा हो सकता है।

इसी प्रकार, चालू खातों का घाटा एक देश की प्रतिकूल स्थिति को दर्शाता है क्योंकि विदेशी मुद्रा की प्राप्तियों की अपेक्षा उसका भुगतान अधिक है जबकि प्रतिकूल चालू खाता घाटा उस देश के लिए अनुकूल भी हो सकता है क्योंकि पूँजी खाते का घाटे का तात्पर्य है कि देश ऋण–प्रदाता देश है या पूँजी–निवेशक है जो कि बाद में ब्याज, लाभ, लाभांश, रॉयल्टी आदि के रूप में पूँजी के अंतप्रवाह में वृद्धि करके चालू खाते पर प्राप्तियाँ में वृद्धि करेगा, जिसका कि भुगतान–संतुलन पर सकारात्मक प्रभाव होगा।

यदि भुगतान शेष का घाटा अस्थायी प्रकृति का है तो इससे इसका कोई गम्भीर नकारात्मक प्रभाव नहीं होगा। परन्तु यदि भुगतान–संतुलन का घाटा स्थायी प्रकृति का या मूलभूत प्रकृति का है तो यह अर्थव्यवस्था के लिए काफी खराब है। विशेष रूप से यदि यह चालू खाते के असंतुलन से उत्पन्न हुआ है। चालू खाते के अल्पकालिक असंतुलन को अल्पकालिक या दीर्घकालिक विदेशी उधारों के द्वारा दूर किया जा सकता है। परन्तु यदि चालू खाते का घाटा कई वर्षों तक लगातार बना रहता है तो इसे सिर्फ अल्पकालिक और दीर्घकालिक विदेशी उधारों से दूर नहीं किया जा सकता है और न ही करना चाहिए। भुगतान–शेष के इस प्रकार के आधारभूत घाटे को दूर करने के लिए अर्थव्यवस्था में 'संरचनात्मक समायोजन' की आवश्यकता होती है। जिससे की घाटा उत्पन्न करने वाले मूल कारकों को नियंत्रित या दूर किया जा सके।

यदि चालू खाते पर अतिरेक है तो सामान्यतया इसे अच्छा माना जाता है। यदि अतिरेक अस्थायी हो और इस अतिरेक का उपयोग पूँजी खाते के घाटे को समाप्त करने या निवेश आय के बर्हिगमन के प्रभाव को कम करने या पुराने ऋणों को चुकाने में होता है तो इसका प्रभाव अच्छा होगा। परन्तु यदि चालू खाते का अतिरेक लगातार कई वर्षों से बना हुआ है और यह पूँजी–खाते के घाटे से अधिक है तो इससे

अर्थव्यवस्था में विदेशी मुद्रा रिजर्व भण्डार मे वृद्धि होने से मुद्रा–आपूर्ति बढ़ सकती है और इससे अर्थव्यवस्था में स्फितिकारी दबाव उत्पन्न हो सकते है। साथ ही इससे घरेलू मुद्रा का मूल्य विदेशी मुद्रा के मुकाबले बढ़ने से (विनिमय दर में मूल्य वृद्धि से) देश के निर्यातों की कीमत विश्व बाजार में बढ़ जाएगी और आयात सस्ते होगें जिससे निर्यात कम होगा और आयात बढ़ेगा। अर्थव्यवस्था पर चालू खाते के अतिरेक का ठीक–ठीक प्रभाव विनिमय दर नीति, मौद्रिक और राजकोषीय नीति तथा विनिमय नियंत्रण नीति पर निर्भर करेगा। इस प्रकार भुगतान शेष का लगातार और स्थायी अतिरेक अर्थव्यवस्था पर हमेशा अच्छे प्रभाव होगा यह आवश्यक नहीं है।

भुगतान–संतुलन में असंतुलन किसी भी देश की आन्तरिक अर्थव्यवस्था की स्थिति के लिए और अंतर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के दृष्टिकोण से भी चिंताजनक माना जाता है। परन्तु अतिरेक की अपेक्षा घाटा अधिक चिंताजनक होता है क्योंकि भुगतान–संतुलन में असंतुलन का बोझ अतिरेक वाले देश की तुलना में घाटे वाले देश पर अधिक पड़ता है।

3.4 भुगतान–संतुलन का निपटान (Settelment) तथा समायोजन (Adjustment)

जब भुगतान–संतुलन के असंतुलन को अतंर्राष्ट्रीय तरलता खातों या समायोजित लेन–देन के द्वारा दूर किया जाता है तो यह भुगतान–संतुलन का निपटान (settlement) कहा जाता है। यह भुगतान–संतुलन को लेखांकन की दृष्टि से संतुलन में लाने का एक अस्थायी उपाय है। वास्तव में इससे असंतुलन की मूलभूत समस्या का समाधान नहीं होता है।

यदि भुगतान–संतुलन के अतिरेक या घाटे को दूर करने के लिए या नियंत्रित के लिए **उन कारकों को** नियंत्रित किया जाता है जो कि इस अतिरेक या घाटे के लिए जिम्मेदार है तो इसे भुगतान–संतुलन का समायोजन (adjustment) कहते हैं। अर्थात अंतर्राष्ट्रीय तरलता खाते के बिना भुगतान–संतुलन के स्वायत्त लेन–देन में संतुलन ले आना भुगतान–संतुलन समायोजन कहा जाएगा। स्पष्ट है कि भुगतान–संतुलन का समायोजन, निपटान की अपेक्षा अधिक वांछनीय है। यह असंतुलन की समस्या का स्थायी और ठोस समाधान प्रस्तुत करता हैं परन्तु समायोजन का रास्ता अधिक कठिन और दीर्घकालिक उपाय है।

3.5 भुगतान–संतुलन में असंतुलन के प्रकार

भुगतान–संतुलन में अतिरेक या घाटे के लिए अनेक कारक जिम्मेदार होते हैं, और इसी आधार पर असंतुलन की प्रकृति भी निर्भर करती है। भुगतान–संतुलन में असंतुलन के निम्नलिखित प्रकार है–

3.5.1 अस्थायी या अल्पकालीन असंतुलन– जब निर्यात मौसमी उतार–चढाव, व्यापार में आकस्मिक परिवर्तन, प्रतिकूल मौसम आदि से प्रभावित होता है तो भुगतान–संतलन में अल्पकालीन असंतुलन पैदा हो जाता है। प्राथमिक उत्पादनशील और निर्यात करने वाले देशों को ऐसे असंतुलन का सामना करना पड़ता है।

3.5.2 दीर्घकालीन या आधारभूत असंतुलन– जब किसी देश के भुगतान–संतुलन में असंतुलन लंबे समय तक बना रहता है और उसकी प्रवृत्ति संचयी हो जाती है उसे आधारभूत असंतुलन कहते है। इस असंतुलन का कारण मुद्रापूर्ति में तकनीकी परिवर्तन, जनसंख्या वृद्धि इत्यादि है। विकास की प्रारम्भिक अवस्था में निवेश के लिए या फिर प्रदर्शन–प्रभाव से प्रेरित होकर विकासशील देश उद्योगों के स्थापना के लिए और आयातों के लिए विदेशों से भारी मात्रा में ऋण लेना पड़ता है। जो आगे ब्याज अदायगी और आयात वृद्धि के रूप में भुगतान–संतुलन पर और अधिक नकारात्मक प्रभाव डालता है।

3.5.3 चक्रीय असंतुलन (Cyclical Disequilibrium)– व्यापार चक्र की अवस्थाओं के कारण, विभिन्न देशों में जब मंदी और तेजी की स्थिति में भिन्नता हो तो भुगतान–संतुलन में चक्रीय असंतुलन उत्पन्न होता है। यदि विभिन्न देशों में व्यापार चक्रों की प्रकृति भिन्न हो या आयातों की माँग की लोचें भिन्न हों तो चक्रीय असंतुलन उत्पन्न होता है।

3.5.4 संरचनात्मक असंतुलन (Structural Disequilibrium)– निर्यातों तथा आयातों की मांग तथा पूर्ति के ढांचे में परिवर्तन के फलस्वरूप उत्पन्न असंतुलन, भुगतान–संतुलन का संरचनात्मक असंतुलन कहा जाता है। माँग तथा पूर्ति की संरचना में परिवर्तन के अनेक कारण हो सकते हैं, जैसे–उपभाक्ताओं की रुचि या प्राथमिकता में परिवर्तन, विदेशी पूँजी के प्रवाह में कमी, संसाधनों की कमी इत्यादि।

3.6 भुगतान–संतुलन में असंतुलन के कारण

जैसा की आपने देखा कि असंतुलन की अलग–अलग प्रकृति होती है जो कि उसके कारणों पर निर्भर करती है। विभिन्न देशों में भुगतान–संतुलन में असंतुलन के विभिन्न कारण हो सकते हैं तथा एक ही देश में अलग–अलग समय में असंतुलन के अलग–अलग कारण हो सकते हैं। सामान्यतया निम्नलिखित कारणों से भुगतान–संतुलन में असंतुलन पैदा होता है:

- **विकासात्मक व्यय में वृद्धि** भुगतान–संतुलन में असंतुलन पैदा होता है। अपनी विकास की प्रारम्भिक अवस्था में सभी देश भारी मात्रा में निवेश करते है। परन्तु पर्याप्त मात्रा में पूँजी तथा तकनीकी के अभाव के कारण ये देश बडी मात्रा में दूसरे देशों से उधार लेते हैं और मशीनों तथा तकनीकी आदि का आयाता करते है परन्तु प्राथमिक उत्पादनशील होने के कारण निर्यात में तेज वृद्धि नहीं होती है जिससे भुगतान–संतुलन का घाटा बढ़ता है जिसकी प्रकृति प्रायः संरचनात्मक या आधारभूत प्रकृति की स्थायी होती है।
- **चक्रीय उच्चावचन** से भुगतान–संतुलन में असंतुलन पैदा होता है। व्यापार चक्र के उच्चावचन के कारण भी विभिन्न देश के भुगतान–संतुलन में असंतुलन पैदा हो जाता है।
- विकासशील देशों में आय में वृद्धि के फलस्वरूप उपभोग व्यय में हुई वृद्धि प्रायः प्रदर्शन प्रभाव के कारण आयातों में वृद्धि कर देती है।
- अर्थव्यवस्था के भीतर स्फीतिकारी दबाव रहने पर जब कीमतें बढ़ती हैं तो निर्यातों की विश्व बाजार में प्रतियोगी क्षमता कम हो जाती है जबकि आयात आकर्षक हो जाते हैं। दूसरे देशों द्वारा आयातों पर प्रतिबन्ध के कारण निर्यात में वृद्धि नहीं हो पाने से भी असंतुलन पैदा होता है।
- राष्ट्रीय आय में वृद्धि होने पर आयातों के बढ़ने की प्रवृत्ति पायी जाती है जिससे भुगतान–संतुलन का घाटा बढ़ता है।
- मुद्रा–पूर्ति में वृद्धि के कारण जब घरेलू कीमत स्तर बढ़ता है तो आयातित वस्तुओं की माँग में वृद्धि होती है तथा निर्यात मंहगे हो जाते हैं जिससे भुगतान–संतुलन में घाटा होता है।
- (तकनीकी परिवर्तन के कारण वस्तुओं की लागतों, कीमतों तथा गुणवत्ता में परिवर्तन होता है जिससे भुगतान–संतुलन प्रभावित होता है।
- विनिमय दर में परिवर्तन से भी भुगतान–संतुलन पर प्रभाव पड़ता है। घरेलू मुद्रा के विदेशी मुद्रा के मुकाबले अवमूल्यन से निर्यात सस्ते तथा आयात मंहगे होंगे जिससे भुगतान–संतुलन मेंया घाटा कम या अतिरेक हो सकता है।
- यदि एक देश बड़े पैमाने पर दूसरे देश को उधार देता है या निवेश करता है उसके पूँजी खाते में घाटा होगा। परन्तु यदि एक देश दूसरे देशों से अधिक उधार लेता है और अधिक विदेशी मुद्रा के निवेश को प्रोत्साहित करता है तो दीर्घकाल में उसके चालू खाते में घाटा काफी बढ़ सकता है क्योंकि ब्याज, लाभ, लाभांश आदि के रूप में पूँजी का वाह्य प्रवाह बढ़ेगा।
- तीव्र जनसंख्या वृद्धि के कारण विकासशील देशों में घरेलू उपभोग में वृद्धि होती है। इससे इन देशों में निर्यात की क्षमता कम हो जाती है और आयात बढ़ते हैं।

- राजनीतिक अस्थिरता या घरेलू अर्थव्यवस्था में विश्वास की कमी से विदेशी पूँजी का अंर्तप्रवाह कम हो सकता है/रुक सकता है और वाह्य प्रवाह बढ़ सकता है जो कि गम्भीर भुगतान–संतुलन के असंतुलन को जन्म देता है।

3.7 भुगतान संतुलन के घाटे को दुर करने के उपाय

यदि भुगतान–संतुलन में असंतुलन की स्थिति दीर्घकाल तक बनी रहती है तो यह न सिर्फ उस देश के लिए वरन पूरे विश्व के लिए ठीक नहीं है। अतः एक सुदृढ़ अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था के लिए भुगतान–संतुलन में संतुलन आवश्यक है। असंतुलन को समायोजित करने के लिए एक देश किस प्रकार की आर्थिक नीतियाँ/उपायों को लागू करे, यह उसके भुगतान–संतुलन की स्थिति पर निर्भर करेगा। चूंकि भुगतान–संतुलन का अतिरेक समान्यतया कोई बड़ी समस्या पैदा नहीं करता है और प्रतिकूल या घाटे में भुगतान–संतुलन की अपेक्षा कम हानिकारक है इसलिए भुगतान–संतुलन के घाटे को दूर करने के लिए क्या उपाय हो सकते हैं, इस पर विचार करना अधिक आवश्यक है।

भुगतान–संतुलन के घाटे के पूरा करने के लिए आवश्यक है कि स्वायत्त लेन–देन में भुगतानों की अपेक्षा प्राप्तियों में अधिक वृद्धि हो। स्पष्ट है कि असंतुलन को दूर करने के लिए उन मदों या कारकों में परिवर्तन किए जाने की आवश्यकता है जो कि भुगतान–संतुलन की प्राप्तियों तथा भुगतानों को प्रभावित करते हैं।

यदि घाटा दीर्घकालिक और स्थायी प्रकृति का है तो इसके लिए भुगतान–संतुलन को प्रभावित करने वाले कारकों को प्रभावित करने के लिए स्थायी सुधारों की आवश्यकता होगी। स्थायी सुधारों की दृष्टिकोण से जिन विधियों का प्रयोग किया जाता है उन्हें दो वर्गों में रखा जा सकता है– व्यय घटाने वाली (expendituture reducing) तथा व्यय बदलाव वाली (expenditure switchingswitching)। विस्फीति जैसे उपायों के द्वारा कुल व्यय में कटौती की जाती है जबकि व्यय की दिशा में परिवर्तन के लिए अवमूल्यन प्रशुल्क, कोटा, निर्यात सब्सिडी, विनिमय नियंत्रण जैसे उपायों का सहारा लिया जाता है।

यदि एक देश पहले से कठोर राजकोषीय और मौद्रिक नीति और प्रशुल्क तथा आयात नियंत्रणो का सहारा ले रहा है और फिर भी भुगतान–संतुलन में घाटा है तो ऐसे में उस देश के लिए घाटे से निजात पाना काफी मुश्किल है, ऐसे में यह घाटा संभाव्य घाटा को दिखाता है। इन कठोर नीतियों या उपायों की अनुपस्थिति में घाटा और भी अधिक होगा। ऐसे ही यदि देश में बेरोजगारी का ऊँचा स्तर है तो भी उस देश के लिए सम्भव नहीं होगा कि वह संकुचनकारी मौद्रिक, राजकोषीय तथा अन्य नीतियों के द्वारा घाटे को दूर करने की कोशिश करें। इन स्थितियों में अंतर्राष्ट्रीय पूँजी का अंर्तप्रवाह ही घाटे को दूर करने का एक बेहतर तरीका है परन्तु यहाँ अंतर्राष्ट्रीय पूँजी की प्रकृति काफी महत्वपूर्ण है। यदि एक देश दीर्घकालिक पूँजी खाते के अंर्तगत नियोजित ढंग से पूँजी का आयात करता है तो बिना घरेलू नीतियों में परविर्तन के लंबे समय तक (15 से 20 वर्ष) भुगतान–शेष के घाटे से निश्चिंत होकर अर्थव्यवस्था में संरचनात्मक सुधार कर सकता है।

भुगतान–संतुलन के घाटे को दूर करने के लिए कुछ उपायों का हम संक्षेप में वर्णन करेंगे–

3.7.1 विदेशी विनिमय दर में परिवर्तन– यदि विनिमय दरें परिवर्तनशील है तो विदेशी विनिमय की माँग और पूर्ति की शक्तियाँ स्वयं भुगतान–शेष के असंतुलन को दूर कर देती हैं। घाटे की स्थिति में यदि घरेलू मुद्रा के मूल्य में अन्य विदेशी मुद्राओं के मुकाबले कमी आती है या मूल्यह्रास होता है तो निर्यात सस्ते तथा आयात मंहगे होंगे और यदि आयातों तथा निर्यातों की माँग लोचशील हैं तो इससे भुगतान–संतुलन के घाटे को कम करने में सहायता मिलेगी।

3.7.2 अवमूल्यन – प्रतिकूल भुगतान–संतुलन को ठीक करने के लिए यदि सरकार अपनी मुद्रा का मूल्य जानबूझकर विश्व की अन्य मुद्राओं के मुकाबले कम कर देती है तो इसे अवमूल्यन कहते हैं और इसका भी प्रभाव मुद्रा के मूल्यह्रास की ही तरह होगा। मूल्यह्रास और अवमूल्यन दोनों की ही सफलता आयातों और निर्यातों की माँग की लोच पर निर्भर करेगी।

3.7.3 आय में परिवर्तन– भुगतान–संतुलन के स्वायत्त लेन–देन चूंकि देश की घरेलू आय से सम्बन्धित होता है इसलिए घरेलू आय में परिवर्तन के द्वारा भी भुगतान–शेष के असंतुलन को दूर किया जा सकता है। घाटे को घरेलू आय में ह्रास या विदेशियों की राष्ट्रीय आय में वृद्धि करके दूर किया जा सकता है क्योंकि घरेलू आय में वृद्धि से आयातों में वृद्धि होती है। घरेलू आय में कमी से आयात में कितनी कमी होगी यह सीमांत आय प्रवृत्ति पर निर्भर करती है, जो कि विदेशी व्यापार गुणक के मान को निर्धारित करती है।

3.7.4 प्रत्यक्ष नियंत्रण– भुगतान–संतुलन के घाटे को प्रत्यक्ष नियंत्रण के द्वारा आयातों को नियंत्रित करके भी कम किया जा सकता है। प्रशुल्क,कोटा इत्यादि के द्वारा अंतर्राष्ट्रीय व्यापार पर नियंत्रण करके घाटे को कम किया जा सकता है। परन्तु प्रत्यक्ष नियंत्रण बाज़ार की स्वतन्त्र कार्यप्रणाली में अवरोध उत्पन्न करते हैं।

3.7.5 विनिमय नियंत्रण– विदेशी विनिमय के समस्त लेन–देन को नियंत्रित करके भी सरकार भुगतान–संतुलन के घाटे को ठीक कर सकती है। विनिमय नियंत्रण के तहत सरकार समस्त विदेशी विनिमय को अपने पास जमाकर, फिर उसे राष्ट्रीय प्रायियकताओं के अनुरूप आवंटित करती है।

3.7.6 आयात–प्रतिस्थापन– जिन वस्तुओं का एक देश आयात करता है उसे अपने देश में ही उत्पादित करने से आयात कम होते हैं और घाटा कम करने में मदद मिलती है।

3.7.7 निर्यात को प्रात्साहन– निर्यातकों को अनेक प्रकार की रियायत देकर निर्यात को बढ़ाया जा सकता है। इससे घाटे में कमी होगी।

3.7.8 विदेशी पर्यटकों को प्रोत्साहन– विदेशी पर्यटकों की संख्या देश में बढ़ाने के लिए पर्यटन उद्योग को प्रोत्साहन देकर सेवा खाते पर प्राप्तियों में वृद्धि की जा सकती है। जिससे भुगतान–संतुलन का घाटा कम होगा।

3.8 सारांश

जब भुगतान–संतुलन के असंतुलन को अतंर्राष्ट्रीय तरलता खातों या समायोजित लेन–देन के द्वारा दूर किया जाता है तो यह भुगतान–संतुलन का निपटान (settlement) कहा जाता है।यदि भुगतान–संतुलन के अतिरेक या घाटे को दूर करने के लिए या नियंत्रित के लिए उन कारकों को नियंत्रित किया जाता है जो कि इस अतिरेक या घाटे के लिए जिम्मेदार है तो इसे भुगतान–संतुलन का समायोजन (adjustment) कहते हैं। अर्थात अंतर्राष्ट्रीय तरलता खाते के बिना भुगतान–संतुलन के स्वायत्त लेन–देन में संतुलन ले आना भुगतान–संतुलन समायोजन कहा जाएगा।

असंतुलन की अलग–अलग प्रकृति होती है जो कि उसके कारणों पर निर्भर करती है। विभिन्न देशों में भुगतान–संतुलन में असंतुलन के विभिन्न कारण हो सकते हैं तथा एक ही देश में अलग–अलग समय में असंतुलन के अलग–अलग कारण हो सकते हैं। असंतुलन को समायोजित करने के लिए एक देश किस प्रकार की आर्थिक नीतियाँ/उपायों को लागू करे, यह उसके भुगतान–संतुलन की स्थिति पर निर्भर करेगा। भुगतान–संतुलन के घाटे के पूरा करने के लिए आवश्यक है कि स्वायत्त लेन–देन में भुगतानों की अपेक्षा प्राप्तियों में अधिक वृद्धि हो। स्पष्ट है कि असंतुलन को दूर करने के लिए उन मदों या कारकों में परिवर्तन किए जाने की आवश्यकता है जो कि भुगतान–संतुलन की प्राप्तियों तथा भुगतानों को प्रभावित करते हैं।

3.9 शब्दावली

भुगतान–संतुलन निपटान (Settlement)– जब भुगतान–संतुलन में लेखांकन संतुलन समायोजक लेन–देन या अंतर्राष्ट्रीय तरलता खाता की सहायता से ले आया जाता है तो उसे भुगतान–संतुलन का निपटान कहते हैं।

भुगतान–संतुलन समायोजन (Adjustment)– जब भुगतान–संतुलन में लेखांकन संतुलन, समायोजक लेन–देन की सहायता के बिना होता है तो इसे भुगतान–संतुलन समायोजन कहा जाता है।

भुगतान–संतुलन का 'पूर्ण रोजगार' संतुलन– यदि भुगतान–संतुलन में बिना वाणिज्यिक नीति का सहारा लिए तथा देश के सकल राष्ट्रीय आय में स्फीतिकारी या अवस्फीतिकारी अंतराल उत्पन्न किए, संतुलन ले आया जाता है तो यह सही मायने में संतुलन या 'पूर्ण रोजगार' संतुलन कहा जाता है। परन्तु यदि यह संतुलन व्यापार पर अनेक प्रकार के प्रतिबन्धों और इसके कारण अर्थव्यवस्था में मुद्रा–स्फीति या बेरोजगार उत्पन्न हुई है, तो यह 'पूर्ण रोजगार' संतुलन नहीं होगा।

3.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

49. H. G. Mannur, *International Economics* ,Vikas Publishing House Pvt. Ltd. 2001

50. Bo Sodersten, International Economics ,Macmillan, 1999

51. Paul Krugman and Maurice Obstfeld: *International Economics: Theory and Policy, Dorling Kindersley India Pvt Ltd, 2009.*

52. Charles P Kindleberger, International Economics, Richard D. Irwin Inc., Illinois, 1968

53. Dominik Salvatore, International Economics, John Willy & Sons, Inc., 2008

54. सुदामा सिंह एवं एम०सी० वैश्य, अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, ऑक्सफ़ोर्ड एंड आई०बी०एच० पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2007

55. एम०एल०झिंगन, अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, वृंदा पब्लिकेशन, दिल्ली, 2010.

56. ज्ञानेंद्र सिंह कुशवाहा, अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, दि मैकमिलन कंपनी आफ इंडिया लिमिटेड, नई दिल्ली,1979.

3.11 अभ्यास प्रश्न

लघु उत्तरीय प्रश्नः

1. भुगतान–संतुलन का निपटान तथा समायोजन अन्तर स्पष्ट **कीजिये.**
2. भुगतान–संतुलन में असंतुलन के कारण स्पष्ट **कीजिये.**
3. भुगतान–संतुलन में असंतुलन के प्रकार बताइए.
4. भुगतान–संतुलन में समायोजन के उपायों पर प्रकाश डालिए.

निबंधात्मक प्रश्न

3. किसी देश के प्रतिकूल भुगतान–संतुलन से आप क्या समझते हैं? भुगतान शेष के असन्तुलन को दूर करने के लिए अपनाये जाने वाले उपायों का उल्लेख कीजिए।
4. भुगतान–संतुलन के असंतुलन का क्या अर्थ है? भुगतान–संतुलन के घाटे को दूर करने के लिए विभिन्न उपायों की चर्चा कीजिए।

<u>खंड 04:</u> विनिमय दर एवं भुगतान संतुलन

<u>इकाई</u>- 04

भुगतान संतुलन में साम्य की विधियाँ

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 भुगतान संतुलन में साम्य
4.4 व्यय-परिवर्तनकारी नीतियाँ
4.5 व्यय-बदलावकारी नीतियाँ
4.6 अवमूल्यन
4.6.1 भुगतान संतुलन के असंतुलन को दूर करने में अवमूल्यन का प्रभाव
4.7 अवमूल्यन का लोच दृष्टिकोण
4.7.1 मार्शल लर्नर शर्तें या दशाएं
4.7.2 लोच दृष्टिकोण का मूल्याङ्कन
4.8 अवमूल्यन का अवशोषण दृष्टिकोण
4.8.1 अवशोषण दृष्टिकोण का मूल्याङ्कन
4.9 सारांश
4.10 शब्दावली
4.11 सन्दर्भ ग्रन्थ / उपयोगी सुची
4.12 अभ्यास प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार एवं व्यापार नीति के **खंड चार, विनिमय दर एवं भुगतान संतुलन** के 'भुगतान संतुलन में साम्य की विधियाँ' से सम्बंधित चौथी इकाई है. इससे पहले की इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप भुगतान संतुलन और उसके विभिन्न घटकों के बारे में तथा व्यापार संतुलन के बारे में बता सकते हैं. आपने भुगतान संतुलन के घाटा या असाम्य तथा इसके कारणों और समायोजन के उपायों के सन्दर्भ में अध्ययन किया. आप जान गए होंगे कि एक देश के भुगतान संतुलन के गंभीर संकट का अर्थ क्या है और भुगतान संतुलन के असाम्य से निपटने के लिए क्या उपाय हो सकते हैं. इस अध्याय में हम उन नीतियों की चर्चा करेंगे जो घरेलू व्यय में अर्थात् अवशोषण में कमी लाती है और इस संदर्भ में हम विशेष रूप से अवमूल्यन की चर्चा करेंगे।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप भुगतान संतुलन के असंतुलन को दूर करने में व्यय बदलावकारी और व्यय परिवर्तन कारी उपायों के सम्बन्ध में स्पष्ट जानकारी प्राप्त कर सकेगें. विशेष रूप से अवमूल्यन के भुगतान संतुलन पर पड़ने वाले प्रभावों के सन्दर्भ में आप विस्तार से जान सकेंगे.

4.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के बाद आप

- अवमूल्यन के बारे में जान पाएंगे.
- अवमूल्यन के भुगतान संतुलन पर पड़ने वाले प्रभावों को विस्तार से समझ सकेंगे.
- भुगतान संतुलन के असंतुलन को दूर करने में व्यय बदलावकारी और व्यय परिवर्तन कारी उपायों के सम्बन्ध में जान पाएंगे.
- अवमूल्यन के लोच दृष्टिकोण के बारे में जान पाएंगे.
- अवमूल्यन के अवशोषण दृष्टिकोण को जान पाएंगे.
- आप समझ सकेंगे की अवमूल्यन भुगतान संतुलन के असंतुलन को दूर करने में किन स्थितियों में सहायक हो सकता है.

4.3 भुगतान संतुलन में साम्य

पिछले अध्यायों के अध्ययन से आप समझ गए होंगे कि भुगतान–संतुलन का अंसतुलन एक देश के लिए हानिकारक है, इसका अर्थव्यवस्था पर काफी नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। विशेष रूप से भुगतान–संतुलन का घाटा अर्थव्यवस्था पर अत्यधिक प्रतिकूल प्रभाव डालता है। इसलिए भुगतान–संतुलन के घाटे के समायोजन के लिए अनेक उपाय किए जाते हैं।

एक देश के भुगतान–संतुलन के घाटे को खत्म या अवशोषित करने की क्षमता उसके अधिकृत अंतर्राष्ट्रीय रिर्जवों की मात्रा द्वारा सीमित होती है। अल्पकालिक पूँजी उधारों द्वारा भुगतान–संतुलन घाटे को कुछ समय तक समायोजित किया जा सकता है। परन्तु इस पर लगातार वर्षों तक निर्भर नहीं रहा जा सकता है।

यदि कीमतों, व्याज दरों, आय स्तरों और विनिमय दरों में परिवर्तनीयता हो तो भुगतान–संतुलन में समायोजन स्वतः ही हो जाएगा और यदि ऐसा नहीं है तो फिर समायोजन के लिए सरकार को विभिन्न नीतियों/उपयों का सहारा लेना पड़ता है जैसे संकुचनकारी मौद्रिक और राजकोषीय नीति, अवमूल्यन, विनिमय नियंत्रण इत्यादि।

वास्तव में घाटे को दूर करने के लिए, यह आवश्यक है कि समायोजन के द्वारा या तो स्वायत्त प्राप्तियों में वृद्धि हो या फिर स्वायत्त भुगतानों में कमी हो। यदि सरकार का कोई हस्तक्षेप न हो तो भुगतान–संतुलन का स्वतः समायोजन बाजार की शक्तियों द्वारा हो जाता है। परन्तु स्वतंत्र बाजारों की अनुपारिथति में भुगतान –संतुलन के समायोजन से संबंधित सरकारी नीति या उपाय अधिक महत्वपूर्ण हो जाते हैं। वास्तवितक जगत में आर्थिक गतिविधियों में सरकारी हस्तक्षेप तथा नियंत्रण एक वास्तविकता है। सरकारें आज कीमतों, ब्याज दरों, आय स्तरों और विनिमय दरों सभी को नियंत्रित करती है। इसलिए भुगतान संतुलन का समायोजन मुख्यतः नीतिगत मुद्दा है।

एक देश द्वारा भुगतान–असंतुलन के घाटे को दूर करने के लिए जिन नीतिगत यंत्रों या विधियों का प्रयोग किया जाता है उसे मुख्यतः तीन श्रेणियों में रखा जा सकता है–

(i) राजकोषीय तथा मौद्रिक नीति
(ii) अवमूल्यन
(iii) विनिमय नियंत्रण

मौदिक और राजकोषीय नीतियाँ व्यय परिवर्तनकारी नीति (Expenditure Changing Policy) है जबकि अवमूल्यन व्यय बदलावकारी नीति (Expenditure SwitchSwitching Policy) है। विनिमय नियंत्रणों का अध्ययन आप अगली इकाई में विस्तार से करेंगे।

4.4 व्यय परिवर्तनशील नीतियाँ (Expenditure Changing Policies)

राजकोषीय तथा मौद्रिक नीतियों के माध्यम से घरेलू व्यय (उपभोग+निवेश+सरकारी व्यय या C+I+G) में परिवर्तन किया जाता है। राजकोषीय नीति सरकारी व्यय (G) तथा करों के माध्यम से और मौद्रिक नीति

मुद्रा पूर्ति (Ms) तथा ब्याज दर (i) के माध्यम से अर्थव्यवस्था के कुल व्यय को परिवर्तित करके भुगतान–संतुलन के असंतुलन को दूर करती है।

अनेक अर्थशास्त्रियों (जैसे जानसन) के अनुसार अवस्फिति (deflation) के द्वारा अर्थव्यस्था में व्यय में कटौती और तदनुरूप आयातों पर व्यय में कटौती के द्वारा असंतुलन को दूर किया जा सकता है। आयातों पर व्यय में कटौती के लिए एक देश को संकुचनकारी राजकोषीय और मौद्रिक नीतियाँ लागू करना होगा। राजकोषीय नीति के तहत सरकार, सरकारी व्ययों में कमी तथा करों में वृद्धि करेगी; जबकि मौद्रिक नीति के तहत मुदा–पूर्ति में कमी तथा ब्याज दरों में वृद्धि करेगी। इस प्रकार की संकुचनकारी नीति से राष्ट्रीय आय में कमी आएगी। जिससे आयात भी कम होंगे। यदि सीमान्त आयात प्रवृत्ति (MPM - m) अधिक होगी तो राष्ट्रीय आय की अपेक्षा आयात व्यय में कमी और भी अधिक होगी। और यदि यह मान लिया जाए कि निर्यात पर इस नीति का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है तो आयात–व्यय में कमी से भुगतान संतुलन घाटा कम होगा।

आगे हम, अवमूल्यन के अवशोषण दृष्टिकोण में भी देखेंगे कि यदि घरेलू व्यय या अवशोषण (C+I+G) में कमी होती है तो भुगतान संतुलन का घाटा कम होता है। जैसा कि आप जानते हैं–

$$Y= (C+I+G) + (X-M)$$

जहाँ, Y–राष्ट्रीय आय,
C – उपभोग
I –निवेश,
G – सरकारी व्यय
X–निर्यात तथा
M – आयात है

यदि $C+I+G=a$ तथा $X-M=b$

तो $Y=a+b$ या $b=Y-a$

इस प्रकार व्यापार–संतुलन (b), राष्ट्रीय आय तथा घरेलू व्यय या अवशोषण (a) का अंतर है और अवशोषण या घरेलू व्यय के कम होने पर कम होगा। इस प्रकार, सरकार राजकोषीय और मौद्रिक नीति के द्वारा अवशोषण और व्यय में कमी करके घाटे को कम कर सकती है।

4.5 व्यय बदलावकारी नीतियाँ

व्यय बदलावकारी नीतियों में वे उपाय आते हैं जो व्यय की दिशा को परिवर्तित कर देते हैं, जिससे घरेलू व्यय आयात–वस्तुओं से हटकर आयात–प्रतिस्थापित वस्तुओं की ओर **चला जाए. आयात प्रतिस्थापन को उच्च** प्रशुल्क दरे, कोटा, प्रत्यय नियंत्रण इत्यादि के द्वारा बढ़ावा दिया जा सकता है। दूसरी ओर यह नीति निर्यातों को आर्थिक सहायता देकर या निर्यात कीमतों में कमी करके निर्यात प्रोत्साहन भी करती है।

अवमूल्यन व्यय की दिशा बदलने का एक यंत्र है।

4.6 अवमूल्यन

अवमूल्यन भुगतान–संतुलन के घाटे को समायोजित करने का एक यंत्र है जो घरेलू तथा विदेशी व्यय की दिशा को परिवर्तित कर देता है। अवमूल्यन घरेलू तथा विदेशी व्यय को विदेशी वस्तुओं तथा सेवाओं से हटाकर घरेलू वस्तुओं तथा सेवाओं की ओर मोड़ देता है। इसीलिए इसे व्यय बदलावकारी नीति (Expenditure Switching Policy) कहते हैं।

अवमूल्यन का अर्थ है सरकार द्वारा जानबूझकर घरेलू मुद्रा के वाह्य मूल्य को अन्य प्रमुख विदेशी मुद्राओं, सोना तथा SDRs के मुकाबले कम करना। इस प्रकार घरेलू मुद्रा के वाह्य मूल्य को कम करना अवमूल्यन है। स्पष्ट है कि अवमूल्यन के बाद अन्य प्रमुख विदेशी मुद्राओं का मूल्य घरेलू मुद्रा की अपेक्षा बढ़ जाता है।

अवमूल्यन मुद्रा के मूल्य ह्रास से भिन्न हे। घरेलू मुद्रा के मूल्य में, विदेशी विनिमय बाजार में लगातार गिरावट मूल्यह्रास (Depreciation) है, जो कि बाजार की शक्तियों के कार्यकरण का परिणाम है।

जब विदेशी विनिमय बाजार में विदेशी मुद्रा की मांग विदेशी मुद्रा की पूर्ति से अधिक हो जाती है तो घरेलू मुद्रा का मूल्य गिरता है यह मूल्यह्रास है। जैसा चित्र 13.1 में दिखाया गया है। चित्र में D_f तथा S_f विदेशी मुद्रा की मांग तथा पूर्ति वक्र हैं। विदेशी विनिमय बाजार में प्रारम्भिक संतुलन e बिन्दु पर जहाँ विदेशी मुद्रा की मांग और पूर्ति बराबर है।

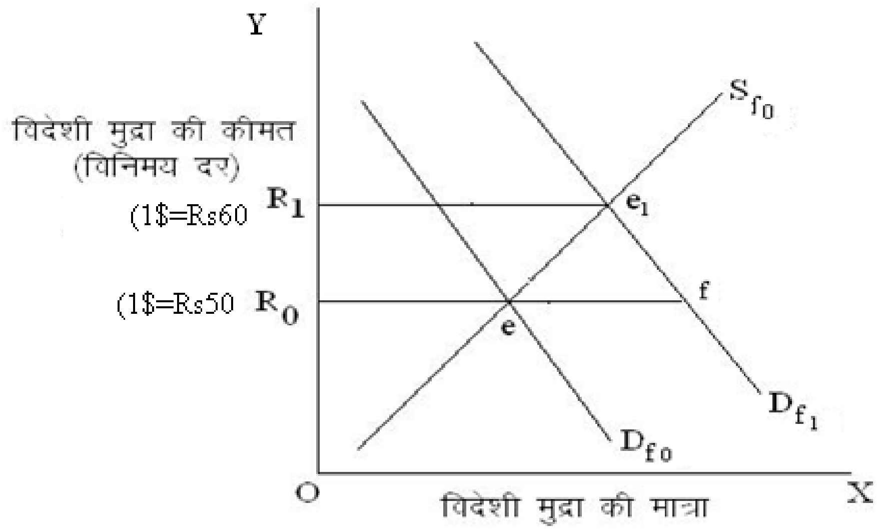

चित्र 13.1

जब

मांग बढ़ती है और मांग वक्र Df_1 हो जाता है तो R_0 विनिमय दर पर (मान लिया 1$=`50), विदेशी विनिमयकी मांग उसकी पूर्ति से ef अधिक हो जाती है, जिसके फलस्वरूप विदेशी विनिमय के मूल्य मे वृद्धि या घरेलू मुद्रा के मूल्य में ह्रास होता है और नए संतुलन $e_1$ पर विनिमय दर $R_1$(1$=`60) हो जाती है। इस प्रकार, मूल्य ह्रास विदेशी विनिमय की मांग तथा पूर्ति के बीच असंतुलन का प्राकृतिक परिणाम है और यह भुगतान शेष के घाटे को दूर करने का एक तरीका है जबकि विदेशी विनिमय दर पूर्णतया परिवर्तनशील हो।

इसके विपरीत अवमूल्यन जानबूझकर और कानूनी ढंग से लिया गया अधिकृत सरकारी निर्णय है जिसके तहत घरेलू मुद्रा के वाह्य मूल्य में कमी की जाती है। वस्तुतः अवमूलयन का प्रभाव, मूल्यह्रास के समान ही होता है।

4.6.1 भुगतान–संतुलन के घाटे को दूर में अवमूल्यन का प्रभाव

अवमूल्यन का तात्कालिक प्रभाव यह होता है कि घरेलू मुद्रा के मूल्य में कमी से निर्यात सस्ते तथा आयात मंहगे हो जाते हैं। निर्यातों की सापेक्षिक कीमतो के कम होने तथा आयातों की सापेक्षिक कीमतो के बढ़ने से निर्यात अर्जन में हुई वृद्धि या आयात व्यय मे हुई कमी वस्तु और सेवाओं की मांग तथा पूर्ति लोचों पर निर्भर करेगी और इसी पर भुगतान–संतुलन के घाटे में कमी की सफलता निर्भर करेगी। यह अवमूल्यन के प्रभाव का '**लोच दृष्टिकोण**' है।

परन्तु अवमूल्यन न सिर्फ निर्यातों तथा आयातों की सापेक्षिक कीमतों को प्रभावित करता है बल्कि यह अर्थव्यवस्था में आय परिवर्तनों को भी जन्म देता है। भुगतान–संतुलन के घाटे को कम करने में अवमूल्यन की सफलता आय में परिवर्तनों के कारण घरेलू व्यय या अवशोषण (C+I+G) में होने वाले परिवर्तनो पर निर्भर करती है। इस दृष्टिकोण को '**अवशोषण दृष्टिकोंण**' कहते हैं।

इस प्रकार भुगतान–संतुलन के घाटे को दूर करने के लिए व्यय बदलावकारी नीति के रूप में अवमूल्यन के प्रभाव को लोच दृष्टिकोण और अवशोषण दृष्टिकोण दोनों ही विधियों से देखेंगे। पहले हम लोच दृष्टिकोण का अध्ययन करेंगे।

4.7 लोच दृष्टिकोण (Elasticity Approach)

आप अब जान गए होंगे कि कोई देश जब अपनी मुद्रा का अवमूल्यन करता है तो अन्य प्रमुख मुद्राओं के मुकाबले घरेलू मुद्रा का मूल्य कम हो जाता है और इस प्रकार उसके निर्यात विदेशों में सस्ते हो जाते हैं, जबकि घरेलू कीमते स्थिर रहती हैं तथा आयात मंहगे हो जाते हैं। स्पष्ट है कि यदि निर्यातों तथा आयातों का मांग–वक्र सामान्य हो तो;

(i) निर्यात मांग बढ़ेगी और परिणामस्वरूप निर्यात आय भी, तथा

(ii) आयातों की मांग कम होगी और परिणामस्वरूप आयात व्यय भी कम होगा।

उदाहरण के लिए, मान लिजिए प्रारम्भ में 1$=`50 था तथा अवमूल्यन (20%) के पश्चात 1$=`60 हो जाता है। अब अवमूल्यन के पश्चात 1$ की आयातित वस्तु के लिए घरेलू उत्पादकों को `60 देने पड़ेंगे जबकि पहले वे मात्र `50 देते थे। इस प्रकार, विदेशों में पहले `50 की वस्तु के लिए 1$ खर्च करने पड़तें थे परन्तु अवमूल्यन के बाद अब 1$ में विदेशों में `60 की वस्तु मिल जाएगी। इस प्रकार घरेलू देश में लागत कीमत संरचना अवमूल्यन के बाद भी अपरिवर्तित है परन्तु अवमूल्यन के कारण विदेशों में उसकी वस्तु सस्ती हो जाती है। इसी प्रकार विदेशी देश में भी लागत–कीमत संरचना अपरिवर्तित है परन्तु घरेलू देश में अवमूल्यन के कारण आयातित वस्तु की कीमत बढ़ जाती है।

परन्तु अवमूल्यन के कारण निर्यात–आय में वृद्धि और आयात–व्यय में कमी निर्यात तथा आयात मांग–वक्रों की लोचों पर निर्भर करेगा। इस प्रकार, भुगतान संतुलन के घाटे को दूर करने में अवमूल्यन की सफलता आयात तथा निर्यात की मांग लोचों पर निर्भर करेगी। आयात तथा निर्यात मांगे जितनी ही अधिक लोचशील होगी भुगतान–संतुलन के घाटे को कम करने में (या अधिक्य सृजन में) अवमूल्यन उतना ही अधिक सफल होगा। और यदि आयात तथा निर्यात की मांग कम लोचदार या बेलोचदार हैं तो अवमूल्यन देश के घाटे को कम करने में असफल रहेगा, वास्तव में तब यह भुगतान–संतुलन के घाटे के आकार को और बढ़ा देगा। इसे हम चित्र की सहायता से समझ सकते हैं।

सबसे पहले निर्यात कीमतों को लेते हैं। जैसा कि आपने देखा अवमूल्यन से निर्यातित वस्तुओं की कीमत कम हो जाएगी और इससे निर्यातों की मांग बढ़ेगी। परन्तु इसका निर्यात आय पर क्या प्रभाव पड़ेगा यह निर्यातों की विदेशी देश में मांग की लोच पर निर्भर करेगा। चित्र 13.2 में निर्यातों की मांग लोच की तीन विभिन्न स्थितियों में निर्यात अर्जन पर पड़ने वाले प्रभावों का दिखाया गया हे। चित्र 13.2 में X-अक्ष पर निर्यातों की मात्रा तथा Y-अक्ष पर निर्यातों की कीमतें है। निर्यात वक्र Dx ऋणात्मक ढाल वाला है जो यह बताता है कि मांग और निर्यात कीमत में विपरीत संबंध है।

चित्र 13.2 (A) में निर्यात मांग वक्र D_x बेलोचदार है। अवमूल्यन के कारण निर्यात कीमत जब OP_0 से OP_1 हो जाती है तो निर्यातों की मांग OX_0 से OX_1 हो जाती है। निर्यात अर्जन जो कि पहले $P_0OX_0e_0$ था, अवमूल्यन के पश्चात $P_1OX_1e_1$ हो जाता है। यहाँ स्पष्ट है कि आयत $P_1OX_1e_1$ का क्षेत्रफल $P_0OX_0e_0$ से कम है अर्थात अवमूल्यन के पश्चात निर्यात आय में कमी हो जती है।

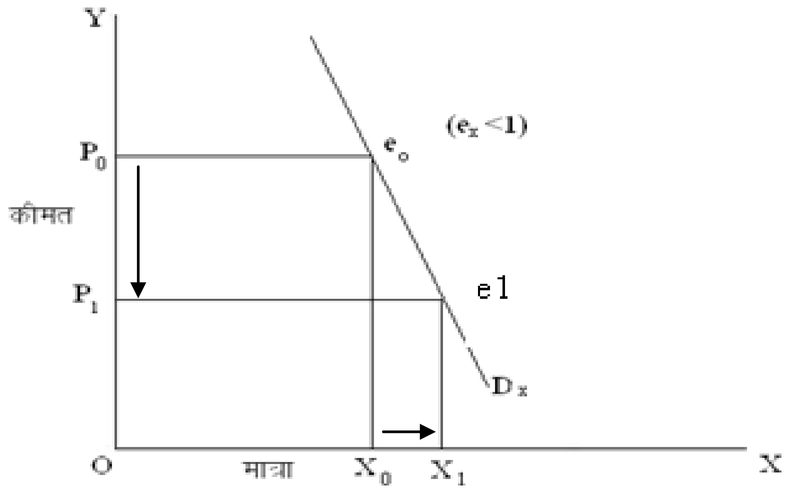

चित्र 13.2 A

चित्र 13.2(B) में निर्यात मांग वक्र की लोच इकाई है (e_x=1) तो निर्यात कीमत में कमी के फलस्परूप निर्यात अर्जन $P_1OX_1e_1$ हो जा रहा है जो अवमूल्यन से पहले के निर्यात अर्जन $P_0OX_0e_0$ के ही बराबर है।

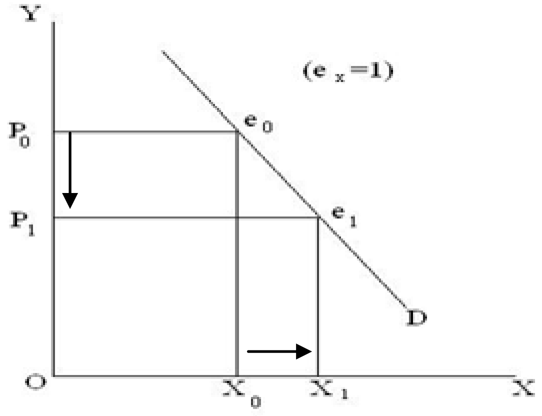

चित्र 13.2 B

चित्र 13.2(C) में निर्यात मांग वक्र लोचदार है (e_x>1) अर्थात इसकी लोच इकाई से अधिक है। अवमूल्यन के पश्चात् जब निर्यात कीमत घटकर OP_1 हो जाती है तो निर्यात मांग बढ़कर OX_1 हो जाती है और परिणामस्परूप निर्यात अर्जन $P_0OX_0e_0$ से बढ़कर $P_1OX_1e_1$ हो जाता है। स्पष्ट है कि आयत $P_1OX_1e_1$ का क्षेत्रफल ,आयत $P_0OX_0e_0$ के क्षेत्रफल से अधिक है।

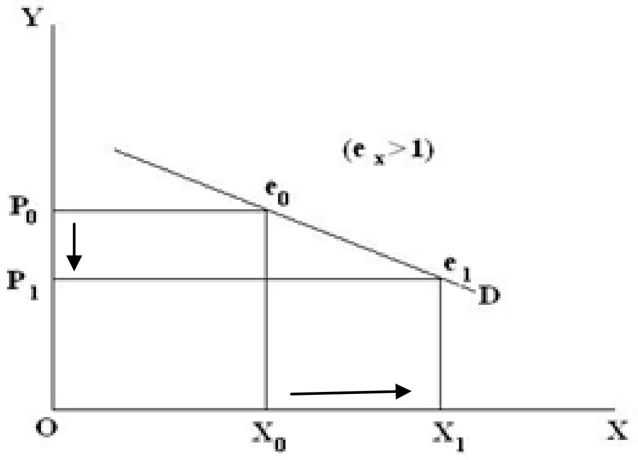

चित्र 13.2(C)

इस प्रकार स्पष्ट है कि यदि निर्यातों की मांग–लोच इकाई से अधिक है अर्थात लोचदार है तो अवमूल्यन निर्यात अर्जन में वृद्धि के द्वारा भुगतान–संतुलन के घाटे को कम करने में सफल होगा। यदि इकाई से कम है या बेलोचदार है तो घाटे को बढ़ाएगा और यदि इकाई के बराबर है तो न तो घाटा बढ़ेगा और न ही उसमें कोई सुधार होगा।

इसी प्रकार, आयात–कीमतों में परिवर्तन आयातों की मांग–लोच पर निर्भर करेगा कि आयात–व्यय में कितनी कमी होगी और उसका व्यापार–संतुलन के घाटे पर क्या प्रभाव पड़ेगा। चित्र 13.3 में आयातों की मांग लोच – लोचदार, इकाई लोच तथा बेलोचदार – का आयात व्यय पर पड़ने वाले प्रभावों को दिखाया गया है। चित्र 13.3 में X-अक्ष पर आयातों की मात्रा तथा Y-अक्ष पर आयातों की कीमतें हैं।

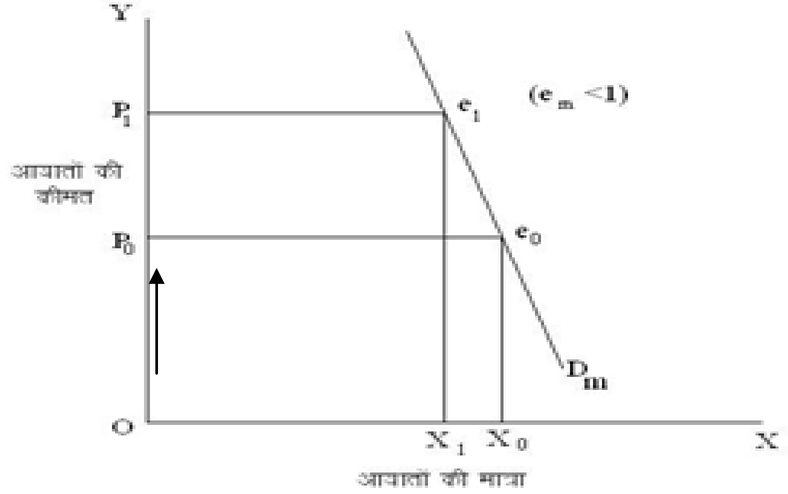

चित्र 13.3(A)

चित्र 13.3(A) में आयात मांग वक्र बेलोचदार (e_m<1) है। अवमूल्यन के कारण जब आयातित वस्तुओं और सेवाओं की कीमत OP_0 से बढ़कर OP_1 हो जाती है तो आयात OX_0 से कम होकर OX_1 हो जाता है। स्पष्ट है कि कीमतों में वृद्धि की अपेक्षा व्यय में हुई कमी काफी कम है क्योंकि अवमूल्यन के बाद आयातों पर व्यय $P_1OX_1e_1$, अवमूल्यन के पहले आयातों पर होने वाले व्यय $P_0OX_0e_0$ से काफी अधिक है।

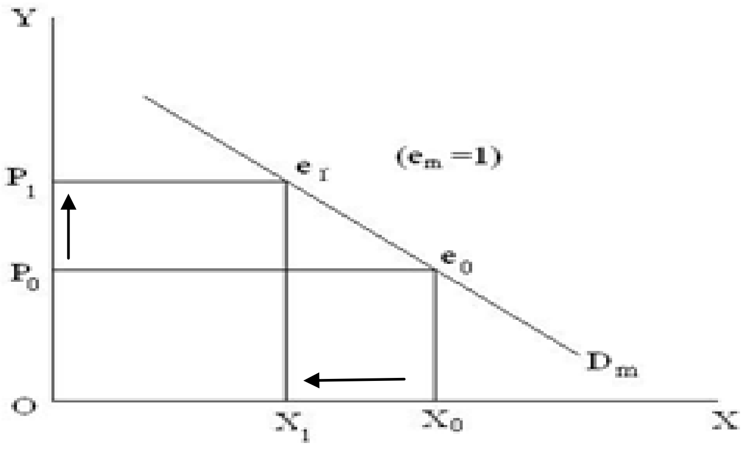

चित्र 13.3(B)

चित्र 13.3(B) में आयात मांग–वक्र की लोच इकाई के बराबर है (e_m=1)। आयात कीमतों में, अवमूल्यन के कारण, वृद्धि के फलस्परूप आयात में कमी कीमत मे वृद्धि के बराबर है और अवमूल्यन से पहले तथा बाद दोनों ही आयात व्यय बराबर है अर्थात– $P_1OX_1e_1=P_0OX_0e_0$।

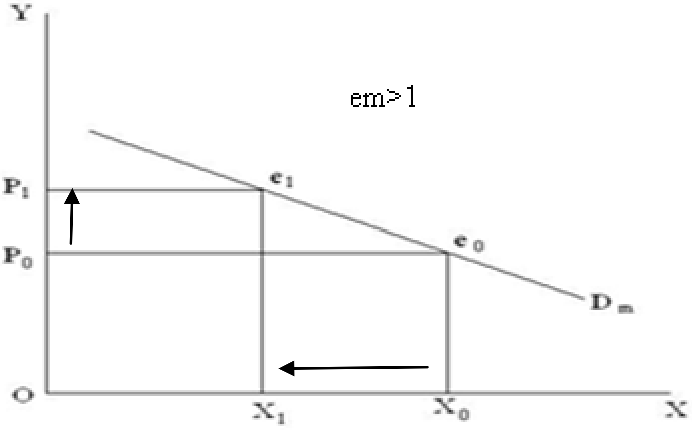

चित्र 13.3(C)

चित्र 13.3(C) में आयात माग–वक्र लोचदार है अर्थात इसकी लोच इकाई से अधिक है (e_m>1)। अवमूल्यन के कारण जब आयात कीमत बढ़कर OP_0 से OP_1 हो जाती है तो मांग से OX_0 घटकर OX_1 हो जाती है और आयात व्यय $P_0OX_0e_0$ से $P_1OX_1e_1$ हो जाता है। परन्तु $P_1OX_1e_1<P_0OX_0e_0$। अवमूल्यन के बाद आयातों पर व्यय अवमूल्यन के पहले आयातों पर होने वाले व्यय से काफी कम है।

यदि आयातों की मांग–लोच इकाई से अधिक है या लोचदार है तो अवमूल्यन आयात कीमतों में वृद्धि के द्वारा आयात–व्यय में कमी लाएगा और भुगतान–संतुलन के घाटे को कम करेगा; यदि आयातों की मांग–लोच इकाई है तो अयात–व्यय अवमूल्यन के बाद भी अपरिवर्तित रहेगा और यदि मांग लोच इकाई से कम या बेलोचदार है तो अवमूल्यन के बाद आयात व्यय में वृद्धि हो जाएगी और अवमूल्यन भुगतान–शेष के घाटे को बढ़ा देगा।

इस प्रकार स्पष्ट है कि अवमूल्यन की भुगतान–संतुलन के घाटे को कम करने की सफलता आयातों तथा निर्यातों की मांग–लोच पर निर्भर करेगी।

इस प्रकार अब आप समझ गए होंगे कि आयात और निर्यात मांगे जितनी ही अधिक लोचदार होंगी, भुगतान–संतुलन के घाटे को कम करने में अवमूल्यन उतना ही अधिक सफल होगा और यदि आयात और

निर्यात मांग लोचें इकाई से कम है या बेलोचदार है तो अवमूल्यन घाटे को कम करने में सफल नही होगा बल्कि यह घाटे को और बढ़ा देगा।

4.7.1 मार्शल और लर्नर शर्तें या दशाएं

उपरोक्त व्याख्या एक अति सामान्यीकृत व्याख्या है जो कि अवमूल्यन के प्रभावों का भुगतान–शेष पर प्रभावों का संकेत मात्र करती है। मार्शल–लर्नर दशाएं या शर्तें (Conditions) अवमूल्यन के भुगतान–संतुलन पर प्रभावों की अधिक विशिष्ट व्याख्या प्रस्तुत करता है। मार्शत–लर्नर शर्तों के अनुसार व्यापार–संतुलन को सुधारने (अर्थात घाटा कम करने) में अवमूल्यन की सफलता आयात तथा निर्यात मांग लोचों के योग पर निर्भर करती है। यदि आयात तथा निर्यात की पूर्ति लोचें अनन्त दी हुई हो तो मार्शल–लर्नर के अनुसार, यदि निर्यातों तथा आयातों की मांग लोचों का योग (e_x+e_m)

(i) इकाई से अधिक हो अर्थात $(e_x+e_m) > 1$;तो अवमूल्यन व्यापार संतुलन के घाटे को कम करेगा और उसमें सुधार होगा,

(ii) इकाई के बराबर है अर्थात $(e_x+e_m) = 1$ तो अवमूल्यन से व्यापार–संतुलन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।

(iii) यदि इकाई से कम हो अर्थात $(e_x+e_m)<1$ तो अवमूल्यन व्यापार–संतुलन की स्थिति को और खराब कर देगा अर्थात यह घाटे को और बढ़ा देगा।

4.7.2 लोच दृष्टिकोण का मूल्यांकन

1. मार्शल–लर्नर दशाएं पूँजीगतियों पर अवमूल्यन के प्रभावों की अवहेलना करती है। मार्शल–लर्नर दशाएं सिर्फ वस्तु व्यापार या चालू खाता भुगतान–संतुलन पर ही लागू होती है। सामान्यतया अवमूल्यन से पूँजी के अंर्तप्रवाह में वृद्धि होती है क्योंकि अवमूल्यन के पश्चात् विदेशी मुद्रा की एक इकाई से अधिक घरेलू मुद्रा खरीदी जा सकती है। अतः अवमूल्यन से अवमूल्यन करने वाले देश में दीर्घकालिक तथा अल्पकालिक पूँजी के अंर्तप्रवाह में वृद्धि हो सकती है। साथ ही अवमूल्यन व्यक्तियों व फर्मों को देश के बाहर पूँजी ले जाने के लिए हतोत्साहित करता है। इस प्रकार भुगतान–संतुलन में सुधार लाने के लिए अवमूल्यन के पड़ने वाले प्रभाव को पूरी तरह से तभी जाना जा सकता है जबकि पूँजी खाते पर भी इसके प्रभाव को जान लिया जाय।

   इस प्रकार अवमूल्यन से एक देश के भुगतान–संतुलन के घाटे में सामान्यतया कमी आएगी क्योंकि अवमूल्यन वस्तु एवं सेवाओं के निर्यातों को बढ़ाएगा तथा आयातों को कम करेगा और इस प्रकार चालू खाता संतुलन में सुधार लाएगा। साथ ही पूँजी के अंर्तप्रवाह में वृद्धि तथा बर्हिप्रवाह में कमी के द्वारा पूँजी खाता में सुधार लाएगा। अवमूल्यन से एक पक्षीय हस्तांतरण भुगतानों के अंर्तप्रवाह में भी वृद्धि होती है।

   यदि अवमूल्यन देश में पर्याप्त मात्रा में पूँजी के अंर्तप्रवाह को बढ़ाने में सफल रहा तो निर्यात और आयात मांग लोचों के इकाई से कम होने पर भी भुगतान–संतुलन के घाटे को सुधारने में सफल होगा और यदि यह पर्याप्त मात्रा में पूँजी के अंर्तप्रवाह को बढ़ाने में सफल नहीं रहा तो निर्यात और आयात मांग लोचों के इकाई से कम होने पर भी घाटे को सुधारने में सफल नहीं होगा।

2. वास्तव में मार्शल–लर्नर दशाएँ सिर्फ वस्तु और सेवा घाटे पर लागू होती है। अवमूल्यन से निर्यात कीमतों मे कमी और आयात कीमतों में वृद्धि के फलस्वरूप व्यापार–शर्तें (वस्तु व्यापार–शर्तें) उस देश के विरुद्ध हो जाती है। परन्तु यहाँ उल्लेखनीय है कि आय व्यापार शर्तों में सुधार के लिए एक देश जानबूझकर वस्तु व्यापार शर्तों में बिगड़ाव लाता है।

3. अवमूल्यन की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि घरेलू देश में राजकोषीय तथा मौद्रिक नीतियों की प्रकृति कैसी है और वह घरेलू लागातों और कीमतों को नियंत्रित करने में कितना सफल रहता है।

   यदि अवमूल्यन के बाद घरेलू तथा विदेशी देश में कीमतों में परिवर्तन होता है तो अवमूल्यन के प्रभाव कम या समाप्त हो सकते हैं।

4. यदि एक देश पर अत्यधिक मात्रा में विदेशी ऋण हो तो अवमूल्यन के बाद विदेशी ऋण का भार और बढ़ जाएगा। इसलिए ऐसे देश के लिए अवमूल्यन उसके वित्तीय संकट को और बढ़ा सकता है।
5. एक ऐसे देश को, जहाँ के आयात बेलोचदार हों, जहाँ आवश्यक मध्यवर्ती तथा पूँजीगत वस्तुओं और सेवाओं का आयात में हिस्सा अधिक हो, अवमूल्यन नहीं करना चहिए। क्यांकि ऐसे देश में अवमूल्यन के कारण आयात–व्यय और वढ़ जाएगा और भुगतान–संतुलन का घाटा भी।
6. मार्शल–लर्नर दशाएँ यह मान लेती है कि पूर्ति लोच अनन्त है। परन्तु सामान्यतया ऐसी स्थिति व्यवहार में नहीं पायी जाती है। विशेषकर अल्प विकसित देशों में निर्यातों के लिए उत्पादन बढ़ाने में पूर्ति पक्ष की ओर से अनेक प्रकार के अवरोध और कठोरताएँ पायी जाती है, जिससे वे अवमूल्यन से निर्यात कीमतों से कमी के कारण निर्यात मांग में वृद्धि के बावजूद उत्पादन पूरी तरह बढा पाने में सक्षम नहीं होने के कारण अवमूल्यन के फायदों को पूरी तरह प्राप्त करने में सफल नहीं हो पाते हैं। इस प्रकार पूर्ति लोचें अवमूल्यन की सफलता को काफी सीमित कर देती है।
7. अवमूल्यन एक अकेले देश के भुगतान–संतुलन के घाटे को दूर करने में जो सहायक हो सकता है परन्तु यदि विश्व के अधिकतर देश भुगतान–संतुलन के घाटे से ग्रस्त हो और सभी अवमूल्यन का सहारा ले तो अवमूल्यन की इस प्रकार की होड़ से यह अपने उद्देश्य की प्राप्ति में सफल नहीं हो सकता। चूंकि अवमूल्यन अन्य देशों के व्यापार पर नकारात्मक प्रभाव डालता है इसलिए अवमूल्यन की होड़ से विश्व–व्यापार पर नकारात्मक प्रभाव पड़ेगा।
8. लोच दृष्टिकोण सिर्फ अवमूल्यन का सापेक्ष कीमतों और आयात–निर्यात की मात्राओं के आधार पर भुगतान–संतुलन पर पड़ने वाले प्रभावों को देखता है। इन परिवर्तनों का घरेलू अर्थव्यवस्था की आय पर प्रभाव पड़ेगा, और इस आय–वृद्धि का अर्थव्यवस्था पर क्या प्रभाव होगा इसका अध्ययन यह दृष्टिकोण नहीं करता है।
9. अवमूल्यन का देश के अंदर संसाधनों के पुर्नवितरण की भी यह दृष्टिकोण उपेक्षा करता है।
10. यह दृष्टिकोण पूर्ण–प्रतियोगिता की मान्यता पर आधारित है जो कि वास्तविक नहीं है।

वास्तव में, अवमूल्यन का प्रभाव स्थायी नहीं होता है। इसका लाभ सिर्फ सीमित समय तक ही रहता है जब तक कि नई विनिमय दर समता के अनुरूप लागत–कीमता संरचना, घरेलू तथा विदेशी देश में समायोजित नहीं हो जाती है। सामान्यतया अवमल्यन का प्रभाव 2–3 वर्षों में समाप्त हो जाता है। अवमूल्यन इस दौरान अवमूल्यन करने वाले देश को समय प्रदान करता है कि वह अपने लागत–कीमत संरचना में उपयुक्त सुधार कर ले।

इस प्रकार, अवमूल्यन भुगतान–संतुलन में केवल अस्थायी समायोजन ही कर सकता है। स्थायी प्रकृति का दीर्घकालिक समायोजन तभी हो सकता है जबकि असंतुलन लाने वाले मूल कारकों को नियंत्रित किया जाए। अवमूल्यन अधिक मूलभूत प्रकृति के उपायों का पूरक ही हो सकता है उनका स्थानापन्न नहीं हो सकता है।

4.8 अवशोषण दृष्टिकोण

भुगतान–संतुलन पर अवमूल्यन के प्रभावों का लोच दृष्टिकोण आंशिक संतुलन विश्लेषण है। यह सिर्फ आयातों और निर्यातों की सापेक्षिक कीमतो में परिवर्तन का भुगतान–संतुलन के घाटे पर पड़ने वाले प्रभावों की ही चर्चा करता है। इस परिवर्तन का अर्थव्यवस्था में समष्टि चरों पर क्या प्रभाव पड़ेगा, इसकी व्याख्या यह दृष्टिकोण नहीं करता है। इसलिए कई अर्थशास्त्रियों ने यह माना कि लोच दृष्टिकाण अवास्तविक और अपर्याप्त है।

वस्तुतः अवमूल्यन सापेक्षिक कीमतों में परिवर्तन के माध्यम से अर्थव्यवस्था में आय–परिवर्तनों को भी जन्म देता है। कीन्सीयन अर्थशास्त्र से प्रभावित होकर बाद में, अवमूल्यन के प्रभावों के विश्लेषण में आय–प्रभावों को भी सम्मिलित किया गया। सिडनी एलेक्जेंडर ने केन्सीय विचारघारा के आधार पर अवमूल्यन के आय–प्रभावों का विश्लेषण किया और एक समष्टिभावी दृष्टिकोण से अवमूल्यन की प्रभाविता

के संदर्भ में विचार किया। इस दृष्टिकोण को 'अवशोषण दृष्टिकोण' कहा जाता है जो कि सामान्य संतुलन प्रकृति का है।

केन्स के राष्ट्रीय आय संबंधों पर आधारित होने के बावजूद यह केन्सीय मॉडल से भिन्न है। केन्स का मॉडल अवमूल्यन से निर्यातों के बढ़ने तथा आयातो के कम होने से आय में हुए परिवर्तनों का विश्लेषण करता है जबकि अवशोषण सिद्धान्त घरेलू व्यय (यानि अवशोषण) में परिवर्तन के द्वारा अवमूल्यन के प्रभावों का विश्लेषण करता है।

आप समझ गए होंगे कि लोच दृष्टिकोण के अनुसार अवमूल्यन 'कीमत–प्रभाव' के माध्यम से भुगतान–संतुलन की स्थिति में सुधार लाता है। जबकि घरेलू अर्थव्यवस्था में लागत–कीमत संरचना में कोई परिवर्तन नहीं होता है। संकेतात्मक रूप में, इस परम्परागत समष्टिभावी दृष्टिकोण को इस प्रकार लिखा जा सकता है–

B=X-M

जहाँ, B-व्यापार–संतुलन,

X-निर्यातों का मूल्य,

M-आयातों का मूल्य है।

लोच दृष्टिकोण में अवमूल्यन सीधे इन वाह्य चरों को प्रभावित कर भुगतान–संतुलन में सुधार लाता है। यह व्यष्टिभावी दृष्टिकोण है।

अवशोषण दृष्टिकोण अवमूल्यन के प्रभाव का समष्टिभावी दृष्टिकोण से विश्लेषण करता है। इस दृष्टिकोण के अनुसार अवमूल्यन का प्रभाव सिर्फ 'कीमत प्रभाव' तक ही सीमित नहीं है बल्कि अवमूल्यन घरेलू अर्थव्यवस्था में अन्य आर्थिक चरों जैसे उपभोग, निवेश तथा राष्ट्रीय आय पर भी प्रभाव डालता है। अतः भुगतान–संतुलन पर अवमूल्यन के प्रभाव को जानने के लिए इन सभी प्रभावों को भी ध्यान में रखना होगा।

सिडनी अलेक्जेण्डर ने अवशोषण दृष्टिकोण में कीन्स द्वारा प्रतिपादित राष्ट्रीय आय समीकरण का प्रयोग किया, जिसके अनुसार,एक खुली अर्थव्यवस्था में, राष्ट्रीय आय होगी–

Y=C+I+G+(X-M) - - - - - - - - - - - - - (I)

जहाँ, Y=राष्ट्रीय आय,

C=उपभोग,

I=घरेलू निवेश,

G=सरकारी व्यय,

X=निर्यात,

M=आयात

उपरोक्त समीकरण (I) में (C+I+G) कुल घरेलू व्यय को बताता है तथा (X-M) शुद्ध निर्यातों को। इस प्रकार राष्ट्रीय आय कुल घरेलू व्यय तथा शुद्ध निर्यातों का योग है।

समीकरण (I) से (X - M)=Y - (C+I+G) -----------------------(II)

(X-M) = B ------------------------------------ -(III)

जहाँ, B व्यापार संतुलन है।

(C+I+G)=A -- (IV)

A 'अवशोषण' या घरेलू व्यय है जो कि यह बताता है कि राष्ट्रीय का कितना हिस्सा उपभोग, निवेश तथा सरकारी व्यय के रूप में अर्थव्यवस्था में अवशोषित हुआ। कुल अवशोषण में अर्थव्यवस्था में सभी उद्देश्यों के लिए की गयी माँगें – उपभोग तथा निवेश उद्देश्यों – सम्मिलित है।

समीकरण (II) को हम निम्न प्रकार से लिख सकते हैं–

B=Y-A -- -(V)

इससे स्पष्ट है कि व्यापार संतुलन राष्ट्रीय आय तथा अवशोषण का अन्तर है। अवमूल्यन से यदि राष्ट्रीय आय में अवशोषण की अपेक्षा तेज वृद्धि होती है तो यह व्यापार–संतुलन के घाटे को कम कर सकता है।

अवमूल्यन निर्यातों को सस्ता करके निर्यात अर्जन बढ़ा देते हैं। निर्यात में वृद्धि घरेलू आर्थिक चरों पर आय प्रभाव तथा अन्य प्रभाव उत्पन्न करेगी। यही अवशोषण दृष्टिकोण का निचोड़ है। अवमूल्यन के परिणामस्परूप उसका समष्टि प्रभाव निम्नलिखित हो सकता है–

(i) निर्यातों (X) में वृद्धि
(ii) निर्यातों में वृद्धि से आय (Y) में वृद्धि
(iii) आय में वृद्धि से उपभोग (C) में वृद्धि – उपभोग में वृद्धि सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति (b) पर निर्भर करती है।
(iv) आय में वृद्धि से निवेश (I) में वृद्धि– निवेश में वृद्धि निवेश की सीमान्त प्रवृत्ति (g) पर निर्भर करती है।
(v) आय में वृद्धि से आयात (M) में वृद्धि –आयात की सीमान्त प्रवृत्ति (M) पर निर्भर करती है।

निर्यात में वृद्धि (OX) से राष्ट्रीय आय में कितनी वृद्धि (OY) होगी यह गुणक के मान पर निर्भर करता है। गुणक का मान जितना ही अधिक होता है राष्ट्रीय आय में वृद्धि उतनी ही अधिक होती है। और भुगतान–संतुलन पर उसका प्रभाव भी उतना ही अनुकूल होता है।

क्योंकि

$$X-M = Y-(C+I+G)$$

समीकरण में Y का मान बढ़ने पर व्यापार घाटा (X-M) कम होगा। इस प्रकार अवमूल्यन के परिणामस्वरूप यदि निर्यात या राष्ट्रीय में वृद्धि होती है तो यह भुगतान–संतुलन के घाटे को कम करने में अनुकूल होता है। परन्तु अवमूल्यन का यह प्रभाव यही समाप्त नहीं होता है बल्कि गुणक प्रभाव के द्वारा आय में वृद्धि आगे अर्थव्यवस्था में उपभोग, निवेश तथा आयातों को बढ़ाती है जो कि भुगतान–संतुलन के घाटे को कम करने में अनुकूल नही है।

आय में वृद्धि आयातों में कितनी वृद्धि लाएगी यह आयातों की सीमान्त आयात प्रवृत्ति (m) पर निर्भर करती है। m का मान जितना ही अधिक होगा, घाटा कम करने में अवमूल्यन का प्रभाव उतना ही कम होगा।

इसी प्रकार, आय में वृद्धि से उपभोग तथा निवेश में कितनी वृद्धि होगी यह b तथा g पर निर्भर करती है। b तथा g का मान जितना ही अधिक होगा घाटा कम करने में अवमूल्यन उतना ही कम सफल होगा।

वस्तुतः अवशोषण जितना अधिक होगा भुगतान–संतुलन के घाटे को कम करने में अवमूल्यन उतना ही कम सफल होगा। जैसा कि आय समीकरण (v) से समझ गए होंगे–

$$B = Y-A \quad \text{--} \text{-(v)}$$

उपभोग, निवेश तथा सरकारी व्यय मिलकर अवशोषण (B) को निर्धारित करते हैं। समीकरण से स्पष्ट है कि B का मान बढ़ने पर व्यापार–संतुलन का घाटा बढ़ेगा– b और g के अधिक होने पर अवशोषण (B) में वृद्धि होगी।

सिडनी अलेक्जेण्डर सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति (b) तथा सीमान्त निवेश प्रवृत्ति (g) के योग को अवशोषण की सीमान्त प्रवृत्ति (e) कहते हैं। अर्थात $e = b+g$, e का मान जितना ही अधिक होगा व्यापार–संतुलन के घाटे को कम करने में अवमूल्यन उतना ही कम सफल होगा। यदि m का मान दिया हुआ हो तो यदि–

(i) e का मान इकाई से कम है ($e<1$) तो अवमूल्यन व्यापार–संतुलन की स्थिति में सुधार लाएगा।
(ii) e का मान इकाई के बराबर हो ($e=1$) तो अवमूल्यन के कारण व्यापार–संतुलन में कोई परिवर्तन नहीं होगा।
(iii) e का मान इकाई से अधिक है ($e>1$) तो अवमूल्यन के कारण व्यापार–संतुलन की स्थिति और खराब हो जाएगी।

उपरोक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि यदि अवमूल्यन के कारण आय में वृद्धि होती है तो आय प्रेरित अवशोषण या घरेलू व्यय में भी वृद्धि होगी और आयातों में भी। अवमूल्यन घाटा कम करने में सफल तभी होगा जब आय में हुई वृद्धि अवशोषण में हुई वृद्धि से अधिक हो।

अवशोषण की सीमान्त प्रवृत्ति (e) के अतिरिक्त अन्य कारक भी अवमूल्यन की सफलता को प्रभावित करते हैं।

एलेक्जेण्डर के अनुसार अवमूल्यन के बाद व्यय या अवशोषण पर दो प्रकार से प्रभाव पड़ेगा–प्रत्यक्ष प्रभाव तथा अप्रत्यक्ष प्रभाव। आय–प्रभाव के कारण अवशोषण मे परिवर्तन अवमूल्यन का अप्रत्यक्ष प्रभाव जबकि अवमूल्यन से प्ररित अवशोषण या व्यय में परिवर्तन प्रत्यक्ष प्रभाव है। अवमूल्यन के फलस्परूप जब मुद्रा आय और मुद्रा कीमतें बढ़ती है तो कोई प्रभाव जो कि वास्तविक आय को कम कर देता है, वह अवशोषण पर प्रत्यक्ष प्रभाव है। इस प्रकार का अध्ययन नकदी शेष प्रभाव, आय पुर्नवितरण प्रभाव, मुद्रा–विभ्रम इत्यादि के अंर्तगत किया जा सकता है।

1. अवमूल्यन के कारण व्यापार–शर्तें देश के प्रतिकूल हो जाती है। जिससे देश की वास्तविक आय कम हो जाती है, निवासियों की क्रय शक्ति में कमी से अवशोषण भी कम होगा। यदि अवशोषण की सीमान्त प्रवृत्ति इकाई से अधिक है ($e>1$) तो अवशोषण वास्तविक आय की अपेक्षा अधिक तेजी से कम होता है और देश के व्यापर–संतुलन में सुधार होता है।
2. अवमूल्यन गैर–आय प्रभावों के माध्यम से भी कार्य करता है जैसे नकदी–शेष प्रभाव। जब एक देश अपनी मुद्रा का अवमूल्यन करता है तो इसकी घरेलू कीमतों में वृद्धि होती है– आयात कीमतों में वृद्धि तथा निर्यातों में वृद्धि के कारण। यदि मुद्रा–पूर्ति (M) स्थिर हो तो कीमतों के बढ़ने से मुद्रा–पूर्ति का वास्तविक मूल्य (M_0) कम हो जाएगा और इससे वास्तविक ब्याज दरें (i_0) बढ़ जाएगी। यदि कोई व्यक्ति अपने वास्तविक नकदी शेष की मात्रा अपरिवर्तित रखना चाहता है , तो कीमत वृद्धि की स्थिति में, उसे अपने बचत में वृद्धि या व्यय में कटौती करनी होगी। इस प्रकार अवशोषण मे कमी होगी और व्यापार–संतुलन में सुधार होगा। बचत बढ़ने तथा व्यय में कमी होने से वास्तविक आय में कमी होगी और यदि e का मान 1 से अधिक है तो अवशोषण आय से अधिक तेज गिरेगा और व्यापार–संतुलन में और सुधार होगा।
3. यदि अवमूल्यन विकसशील देशों में आय के वितरण को प्रभावित करता है तो यह अवशोषण के माध्यम से व्यापार–संतुलन को प्रभावित करेगा। यदि अवमूल्यन से आय–वितरण ऊँची सीमान्त अवशोषण प्रवृत्ति से नीची सीमान्त अवशोषण प्रवृत्ति की ओर होता है अर्थात् यदि अवमूल्यन आय का पुर्नवितरण ऊँची बचत प्रवृत्ति वाले लोगों के पक्ष में कर देता है तो उस सीमा तक अवशोषण में कमी होगी और व्यापार–संतुलन में सुधार होगा। आय पुर्नवितरण प्रभाव भी अवमूल्यन का गैर–आय प्रभाव है।
4. मुद्रा–विभ्रम भी एक प्रकार का गैर–आय प्रभाव है। प्रायः लोग अपनी मौद्रिक आय या मौद्रिक मूल्यों से अधिक प्रभावित होती है। यदि अवमूल्यन से कीमतों में वृद्धि हो जाती है और लोगों के व्यय में कमी हो जाती है तो अवशोषण में कमी आएगी और व्यापार–संतुलन में सुधार होगा।

   यदि मौद्रिक आय में वृद्धि होती है और कीमतों में वृद्धि उससे अधिक तेजी से होती है जिससे उनकी वास्तविक आय कम हो जाती है, तब भी लोग मुद्रा–विभ्रम के कारण अपने को ज्यादा धनी महसूस करते हैं और अपने व्यय को बढ़ा देते है। जिससे अवशेष में वृद्धि हो जाती है और व्यापार–संतुलन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

4.8.1 अवशोषण दृष्टिकोण का मूल्याङ्कन

1. व्यापार–संतुलन को प्रभावित करने वाले अनेक तत्वों– आय तथा गैर आय तत्वों के होने से अवमूल्यन के प्रभावों की भविष्यवाणी काफी कठिन हो जाती है। इसमें से अनेक तत्वों का मात्रात्मक रूप से मापन संभव नहीं है। जैसे, आय वितरण प्रभाव, मुद्रा–विभ्रम इत्यादि। और

भुगतान–संतुलन पर अवमूल्यन के प्रभावों को जानने के लिए पूँजी प्रवाहों में परिवर्तन पर अवमूल्यन के पड़ने वाले प्रभावों को सम्मिलित करना आवश्यक है।

2. मैक्लप के अनुसार, अवशोषण दृष्टिकोण में कैन्सीय सर्वसमिकाओं का ही पुर्नप्रस्तुतीकरण है। इसमें कुछ भी नया नही है। यह दृष्टिकोण B = Y - A समीकरण पर आधारित है जिसके अनुसार यदि समग्र पूर्ति Y समग्र मांग A से अधिक तेजी से बढ़ती है या फिर समग्र मांग A में गिरावट समग्र पूर्ति Y की अपेक्षा अधिक तेज होती है तो व्यापार संतुलन B में सुधार होगा।
3. मैक्लप ने एलेक्जेण्डर की सापेक्षिक कीमत प्रभावों की उपेक्षा के लिए भी आलोचना की। मैक्लन के अनुसार अवमूल्यन के प्रभाव जानने मे व्यय प्रवृत्तियाँ कम विश्वसनीय है जबकि मौद्रिक और राजस्व नीतियों का अवमूल्यन पर प्रभाव अधिक व्यापक होता है जिनकी अवशोषण विधि उपेक्षा करती है।
4. जोनसन के अनुसार अवशोषण विधि वास्तविक आय और वास्तविक व्यय द्वारा भुगतान संतुलन पर प्रभावों का अध्ययन करती है और कीमत स्तर में परिवर्तन की उपेक्षा करती है।
5. यह धारणा अवमूल्यन के कीमत प्रभाव की उपेक्षा करती है जो अति महत्वपूर्ण है। अवशोषण विधि सापेक्षिक कीमतों की अपेक्षा घरेलू उपभोग के स्तर पर अधिक बल देती है। अवशोषण कम करने के लिए केवल घरेलू उपभोग के स्तर को कम करने का यह तात्पर्य नहीं है कि अतिरिक्त संसाधनों का उपयोग भुगतान–संतुलन को सुधारने में लगाए जाएगे।
6. यह विधि अन्य देशों के अवशोषण पर अवमूल्यन के प्रभावों का अध्ययन नहीं करती है। अवमूल्यन के बाद यदि अवमूल्यन करने वाले देश में निर्यात वस्तुओं की कीमत में वृद्धि होती है तो अवमूल्यन का लाभ समाप्त हो जाएगा। इसलिए उचित नीतियों और सरकारी नियंत्रणों द्वारा घरेलू कीमतों को स्थिर रखना आवश्यक है।
7. अवशोषण की धारणा, स्थिर विनिमय दर प्रणाली के अन्तर्गत भुगतान शेष घाटे को ठीक करने के उपाय के रूप में बिल्कुल असफल है। जब अवमूल्यन के साथ कीमतें बढ़ती है तो लोग अपने उपभोग व्यय को घटाते हैं। मुद्रा पूर्ति स्थिर रहने पर ब्याज दर बढ़ती है जिससे अवशोषण के साथ–साथ उत्पादन में कमी होती है। इस प्रकार, अवमूल्यन का भुगतान शेष घाटे से बहुत कम प्रभाव पड़ेगा।
8. अवमूल्यन की सफलता के लिए दूसरे देशों का पूर्ण सहयोग प्राप्त होना आवश्यक है। यदि अवमूल्यन के बाद दूसरे देश भी अवमूल्यन करते है या अपने आयातों पर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष प्रतिबन्ध लागते हैं तो अवमूल्यन करने वाले देश को लाभ नहीं होगा। साथ ही दूसरे देशों द्वारा निर्यात–सब्सिडी देने पर भी अवमूल्यन का प्रभाव समाप्त हो जाएगा। इस प्रकार मुद्रा अवमूल्यन की होड़ देशों में न लगे, इसके लिए अवमूल्यन करने के पूर्व अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर सलाह और समझौता जरूरी है।

अवशोषण दृष्टिकोण का महत्वपूर्ण पक्ष यह है कि व्यापार–संतुलन की स्थिति में परिवर्तनों को सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था से जोड़कर देखा जाना चाहिए। यह सिद्धान्त एक स्पष्ट संदेश देता है कि यदि भुगतान–संतुलन के घाटे को कम करना है तो एक देश को उपभोग और निवेश के रूप में अत्यधिक अवशोषण करने या व्यय करने की अपेक्षा वस्तुओं व सेवाओं का अधिक उत्पादन करना चाहिए।

4.9 सारांश

व्यापार–संतुलन राष्ट्रीय आय तथा घरेलू व्यय या अवशोषण का अंतर होता हैं। इस प्रकार, व्यापार–संतुलन अवशोषण या घरेलू व्यय के कम होने पर कम होगा। सरकार राजकोषीय और मौद्रिक नीति के द्वारा अवशोषण और व्यय में कमी करके व्यापार–संतुलन घाटे को कम कर सकती है।

अवमूल्यन घरेलू तथा विदेशी व्यय को विदेशी वस्तुओं तथा सेवाओं से हटाकर घरेलू वस्तुओं तथा सेवाओं की ओर मोड़ देता है। इसीलिए इसे व्यय बदलावकारी नीति (Expenditure Switching Policy) कहते हैं। अवमूल्यन का तात्कालिक प्रभाव यह होता है कि घरेलू मुद्रा के मूल्य में कमी से निर्यात सस्ते तथा आयात मंहगे हो जाते हैं।

अवमूल्यन की भुगतान–संतुलन के घाटे को कम करने की सफलता आयातों तथा निर्यातों की मांग–लोच पर निर्भर करेगी। आयात और निर्यात मांगे जितनी ही अधिक लोचदार होंगी, भुगतान–संतुलन के घाटे को कम करने में अवमूल्यन उतना ही अधिक सफल होगा और यदि आयात और निर्यात मांग लोचें इकाई से कम है या बेलोचदार है तो अवमूल्यन घाटे को कम करने में सफल नही होगा बल्कि यह घाटे को और बढ़ा देगा। मार्शल–लर्नर शर्तों के अनुसार व्यापार–संतुलन को सुधारने में अवमूल्यन की सफलता आयात तथा निर्यात मांग लोचों के योग पर निर्भर करती है। यदि निर्यातों तथा आयातों की मांग लोचों का योग इकाई से अधिक हो तो अवमूल्यन व्यापार संतुलन के घाटे को कम करेगा।

परन्तु अवमूल्यन न सिर्फ निर्यातों तथा आयातों की सापेक्षिक कीमतों को प्रभावित करता है बल्कि यह अर्थव्यवस्था में आय परिवर्तनों को भी जन्म देता है। भुगतान–संतुलन के घाटे को कम करने में अवमूल्यन की सफलता आय में परिवर्तनों के कारण घरेलू व्यय या अवशोषण (C+I+G) में होने वाले परिवर्तनो पर निर्भर करती है। अवमूल्यन निर्यातों को सस्ता करके निर्यात अर्जन बढ़ा देते हैं। निर्यात में वृद्धि घरेलू आर्थिक चरों पर आय प्रभाव तथा अन्य प्रभाव उत्पन्न करेगी। यदि अवमूल्यन के कारण आय में वृद्धि होती है तो आय प्रेरित अवशोषण या घरेलू व्यय में भी वृद्धि होगी और आयातों में भी। अवमूल्यन घाटा कम करने में सफल तभी होगा जब आय में हुई वृद्धि अवशोषण में हुई वृद्धि से अधिक हो। अवशोषण जितना अधिक होगा भुगतान–संतुलन के घाटे को कम करने में अवमूल्यन उतना ही कम सफल होगा। अवमूल्यन गैर–आय प्रभावों के माध्यम से भी कार्य करता है

अवमूल्यन भुगतान–संतुलन में केवल अस्थायी समायोजन ही कर सकता है। स्थायी प्रकृति का दीर्घकालिक समायोजन तभी हो सकता है जबकि असंतुलन लाने वाले मूल कारकों को नियंत्रित किया जाए।

4.10 शब्दावली

अवशोषण (Observation) – राष्ट्रीय आय के कुल अवशोषण का अर्थ है कुल घरेलू व्यय। संकेतात्मक रूप में, अवशोषण A=C+I+G

स्पष्ट है कि कुल अवशोषण में अर्थव्यवस्था में उपभोग तथा कुल निवेश उद्देश्यों के लिए की गयी मांग सम्मिलित होती है। अवशोषण का अर्थ यह है कि राष्ट्रीय आय का जिस भाग उपयोग उपभोग तथा कुल निवेश के रूप में अवशोषण नहीं हुआ, उसका संचय (Hoarding) होगा। अवशोषण में जितनी ही कमी होगी संचय में उतनी ही वृद्धि होगी।

मुद्रा–विभ्रम (Money Ilusion)– यदि लोगों की मौद्रिक आय में वृद्धि हो परन्तु कीमतों में उससे तेज वृद्धि के कारण वास्तविक आय मं कमी हो जाए, परन्तु मौद्रिक आय के बढ़ने के कारण लोग अपने को पहले से अधिक धनी समझकर अपने व्यय को बढ़ा दें या पहले ही इतना बरकरार रखें तो इसे 'मुद्रा–विभ्रम' की संज्ञा दी जाती है। मुद्रा–विभ्रम के संदभ में मुख्य बात यह है कि लोग अपनी वास्तविक आय की अपक्षा मौद्रिक आय से प्रभावित होकर अपने आर्थिक निर्णय लेते हैं और कीमत के आय पर पड़ने वाले प्रभावों को नहीं समझ पाते हैं।

निर्यातों तथा आयातों की मांग लोच– निर्यात की कीमतों में परिवर्तन के फलस्वरूप निर्यात की मांग में हुआ परिवर्तन निर्यातों की मांग लोच है। अर्थात्–

$$\text{निर्यातों की मांग लोच} = \frac{\text{मांग में प्रतिशत परिवर्तन}}{\text{निर्यात कीमत में प्रतिशत परिवर्तन}}$$

इसी प्रकार,

$$\text{आयातों की मांग–लोच} = \frac{\text{आयात मांग में प्रतिशत परिवर्तन}}{\text{आयात कीमत में प्रतिशत परिवर्तन}}$$

विनिमय–दर – किसी देश की घरेलू मुद्रा का अन्य देशों की मुद्रा से जिस दर पर विनिमय किया जाता है उसे विदेशी विनिमय–दर पर कहा जाता है। दूसरे शब्दों में, विदेशी मुद्रा की घरेलू मुद्रा के रूप में कीमत

विनिमय दर है। **जैसे** यदि 1$ में `50 मिलते हैं तो, भारत में **डालर** के रूप में विदेशी विनिमय दर होगी–1$=`50।

अवमूल्यन– प्रमुख विदेशी मुद्राओं के मुकाबले घरेलू–मुद्रा के मूल्य में जानबूझकर कानूनी ढंग से की गयी कमी अवमूल्यन है।

मुद्रा–मूल्य ह्रास – विदेशी विनिमय बाजार में, विदेशी विनिमय की मांग तथा पूर्ति में परिवर्तन के कारण घरेलू मुद्रा के वाह्य मूल्य में कमी, मुद्रा–मूल्य ह्रास कहा जाता है। अवमूल्यन तथा मूल्य–ह्रास दोनों का प्रभाव अर्थव्यवस्था पर एक समान होता है।

व्यय बदलाव की नीतियाँ– वे उपाय जो व्यय की दिशा को परिवर्तित करके विदेशी वस्तु और सेवाओं से घरेलू वस्तुओं और सेवाओं की ओर कर देते हैं।

4.11 संदर्भ /उपयोगी ग्रंथ सूची

57. HH. G. Mannur, *International Economics* ,Vikas Publishing House Pvt. Ltd. 2001
58. Bo Sodersten, International Economics ,Macmillan, 1999
59. Paul Krugman and Maurice Obstfeld: *International Economics: Theory and Policy, Dorling Kindersley India Pvt Ltd, 2009.*
60. Charles P Kindleberger, International Economics, Richard D. Irwin Inc., Illinois, 1968
61. Dominik Salvatore, International Economics, John Willy & Sons, Inc., 2008
62. D. M. Mithani, International Economics, Himalaya Publishing House, Mumbai, 2006
63. सुदामा सिंह् एवं एम०सी० वैश्य, अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, ऑक्सफ़ोर्ड एंड आई०बी०एच० पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2007
64. एम०एल०झिंगन, अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, वृंदा पब्लिकेशन, दिल्ली, 2010.
65. ज्ञानेंद्र सिंह कुशवाहा, अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, दि मैकमिलन कंपनी आफ इंडिया लिमिटेड, नई दिल्ली,1979.
66. एच० एस० अग्रवाल, तथा सी०एस० बरला, *अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र* ,लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, 2003.

4.12 अभ्यास प्रश्न

लघु उत्तरीय प्रश्नः

1. भुगतान सन्तुलन के असन्तुलन को दूर करने के लिए अपनाये जाने वाले उपायों का उल्लेख कीजिए।
2. मार्शल–लर्नर शर्ते क्या है?
3. व्यय बदलावकारी नीति क्या है?
4. व्यय परिवर्तनकारी नीति क्या है?
5. अवमूल्यन तथा घरेलु मुद्रा के मूल्य ह्रास में क्या अंतर है?
6. अवशोषण दृष्टिकोण क्या है?
7. अवमूल्यन गैर–आय प्रभावों के माध्यम से किस प्रकार कार्य करता है ?
8. अवशोषण दृष्टिकोण की कमियों का उल्लेख कीजिये.

निबंधात्मक प्रश्न

1. भुगतान सन्तुलन के असन्तुलन को ठीक करने हेतु अवशोषण विधि पर विस्तृत टिप्पणी लिखिए।
2. मार्शल–लर्नर शर्त की व्याख्या कीजिए। इसकी क्या–क्या आलोचनाएँ हैं? आप इसे किस सीमा तक व्यावहारिक मानते हैं?
3. भुगतान सन्तुलन के असन्तुलन को ठीक करने हेतु**अवमूल्यन के लोच** दृष्टिकोण **का मूल्याङ्कन कीजिये.**
4. भुगतान सन्तुलन के असन्तुलन को ठीक करने हेतु **अवमूल्यन के** अवशोषण दृष्टिकोण **का मूल्याङ्कन कीजिये.**

****

खंड 04: विनिमय दर एवं भुगतान संतुलन

इकाई- 05

भुगतान संतुलन में समायोजन की मौद्रिक विधि एवं आय विधि

5.1 प्रस्तावना

5.2 उद्देश्य

5.3 भुगतान संतुलन के सन्दर्भ में मुद्रावादियों का दृष्टिकोण – सामान्य विवेचना

5.4 भुगतान संतुलन समायोजन और मौद्रिक उपागम

5.4.1 मान्यताएं

5.4.2 स्थिर विनिमय दरें तथा भुगतान संतुलन समायोजन

5.4.3 परिवर्तनशील विनिमय दरें तथा भुगतान संतुलन समायोजन

5.4.4 आलोचना

5.5 भुगतान संतुलन समायोजन की आय विधि एवं विदेशी व्यापार गुणक

5.5.1 घरेलु अर्थव्यवस्था तथा विदेशी व्यापार में सम्बन्ध

5.5.2 निवेश गुणक

5.6 विदेशी प्रतिक्रियाओं या प्रतिप्रभाव की अनुपस्थिति में विदेशी व्यापार गुणक या शुद्ध विदेशी व्यापार गुणक

5.6.1 विदेशी व्यापार गुणक की व्युत्पत्ति

5.6.2 विदेशी प्रतिक्रियाओं या प्रतिप्रभाव की अनुपस्थिति में विदेशी व्यापार गुणक का प्रभाव

5.7 विदेशी प्रतिक्रियाओं या प्रतिप्रभाव की उपस्थिति में विदेशी व्यापार गुणक

5.7.1 निर्यातों का फिडबैक विदेशी व्यापार गुणक

5.7.2 निवेश का फिडबैक विदेशी व्यापार गुणक

5.8 विदेशी व्यापार गुणक का महत्त्व

5.9 विदेशी व्यापार गुणक की आलोचनाएं

5.10 सारांश

5.11 शब्दावली

5.12 सन्दर्भ / उपयोगी ग्रन्थ सुची

5.13 अभ्यास प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार एवं व्यापार नीति के **खंड चार, विनिमय दर एवं भुगतान संतुलन** के 'भुगतान संतुलन में समायोजन की मौद्रिक विधि एवं विदेशी व्यापार गुणक एवं आय विधि ' से सम्बंधित पांचवीं इकाई

है. इससे पहले की इकाई में आपने भुगतान संतुलन के असंतुलन को दूर करने में परम्परागत उपायों की भूमिका, विशेष रूप से अवमूल्यन के भुगतान संतुलन पर पड़ने वाले प्रभावों के सन्दर्भ में अध्ययन किया . अध्ययन के पश्चात् भुगतान संतुलन के असंतुलन को दूर करने में अवमूल्यन की भूमिका तथा महत्व को समझ गए होंगे. आप जान गए होंगे कि अवमूल्यन किस प्रकार से और किन स्थितियों भुगतान–संतुलन के असंतुलन को दूर कर सकता है।

आपने देखा कि लोच दृष्टिकोण के अनुसार निर्यातों और आयातों की मांग और पूर्ति लोचों की सापेक्षिक प्रभाविता का अवमूल्यन या विनिमय दर के मूल्यह्रास द्वारा भुगतान–संतुलन के असंतुलन को दूर करने में के लिए विशेष महत्व है। दूसरी ओर मौद्रिक दृष्टिकोण के अनुसार विनिमय दर देश के वास्तविक उत्पादन की सापेक्षिक कीमत न होकर देश की करेन्सी की सापेक्षिक कीमत है। इसलिए मौद्रिकवादी वनिस्पत परिसम्पत्तियों के स्टॉक के, बाजार के कोषों के प्रवाह के बाजारों के महत्व पर अधिक जोर देते हैं।

भुगतान संतुलन के घाटे को दूर करने के लिए मौद्रिक उपायों की चर्चा ने 1970 के दशक में विशेष रूप से जोर पकड़ा। परम्परागत दुष्टिकोण से भुगतान–संतुलन के घाटे को दूर करने के लिए समष्टिगत स्तर पर अल्पकालिक विश्लेषण किया गया है, जबकि मौद्रिकवादियों ने भुगतान–संतुलन के समष्टि आर्थिक विश्लेषण में दीर्घकालिक समस्या पर अधिक ध्यान दिया। मुद्रावादियों के अनुसार भुगतान–संतुलन की संकल्पना में मुद्रा के अंर्तप्रवाह तथा बर्हिप्रवाह का विशेष महतव है।

हाल के वर्षों में, आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने भुगतान–संतुलन के असंतुलन को दूर करने में मौद्रिक उपायों पर अधिक जोर दिया है। भुगतान–संतुलन के समायोजन में मुद्रा और अन्य वित्तीय परिसम्पत्तियों की भूमिका काफी महत्वपूर्ण है। जैसा कि आप जान चुके हैं कि प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने स्थिर तथा परिवर्तनशील दरों की स्थति में भुगतान–संतुलन के समायोजन में मौद्रिक–नीति की महत्वपूर्ण भूमिका पर बल दिया। उनके अनुसार अर्थव्यवस्था में मुद्रा–पूर्ति में वृद्धि से आन्तरिक कीमत बढ़ता है जिससे आयातों में वृद्धि तथा निर्यातों में कमी आती हैं इससे सोने का बर्हिप्रवाह बढ़ता है। इससे मौद्रिक आधार कमजोर होता है और मुद्रा–पूर्ति में कमी आती है, जिससे कीमतें गिरती है और आयात हतोत्साहित तथा निर्यात प्रोत्साहित होते हैं और इस प्रकार भुगतान–संतुलन का घाटा स्वतः ही समाप्त हो जाता है।

आधुनिक अर्थशास्त्री, प्रतिष्ठित दृष्टिकोण को ही पुर्नस्थापित करने का प्रयास करते है। मौद्रिक दृष्टिकोण के अनुसार भुगतान–संतुलन स्वतः एक मौद्रिक परिघटना है। क्योंकि भुगतान–संतुलन का घाटा और अतिरेक मूलतः अर्थव्यव्स्था में मुद्रा के वास्तविक ऐच्छिक स्टॉक (actual desired stocks) के समायोजन की प्रक्रिया है। मुद्रावादीयों के अनुसार भुगतान–संतुलन का घाटा मुद्रा–पूर्ति के आधिक्य के बराबर होगा।

किसी भी देश की राष्ट्रीय आय और भुगतान–संतुलन में काफी गहन सम्बन्ध होता है। किसी भी एक चर में परिवर्तन से दूसरे चर में परिवर्तन हो जाता है। जैसा कि आपने विछले अध्याय में देखा कि भुगतान–शेष के घाटे को दूर करने के लिए राष्ट्रीय आय में कमी करके घाटे को कम किया जा सकता है। आय में कमी से आयातों में कमी होगी। यह सीमांत आयात प्रवृत्ति पर निर्भर करेगा कि आयात में कितनी कमी होगी। वास्तव में, यह विदेशी व्यापार गुणक पर निर्भर करेगा कि आय में परिवर्तन से प्रेरित आयातों या निर्यातों में कितना परिवर्तन होगा या फिर निर्यातों में वृद्धि या कमी से विदेशी व्यापार गुणक के कार्यकरण से राष्ट्रीय आय में कितनी वृद्धि या कमी होगी। विदेशी व्यापार गुणक निर्यात में परिवर्तन द्वारा उत्पन्न आय–परिवर्तन को व्यक्त करता है। विदेशी व्यापार गुणक का मान आयात की सीमांत प्रवृत्ति पर निर्भर करता है।

आर्थिक नीति निर्धारण में गुणक का विशेष महत्व है। जिसके अनुसार, स्वायत्त विनियोग में थोड़ी सी वृद्धि के फलस्वरूप आय में काफी अधिक वृद्धि हो जाती है। राष्ट्रीय आय में समायोजन के माध्यम से भुगतान–संतुलन के असंतुलन को दूर किया जा सकता है। प्रस्तुत इकाई में हम विदेशी व्यापार गुणक की विस्तार से चर्चा करेंगे और राष्ट्रीय आय तथा अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के परस्पर संबंध को भी देखेंगे।

भुगतान–संतुलन के असंतुलन को कम करने या बढ़ाने में विदेशी व्यापार गुणक की भूमिका पर भी हम चर्चा करेंगे।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप भुगतान संतुलन के असंतुलन को दूर करने में मौद्रिक उपायों एवं आय विधि या विदेशी व्यापार गुणक के सम्बन्ध में स्पष्ट जानकारी प्राप्त कर सकेगें.

5.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के बाद आप

- भुगतान शेष के सम्बन्ध में मुद्रावादियों के दृष्टिकोण को समझ सकेंगे.
- भुगतान शेष में समायोजन के मौद्रिक उपागम के बारे में जान सकेंगे.
- राष्ट्रीय आय एवं अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के मध्य सम्बन्ध को जान पाएंगे.
- विदेशी व्यापार गुणक और भुगतान शेष में समायोजन में इसके महत्त्व को समझ सकेंगे.
- विदेशी प्रतिक्रियाओं या प्रतिप्रभाव की उपस्थिति तथा अनुपस्थिति में विदेशी व्यापार गुणक के कार्यकरण तथा प्रभावों को समझ सकेंगे.

5.3 भुगतान संतुलन के सन्दर्भ में मुद्रावादियों का दृष्टिकोण – सामान्य विवेचना

मौद्रिक दृष्टिकोण के अनुसार, भुगतान संतुलन के अंसतुलन को दूर करने के लिए वित्तीय बाजार पर ध्यान देना आवश्यक है। वित्तीय बाजार में मुद्रा की मांग तथा मुद्रा की पूर्ति में असंतुलन के परिणामस्वरूप भुगतान–संतुलन पर क्या प्रभाव पड़ता है, इसका परीक्षण आवश्यक है। मुद्रावादी भुगतान–संतुलन तथा अर्थव्यवस्था मे मुद्रा की पूर्ति की कड़ी का परीक्षण करके भुगतान–संतुलन के घाटे को दूर करने का सुझाव देते हैं।

एक सरलीकृत मौद्रिक व्यवस्था में मुद्रा–पूर्ति का समीकरण निम्नलिखित होता है–

$$M=C+D+F$$

जहाँ, M= मुद्रा पूर्ति

C= अर्थव्यवस्था में प्रचलन में वह मुद्रा जो कि लोगों के पॉकेट में हो

D= बैंकों की मांग जमाएं या साख मुद्रा

F= विदेशी मुद्रा भण्डार

यदि भुगातन–संतुलन में लगातार घाटा होता है तो विदेशी मुद्रा भण्डार (F) में कमी आएगी, और इससे मुद्रा पूर्ति M में भी कमी आएगी। परन्तु साख–मुद्रा (D) में विस्तार के द्वारा M में कमी को रोक दिया जाता है। इससे यह स्पष्ट है होता है कि भुगतान–संतुलन में लगातार घाटा तभी बना रह सकता है जबकि घरेलू साख मुद्रा (D) में विस्तार के द्वारा मुद्रा–पूर्ति को बढ़ने दिया जाए।

अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (IMF) का मानना है कि कोई भी देश लगातार बहुत लम्बे समय तक अपने विदेशी मुद्रा भण्डार (F) में कमी के द्वारा अपने भुगतान–संतुलन के घाटे का वित्तियन नहीं कर सकता है। इसलिए उसे एक सीमा के बाद साख का विस्तार आवश्यक रूप से रोकना पड़ेगा।

इस प्रकार मौद्रिकवादियों का यह मानना है कि भुगतान–संतुलन का असंतुलन **एक अस्थायी परिघटना है जो की मुद्रा बाज़ार में** असंतुलन के कारण बनी रहती है। दीर्घकाल में यह स्वतः ही समाप्त हो जाता है।

भुगतान–संतुलन सिद्धान्त के परम्परागत दृष्टिकोण के अनुसार जब बैंक साख में विस्तार होता है तो ब्याज–दरों में गिरावट आती है जो कि निवेश में विदेशी मुद्रा भण्डार (F) में कमी आएगी, और इससे मुद्रा पूर्ति M में भी कमी आएगी लाती है। इसके विपरीत मुद्रावादियों का यह मानना है कि जब मुद्रा–पूर्ति में वृद्धि होती है तो लोग इसे अपने पास नकदी के रूप में रखने की अपेक्षा खर्च करना पसंद करते हैं। इससे वस्तुओं और सेवाओं की मांग बढ़ती है और उत्पादन स्थिर रहने की स्थिति में कीमतों में वृद्धि होती है। मुद्रा–पूर्ति बढ़ने से वस्तुओं और सेवाओं की बढ़ी घरेलू मांग निर्यातों की आपूर्ति को प्रभावित करती है। घरेलू उपभोग में वृद्धि के कारण, संभाव्य निर्धारित वस्तुओं व सेवाओं की खपत घरेलू अर्थव्यवस्था मे ही

हो जाती है और फलस्वरूप निर्यात में कमी आती है इससे भुगतान–संतुलन में घाटा उत्पन्न होता है या फिर बढ़ जाता है।

इस प्रकार मुद्रावादियों के अनुसार अल्पविकसित देशों में अवमूल्यन उसी मात्रा में मुद्रा–स्फीति को बढ़ावा देती है। इसलिए यह आवश्यक है कि बैंक साख में नियंत्रण/संकुचन के द्वारा मुद्रा–पूर्ति को नियंत्रित किया जाए। यदि अवमूल्यन के साथ बैंक साख का अत्यधिक विस्तार होता है तो भुगतान–संतुलन का घाटा कम होने के बजाए और बढ़ भी सकता है।

5.4 भुगतान संतुलन समायोजन और मौद्रिक उपागम

भुगतान–संतुलन के मौद्रिक दृष्टिकोण की शुरुआत 1960 के दशक में राबर्ट मण्डल और हैरी जानसन द्वारा की गयी थी और 1970 के दशक में यह पूरी तरह विकसित हुआ। भुगतान–संतुलन को पूर्णतया एक मौद्रिक परिघटना मानते हुए यह दृष्टिकोण इस बात पर जोर देता है कि दीर्घकाल में भुगतान–संतुलन में असंतुलन पैदा करने और उसके समायोजन दोनों में मुद्रा की भूमिका काफी महत्वपूर्ण है। यह मुद्रा की मांग और पूर्ति के रूप में भुगतान शेष के परिवर्तनों का विवेचन करता है। भुगतान–संतुलन में अतिरेक का कारण मुद्रा–पूर्ति की अपेक्षा मुद्रा की मांग का अधिक होना है। जबकि घाटे का कारण मुद्रा–पूर्ति का मुद्रा की मांग से अधिक होना है।

5.4.1 मान्यताएँ

1. यह माना लिया गया है कि परिवहन लागतों को जोड़ने पर, विभिन्न देशों में बेची गई एक समान वस्तुओं की कीमत एक समान रहती है। इसलिए स्थिर विनिमय दरों के अन्तर्गत करेंसी प्रवाहों को रोकना संभव नहीं हैं।
2. यह मान लिया गया है कि दीर्घकाल में अर्थव्यवस्था में पूर्ण रोजगार है या पूर्ण रोजगार की प्रवृत्ति है और राष्ट्रीय आय या उत्पादन पूर्ण रोजगार की स्थिति में उत्पादन को दर्शाता है।
3. सभी देशों में पूर्ण रोजगार पाया जाता है, इसलिए एक देश में बढ़ी हुई मांग को घरेलू उत्पाद में वृद्धि से पूरा नहीं किया जा सकता।
4. एक अर्थव्यवस्था में मुद्रा की मांग आय, धन और ब्याज दर का स्थिर फलन है । जब आय बढ़ती है तो मुद्रा की मांग (नकद शेष) बढती है और ब्याज दरें बढ़ती हैं तो मुद्रा की मांग गिरती है।
5. वस्तु और पूंजी दोनों बाजारों में उपभोग में पूर्ण स्थानापन्नता होती है जो प्रत्येंक वस्तु के लिए एक कीमत और संपूर्ण देश के लिए एक ब्याज दर सुनिश्चित करती है।
6. सभी देशों में मजदूरी–कीमत लोचशीलता पूर्ण रोजगार स्तर पर उत्पादन को निश्चित करती है।

5.4.2 मौद्रिक उपागम

मौद्रिक दृष्टिकोण में मुद्रा–रूप मुद्रा–शेषो को मुद्रा–रूप (nominal) राष्ट्रीय आय का फलन माना गया है। मुद्रा–शेषों का राष्ट्रीय आय से धनात्मक संबंध है जो कि दीर्घकाल में स्थिर रहता है। इस प्रकार, मुद्रा की मांग के समीकरण को निम्न प्रकार से लिखा जा सकता है–

$$M_d=kPyy \quad \text{...} \quad (1)$$

जहाँ, M_d = मुद्रा–रूप मुद्रा शेषों की मांगी गयी मात्रा है।

k= मुद्रा–रूप मुद्रा–शेषों का मुद्रा–रूप राष्ट्रीय आय से अनुपात या राष्ट्रीय आय का वह हिस्सा जिसे लोग नकदी–शेष के रूप में रखना चाहते हैं।

P= घरेलू कीमत स्तर

y= वास्तविक उत्पादन

समीकरण (1) में Py= मौद्रिक राष्ट्रीय आय या उत्पादन(Y)

k राष्ट्रीय आय के उस अनुपात को बताता है जिसे लोग नकदी–शेष के रूप में रखते हैं और यह मुद्रा के चलन–वेग(v) का व्युत्क्रमानुपाती (k=1/v) है। चूंकि v अनेक संस्थागत कारकों पर निर्भर करता है, इसलिए k भी। k मनोवैज्ञानिक कारकों तथा अन्य आर्थिक चरों पर भी निर्भर करता है जिसे कि स्थिर मान

लिया गया है। ऐसी स्थिति में, मुद्रा–रूप मुद्रा–शेषों की मांग (M_d) घरेलू कीमत स्तर और वास्तविक राष्ट्रीय आय का स्थिर और धनात्मक फलन है।

मौद्रिक उपागम के अनुसार, मुद्रा की मांग ब्याज दर (i) का भी फलन है।

$$M_d = f(Y.P.i) \quad \ldots\ldots (2)$$

परन्तु इनमें ऋणात्मक संबंध है। इस प्रकार, M_d का Py से सीधा तथा **i** से व्युत्क्रम संबंध होता है।

विश्लेषण की सरलता के लिए हम M_d को सिर्फ Py या मुद्रा–रूप राष्ट्रीय आय या उत्पादन का ही फलन मानेंगे।

दूसरी ओर, मुद्रा की पूर्ति दी हुई है–

$$Ms = m\,(D+F) \quad \ldots\ldots (3)$$

जहाँ, Ms= राष्ट्र की कुल मुद्रा–पूर्ति
m= मुद्रा–गुणक
D= राष्ट्र के मौद्रिक आधार का घरेलू घटक
F= राष्ट्र के मौद्रिक आधार का अंतरराष्ट्रीय या विदेशी घटक

देश के मौद्रिक आधार का घरेलू घटक (D) देश के मौद्रिक प्राधिकरणों द्वारा सृजित घरेलू साख या घरेलू परिसम्पत्तियाँ है जो कि राष्ट्र की मुद्रा–पूर्ति का हिस्सा है। मुद्रा–पूर्ति का विदेशी घटक (F), राष्ट्र के अंतर्राष्ट्रीय रिजर्वों (मुद्रा भंडार) को बताता है जो कि भुगतान–संतुलन के अतिरेक में होने पर बढ़ जाता है जबकि घाटे में होने पर कम हो जाता है।

(D + F) देश का मौद्रिक आधार या उच्च शक्ति मुद्रा (high powered money) कहा जाता है। इस प्रकार, देश में मुद्रा–पूर्ति उच्च शक्ति मुद्रा और मुद्रा गुणक के मान पर निर्भर करती है. मुद्रा गुणक का मान स्थिर है।

संतुलन की स्थिति में, मुद्रा की मांग (Md) मुद्रा की पूर्ति (Ms) के बराबर होगी।

$$M_d = Ms \quad \ldots\ldots (4)$$

या $$M_d = m\,(D+F) \quad \ldots\ldots (5)$$

सरलता के लिए m, जो एक स्थिरांक है, की उपेक्षा करने पर

या $$M_d = (D+F) \quad \ldots\ldots (6)$$

या $$F = M_d - D \quad \ldots\ldots (7)$$

या $$\Delta F = \Delta M_d - \Delta D \quad \ldots\ldots (8)$$

अर्थात विदेशी मुद्रा रिजर्वों (मुद्रा भंडार) में परिवर्तन मुद्रा की मांग में परिवर्तन और मौद्रिक आधार के घरेलू घटक का अंतर है.

भुगतान शेष घाटा या अतिरेक देश के विदेशी मुद्रा रिजर्व में परिवर्तनों द्वारा व्यक्त किया जा सकता है। इस प्रकार,

$$\Delta F = B \quad \ldots\ldots (9)$$

या $$B = \Delta M_d - \Delta D \quad \ldots\ldots (8)$$

जहाँ B भुगतान शेष को व्यक्त करता है जो मुद्रा की मांग में परिवर्तन (ΔM_d) और घरेलू साख में परिवर्तन (ΔD) के बीच अंतर के बराबर होता है।

समीकरण 8 से स्पष्ट है की यदि भुगतान शेष **में** घाटा है **तो** B ऋणात्मक **होगा** जो विदेशी मुद्रा रिजर्व (मुद्रा भंडार) F एवं **इसलिए** मुद्रा पूर्ति (Ms) को कम करता है। दूसरी ओर, **यदि** भुगतान शेष **में** अतिरेक **है तो** B धनात्मक **होगा** जो विदेशी मुद्रा रिजर्व (मुद्रा भंडार)R और **इसलिए** मुद्रा पूर्ति (Ms) को बढ़ाता है। जब B=0 हो तो इसका अर्थ है, भुगतान शेष संतुलन **में है** या भुगतान शेष में असंतुलन नहीं **है**।

मौद्रिक धारणाओं में स्वतः समायोजन तंत्र की विवेचना स्थिर और लोचशील दोनों विनिमय दर प्रणालियों के अन्तर्गत की जाती है।

5.4.3 स्थिर विनिमय दरों के के अंतर्गत मौद्रिक दृष्टिकोणः

स्थिर विनिमय दर प्रणाली के अन्तर्गत मान लें कि मुद्रा की मांग (Md) मुद्रा की पूर्ति (Ms) के बराबर (M_D=M_S) है जिससे भुगतान शेष (या B) शून्य होता है। मान लें कि यदि GDP में वृद्धि के कारण मुद्रा की मांग में वृद्धि होती है तो संतुलन बनाने के लिए या तो देश के घरेलू मौद्रिक आधार में वृद्धि होगी या अंतर्राष्ट्रीय रिजर्वों का अंर्तप्रवाह बढ़ेगा या फिर भुगतान–संतुलन में अतिरेक होगा। यदि देश के मौद्रिक प्राधिकरण मुद्रा–पूर्ति (D) में वृद्धि नहीं करते हैं तो मुद्रा की अतिरिक्त मांग, विदेशी मुद्रा पूर्ति (f) या भुगतान–संतुलन के अतिरेक द्वारा संतुष्ट की जाएगी या होगी। अर्थात यदि दी हुई विनिमय दर पर $M_S<M_D$ हो तो भुगतान शेष अतिरेक होगा। परिणामस्परूप, लोग विदेशियों को वस्तुएँ और प्रतिभूतियाँ बेचकर घरेलू मुद्रा प्राप्त करते हैं। वे अपनी आय की तुलना में व्यय को सीमित कर अतिरिक्त मुद्रा शेषों (money balances) को प्राप्त करने का प्रयास करेंगे। इस संदर्भ में मौद्रिक अधिकारी घरेलू करेंसी के बदले **अतिरिक्त** विदेशी मुद्रा खरीदेंगे। इससे विदेशी मुद्रा रिजर्व(मुद्रा भंडार) का अन्तःप्रवाह (inflow) होगा और घरेलू मुद्रा पूर्ति में वृद्धि होगी। इस प्रकार, विदेशी मुद्रा रिजर्व के अन्तःप्रवाह का अर्थ है मुद्रा–पूर्ति के विदेशी घटक (F) और **इसलिए** घरेलू मुद्रा पूर्ति (Ms) में वृद्धि । यह प्रक्रिया तब तक चलती रहेगी जब तक मुद्रा की मांग (Md) मुद्रा की पूर्ति (Ms) के बराबर (M_D=M_S) नहीं हो जाता तथा भुगतान शेष(B= 0) में पुनः संतुलन स्थापित नहीं हो जाता।

दूसरी ओर, यदि मुद्रा की मांग अपरिवर्तित हो तो देश के मौद्रिक आधार के घरेलू घटक (D) में वृद्धि होने पर और इस कारण मुद्रा–पूर्ति (Ms) में वृद्धि होने पर अंतर्राष्ट्रीय पूँजी का बर्हिगमन होगा या भुगतान–संतुलन में घाटा होगा। अर्थात यदि $M_S>M_D$ तो वे लोग जिनके पास अत्यधिक नकदी शेष हैं वे अधिक विदेशी वस्तुओं और प्रतिभूतियों की अपनी खरीदारियां बढ़ाते हैं। **इसलिए** उनकी कीमतें बढ़ती हैं और वस्तुओं एवं विदेशी परिसंपत्तियों के आयात में वृद्धि **होती** हैं। इससे भुगतान शेष में चालू और पूंजी दोनों **खतों** में व्यय में वृद्धि होती है जिससे भुगतान शेष में घाटा उत्पन्न होता है। स्थिर विनिमय दर कायम रखने के लिए मौद्रिक अधिकारी विदेशी विनिमय रिजर्व (मुद्रा भंडार) को बेचेगा एवं **घरेलु मुद्रा** को खरीदेगा। इस प्रकार, विदेशी मुद्रा रिजर्व के वाह्य प्रवाह का अर्थ है मुद्रा–पूर्ति के विदेशी घटक (F) और **इसलिए** घरेलू मुद्रा पूर्ति (Ms) में कमी। यह प्रक्रिया तब तक चलती रहेगी जब तक मुद्रा की मांग (Md) मुद्रा की पूर्ति (Ms) के बराबर (M_d=M_S) नहीं हो जाता तथा भुगतान शेष(B= 0) में पुनः संतुलन स्थापित नहीं हो जाता। इस प्रकार, भुगतान शेष घाटा या अतिरेक एक अस्थायी धारणा है जो दीर्घकाल में स्वतः ठीक हो जाता है।

चित्र 14.7A में, M_D स्थिर मुद्रा मांग वक्र है और M_S मुद्रा पूर्ति वक्र है। क्षैतिज रेखा m मौद्रिक आधार को व्यक्त करती है जो घरेलू साख D का गुणज है एवं स्थिरांक है। यह मुद्रा पूर्ति का घरेलू अवयव है। यही कारण है कि M_S वक्र y_0 बिन्दु से प्रारम्भ होता है।

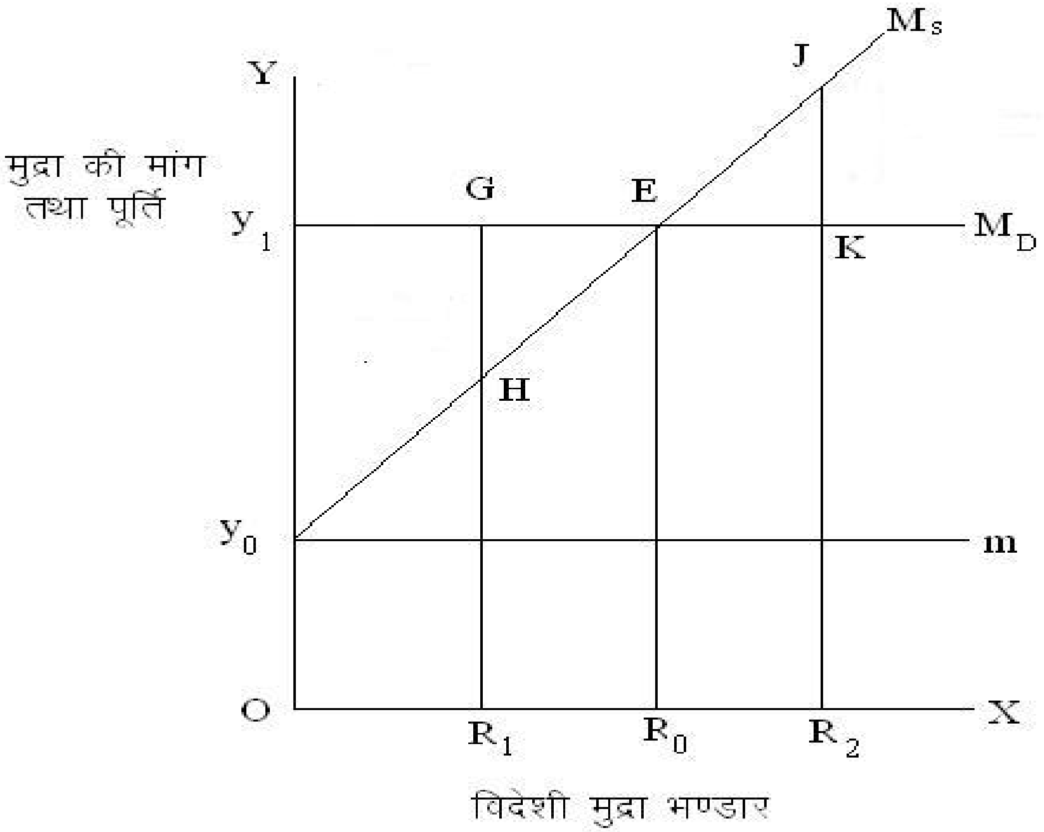

चित्र 14.7A

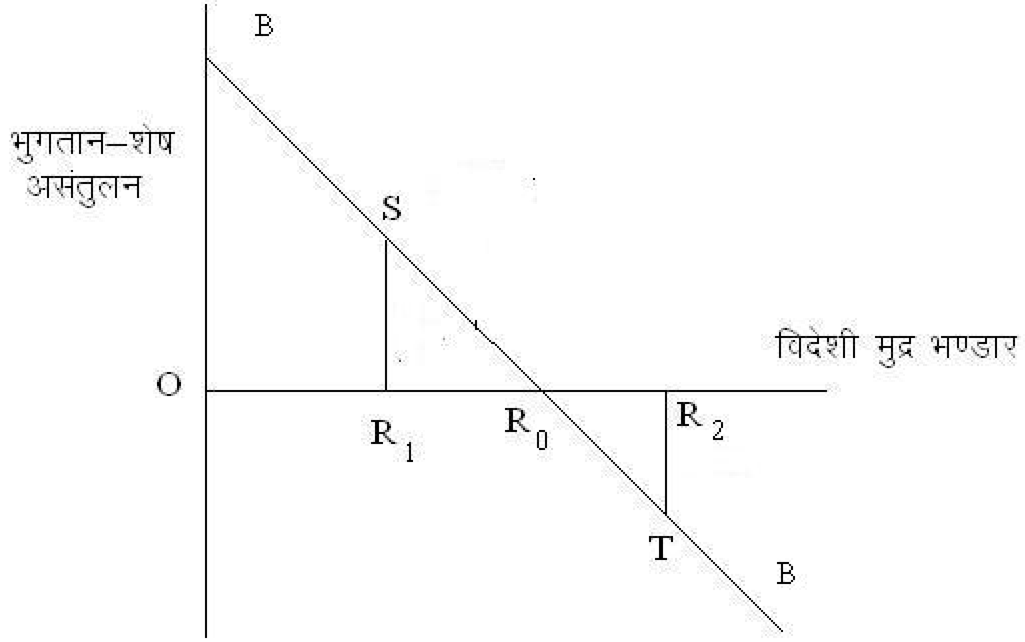

चित्र 14.7B

M_S और M_D वक्र E बिन्दु पर एक दूसरे को काटते हैं जहाँ देश का भुगातन शेष संतुलन में होता है और उसका विदेशी मुद्रा रिजर्व OR_0 होता है। चित्र 14.7B में वक्र BB भुगतान असंतुलन वक्र है जो भाग 14.7A के M_S और M_D वक्र के बीच अनुलंब अंतर के रूप में खींचा गया है। चित्र 14.7B में R_0, 14.7A में E बिन्दु से संगत है, जहाँ भुगतान शेष में कोई असंतुलन नहीं है।

यदि $M_S<M_D$ हो तो GHभुगतान शेष अतिरेक होता है। चित्र 14.7A में संतुलन बिन्दु E के बायीं ओर मुद्रा की मांग (Md) मुद्रा की पूर्ति (Ms) से अधिक है. जब मुद्रा की मांग (Md) मुद्रा की पूर्ति (Ms) से GH के बराबर अधिक है इससे विदेशी मुद्रा रिजर्वों का अंतर्वाह (inflow) होता है जिससे विदेशी विनिमय रिजर्व (मुद्रा भंडार) बढ़कर OR_1 से OR_0 हो जाता हैं इससे मुद्रा पूर्ति बढ़ती हैं और अंततः E बिन्दु पर भुगतान शेष संतुलन में होता है। दूसरी ओर, यदि $M_S>M_D$ हो तो JKJK के बराबर भुगतान शेष में घाटा होता है। जिससे विदेशी मुद्रा रिजर्व का वाह्य प्रवाह होता है और वह कम होकर OR_2 से OR हो जाती है इससे मुद्रा पूर्ति में कमी होती है और E बिन्दु पर भुगतान शेष पुनः संतुलन में आ जाता है। 14.7A में परिवर्तन के अनुरूप चित्र 14.7B में इसी प्रक्रिया की विवेचना की गई है जहाँ भुगतान शेष असंतुलन स्वतः ठीक हो जाता है। चित्र 14.7B में भुगतान शेष अतिरेक R_1S_1= GH तथा घाटा R_1T= JK बराबर होते हैं।

इस प्रकार, एक देश के भुगतान संतुलन में अतिरेक का कारण है–देश के अंदर मुद्रा की मांग की अपेक्षा राष्ट्र के मौद्रिक आधार के घेरलू घटक (D) में धीमी वृद्धि है। जबकि भुगतान–संतुलन में घाटा का कारण है मुद्रा की मांग की अपेक्षा मुद्रा–पूर्ति के घरेलू घटक की पूर्ति में तेज वृद्धि या अधिक होना जिससे मौद्रिक रिजर्व का देश से बर्हिप्रवाह होने लगता है। स्थिर विनिमय दर प्रणाली के अंर्तगत, इस प्रकार, दीर्घकाल में एक देश को अपनी मुद्रा–पूर्ति पर नियंत्रण नहीं होता है। दीर्घकाल में, देश के मुद्रा–पूर्ति का आकार भुगतान–संतुलन के संतुलन के साथ संगत होगा।

इस प्रकार, एक देश के भुगतान–संतुलन में अतिरेक मुद्रा मांग में आधिक्य का परिणाम है क्योंकि मुद्रा मांग के आधिक्य को घरेलू मौद्रिक प्राधिकरण मुद्रा–पूर्ति द्वारा संतुष्ट नहीं कर पाते हैं। जबकि भुगतान संतुलन का घाटा मुद्रा–स्टॉक की पूर्ति में आधिक्य का परिणाम है क्योंकि मुद्रा–पूर्ति के इस आधिक्य को घरेलू मौद्रिक प्राधिकरण खत्म या सुधार नहीं करते हैं। दीर्घकाल में भुगतान–संतुलन के

अतिरेक या घाटे के स्वतः ही ठीक हो जाने की प्रवृत्ति होती है। यह विदेशी मुद्रा के अंर्तप्रवाह या बर्हिप्रवाह के द्वारा स्वतः ही अतिरेक या घाटे को ठीक कर देगा। स्थिर विनिमय दर प्रणाली के अंर्तगत दीर्घकाल में एक देश का अपनी मुद्रा–पूर्ति पर नियंत्रण नहीं होता है।

5.4.4 परिवर्तनशील विनिमय दर प्रणाली के अंर्तगत मौद्रिक उपागम

परिवर्तनशील विनिमय दर प्रणाली के अंर्तगत भुगतान–शेष का असंतुलन तुरंत ही बिना अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा या रिजर्वों के प्रवाह के विनिमय दरों में स्वतः परिवर्तनों के द्वारा ठीक हो जाता है। इस प्रकार परिवर्तनशील विनिमय दर प्रणाली के अंर्तगत एक राष्ट्र का अपनी मुद्रा–पूर्ति तथा मौद्रिक नीति पर पूरा नियंत्रण होता है। घरेलू कीमतों में परिवर्तन होने पर विनिमय दरों में भी परिवर्तन होता है और परिणाम स्वरूप भुगतान–संतुलन के अंसतुलन में स्वतः समायोजन की प्रक्रिया शुरु होती है।

मान लें कि मौद्रिक अधिकारी मुद्रा पूर्ति बढ़ाता है **और** मुद्रा की पूर्ति, मुद्रा की मांग ($M_S>M_D$) **से अधिक है** और भुगतान शेष में घाटा होता है। वे लोग जिनके पास अतिरिक्त नकद शेष है, अधिक वस्तुएँ खरीदते हैं जिससे घरेलू और आयातित वस्तुओं की कीमतें बढ़ती है। इससे घरेलू करेंसी **में** मूल्यह्रास (Depreciation) और विनिमय दर में वृद्धि होती है। **फलस्वरूप** मुद्रा की मांग बढ़ती है **जब तक की** मुद्रा की पूर्ति, मुद्रा की मांग **के बराबर न हो जाय और** भुगतान शेष **संतुलन इ=में न ही जाय**। इसके विपरीत स्थिति तब उत्पन्न होगी जब $M_D>M_S$ हो तो कीमतों में कमी और घरेलू करेंसी में मूल्यवृद्धि (Appreciatiion) होता है जो स्वतः मुद्रा की आधिक्य मांग को समाप्त कर देता है। विनिमय दर तब तक गिरती है जब तक $M_D=M_S$ एवं विदेशी मुद्रा रिजर्वों में किसी अन्तर्प्रवाह के बिना भुगतान शेष संतुलन में न हो जाए।

इस प्रकार, यदि अतिरिक्त मुद्रा–पूर्ति के कारण भुगतान–संतुलन में घाटा होता है तो यह स्वतः देश की मुद्रा में मूल्य ह्रास लाएगा। जिसके कारण कीमतों और इसलिए मुद्रा की मांग में वृद्धि होती है जिससे कि अतिरिक्त मुद्रा–पूर्ति खप जाती है और भुगतान–संतुलन का घाटा समाप्त हो जाता है। दूसरी ओर यदि मुद्रा की अतिरिक्त मांग के कारण भुगतान–संतुलन में अतिरेक हो तो यह ही देश की करेन्सी में अधिमूल्यन लाएगा। इससे घरेलू कीमतों में कमी आएगी और भुगतान संतुलन का अतिरेक भी समाप्त हो आएगा।

स्पष्ट है कि स्थिर विनिमय दरों के अंर्तगत भुगतान–संतुलन का असंतुलन मुद्रा या रिजर्वों के अंतर्राष्ट्रीय प्रवाह का परिणाम है जबकि परिवर्तनशील विनिमय दरों के अंर्तगत भुगतान–संतुलन का असंतुलन बिना अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा प्रवाह के उत्पन्न होता है और समाप्त होता है। यह विनिमय दरों में स्वतः परिवर्तन के द्वारा तुरंत स्वतः ही समाप्त हो जाता है। इसलिए राष्ट्र का अपनी मुद्रा पूर्ति पर नियंत्रण रहता है जबकि स्थिर विनिमय दरों की स्थिति में देश का अपनी मुद्रा–पूर्ति पर कोई नियंत्रण नहीं होता है।

5.4.5 आलोचना

1. जॉनसन **के अनुसार** "बेची गई समान वस्तुओं के लिए एक कीमत नियम" मान्य **नहीं** है। **क्यूंकि** जब उत्पादन के साधनों को गैर–व्यापाररत वस्तुओं को उत्पादित करने वाले क्षेत्रों में लगाया जाता है तो गैर–व्यापाररत वस्तुओं की अधिक मांग, व्यापाररत वस्तुओं की घटी हुई पूर्ति में **समायोजित हो** जाएगी। इससे आयात बढ़ेंगे और सभी व्यापाररत वस्तुओं के लिए एक कीमत के नियम में बाधा पड़ेगी।

   बाज़ार अपूर्णताओं के कारण भी अनेक **बाज़ारों** में एक कीमत के नियम को सही ढंग से कार्य करने में विघ्न पड़ता है। फिर व्यापारियों द्वारा विदेशी कीमतों और व्यापार नियमों के बारे में सूचनाओं के अभाव के कारण कीमत पिभेदक हो सकते हैं।

2. मुद्रा की मांग दीर्घकाल में स्थिर हो **सकती** है **परन्तु** अल्पकाल में नहीं**। इसलिए** आलोचक मुद्रा की स्थिर मांग की मान्यता से सहमत नहीं
3. आलोचकों **के अनुसार** स्थिर विनिमय दरों के अंतर्गत मुद्रा प्रवाहों को निष्फल करना संभव नहीं है। वे तर्क देते हैं कि करेंसी प्रवाहों का निष्फल करना पूरी तरह से संभव है यदि मुद्रा शेषों और बांडो

के सापेक्ष महत्व के बारे में निजी क्षेत्र अपने सम्पत्ति पोर्टफोलियों की संरचना को समायोजित करने के लिए इच्छुक है, अथवा यदि सार्वजनिक क्षेत्र ऊँचा बजट घाटा करने को तैयार है, जब भी उसे भुगतान शेष घाटे का सामना करना पड़ता है।

4. मौद्रिक धारणा किसी देश के भुगतान शेष और उसकी मुद्रा पूर्ति के बीच प्रत्यक्ष संबंध पर आधारित है। कई अर्थशास्त्रियों को इसमें संदेह है। इन दोनों के बीच संबंध भुगतान शेष में घाटा या अरितेक होने पर मौद्रिक अधिकारी द्वारा विदेशी मुद्रा रिजर्वों के अन्तर्प्रवाहो एवं वाह्यप्रवाहों को निष्प्रभाव करने की क्षमता पर निर्भर करता है। इसके लिए बाहरी प्रवाहों के निष्फलन की कुछ आवश्यकता होती है। परन्तु यह वित्तीय बाजारों के वैश्वीकरण (globalisation) के कारण संभव नहीं होता है।
5. यह धारणा भुगतान शेष संतुलन लाने में घरेलू साख की भुमिका पर जोर देती है और आर्थिक नीति उपायों की उपेक्षा करती है। प्रो0 क्यूरी (Currie) के अनुसार, भुगतान शेष संतुलन व्यय बदलावकारी (expediture-switch) से कार्य करती है।
6. मौद्रिक धारणा भुगतान शेय में स्वतः ठीक होने वाले दीर्घकालीन संतुलन से संबंधित होती है। यह धारणा अवास्तविक है क्योंकि यह अल्पकाल की व्याख्या करने में असफल है जिसके माध्यम से अर्थव्यवस्था नए संतुलन पर पहुंचने के लिए गुजरती है।
7. पूर्ण रोजगार की मान्यता वास्तविक नहीं है ।

5.5 भुगतान संतुलन समायोजन की आय विधि एवं विदेशी व्यापार गुणक

किसी भी देश की अर्थव्यवस्था की राष्ट्रीय आय तथा विदेशी व्यापार में घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। जैसा कि आप जानते हैं कि खुली अर्थव्यवस्था में राष्ट्रीय आय का समीकरण होता है–

$$Y = C+I+G+(X-M) \qquad \ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots.. (1)$$

जहाँ, Y = राष्ट्रीय आय
C = उपभोग
I = निवेश
G = सरकारी व्यय
X = निर्यात
M = आयात

(X-M) व्यापार–संतुलन है जो कि शुद्ध निर्यात आय को दर्शाता है। (X-M) का मूल्य ही राष्ट्रीय आय में विदेशी व्यापार के योगदान को बताता है।

जब किसी देश के निर्यात में वृद्धि होती है तो निर्यात उद्योगों से संबंधित सभी व्यक्तियों की आय में वृद्धि होती है। इस बढ़ी हुई आय से अन्य उपभोक्ता वस्तुओं के लिए मांग उत्पन्न होती है, उन उद्योगों का विस्तार होता है, रोजगार में वृद्धि होती है और आगे आय में और वृद्धि होती है। इस प्रकार, अंतिम रूप में आय में हुई वृद्धि निर्यात–वृद्धि की अपेक्षा काफी अधिक होती है, जो कि गुणक प्रभाव का परिणाम है। निर्यात में वृद्धि के फलस्वरूप राष्ट्रीय आय मे कितनी वृद्धि हुई यह विदेशी व्यापार गुणक या निर्यात गुणक पर निर्भर करता है। इसे हम सूत्र के रूप में निम्नलिखित प्रकार से लिख सकते हैं–

$$\Delta y = k_{-}\Delta x$$

जहाँ, Δy - आय में परिवर्तन
Δx - निर्यात में परिवर्तन
k_{+} - निर्यात गुणक या विदेशी व्यापार गुणक

वास्तव में, निर्यात गुणक का मूल्य सीमांत उपभोग प्रवृत्ति या बचत प्रवृत्ति तथा सीमांत आयात प्रवृत्ति पर निर्भर करता है। इस प्रकार हम आयातों को भी लेते हुए विस्तृत रूप में, विदेशी व्यापर गुणक पर विचार करेंगे।

5.5.1 घरेलू अर्थव्यवस्था तथा विदेशी व्यापार में संबंध

एक खुली अर्थव्यवस्था में घरेलू उपभोक्ताओं, निवेशकों और सरकार का व्यय तथा साथ ही देश के निर्यातों पर विदेशियो द्वारा व्यय देश में उत्पादित समस्त वस्तुओं तथा सेवाओं के सृजन को व्यक्त करता है। यह अर्थव्यवस्था में सृजित कुल आय को बताता है।

संकेत रूप में–

C+I+G+X= सृजित आय ....(2)

जहाँ, C = उपभोग

I = निवेश

G = सरकारी व्यय

X = निर्यात

उल्लेखनीय है कि अर्थव्यवस्था में उत्पन्न यह कुल आय, राष्ट्रीय आय नहीं है। यह सृजित आय वस्तुओं और सेवाओं की खरीद, बचत, करों के भुगतान तथा विदेशी वस्तुओं तथा सेवाओं के आयात में व्यय हो जाती है।

संकेत रूप में–

C+S+T+M = व्यय की **गयी** आय....................................(3)

जहाँ, C = उपभोग

S = बचत

T = कर अदायगी

M = आयात व्यय

चूंकि कुल सृजित आय, कुल व्यय के बराबर होगी, अर्थात्–

C+I+G+X = C+S+T+M .... (4)

अथवा I+G+X = S+T+M (दोनों पक्षों में से C घटाने पर)...... (5)

यदि मान लें कि सरकारी व्यय (G) सरकार के कुल कर (T) के बराबर है, अर्थात् सरकार का बजट संतुलित है तो समीकरण (5) को निम्नलिखित प्रकार से लिखा जा सकता है–

I+X = S+M .... (6)

जैसा कि आप जानते हैं कि निवेश और निर्यात राष्ट्रीय आय के प्रवाह में वृद्धि करते हैं जबकि बचत तथा आयात राष्ट्रीय आय के प्रवाह में रिसाव है, आय को कम करते हैं। घरेलू अर्थव्यवस्था के संतुलन की शर्त यह है कि बचत और निवेश हमेशा बराबर हों। अर्थात् संतुलन की स्थिति में निर्यात और आयात भी बराबर होंगे और घरेलू तथा विदेशी क्षेत्र दोनों एक साथ संतुलन में होंगे। समीकरण (6) से

I-S = M-X .... (7)

स्पष्ट है कि यदि घरेलू क्षेत्र में बचत–निवेश का अतंर शून्य है तो व्यापार–संतुलन मे ंसंतुलन शून्य होगा। यदि निवेश बचत से अधिक है तो व्यापार–संतुलन में घाटा और यदि निवेश बचत से कम है तो अतिरेक होगा।

इस प्रकार, स्पष्ट है कि घरेलू तथा विदेशी क्षेत्र में घनिष्ठ संबंध है। स्वायत्त विनियोग (I) में यदि वृद्धि होती है तो यह प्रारम्भिक संतुलन की स्थिति (I = S) को विगाड़ती है और साथ ही आयात तथा निर्यात की समानता को समाप्त कर व्यापार–संतुलन में अतिरेक या घाटे की स्थिति पैदा कराती है. व्यापार–संतुलन में उत्पन्न असंतुलन उपभोग बचत और आयातों की सीमान्त–प्रवृत्ति पर निर्भर करता है। इसी प्रकार, निर्यातों या आयातों में स्वायत्त परिवर्तन से घरेलू बचत निवेश का संतुलन बिगड़ता है जो कि पूरी अर्थव्यवस्था का प्रभावित करता है।

5.5.2 निवेश गुणक

आपने पहले की कक्षाओं में पढ़ा होगा कि निवेश गुणक क्या है। आप जानते होंगे कि गुणक की धारणा कीन्सीय रोजगार सिद्धान्त की एक अति–महत्वपूर्ण संकल्पना है। स्वायत्त निवेश में वृद्धि (या कमी) से राष्ट्रीय आय में कितनी वृद्धि (या कमी) होगी यह गुणक के मान पर निर्भर करता है। गुणक यह बताता

है कि अर्थव्यवस्था में राष्ट्रीय आय में वृद्धि निवेश में प्रारम्भिक वृद्धि और गुणक के गुणनफल के बराबर होगी। अर्थात्–

$$\Delta y = k\,\Delta I$$

जहाँ Δy –आय में परिवर्तन,

k-गुणक तथा

I-निवेश में परिवर्तन।

k, जो कि निवेश गुणक है, सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति (b या MPC) सीमान्त बचत प्रवृत्ति (s या MPS) पर निर्भर करता है। $(k = \frac{1}{1-MPC})$, MPC जितनी ही अधिक होगी, निवेश गुणक उतना ही अधिक होगा।

एक बन्द अर्थव्यस्था में, सरकारी व्यय तथा करों की अनुपस्थिति में, आप साधारण कीन्सीय निवेश गुणक व्युत्पन्न कर सकते हैं।

आप जानते हैं कि – Y=C+I

जहाँ, Y–आय

C–उपभोग तथा

I–निवेश है

$\therefore\ \Delta y = \Delta C + \Delta I$

(जहाँ Δ वृद्धि का सूचक है ; जैसे Δy –आय में वृद्धि, ΔC–उपभोग वृद्धि तथा ΔI–निवेश में वृद्धि)

अथवा $\frac{\Delta Y}{\Delta Y} = \frac{\Delta C}{\Delta Y} + \frac{\Delta I}{\Delta Y}$ दोनों पक्षों में ΔY से भाग देने पर

अथवा $1 = b + \frac{\Delta I}{\Delta Y}$ ($\frac{\Delta C}{\Delta Y}$= MPC = b सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति है)

अथवा $\frac{\Delta I}{\Delta Y} = 1-b$

अथवा $\frac{\Delta Y}{\Delta I} = \frac{1}{1-b}$

यदि $\frac{1}{1-b} = k$

तो $\frac{\Delta Y}{\Delta I} = k$

या $\Delta Y = k\,\Delta I$

अर्थात् आय में परिवर्तन प्रारम्भिक स्वायत्त निवेश में परिवर्तन से अधिक होगा। k गुणक है जो कि s या (1-b) का व्युत्क्रमानुपाती है।

अर्थात् $k = \frac{1}{1-b}$

या $k = \frac{1}{s}$ (s =1-b) जहाँ s = सीमान्त बचत प्रवृत्ति है।

वास्तव में जैसा कि आप जानते हैं निवेश दो प्रकार का होता है, स्वायत्त तथा प्रेरित। प्रेरित विनियोग आय के बढ़ने पर बढ़ता है। ऐसी स्थिति में यदि सीमान्त निवेश प्रवृत्ति g हो तो गुणक का मान होगा–

$k = \frac{1}{1-b-g}$ या $k = \frac{1}{s-g}$

उपरोक्त सूत्र से स्पष्ट है कि गुणक तथा सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति और सीमान्त निवेश प्रवृत्ति का सीधा संबंध है जबकि गुणक का सीमान्त बचत प्रवृत्ति से उल्टा या व्युत्क्रमानुपाती संबंध है। यदि स्वायत्त निवेश में वृद्धि होती है तो आय में वृद्धि गुणक के मान पर निर्भर करेगी।

5.6 विदेशी प्रतिक्रियाओं या प्रतिप्रभाव (Foreign Repercussions) की अनुपस्थिति में विदेशी व्यापार गुणक या शुद्ध विदेशी व्यापार गुणक

एक बन्द अर्थव्यवस्था में निवेश गुणक की व्युत्पत्ति कैसे की जाती है, आपने ऊपर देखा। एक बंद अर्थव्यवस्था में गुणक का मान होगा–

$$k = \frac{1}{1-b-g}$$

एक खुली अर्थव्यवस्था में, राष्ट्रीय आय की गणना में उपभोग और बचत के अतिरिक्त निर्यात (X) और आयात (M) को भी सम्मिलित किया जाता है। अर्थात् समस्त उत्पादित वस्तुओं (Y) और आयातित वस्तुओं (M) का योग, समस्त खरीदी गयी वस्तुओं (C+I+G) और निर्यातित वस्तुओं (X) के योग के बराबर होगा। गणितीय रूप में–

$$Y+M= C+I+G+X$$

यदि हम मान लें कि सरकारी व्यय और कर शून्य है और बचत और निवेश भी नहीं हो रहा है, उपभोग के अतिरिक्त सिर्फ आयात और निर्यात हो रहा है तो संतुलन में–

$$Y+M=C+X$$

या $$Y= C+X-M$$

ऐसी स्थिति में, विदेशी व्यापार गुणक (k_f) का मान होगा–

$$k_f = \frac{1}{m}$$

जहाँ, m सीमान्त आयात प्रवृत्ति है। स्पष्ट है कि विदेशी व्यापार गुणक का मान सीमान्त आयात प्रवृत्ति का व्युत्क्रमानुपाती है। यहाँ k_f शुद्ध विदेशी व्यापार गुणक है। जहाँ केवल विदेशी क्षेत्र की उपस्थिति है जबकि घरेलू क्षेत्र इस अर्थ में अनुपस्थित है कि घरेलू बचत व निवेश शून्य है। **चूँकि प्रत्येक अर्थव्यवस्था में घरेलु और विदेशी क्षेत्र दोनों मौजूद रहता है इसलिये** यदि घरेलू क्षेत्र के साथ विदेशी क्षेत्र को भी सम्मिलित कर लिया जाए तो विदेशी व्यापार गुणक को निम्नलिखित प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है–

$$k_f = \frac{1}{1-b-g+m} \text{ या } \frac{1}{s-g+m}$$

जहाँ k_f विदेशी व्यापार गुणक है।

निर्यातों (X) को सामान्यतया बर्हिजात रूप से निर्धारित माना जाता है क्योंकि निर्यातों की मांग, विदेशों में होने वाले परिवर्तन पर निर्भर करती है, जो कि घरेलू अर्थव्यवस्था से बाहर के कारक है। दूसरी तरफ, आयातों (M) की मांग घरेलू अर्थव्यवस्था में राष्ट्रीय आय मे परिवर्तनों पर निर्भर करती है। इस प्रकार आयात एक सीमा तक अंर्तजात चर है। आयात का एक हिस्सा तो स्वायत्त होता है जो कि राष्ट्रीय आय से प्रभावित नहीं होता है जबकि एक हिस्सा आय प्रेरित होता है। आयात फलन को निम्नलिखित प्रकार से लिखा जा सकता है–

$$M=M_0+mY$$

जहाँ M–आयात, M_o–स्वायत्त आयात

m–सीमान्त आयात प्रवृत्ति ($\Delta M/\Delta Y$)

विदेशी व्यापार गुणक (k_f) का मान केन्सीय निवेश गुणक से कम होगा क्योंकि इसके अंश में सीमान्त आयात प्रवृत्ति जुड़ गयी है। इस प्रकार सीमान्त आयात प्रवृत्ति (m) घरेलू तथा विदेशी क्षेत्र को जोड़ती है।

5.6.1 विदेशी व्यापार गुणक की व्युत्पत्ति

अब हम विदेशी क्षेत्र, सरकारी क्षेत्र तथा घरेलु क्षेत्र की उपस्थिति में स्वायत निर्यात में वृद्धि के फलस्वरूप राष्ट्रीय आय तथा अर्थव्यवस्था में होने वाले परिवर्तनों की स्पष्ट व्याख्या करेगे. निर्यात में वृद्धि के

फलस्वरूप राष्ट्रीय आय मे कितनी वृद्धि हुई यह विदेशी व्यापार गुणक या निर्यात गुणक पर निर्भर करता है।

आप जानते हैं एक खुली अर्थव्यवस्था में राष्ट्रीय आय का समीकरण निम्नलिखित होगा–

$Y=C+I=G+(X-M)$

जैसा कि आप जानते हैं

$C=C_0+bYd$

(जहाँ C_0 - स्वायत्त उपभोग,

Y_d - व्यय योग्य आय

$Yd=Y-T$

(जहाँ T - कर)

$I=I_0+gY$

(जहाँ I_0 -स्वायत्त निवेश)

तथा $M=M_0+mY$

(जहाँ M–आयात, M_o–स्वायत्त आयात

m–सीमान्त आयात प्रवृत्ति)

$\therefore$ $Y=(Co+bYd)+(Io+gY)+G+[X-(Mo+mY)]$

अथवा $Y=Co+b(Y-T)+Io+gY+G+X-Mo-mY$

अथवा $Y=Co+bY-bT+Io+gY+G+X-Mo-mY$

अथवा $Y-bY-gy+mY=Co+Io+G+X-Mo-bT$

अथवा $Y(1-b-g+m)= Co+Io +G+X-Mo-bT$

अथवा $Y = \frac{1}{1-b-g+m}(Co+Io+G+X-Mo-bT)$

जहाँ $\frac{1}{1-b-g+m} = k_f$

k_f विदेशी व्यापार गुणक है।

यदि निर्यातों में वृद्धि होती है राष्ट्रीय आय में वृद्धि होती है। राष्ट्रीय आय में कितनी वृद्धि होगी यह विदेशी व्यापार गुणक के मान पर निर्भर करेगा।

5.6.2 विदेशी प्रतिक्रियाओं या प्रतिप्रभाव की अनुपस्थिति में विदेशी व्यापार गुणक का प्रभाव

मान लिजिए – $b=0.75$, $g=0.2$ तथा $m=0.2$ तथा निर्यात में वृद्धि (ΔX)= `200 करोड़ है।

तो $k_f = \frac{1}{1-b-g+m} = \frac{1}{1-0.75-0.2+0.2}$

$= \frac{1}{1.2-0.95} = \frac{1}{0.25} = 4$

अर्थात् विदेशी व्यापार गुणक का मान 4 हैं

इसलिए आय में वृद्धि $\Delta y = k_{+}\Delta x$

अथवा $\Delta y = 4.200$

= `800 Cr

निर्यात में वृद्धि से निर्यातकों के आय अर्जन में वृद्धि होती है। बढ़ी हुई आय को घरेलू तथा आयातित वस्तुओं के उपभोग पर व्यय किया जाता है। यह व्यय की मात्रा क्रमशः सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति

(b) तथा सीमान्त आयात प्रवृत्ति (m) निर्भर करती है। घरेलू वस्तु के उपभोग की सीमान्त प्रवृत्ति जितनी ही अधिक होगी और सीमान्त आयात प्रवृत्ति जितनी ही कम होगी, विदेशी व्यापार गुणक का मान उतना ही अधिक होगा और राष्ट्रीय आय में उतनी ही अधिक वृद्धि होगी। स्पष्ट है कि बढ़ी हुई आय को आयात पर व्यय करना एक प्रकार से आय मे रिसाव है।

निर्यात में वृद्धि से व्यापार–घाटा (X-M) कम होगा–यदि आयात की सीमान्त प्रवृत्ति कम है तो निर्यातों में वृद्धि की अपेक्षा आयातों की वृद्धि कम होगी। साथ ही, निवेश बचत अन्तराल मे भी कमी होगी। इस प्रकार स्पष्ट है कि घरेलू क्षेत्र तथा विदेशी क्षेत्र का घनिष्ठ संबंध है। निर्यातों में परिवर्तन से राष्ट्रीय आय प्रभावित होगी और राष्ट्रीय आय आगे आयातों को प्रभावित करेगी। यहाँ व्यापार शेष के घाटे को दूर करने में विदेशी व्यापार गुणक का महत्व स्पष्ट है।

5.7 विदेशी प्रति–प्रभाव (Foreign Repercussions effect) और विदेशी व्यापार गुणक

अब तक के विदेशी व्यापार गुणक की चर्चा से आप जान गए होंगे कि यह सीमान्त बचत प्रवृत्ति (s) और सीमान्त आयात प्रवृत्ति (m) के योग का व्युत्क्रमानुपाती होता है। जिस प्रकार उपभोग, निवेश या सरकारी व्यय में वृद्धि का राष्ट्रीय आय पर प्रभाव पड़ता है उसी प्रकार निर्यात वृद्धि का भी (या आयात में कमी का) राष्ट्रीय आय पर प्रभाव पड़ता है। स्वायत्त निर्यातों में वृद्धि (या आयातों में कमी से) विदेशी व्यापार मुक्त गुणक द्वारा राष्ट्रीय में वृद्धि होती है और इससे शुद्ध विदेशी निवेश अर्थात् (X-M) में वृद्धि होती है।

स्पष्ट है कि निर्यात वृद्धि के कारण हुई आय वृद्धि का आयात बिल के भुगतान के रूप में रिसाव होता है जिसके कारण विदेशी व्यापार गुणक का मान निवेश गुणक की तुलना में कम हो जाता है। परन्तु अब तक हमने मान लिया था कि आयात तो राष्ट्रीय आय का फलन है परन्तु निर्यातों का निर्धारण स्वतः ही होता है क्योंकि वह वाह्य कारकों से प्रभावित होता है।

वस्तुतः अंतर्राष्ट्रीय व्यापार दो तरफा यातायात की तरह है। एक देश का निर्यात, दूसरे देश का आयात है तथा दूसरे देश का निर्यात घरेलू देश का आयात है। इस प्रकार घरेलू देश का निर्यात विदेशी देश में होने वाले राष्ट्रीय आय के परिवर्तनों से प्रभावित होते हैं या विदेशी देश की सीमान्त आयात प्रवृत्ति पर निर्भर होते हैं। इसी प्रकार घरेलू देश में आयात देश की आय में परिवर्तनों या सीमान्त आय प्रवृत्ति पर निर्भर करते हैं जो कि इस तरह विदेशी देश के निर्यातों को निर्धारित करते हैं। इसे "विदेशी प्रतिप्रभाव" या "फीड बैंक प्रभाव" कहते हैं।

विदेशी प्रति प्रभाव की अनुपस्थिति में विदेशी व्यापार गुणक केवल घरेलू सीमान्त बचत (या उपभोग) तथा आयात प्रवृत्तियों (विश्लेषण की सरलता के लिए सीमान्त निवेश प्रवृत्ति को छोड़ा जा सकता है) पर निर्भर करता है।

अर्थात् $k_f = \frac{1}{s+m} = \frac{1}{1-b+m}$.

विदेशी प्रति प्रभाव की उपस्थिति में विदेशी व्यापार गुणक न सिर्फ घरेलू सीमान्त बचत तथा आयात प्रवृत्तियों पर निर्भर करता है बल्कि यह विदेशी सीमान्त बचत तथा आयात प्रवृत्तियों पर भी निर्भर करता है। जिस प्रकार घरेलू विनियोग का राष्ट्रीय आय तथा उत्पादन पर विस्तारकारी प्रभाव होता है उसी प्रकार अतिरिक्त निर्यात और विदेशी विनियोग का भी देश के उत्पादन, रोजगार और आय पर विस्तारकारी प्रभाव होता है। एक देश दूसरे देश की अपेक्षा जितना छोटा होगा, विदेशी प्रति–प्रभाव उतना ही कम होगा।

विदेशी प्रति–प्रभाव की अनुपस्थिति में, निवेश में वृद्धि या निर्यात में वृद्धि दोनों का ही राष्ट्रीय आय में वृद्धि पर एक तरह का प्रभाव पड़ेगा। उदाहरण के तौर पर,

यदि $k_+=4$, तथा निर्यात वृद्धि ΔX =`200Cr

तो $\Delta y = 4 \times$`200=`800

यदि निवेश में `200Cr की वृद्धि होती है तो भी राष्ट्रीय आय में वृद्धि `800Cr की होगी, क्योंकि तब भी सूत्र वही होगा

$\Delta y = k\ \Delta I = 4 \times 200 =$ `800 Cr

परन्तु विदेशी प्रति–प्रभाव की उपस्थिति में निर्यात में वृद्धि और उसी मात्रा में निवेश में वृद्धि का राष्ट्रीय आय पर प्रभाव अलग–अलग होगा।

5.7.1 निर्यातों का फीडबैक विदेशी व्यापार गुणक

(Feedback Foreign Trade Multiplier Model of Exports)

यदि एक देश के निर्यात में स्वायत्त रूप से वृद्धि हो रही है तो विदेशी प्रति–प्रभाव की उपस्थिति में हम विदेशी व्यापार गुणक (K_f^*) के प्रभाव का अध्ययन करेंगे। यह निर्यात में वृद्धि विदेशी देश में अधिक सीमान्त आय प्रवृत्ति या निवेश वृद्धि के कारण हुए आर्थिक विस्तार के कारण राष्ट्रीय आय में वृद्धि द्वारा प्रेरित हो सकती है।

मान लिया दो देश हैं, घरेलू देश A तथा विदेशी देश B। घरेलू देश A में निर्यात वृद्धि का विदेशी प्रतिक्रियाओं या प्रतिप्रभाव या फीडबैक प्रभाव की उपस्थिति में उसकी राष्ट्रीय आय पर क्या प्रभाव पडेगा आप यह निम्नलिखित चित्र के माध्यम से देख सकते हैं।

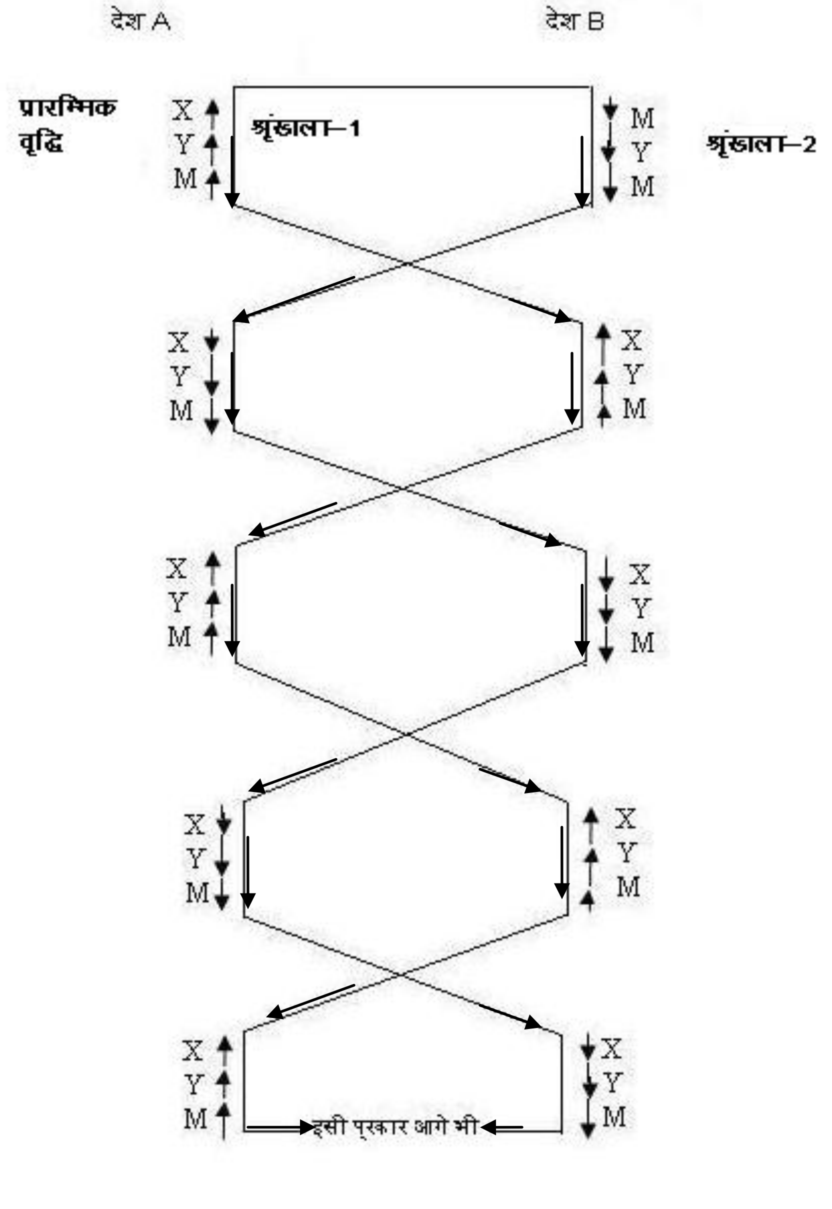

चित्र 12.1

घरेलू देश A में निर्यात में प्रारम्भिक वृद्धि से आय में वृद्धि होती है जो कि इस देश के आयातों में भी वृद्धि लाती है। देश A के आयातों में वृद्धि से देश B के निर्यातों में वृद्धि होगी। देश B में निर्यातों की वृद्धि उसकी राष्ट्रीय आय और आयातों में वृद्धि आती है। देश B में आयातों में वृद्धि से देश A में निर्यातों में 'प्रेरित' वृद्धि होती है। जिससे देश A में राष्ट्रीय आय तथा आयातों में वृद्धि होती है। यह प्रक्रिया दोनों देशों के बीच चलती रहती है और दोनों देशों में व्यापार तथा आय में लगातार विस्तारकारी प्रभाव होता है। इसे चित्र 12.1 में श्रृंखला–1 के माध्यम से दर्शाया गया है।

परन्तु देश A में निर्यात वृद्धि का एक दूसरा प्रभाव भी होगा जो कि अर्थव्यवस्था पर संकुचनकारी प्रभाव डालेगा। इसे चित्र 12.1 में श्रृंखला–2 के माध्यम से दर्शाया गया है। देश A के निर्यात में प्रारम्भिक वृद्धि से सीधे विदेशी देश B में आयात में वृद्धि होगी जिससे देश B में राष्ट्रीय आय और आयातों में कमी होती है। जब देश B के आयातों में कमी होती है तो इससे सीधे देश A में निर्यातों में कमी होगी, जो देश A के राष्ट्रीय आय तथा आयातों को कम करती है। परिणामस्वरूप, फिर से सीधे देश B में निर्यातों में कमी होगी जोकि देश B में आय और आयातों में कमी लाएगी और यह प्रक्रिया चलती रहेगी।

जब निर्यात में वृद्धि के उपरोक्त दोनों धनात्मक तथा ऋणात्मक प्रभाव पूरी तरह से एक साथ काम करते हैं तो घरेलू देश A में राष्ट्रीय आय में वृद्धि दो बातों पर निर्भर करती है– (i) देश A में निर्यातों की प्रारम्भिक वृद्धि कितनी है, और (ii) देश A में फीडबैंक विदेशी व्यापार गुणक (K_f^*) का मान कितना है।

फीडबैक विदेशी व्यापार गुणक का सूत्र होगा–

$$K_f^* = \frac{1}{S1+M1+M2(\frac{S1}{S2})}$$

जहाँ, S_1= घरेलू देश A में सीमान्त बचत प्रवृत्ति

M_1= घरेलू देश A में सीमान्त आयात प्रवृत्ति

M2= विदेशी देश B में सीमान्त आयात प्रवृत्ति

S2= विदेशी देश B में सीमान्त बचत प्रवृत्ति

विदेशी प्रति–प्रभाव की उपस्थिति में विदेशी व्यापार गुणक (K_f^*) का मान साधारण विदेशी व्यापार गुणक (K_f) की अपेक्षा कम होगा। क्योंकि श्रृंखला–2 का प्रभाव आय को घटाने वाला होगा।

यदि S_1=0.3, M_1=0.2

तो साधारण विदेशी व्यापार गुणक $K_f = \frac{1}{S1+M1}$

या $K_f = \frac{1}{0.30+0.20)} = \frac{1}{0.5} = 2$

यदि S_2=0.30, M_2=0.30

तो $K_f^* = \frac{1}{S1+M1+M2(\frac{S1}{S2})}$

$= \frac{1}{0.30+0.20+0.30(\frac{0.30}{0.30})}$

$= \frac{1}{0.50+0.30}$

$= \frac{1}{0.80}$

=1.25

स्पष्ट है कि K_f^* का मान (1.25), K_f के मान (2) से कम है। क्योंकि देश B के आयातों में वृद्धि से उसकी आय क्रमशः कम होगी, जिसका देश A की राष्ट्रीय आय पर भी ऋणात्मक प्रभाव होगा। यदि निर्यात में `200 की वृद्धि होती है तो आय में वृद्धि होगी–

$$\Delta Y = K_f^* \Delta X$$

= 1.25×200

= `250Cr

5.7.2 निवेश का फीडबैक विदेशी व्यापार गुणक मॉडलः

निर्यात वृद्धि की जगह यदि देश A में निवेश में वृद्धि होती है तो देश A में राष्ट्रीय आय में वृद्धि अपेक्षाकृत अधिक होगी।

देश A में निवेश में प्रारम्भिक वृद्धि का विदेशी प्रति–प्रभाव की उपस्थिति में राष्ट्रीय आय पर क्या प्रभाव पडेगा यह निम्नलिखित चित्र 12.2 में व्यक्त किया गया है। उल्लेखनीय है कि इसमें सिर्फ एक ही श्रृंखला बनेगी जो कि प्रति–प्रभाव को दर्शाती है।

निवेश में (I) प्रारम्भिक वृद्धि से देश A में आय तथा आयात में वृद्धि होगीं; देश A में आयात वृद्धि से देश B के निर्यातों में वृद्धि होगी जिससे आय तथा आयातों में भी वृद्धि होगी।

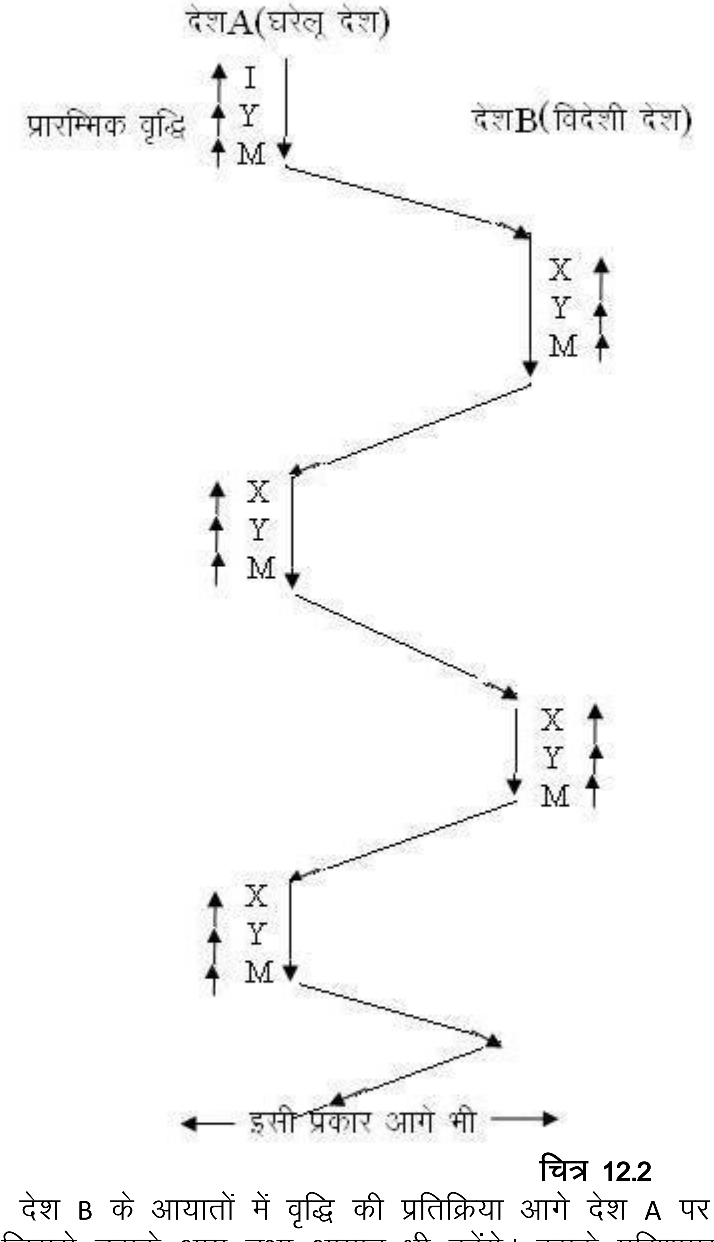

चित्र 12.2

देश B के आयातों में वृद्धि की प्रतिक्रिया आगे देश A पर होगी और देश A के निर्यातों में वृद्धि होगी, जिससे उसके आय तथा आयात भी बढ़ेंगे। इसके परिणामस्वरूप देश B में भी निर्यात–आय तथा

आयातों में वृद्धि होगी। यह प्रक्रिया संचयी रूप से चलती रहेगी और देश A तथा B दोनों ही देशों में आय, आयातों तथा निर्यातों को बढ़ाएगी। निवेश में वृद्धि पर देश A में वृद्धि निवेश वृद्धि की प्रारम्भिक मात्रा तथा फीडबैक विदेशी व्यापार गुणक के मान पर निर्भर करेगी। इस स्थिति में फीडबैक विदेश व्यापार गुणक का सूत्र होगा –

$$\text{या } K_f^* = \frac{1+(\frac{M2}{S2})}{S1+M1+M2(\frac{S1}{S2})}$$

यदि, हम ऊपर दिए गए मानों को सूत्र में रखें तो,

$$K_f^* = \frac{1+(\frac{0.30}{0.30})}{0.30+0.20+0.30(\frac{0.30}{0.30})}$$

$$= \frac{1+1}{0.50+0.30} = \frac{2}{0.80}$$

$$= 2.50$$

स्पष्ट है कि यहाँ फीडबैक विदेशी व्यापार गुणक का मान (2.50) साधारण विदेशी व्यापार गुणक के मान (2)से अधिक है। इसलिए यदि देश A में प्रारम्भिक निवेश में `200 की वृद्धि होती है तो आय में वृद्धि होगी।

$$\Delta Y = K_f^* \ \Delta I$$

$$= 2.50 \times 200 = \text{\`}500Cr$$

साधारण विदेशी व्यापार गुणक (K_f) की स्थितियाँ

$$\Delta Y = K_f \ \Delta I = 2 \times 200 = \text{\`}400$$

उल्लेखनीय है कि विदेशी प्रति–प्रभाव की उपस्थिति में निवेश में वृद्धि के फलस्वरूप राष्ट्रीय आय में हुई वृद्धि (`500Cr), निर्यात में वृद्धि के फलस्वरूप राष्ट्रीय आय में हुई वृद्धि (`250Cr) की अपेक्षा अधिक है। साथ ही यह साधारण विदेशी व्यापार गुणक की स्थिति में राष्ट्रीय आय में वृद्धि (`400Cr) से भी अधिक है।

विदेशी प्रति–प्रभाव या अति निर्यात–प्रभाव का नीतिगत निहितार्थ यह है कि यदि एक देश द्वारा निर्यात प्रोत्साहन की नीति अपनायी जाती है तो इससे उस देश तथा उससे व्यापारिक संबंध रखने वाले देशों की राष्ट्रीय आय में वृद्धि धीमी गति से होगी। परन्तु यदि निवेश में वृद्धि की नीति अपनायी जाती है तो इससे इस देश सहित सभी देशों की राष्ट्रीय आय में तीव्र गति से वृद्धि होगी। निवेश विस्तार कार्यक्रमों से वस्तुओं और सेवाओं के विश्व व्यापार के आकार में बढोत्तरी होगी, विश्व आय तथा रहन–सहन के स्तर में सुधार तो होगा ही।

विकसित देशों में अपने निर्यात वृद्धि के साथ–साथ विकासशील तथा अर्द्धविकसित देशों की राष्ट्रीय तथा प्रतिव्यक्ति आय पर पड़ने वाले प्रभावों को भी ध्यान में रखना चाहिए अन्यथा इन देशों की राष्ट्रीय आय पर पड़ने वाले प्रतिकूल प्रभाव विकसित देशों की राष्ट्रीय आय से भी प्रभावित करेंगे।

वास्तव में निर्यात प्रोत्साहन नीतियाँ घरेलू निवेश की तुलना में व्यापार कर रहे सभी देश मे ंराष्ट्रीय आय को कम दर से बढ़ाती है। घरेलू निवेश में वृद्धि की नीतियाँ या कार्यक्रम प्रति–प्रभावों द्वारा विदेशी व्यापार गुणक के मान को बढ़ाकर राष्ट्रीय आय को कई गुणा बढ़ा देती है जिससे व्यापार–संतुलन का घाटा कम हो जाता है।

विकसित या बड़े देशों का प्रति–प्रभाव या अति–निर्यात प्रभाव (Backwash effect) अधिक होगां जैसे यदि निवेश में वृद्धि के फलस्वरूप अमेरिका की राष्ट्रीय आय में वृद्धि होती है तो इससे उसके आयातों में वृद्धि से अन्य कई देशों के निर्यात में और फलस्वरूप राष्ट्रीय आय में वृद्धि होगी। जिससे इन देशों की आयातों में वृद्धि होगी जो आगे अमेरिका के निर्यात और आय को बढ़ाएगी।

5.8 विदेशी व्यापार गुणक का महत्व

विदेशी व्यापार गुणक से हमें यह ज्ञात होता है कि विदेशी क्षेत्र में हुए परिवर्तनों का या घरेलू क्षेत्र में हुए परिवर्तनों का राष्ट्रीय आय या अर्थव्यवस्था पर क्या प्रभाव पड़ता है । साथ ही यह भी स्पष्ट होता है कि घरेलू अर्थव्यवस्था और विदेशी व्यापार का बहुत ही घनिष्ठ संबंध है, बचत और निवेश अन्तराल का विदेशी आयात तथा निर्यात अन्तराल से घनिष्ठ संबंध है। इसलिए विभिन्न नीतियों के निर्माण में विदेशी व्यापार गुणक का विशेष महत्व है विशेषकर एक ऐसी अर्थव्यवस्था में जहाँ विदेशी व्यापार का राष्ट्रीय आय में योगदान अधिक है।

विदेशी व्यापार गुणक यह बताता है कि आयात प्रवृत्तियों को कम करके गुणक के मान को बढ़ाया जा सकता है और तब निर्यात संर्वधन—कार्यक्रमों को ज्यादा प्रभावी बनाया जा सकता है, इससे व्यापार संतुलन के घाटे में कमी लायी जा सकती है।

घरेलू निवेश बढ़ाकर घरेलू उद्योगों को विकसित कर राष्ट्रीय आय तथा निर्यातों में तेजी से वृद्धि की जा सकती है क्योंकि तब गुणक का मान अधिक होगा।

5.9 विदेशी व्यापार गुणक की आलोचनाएँ

(1) विदेशी व्यापार गुणक के विश्लेषण में यह मान लिया गया है कि निर्यात और निवेश स्वायत्त है अर्थात राष्ट्रीय आय में परिवर्तनों से स्वतंत्र है तथा आयात आय का फलन है। परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है। निर्यात में वृद्धि से आय में हमेशा वृद्धि नहीं होती है, और फिर आयात भी सिर्फ आय से ही प्रभावित नहीं होता है। प्रो. मीड ने आयात को व्यय का फलन माना है. कुछ आयात, जैसे पूँजीगत वस्तुओं इत्यादि का आयात राष्ट्रीय आय में वृद्धि लाते हैं।

(2) यहाँ आयात क्षमता और आय में धनात्मक संबंध माना गया है। अर्थात आय बढ़ने पर आयात बढ़ेगा और भुगतान—संतुलन प्रतिकूल हो जाएगा, परन्तु यह जरूरी नहीं है। क्योंकि राष्ट्रीय आय बढ़ने पर आन्तरिक तथा वाह्य मितव्ययिताओं में वृद्धि आती है जिससे निर्यात बढ़ते हैं।

(3) विश्लेषण में उपभोग प्रवृत्ति, बचत प्रवृत्ति तथा आयात प्रवृत्ति को स्थिर मान लिया गया है, जो कि अवास्तविक मान्यता है।

(4) यदि कोई देश छोटा हो तो विदेशी व्यापार गुणक का प्रभाव नगण्य होता है।

(5) विश्लेषण में राजकोषीय तथा मौद्रिक नीतियों के प्रभाव की उपेक्षा की गयी है; जबकि सरकारें सदैव अपनी इन नीतियों के द्वारा आयातों तथा निर्यातों को प्रभावित करने में लगी रहती है।

(6) यह इस मान्यता पर आधारित है कि स्वतंत्र व्यापार हो रहा है और व्यापार प्रतिबंध तथा विनिमय नियंत्रण नहीं है। वस्तुतः राज्य विभिन्न प्रतिबंधात्मक उपायों द्वारा व्यापार में अवरोध उत्पन्न करते हैं और विदेशी व्यापार गुणक के कार्यकरण को रोकते हैं।

5.10 सारांश

आधुनिक मुद्रावादी दृष्टिकोण परम्परागत प्रतिष्ठित सिद्धान्त का ही विस्तार है। मुद्रावादी आधुनिक अर्थशास्त्री स्टॉक—प्रवाह समायोजन की एक आधुनिक संकल्पना के माध्यम से मौद्रिक संतुलन की प्रक्रिया की व्याख्या करते हैं। इनके अनुसार, मुद्रा—पूर्ति की अधिक मांग का अर्थव्यवस्था के समग्र मांग और व्यय पर सीधा प्रभाव पड़ता है और फलस्वरूप भुगतान—संतुलन प्रभावित होता है।

भुगतान शेष का मौद्रिक सिद्धान्त समग्र भुगतान शेष की व्याख्या है। इस सिद्धान्त के अनुसार, भुगतान शेष घाटा सदैव और सभी स्थानों पर एक मौद्रिक तत्व है। इसलिए यह केवल मौद्रिक उपायों से ही ठीक किया जा सकता है। भुगतान—संतुलन का घाटा और अतिरेक मूलतः अर्थव्यव्स्था में मुद्रा के वास्तविक ऐच्छिक स्टॉक (actual desired stocks) के समायोजन की प्रक्रिया है। **स्थिर विनिमय दर प्रणाली** के अंतर्गत, जब अतिरिक्त मुद्रा—पूर्ति, भुगातन—संतुलन में घाटे का मुख्य कारण हो तब यह आवश्यक हो कि उचित मौद्रिक नीति के माध्यम से मुद्रा—पूर्ति को नियंत्रित किया जाए या फिर आय या ब्याज दर में परिवर्तन की नीति से मुद्रा की मांग को बढ़ाया जाए जिससे कि मुद्रा की अतिरिक्त पूर्ति को खपाया जा सके और भुगतान—संतुलन के घाटे को खत्म किया जा सके। एक **परिवर्तनशील विनिमय दर प्रणाली** के

अंतर्गत मुद्रा के वास्तविक स्टॉक में कमी जो कि विनिमय दर के ह्रास के कारण होती है, से भुगतान–संतुलन का असंतुलन (घाटा) के स्वतः ही दूर होने की प्रवृत्ति होगी।

इस प्रकार मौद्रिकवादियों का यह मानना है कि भुगतान–संतुलन का असंतुलन **एक अस्थायी परिघटना है जो की मुद्रा बाज़ार में** असंतुलन के कारण बनी रहती है। एक देश के भुगतान–संतुलन में अतिरेक मुद्रा मांग में आधिक्य का परिणाम है क्योंकि मुद्रा मांग के आधिक्य को घरेलू मौद्रिक प्राधिकरण मुद्रा–पूर्ति **से** संतुष्ट नहीं कर पाते हैं। जबकि भुगतान संतुलन का घाटा मुद्रा–स्टॉक की पूर्ति में आधिक्य का परिणाम है क्योंकि मुद्रा–पूर्ति के इस आधिक्य को घरेलू मौद्रिक प्राधिकरण खत्म या सुधार नहीं करते हैं। दीर्घकाल में भुगतान–संतुलन के अतिरेक या घाटे के स्वतः ही ठीक हो जाने की प्रवृत्ति होती है। यह विदेशी मुद्रा के अंर्तप्रवाह या बर्हिप्रवाह के द्वारा स्वतः ही अतिरेक या घाटे को ठीक कर देगा। स्थिर विनिमय दर प्रणाली के अंर्तगत दीर्घकाल में एक देश का अपनी मुद्रा–पूर्ति पर नियंत्रण नहीं होता है। परिवर्तनशील विनिमय दर प्रणाली के अंर्तगत भुगतान–शेष का असंतुलन तुरंत ही बिना अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा या रिजर्वों के प्रवाह के विनिमय दरों में स्वतः परिवर्तनों के द्वारा ठीक हो जाता है। इस प्रकार परिवर्तनशील विनिमय दर प्रणाली के अंर्तगत एक राष्ट्र का अपनी मुद्रा–पूर्ति तथा मौद्रिक नीति पर पूरा नियंत्रण होता है। घरेलू कीमतों में परिवर्तन होने पर विनिमय दरों में भी परिवर्तन होता है और परिणाम स्वरूप भुगतान–संतुलन के अंसतुलन में स्वतः समायोजन की प्रक्रिया शुरु होती है।

भुगतान–शेष के घाटे को दूर करने के लिए राष्ट्रीय आय में कमी करके घाटे को कम किया जा सकता है। जब किसी देश के निर्यात में वृद्धि होती है तो निर्यात उद्योगों से संबंधित सभी व्यक्तियों की आय में वृद्धि होती है। इस बढ़ी हुई आय से अन्य उपभोक्ता वस्तुओं के लिए मांग उत्पन्न होती है, उन उद्योगों का विस्तार होता है, रोजगार में वृद्धि होती है और आगे आय में और वृद्धि होती है। इस प्रकार, अंतिम रूप में आय में हुई वृद्धि निर्यात–वृद्धि की अपेक्षा काफी अधिक होती है, जो कि गुणक प्रभाव का परिणाम है। निर्यात में वृद्धि के फलस्वरूप राष्ट्रीय आय मे कितनी वृद्धि हुई यह विदेशी व्यापार गुणक या निर्यात गुणक पर निर्भर करता है।निर्यात गुणक का मूल्य सीमांत उपभोग प्रवृत्ति या बचत प्रवृत्ति तथा सीमांत आयात प्रवृत्ति पर निर्भर करता है। विदेशी व्यापार गुणक k_f को निम्नलिखित प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है– $k_f = \frac{1}{1-b-g+m}$ या $\frac{1}{s-g+m}$ ।

विदेशी प्रति प्रभाव की उपस्थिति में विदेशी व्यापार गुणक न सिर्फ घरेलू सीमान्त बचत तथा आयात प्रवृत्तियों पर निर्भर करता है बल्कि यह विदेशी सीमान्त बचत तथा आयात प्रवृत्तियों पर भी निर्भर करता है। विदेशी प्रति–प्रभाव की अनुपस्थिति में निवेश में वृद्धि या निर्यात में वृद्धि दोनों का ही राष्ट्रीय आय में वृद्धि पर एक तरह का प्रभाव पड़ेगा। परन्तु विदेशी प्रति–प्रभाव की उपस्थिति में निर्यात में वृद्धि और उसी मात्रा में निवेश में वृद्धि का राष्ट्रीय आय पर प्रभाव अलग–अलग होगा।

विदेशी प्रति–प्रभाव की उपस्थिति में विदेशी व्यापार गुणक का मान साधारण विदेशी व्यापार गुणक की अपेक्षा कम होगा। परन्तु विदेशी प्रति–प्रभाव की उपस्थिति में निवेश में वृद्धि के फलस्वरूप राष्ट्रीय आय में हुई वृद्धि निर्यात में वृद्धि के फलस्वरूप राष्ट्रीय आय में हुई वृद्धि की अपेक्षा अधिक होगी। साथ ही यह साधारण विदेशी व्यापार गुणक की स्थिति में राष्ट्रीय आय में वृद्धि से भी अधिक होगी।

विदेशी क्षेत्र में हुए परिवर्तनों का या घरेलू क्षेत्र में हुए परिवर्तनों का राष्ट्रीय आय या अर्थव्यवस्था पर क्या प्रभाव पड़ता है यह हमें विदेशी व्यापार गुणक से ज्ञात होता है । विशेषकर एक ऐसी अर्थव्यवस्था में जहाँ विदेशी व्यापार का राष्ट्रीय आय में योगदान अधिक है विभिन्न नीतियों के निर्माण में विदेशी व्यापार गुणक का विशेष महत्व है। यह बताता है कि आयात प्रवृत्तियों को कम करके गुणक के मान को बढ़ाया जा सकता है और तब निर्यात संर्वधन–कार्यक्रमों को ज्यादा प्रभावी बनाया जा सकता है, इससे व्यापार संतुलन के घाटे में कमी लायी जा सकती है। घरेलू निवेश बढ़ाकर घरेलू उद्योगों को विकसित कर राष्ट्रीय आय तथा निर्यातों में तेजी से वृद्धि की जा सकती है ।

5.11 शब्दावली

परिवर्तनशील विनिमय दर – परिवर्तनशील विनिमय दर विदेशी विनिमय बाजार में विदेशी विनिमय की मांग तथा पूर्ति के शक्तियों के द्वारा निर्धारित होती है तथा इसमें मौद्रिक प्राधिकरण का कोई हस्तक्षेप नहीं होता है।

स्थिर विनिमय दर – जब विदेशी विनिमय बाजार में सरकार या राज्य का पूरा हस्तक्षेप रहता है बाजार विनिमय दर एक दी हुई संतुलन स्तर पर स्थिर रहती है। यदि मांग और पूर्ति की शक्तियाँ इस संतुलन को बिगाडती हैं या सट्टेबाजी की गतिविधियाँ इस संतुलन को बिगाडती है तो सरकार इसमे हस्तक्षेप करती है और इस संतुलित विनिमय दर को बनाए रखती है। सरकार विदेशी विनिमय के क्रय या विक्रय के माध्यम से ऐसा करती है। **इसे स्थिर विनिमय दर प्रणाली कहते हैं ।**

मौद्रिक नीति- मौद्रिक नीति, मुद्रा–पूर्ति (M_s) तथा ब्याज दर (i) में परिवर्तन के द्वारा अर्थव्यवस्था पर प्रभाव डालती है।

राजकोषीय नीति - राजकोषीय नीति सरकारी व्यय (G) तथा करों (T) के द्वारा अर्थव्यवस्था पर प्रभाव डालती है।

ब्याज दर – ब्याज–धारीत प्रतिभूतियों की जगह निष्क्रिय मुद्रा–शेषों के रूप में नकदी रखने की लागत है।

सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति (MPC or b) – आय में वृद्धि के फलस्वरूप हुई उपभोग वृद्धि का आय वृद्धि से अनुपात है सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति । गणितीय रूप में–

$$MPC \text{ या } b = \frac{\Delta C}{\Delta Y}$$

सीमान्त बचत प्रवृत्ति (MPS or s)– आय में वृद्धि के फलस्वरूप हुई बचत वृद्धि तथा आय वृद्धि का अनुपात सीमान्त बचत प्रवृत्ति (s) कहलाता है। गणितीय रूप में–

$$MPS \text{ या } s = \frac{\Delta S}{\Delta Y}$$

सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति तथा सीमान्त बचत प्रवृत्ति का योग इकाई के बराबर होता हे।

अर्थात् $MPC + MPS = 1 \ (b+s=1)$

या $MPC = 1 - MPS$

या $MPS = 1 - MPC$

सीमान्त निवेश प्रवृत्ति (g)– यदि आय में वृद्धि के फलस्वरूप प्रेरित निवेश बढ़ता है तो निवेश वृद्धि का आय वृद्धि से अनुपात सीमान्त निवेश प्रवृत्ति कहलाता है।

$$MPI \text{ या } g = \frac{\Delta I}{\Delta Y}$$

विदेशी प्रति–प्रभाव या अतिनिर्यात प्रभाव – एक देश के निर्यात और आयात में परिवर्तन न सिर्फ उस देश की राष्ट्रीय आय को प्रभावित करते हैं और उससे प्रभावित होते हैं बल्कि इसका प्रभाव उन देशों की राष्ट्रीय आय पर भी पड़ता है जिनसे उसका व्यापारिक संबंध है। बदले में दूसरे देंशों की राष्ट्रीय आय में परिवर्तनों के भी उस देश के आयातों और राष्ट्रीय आय पर प्रभाव पड़ता है, इसे विदेश प्रति–प्रभाव या अतिनिर्यात प्रभाव कहते हैं।

5.12 संदर्भ ग्रंथ सूची

67. HH. G. Mannur, *International Economics* ,Vikas Publishing House Pvt. Ltd. 2001
68. Bo Sodersten, International Economics ,Macmillan, 1999
69. Paul Krugman and Maurice Obstfeld: *International Economics: Theory and Policy, Dorling Kindersley India Pvt Ltd, 2009.*
70. Charles P Kindleberger, International Economics, Richard D. Irwin Inc., Illinois, 1968
71. Dominik Salvatore, International Economics, John Willy & Sons, Inc., 2008

72. D. M. Mithani, International Economics, Himalaya Publishing House, Mumbai, 2006
73. सुदामा सिंह एवं एम०सी० वैश्य, अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, ऑक्सफ़ोर्ड एंड आई०बी०एच० पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2007
74. एम०एल०झिंगन, अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, वृंदा पब्लिकेशन, दिल्ली, 2010.
75. ज्ञानेंद्र सिंह कुशवाहा, अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, दि मैकमिलन कंपनी आफ इंडिया लिमिटेड, नई दिल्ली,1979.

5.13 अभ्यास प्रश्न

लघु उत्तरीय प्रश्नः

1- मौद्रिक नीति के भुगतान–संतुलन पर पड़ने वाले प्रभावों की संक्षिप्त विवेचना कीजिए।
2- भुगतान संतुलन के सन्दर्भ में मुद्रावादियों के दृष्टिकोण का वर्णन कीजिये .
3- भुगतान संतुलन के समयोजन के सन्दर्भ में मौदिक उपागम का संक्षिप्त वर्णन कीजिये.
4- परिवर्तनशील विनिमय दर प्रणाली के अंर्तगत मौद्रिक उपागम की समीक्षा कीजिये.
5- स्थिर विनिमय दर प्रणाली के अंर्तगत मौद्रिक उपागम की समीक्षा कीजिये.
6. विदेशी व्यापार गुणक की व्याख्या कीजिए।
7. विदेशी व्यापार गुणक की व्युत्पत्ति कैसे की जाती है?
8. निवेश गुणक से आप क्या समझते हैं?
9. विदेशी व्यापार गुणक की कमियों पर प्रकाश डालिए.
10. निवेश के फीडबैक विदेशी व्यापार गुणक मॉडल की विवेचना कीजिये.
11. विदेशी व्यापार गुणक का महत्व बताइए.
12. निर्यात के फीडबैक विदेशी व्यापार गुणक मॉडल की विवेचना कीजिये

निबंधात्मक प्रश्न

1. भुगतान–संतुलन की समस्या को हल करने हेतु मौद्रिक सिद्धान्त की विवेचना कीजिए।
2. भुगतान–शेष के घाटे को समाप्त या कम करने में व्यय परिवर्तनकारी उपायों की विवेचना कीजिए।
3. भुगतान–संतुलन के सन्दर्भ में मुद्रवादियों के दृष्टिकोण की समीक्षा कीजिये.
4. विदेशी व्यापार गुणक की संकल्पना को स्पष्ट कीजिए। यह किस प्रकार निवेश गुणक से भिन्न है। विदेशी व्यापार गुणक का महत्व भी बताइए।
5. विदेशी प्रति–प्रभाव के बिना तथा विदेशी प्रति–प्रभाव की उपस्थिति में विदेशी व्यापार गुणक की संकल्पना की व्याख्या कीजिए।
6. विदेशी व्यापार गुणक किस प्रकार से राष्ट्रीय आय को प्रभावित करता है, विस्तृत विवेचना कीजिए।
7. यह बताइए कि विदेश व्यापर गुणक क माध्यम से किस प्रकार भुगतान–संतुलन सिद्धान्त को गत्यात्मकता प्रदान की जा सकती है?
8. विदेशी प्रति–प्रभाव की उपस्थिति में विदेशी व्यापार गुणक की संकल्पना की विस्तृत व्याख्या कीजिए। निर्यात के फीडबैक विदेशी व्यापार गुणक मॉडल तथा निवेश के फीडबैक विदेशी व्यापार गुणक मॉडल में अंतर स्पष्ट कीजिये.

खंड 04: विनिमय दर एवं भुगतान संतुलन

<u>इकाई</u>- 05

आंतरिक एवं बाह्य का एक साथ संतुलन

5.1 प्रस्तावना
5.2 उद्देश्य
5.3 आन्तरिक एवं बाह्य असंतुलन तथा आर्थिक नीतियाँ
5.4 स्वान माडल
5.5 मण्डल फ्लेमिंग माडल
5.6 परिवर्तनशील तथा स्थिर विनिमय दरें तथा भुगतान संतुलन
परिवर्तनशील विनिमय दरें तथा भुगतान संतुलन
स्थिर विनिमय दरें तथा भुगतान संतुलन
5.7 मौद्रिक और राजकोषीय नीतियाँ तथा भुगतान संतुलन
राजकोषीय नीति तथा भुगतान संतुलन
मौद्रिक नीति तथा भुगतान संतुलन
5.8 सारांश
5.9 शब्दावली
5.10 सन्दर्भ / उपयोगी ग्रन्थ सुची
5.11 अभ्यास प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार एवं व्यापार नीति के **खंड चार ,विनिमय दर एवं भुगतान संतुलन** के 'भुगतान संतुलन में समायोजन की मौद्रिक विधि एवं विदेशी व्यापार गुणक एवं आय विधि ' से सम्बंधित पांचवीं इकाई है .इससे पहले की इकाई में भुगतान संतुलन के असंतुलन को दूर करने में मौद्रिक उपायों एवं आय विधि या विदेशी व्यापार गुणक के सम्बन्ध में आपने अध्ययन किया .देश के अन्दर कीमत स्थिरता तथा संसाधनों के पूर्ण रोजगार की स्थिति आन्तरिक संतुलन है ; इस स्थिति से विचलन अर्थव्यवस्था में असंतुलन करता है जो की अर्थव्यवस्था के विकास के लिए घातक होता है.बाह्य असतुलन का अर्थ है भुगतान संतुलन में असतुलन, अर्थात अतिरेक या घाटा.

आप आपने देखा कि राष्ट्रीय आय में कमी करके भुगतान शेष के घाटे को दूर किया जा सकता है। परंतु बाह्य स्थिरता के लिए आंतरिक स्थिरता को छेड़ने की बात हुई। इस अध्याय में हम इस बात पर चर्चा करेंगे कि किस प्रकार से आंतरिक और बाह्य स्थिरता एक साथ प्राप्त की जा सकती है।

5.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के बाद आप

- स्थिर तथा परिवर्तनशील दरों की स्थिति में भुगतान शेष में समायोजन कैसे होता है,जान पाएंगे.
- भुगतान शेष के असंतुलन को दूर करने में मौद्रिक तथा राजकोषीय नीतियों की प्रभावित को जान सकेंगे.
- स्वान और मण्डल तथा फ्लेमिंग माडल के सन्दर्भ में जान सकेंगे .

5.3 स्वान मॉडल

भुगतान शेष घाटे के संतुलन को ठीक करने के दो तरीके हैं

- आंतरिक संतुलन, जिसमें कीमत स्थिरता तथा पूर्ण रोजगार की चर्चा होती है।
- बाह्य संतुलन, जिसे भुगतान शेष का संतुलन कहा जाता है।

मीड की पुस्तक **Balance Of Payment** के आधार पर आंतरिक एवं बाह्य संतुलन के लिए किसी देश को कुल व्यय तथा विनिमय दर पर नियंत्रण रखना होगा। जहां जॉनसन ने आंतरिक एवं बाह्य संतुलन के लिए व्यय परिवर्तनकारी तथा व्यय बदलावकारी नीतियों की वकालत की।

हैरी जी जॉनसन ने आंतरिक मांग के समायोजन हेतु तथा बाह्य खाते में व्यय परिवर्तन की नीति के पक्ष में मत रखा परंतु ऐसी नीतियों का प्रभाव पूर्ण वर्णन भुगतान संतुलन और रोजगार के स्तर पर स्वान द्वारा किया गया । भुगतान संतुलन को ठीक करने के दो तरीके हैं जिनका ऊपर वर्णन संक्षेप में किया गया है जिसमें **स्वचालित समायोजन** तथा **नीतिगत उपाय** सम्मिलित है। स्वचालित समायोजन स्वर्ण मानक के अंतर्गत आंतरिक कीमतों में बदलाव द्वारा विनिमय दर में बदलाव के माध्यम से अपरिवर्त्य कागज करेंसी के अंतर्गत वाह्य कीमतों में बदलाव द्वारा तथा राष्ट्रीय आय में परिवर्तन द्वारा किया जाता है। यहां हम दूसरे तरीके पर विचार करेंगे क्योंकि दूसरा तरीका नीतिगत उपायों से संबंधित है।

भुगतान शेष में घाटे का मतलब है कि आय के मुकाबले व्यय बढ़ गया है। इसे ठीक करने के लिए व्यय को घटाना होगा व्यय घटाने वाली नीतियों का लक्ष्य होता है कि अपेक्षाकृत अधिक कर लगाकर और ब्याज दर बढ़ाकर कुल मांग घटा दी जाए जिससे कुल मांग तथा उत्पादन स्तर घटे। जब व्यय तथा उत्पादन घटेगा तो घरेलू कीमत स्तर गिरेगा इससे व्यय विदेशी वस्तुओं पर से हटकर घरेलू वस्तुओं पर होने लगेगा परिणाम स्वरुप देश के आयात घट जाएंगे।

व्यय बढ़ाने वाली नीतियों का लक्ष्य होता है कि घरेलू वस्तुओं की मांग बढ़ाई जाए और व्यय को आयातित वस्तुओं से हटाकर घरेलू वस्तुओं पर बढ़ाया जाए। इस तरह के व्यय परिवर्तन से घरेलू उत्पादन बढ़ता है जब तक व्यय करने की सीमांत प्रवृत्ति इकाई से कम रहेगी तब तक देश के भुगतान शेष में सुधार होगा। आंतरिक तथा वाह्य शेष संतुलन के दोनों उद्देश्य एक साथ पूरा करने के लिए व्यय घटाने और व्यय बढ़ाने वाले उपकरणों के न्याय संगत समिश्रण की जरूरत है।

उदाहरण के लिए यदि अर्थव्यवस्था पहले से ही पूर्ण रोजगार स्तर पर है तो अवमूल्यन की नीति इस तरह की अर्थव्यवस्था के भीतर स्थिति को बढ़ाएगी। इसलिए पूर्ण रोजगार तथा भुगतान शेष संतुलन बनाए रखने के लिए जरूरी है कि अवमूल्यन की व्यय बढ़ाने वाली नीति के साथ-साथ अधिक कठोर राजकोषीय और मौद्रिक नियंत्रणों की मूल्य घटाने वाली नीति को भी अपनाया जाए। इन्हीं दोनों लक्षणों को एक साथ पूरा करने के लिए हम नीतिगत उपकरणों के बीच संबंधों की चर्चा स्वान मॉडल के रूप में करेंगे।

यह मॉडल निम्नलिखित मान्यताओं पर आधारित है।

- व्यापार प्रतिबंध रहित है अर्थात इसमें टैरिफ एवं गैर टैरिफ प्रतिबंध नहीं है
- पूंजी पूर्णतया अगतिशील है।

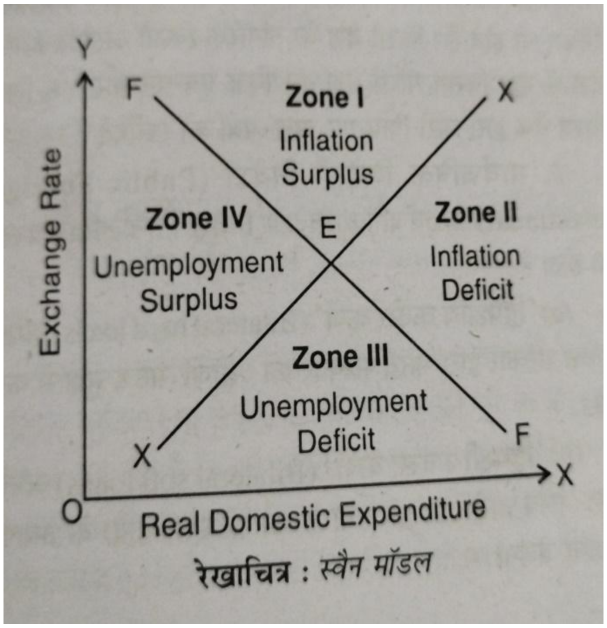

चित्र 6.1- स्वान मॉडल

रेखा चित्र में X अक्ष वास्तविक घरेलू व्यय को मापता है तथा Y अक्ष विनिमय दर को मापता है। यदि एक अक्ष पर बाई (O की तरफ)और चलें तो इसका मतलब होगा कि वह घटाने वाली नीति काम में लाई जा रही है और यदि X अक्ष पर ऊपर की ओर चले तो इसका तात्पर्य है कि व्यय बढ़ाने वाली नीति प्रयोग की जा रही है। FF आंतरिक संतुलन वक्र है जो पूर्ण रोजगार तथा स्थिर कीमतों की स्थिति को दर्शाता है। यह विनिमय दरों तथा वास्तविक घरेलू व्यय के विविध संयोगों को व्यक्त करता है।FF वक्र की ढलान ऋणात्मक है जो बताती है कि यदि वास्तविक व्यय या अवशोषण बढ़ता है तो उसे देश की विनिमय दर घटकर संतुलित करना होगा ताकि कीमतों को स्थिर रखते हुए पूर्ण रोजगार बनाए रखने के लिए उसका व्यापार शेष घटाया जाए। स्पष्ट है किFF वक्र के ऊपर दांए को स्थित बिंदु स्फीति से संबंध रखते हैं औरFF वक्र से नीचे बाई को स्थित मंदी अथवा बेरोजगारी से संबंध रखते हैं।

उपरोक्त रेखाचित्र में XX वक्र वाह्य शेष को व्यक्त करता है जहां पूंजी गतियो के अभाव में निर्यात तथा आयात बराबर है। इसलिए वाह्य शेष संतुलन तब होता है जब निवल निर्यात शून्य हो। यह वक्र बाय से दाएं को ऊपर की ओर धालू है जो बताता है कि यदि अर्थव्यवस्था को बाह्य संतुलन में रखना है तो अवमूल्यन को घरेलू व्यय में बढ़ोतरी के बराबर संतुलित करना होगा। अवमूल्यन निर्यात को प्रोत्साहन देकर तथा आयात हतोत्साहित करके देश की स्थिति को बेहतर बनाया जा सकता है और वास्तविक घरेलू व्यय मैं बढ़ोतरी देश के आयात को बढ़ाएगी। स्पष्ट है कि XX वक्र के ऊपर स्थित बिंदु भुगतान शेष के घाटे से संबंध रखते हैं। FF वक्र जिस बिंदु पर XX वक्र को काटता है वह बिंदु **Bliss point** है जहां अर्थव्यवस्था एक साथ आंतरिक तथा वाह्य संतुलन में है। रेखा चित्र में E जहां विनिमय दर तथा वास्तविक घरेलू व्यय संतुलन में है। यदि अर्थव्यवस्था E बिंदु पर नहीं है तो वह संतुलन में है स्वान के अनुसार E बिंदु के आसपास संतुलन के चार निम्न क्षेत्र हैं-:

क्षेत्र 1-स्फीति एवम भुगतान शेष में अतिरिक्त राशि

क्षेत्र 2-स्फीति तथा भुगतान शेष में अतिरेक घाटा

क्षेत्र 3-बेरोजगारी तथा भुगतान शेष में अतिरेक घाटा

क्षेत्र 4-बेरोजगारी तथा भुगतान शेष में अतिरेक

नीतिगत उपाय:

इस बात की व्याख्या करने के लिए की एक साथ आंतरिक तथा वाह्य है संतुलन प्राप्त करने के लिए किस प्रकार की नीति उपाय अपनानी चाहिए हम नीचे दर्शाए गए संतुलन की आठ संभव स्थितियां लेते हैं।

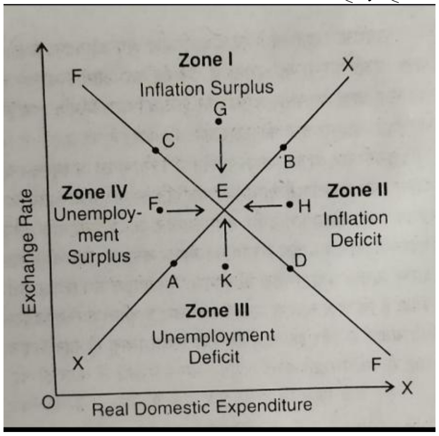

चित्र 6.2

चित्र 6.2 में बिंदु A पर एक देश के भुगतान शेष तथा बेरोजगारी(मंदी)संतुलन में है। इस स्थिति में एक बात की जरूरत है की घरेलू व्यय बढ़कर घरेलू अर्थव्यवस्था का विस्तार किया जाए। इससे निर्बल निर्यात कम होंगे। इस व्यवहार को काम करने के लिए अवमूल्यन के साथ घरेलू व्यय की बढ़ोतरी करनी होगी। यदि बेरोजगारी तथा भुगतान शेष घटा दोनों एक साथ उपस्थित हों जैसा कि बिना के पर प्रदर्शित है तो घरेलू व्यय बढ़ाया जाना चाहिए। जो नीति विस्तारक उपबंधों के माध्यम से आंतरिक मांग की बढ़ोतरी है। इस नीतिगत उपाय से भुगतान से घाटा भी बढ़ता है इसलिए इसे दुविधा क्षेत्र (Dilemma zone)कहते हैं क्योंकि इस स्थिति में विस्तारक नीति के बजाय अवमूल्यन की नीति ज्यादा अच्छी है।

यदि अर्थव्यवस्था में पूर्ण रोजगार के साथ-साथ भुगतान शेष घाटे का भी सम्मिश्रण हो जैसा कि बिंदु D पर प्रदर्शित है तो इसका हल अवमूल्यन है। फल स्वरुप विदेशी मांग के अधिक होने से घरेलू अर्थव्यवस्था में स्फीति की स्थिति आ जाएगी। इन प्रवृत्तियों को रोकने के लिए अवमूल्यन के साथ घरेलू व्यय में कटौती करनी पड़ेगी। क्षेत्र 2 में बिंदु H पर घरेलू स्थिति तथा भुगतान शेष घाटा साथ-साथ हैं। स्फीति से प्रतिस्पर्धा करने के लिए घरेलू व्यय कम करना होगा जो भुगतान से घाटे के आकार को कम कर सकेगा और अंततः अर्थव्यवस्था संतुलित स्थित E की ओर बढ़ेगी। यदि देश में भुगतान शेष संतुलन एवं स्फीति है जो की बिंदु B पर प्रदर्शित है तो देश को अपनी विनिमय दर बढ़ानी चाहिए और घरेलू में कम कर देना चाहिए। क्षेत्र 1 में बिंदु G पर भुगतान शेष अतिरेक के साथ स्फीति भी है। इस स्थिति में अतिरेक को समायोजित करने के लिए विनिमय दर कम करनी चाहिए तथा स्फीति का मुकाबला करने के लिए व्यय घटाया जाए। लेकिन घरेलू व्यय के कम होने से अतिरेक बढ़ेगा और अंततः यह भी दुविधा क्षेत्र बन जाएगा।

क्षेत्र 4 मे बिंदु F पर भुगतान शेष में अतिरेक के साथ-साथ बेरोजगारी है। यहां आंतरिक तथा बाह्य दोनों संतुलनों के लिए घरेलू व्यय को बढ़ाना ही उचित होगा। इस तरह की नीति से रोजगार बढ़ेगा तथा

आयतों में बढ़ोतरी को प्रोत्साहन मिलेगा जिसके परिणाम स्वरुप अतिरेक का आकार घटेगा।अतः क्षेत्र 2 और 4 सरल क्षेत्र(Simple zones) है।

5.5 मुंडेल-फ्लेमिंग मॉडल

बुनियादी मुंडेल-फ्लेमिंग मॉडल - आईएस-एलएम मॉडल की तरह - निश्चित मूल्य स्तर की धारणा पर आधारित है और वस्तु बाजार और मुद्रा बाजार के बीच अंतरक्रिया को दर्शाता है। यह मॉडल एक खुली अर्थव्यवस्था में कुल आय में अल्पकालिक उतार-चढ़ाव के कारणों की व्याख्या करता है। मुंडेल-फ्लेमिंग मॉडल एक बहुत ही प्रतिबंधात्मक धारणा पर आधारित है। यह संपूर्ण पूंजी गतिशीलता वाली एक छोटी खुली अर्थव्यवस्था पर विचार करता है। इसका मतलब यह है कि अर्थव्यवस्था मौजूदा ब्याज दर पर अंतरराष्ट्रीय पूंजी बाजार से स्वतंत्र रूप से उधार दे या उधार ले सकती है क्योंकि इसकी घरेलू ब्याज दर विश्व ब्याज दर से निर्धारित होती है। इसलिए, अध्ययन की जा रही छोटी अर्थव्यवस्था में ब्याज दर एक नीतिगत चर नहीं है। व्यापक आर्थिक समायोजन केवल विनिमय दर में बदलाव के माध्यम से होता है। दूसरे शब्दों में, आधिकारिक तौर पर निर्धारित विनिमय दर को बनाए रखने के लिए समायोजन का खामियाजा विदेशी मुद्रा बाजारों में विनिमय दर आंदोलनों द्वारा वहन किया जाता है। केंद्रीय बैंक बदलती आर्थिक स्थितियों के जवाब में विनिमय दर को ऊपर या नीचे जाने की अनुमति देता है।

इस मॉडल की मूल धारणा यह है कि पूर्ण पूंजी गतिशीलता वाली एक छोटी खुली अर्थव्यवस्था में घरेलू ब्याज दर(**r**) विश्व ब्याज दर (**r***) के बराबर है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि घरेलू अर्थव्यवस्था के भीतर कोई भी बदलाव घरेलू ब्याज दर को बदल सकता है, लेकिन ब्याज दर लंबे समय तक विश्व ब्याज दर के अनुरूप नहीं रह सकती है। दोनों के बीच अंतर, यदि कोई हो, वित्तीय पूंजी के प्रवाह और बहिर्प्रवाह के माध्यम से तुरंत दूर हो जाता है। यह याद किया जा सकता है कि किसी देश के **"छोटेपन" का उसके आकार से कोई संबंध नहीं है।** एक छोटा देश वह है जो अपनी उधार लेने और उधार देने की गतिविधियों के माध्यम से विश्व ब्याज दर को नहीं बदल सकता है। इसके विपरीत, एक बड़ी अर्थव्यवस्था वह होती है जिसके पास बाजार (सौदेबाजी) की शक्ति होती है ताकि वह विश्व ब्याज दर पर प्रभाव डाल सके।ऐसे देश के लिए, या तो अंतर्राष्ट्रीय पूंजी गतिशीलता आदर्श से बहुत दूर है, या देश इतना बड़ा है कि यह विश्व पूंजी बाजारों पर प्रभाव डाल सकता है।

मुंडेल-फ्लेमिंग मॉडल की मुख्य भविष्यवाणी यह है कि किसी अर्थव्यवस्था का व्यवहार उसके द्वारा अपनाई जाने वाली विनिमय दर प्रणाली पर महत्वपूर्ण रूप से निर्भर करता है, अर्थात, चाहे वह एक फ्लोटिंग विनिमय दर प्रणाली या एक निश्चित विनिमय दर प्रणाली संचालित करती हो। हम एक फ्लोटिंग विनिमय दर प्रणाली के तहत समायोजन से शुरुआत करते हैं, जिस स्थिति में विदेशी मुद्रा बाजार में कोई केंद्रीय बैंक हस्तक्षेप नहीं होता है। ऐसी स्थिति में, यदि घरेलू ब्याज दर विश्व दर से ऊपर चली जाती है, तो विदेशी लोग स्वदेश को ऋण देना शुरू कर देंगे। इस पूंजी प्रवाह से धन की अतिरिक्त आपूर्ति पैदा होगी और घरेलू ब्याज दर फिर से गिरकर **r*** पर आ जाएगी। इसका उलटा भी सच है। यदि, किसी कारण से, घरेलू ब्याज दर **(r) r*** से नीचे गिर जाती है, तो स्वदेश से पूंजी का बहिर्वाह होगा और परिणामस्वरूप धन की कमी **r** को **r*** के स्तर तक धकेल देगी। इस प्रकार, संपूर्ण पूंजी गतिशीलता की दुनिया में, **r** जल्दी से **r*** में समायोजित हो जाएगा।

मान्यताएं :

(1) एक छोटी खुली अर्थव्यवस्था

(2) कर की दरें हर जगह समान हैं,

(3) विदेशी निवेशकों को राजनीतिक जोखिम का सामना नहीं करना पड़ता है (अर्थात विदेशी संपत्ति के राष्ट्रवाद का डर, संपत्ति के हस्तांतरण पर प्रतिबंध, विदेशी सरकारों द्वारा डिफ़ॉल्ट का जोखिम)।

इन परिस्थितियों में और पूंजी निवेशकों या विदेशी संपत्ति धारकों की पूर्ण गतिशीलता के साथ किसी भी देश में संपत्ति में निवेश करने का प्रयास करेंगे जो सबसे अधिक रिटर्न देता है। इससे अंतरराष्ट्रीय पूंजी

बाजार में हर जगह संपत्ति पर रिटर्न की दरें समान हो जाएंगी क्योंकि कोई भी कम रिटर्न पर निवेश नहीं करेगा। हालाँकि, यह ध्यान दिया जा सकता है कि विभिन्न देशों में रिटर्न का पूर्ण समीकरण किसी अर्थव्यवस्था के लिए पूंजी की पूर्ण गतिशीलता और निश्चित विदेशी या विश्व ब्याज दर की दोहरी धारणाओं पर निर्भर करता है। वास्तव में, मुंडेल-फ्लेमिंग मॉडल एक छोटी खुली अर्थव्यवस्था मानता है जो विश्व ब्याज दर को प्रभावित करने में असमर्थ है।

इसके अलावा, यह पूर्ण पूंजी गतिशीलता को मानता है। "पूंजी अंतरराष्ट्रीय स्तर पर पूरी तरह से गतिशील है जब निवेशक अपने द्वारा चुने गए किसी भी देश में, कम लेनदेन लागत के साथ, और असीमित मात्रा में संपत्ति खरीद सकते हैं। जब पूंजी पूरी तरह से गतिशील होती है, तो परिसंपत्ति धारक उच्चतम रिटर्न या न्यूनतम उधार लागत की तलाश में बड़ी मात्रा में धन को सीमाओं के पार स्थानांतरित करने के इच्छुक और सक्षम होते हैं।

संपूर्ण पूंजी गतिशीलता के साथ एक छोटी खुली अर्थव्यवस्था की धारणा मुंडेल-फ्लेमिंग मॉडल में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। एक छोटी खुली अर्थव्यवस्था की धारणा का तात्पर्य यह है कि अर्थव्यवस्था ब्याज दर को प्रभावित किए बिना विश्व वित्तीय बाजारों में जितना चाहे उतना उधार ले सकती है या उधार दे सकती है। इस प्रकार, एक छोटी खुली अर्थव्यवस्था के लिए, ब्याज दर विश्व ब्याज दर से निर्धारित होती है।

गणितीय रूप से, हम इस धारणा को इस प्रकार बता सकते हैं:

$r = r_f$, जहां r अर्थव्यवस्था में घरेलू ब्याज दर है और r_f विश्व ब्याज दर है। यह पूंजी की पूर्ण गतिशीलता है जो घरेलू ब्याज दर (r) को विश्व ब्याज दर के बराबर बनाती है। यदि किसी घटना या आर्थिक नीति के कारण घरेलू ब्याज दर विश्व ब्याज दर से कम हो जाती है, तो पूंजी बहिर्प्रवाह घरेलू ब्याज दर को विश्व ब्याज दर पर वापस ले जाएगा। दूसरी ओर, यदि किसी घटना या नीति के कारण घरेलू ब्याज विश्व ब्याज दर से अधिक हो जाता है, तो पूंजी प्रवाह घरेलू ब्याज दर को विश्व ब्याज दर के स्तर पर ले आएगा। इसलिए समीकरण $r = r_f$ दर्शाता है कि पूंजी का अंतर्राष्ट्रीय प्रवाह घरेलू ब्याज दर को विश्व ब्याज दर के बराबर लाता है।

मुंडेल-फ्लेमिंग मॉडल, विश्व ब्याज दर द्वारा निर्धारित घरेलू ब्याज दर के साथ, अल्पावधि में राष्ट्रीय आय के निर्धारण में विनिमय दर की भूमिका पर केंद्रित है। मुंडेल-फ्लेमिंग मॉडल का एक अन्य महत्वपूर्ण पहलू यह है कि अर्थव्यवस्था का व्यवहार इस पर निर्भर करता है कि वह निश्चित विनिमय दर प्रणाली अपनाती है या लचीली विनिमय दर प्रणाली अपनाती है। निम्नलिखित में हम सबसे पहले मुंडेल-फ्लेमिंग मॉडल की व्याख्या करते हैं जब अर्थव्यवस्था निश्चित विनिमय दर प्रणाली के तहत काम करती है और फिर उस मॉडल का विश्लेषण

करते हैं जब अर्थव्यवस्था ने लचीली विनिमय दर प्रणाली को अपनाया है। संपूर्ण पूंजी गतिशीलता के साथ एक छोटी खुली अर्थव्यवस्था के मुंडेल-फ्लेमिंग मॉडल को आईएस और आईएम वक्रों के लिए निम्नलिखित समीकरणों द्वारा वर्णित किया जा सकता है।

IS समीकरण:

$$Y = C(Y - T) + I(r_f) + G + NX(R)$$

LM समीकरण:

$$M/P = L(r_f, Y)$$

IS समीकरण वस्तु बाजार संतुलन का वर्णन करता है और दूसरा एलएम समीकरण मुद्रा बाजार संतुलन का वर्णन करता है। जी और तारे राजकोषीय नीति द्वारा निर्धारित चर हैं, एम मौद्रिक नीति चर है और वे महत्वपूर्ण बहिर्जात चर हैं। कीमत पी और विश्व ब्याज दर (r_f) अन्य बाह्य रूप से दिए गए चर हैं। दी जा रही ब्याज दर, आईएस और एलएम वक्रों का प्रतिच्छेदन राष्ट्रीय आय का स्तर निर्धारित करता है जिस पर माल बाजार और मुद्रा बाजार दोनों संतुलन में होते हैं। इसके अलावा, परिवर्तनीय विनिमय दर प्रणाली के मामले में, दो बाजारों का संतुलन भी विनिमय दर निर्धारित करता है। हालाँकि, मुंडेल-फ्लेमिंग मॉडल उन्हीं स्थितियों पर आधारित है जो वास्तविक दुनिया में मौजूद नहीं हैं। सबसे पहले, देशों के बीच कर मतभेद हैं जो देशों के बीच ब्याज दर के अंतर के जवाब में पूंजी की गतिशीलता में बाधा डालते हैं।

दूसरे, विभिन्न मुद्राओं के बीच विनिमय दरें कभी-कभी काफी हद तक बदल सकती हैं, जो विदेशी निवेश पर डॉलर में रिटर्न को प्रभावित करती हैं। अंततः, देश पूंजी के बहिर्प्रवाह को प्रतिबंधित करने या भुगतान करने में चूक करने के उपाय अपनाते हैं। ये कुछ ऐसे कारण हैं जिनकी वजह से अलग-अलग देशों में ब्याज दरें एक समान नहीं होती हैं।

एक निश्चित विनिमय दर व्यवस्था के साथ छोटी खुली अर्थव्यवस्था का मुंडेल-फ्लेमिंग मॉडल: मौद्रिक नीति का प्रभाव:

निश्चित विनिमय दर व्यवस्था के तहत मुंडेल-फ्लेमिंग लिंकेज मॉडल का एक महत्वपूर्ण परिणाम यह है कि किसी देश का केंद्रीय बैंक स्वतंत्र मौद्रिक नीति नहीं अपना सकता है। पूर्ण गतिशीलता के तहत, विभिन्न देशों में ब्याज दरों में बहुत छोटा अंतर अनंत पूंजी प्रवाह का कारण बनेगा जो भुगतान संतुलन में बदलाव लाएगा। भुगतान संतुलन में ये बदलाव विभिन्न राष्ट्रीय मुद्राओं के बीच विनिमय दर को प्रभावित करेंगे जिससे ब्याज दर का अंतर खत्म हो जाएगा। एक उदाहरण लीजिये. मान लीजिए किसी देश का केंद्रीय बैंक अपनी मौद्रिक नीति को सख्त करता है ताकि अर्थव्यवस्था में ब्याज दर बढ़ाई जा सके। जब इस नीति को अपनाने से अर्थव्यवस्था में ब्याज दर बढ़ जाती है, तो विदेशी लोग उच्च ब्याज दर का लाभ उठाने के लिए अपने निवेश योग्य धन को इस देश में स्थानांतरित कर देंगे। पूंजी के भारी प्रवाह के साथ, घरेलू मुद्रा की विदेशी विनिमय दर में वृद्धि होगी, अर्थात, उच्च ब्याज दर वाली मौद्रिक नीति अपनाने वाले देश की मुद्रा में वृद्धि होगी। मुद्रा की यह सराहना निर्यात को हतोत्साहित करेगी और आयात को प्रोत्साहित करेगी जिसका भुगतान संतुलन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। इससे देश के केंद्रीय बैंक को, जो विनिमय दर को निश्चित स्तर पर बनाए रखने के लिए प्रतिबद्ध है, राष्ट्रीय मुद्रा की विनिमय दर में वृद्धि को रोकने के लिए हस्तक्षेप करने के लिए मजबूर होना पड़ेगा। मुद्रा की सराहना को रोकने के लिए, केंद्रीय बैंक विदेशी मुद्रा, जैसे अमेरिकी डॉलर, खरीदेगा। इससे केंद्रीय बैंक के पास विदेशी मुद्रा भंडार में वृद्धि होगी जो विदेशी मुद्रा भंडार में वृद्धि के मुकाबले अधिक राष्ट्रीय मुद्रा जारी करेगा।

परिणामस्वरूप, अर्थव्यवस्था में धन आपूर्ति का विस्तार होगा जिससे ब्याज दर में गिरावट आएगी। इस प्रकार, पूंजी की पूर्ण गतिशीलता और एक निश्चित विनिमय दर के साथ, घरेलू ब्याज दर को प्रारंभिक स्तर पर वापस धकेल दिया गया है। डोर्नबुश और फिशर "निश्चित विनिमय दरों और पूर्ण पूंजी गतिशीलता के तहत, कोई देश विश्व बाजार में प्रचलित दरों से बाहर नहीं जा सकता है। स्वतंत्र मौद्रिक नीति का कोई भी प्रयास पूंजी प्रवाह की ओर ले जाता है और तब तक हस्तक्षेप करने की आवश्यकता होती है जब तक कि ब्याज दरें विश्व बाजार के अनुरूप न हो जाएं।" इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि, विभिन्न देशों में पूंजी गतिशीलता के उच्च स्तर को देखते हुए; ब्याज दरें बहुत अधिक भिन्न नहीं हो सकतीं. एक सीमा के बाद ब्याज दरों में अंतर विभिन्न देशों में पूंजी प्रवाह लाएगा जो उन सभी में विश्व स्तरीय उपज प्रदान करेगा।

निश्चित विनिमय दर और उत्तम पूंजी गतिशीलता के तहत विस्तारवादी मौद्रिक नीति:

आइए अब हम आईएस-एलएम मॉडल का उपयोग करके निश्चित विनिमय दर व्यवस्था के तहत मौद्रिक विस्तार के प्रभाव का विश्लेषण करें। चित्र 25.2 पर विचार करें जहां पैनल (ए) में हमने आईएस और एलएम वक्र के साथ-साथ क्षैतिज सीधी रेखा बीपी भी खींची है। घरेलू ब्याज दर i पर क्षैतिज रेखा BL = 0 विदेशी ब्याज दर के बराबर है यदि ($i = i_f$) यह दर्शाता है कि देश के भुगतान संतुलन में न तो घाटा है और न ही अधिशेष, यानी इसका भुगतान संतुलन संतुलन में है।

किसी भी अन्य ब्याज दर पर बड़े पैमाने पर पूंजी प्रवाह होगा जो भुगतान संतुलन में असंतुलन पैदा करेगा और केंद्रीय बैंक को विनिमय दर बनाए रखने के लिए हस्तक्षेप करने के लिए मजबूर करेगा। इसे स्पष्ट करने के लिए हम मानते हैं कि सरकार मौद्रिक विस्तार की नीति अपनाती है। मान लीजिए चित्र 25.2 के पैनल (ए) में अर्थव्यवस्था प्रारंभ में बिंदु ई पर है जहां दिए गए आईएस-एलएम वक्र ई पर प्रतिच्छेद करते हैं जो घरेलू ब्याज दर निर्धारित करता है जो कि विदेशी ब्याज दर के बराबर है ।

मौद्रिक विस्तार के साथ, एलएम वक्र दाईं ओर स्थानांतरित हो जाता है और परिणामस्वरूप अर्थव्यवस्था नई संतुलन स्थिति ई' में चली जाती है, जहां घरेलू ब्याज दर गिरकर आई $_1$ हो गई है । नई स्थिति में 'ई' अर्थव्यवस्था में भुगतान संतुलन में बड़ा घाटा होगा जो घरेलू मुद्रा की विनिमय दर पर अवमूल्यन का दबाव डालेगा। विदेशी विनिमय दर का निर्धारण चित्र 25.2 के पैनल (बी) में दिखाया गया है जहां प्रारंभिक रूप से अमेरिकी डॉलर की मांग वक्र डीडी और आपूर्ति वक्र एसएस ओआर के बराबर विनिमय दर निर्धारित करते हैं (यानी प्रति अमेरिकी डॉलर रुपये की संख्या)। जब मुद्रा आपूर्ति में विस्तार के परिणामस्वरूप, एलएम $_1$ वक्र नई स्थिति एलएम के दाईं ओर स्थानांतरित हो जाता है और परिणामस्वरूप घरेलू ब्याज दर आई $_1$ (चित्रा 25.2 के पैनल (ए)) तक गिर जाती है, तो बड़ी पूंजी बहिर्वाह होगी।

इन पूंजी बहिर्प्रवाहों से विदेशी मुद्रा बाजार में अमेरिकी डॉलर की आपूर्ति कम हो जाएगी और परिणामस्वरूप अमेरिकी डॉलर का आपूर्ति वक्र बाईं ओर S'S' (चित्र 25.2 का पैनल (बी)) में स्थानांतरित हो जाएगा, जिसके परिणामस्वरूप नई विनिमय दर R' (अर्थात्) होगी। , प्रति अमेरिकी डॉलर अधिक रुपये)। इसका मतलब है कि भारतीय रुपये का अवमूल्यन होगा। विनिमय दर को बनाए रखने के लिए देश का केंद्रीय बैंक हस्तक्षेप करेगा; यह विदेशी मुद्रा भंडार को विदेशी मुद्रा बाजार में बेचेगा। इसलिए अर्थव्यवस्था में घरेलू मुद्रा आपूर्ति की आपूर्ति कम हो जाएगी। घरेलू मुद्रा आपूर्ति में इस कमी के परिणामस्वरूप, एलएम वक्र बाईं ओर वापस स्थानांतरित हो जाएगा [चित्र 25.2 का पैनल (ए) देखें], धन आपूर्ति में संकुचन और परिणामस्वरूप एलएम वक्र के बाईं ओर वापस स्थानांतरित होने की यह प्रक्रिया जारी रहेगी जब तक कि E पर प्रारंभिक संतुलन फिर से न पहुँच जाए।

वास्तव में, पूर्ण पूंजी गतिशीलता के साथ, अर्थव्यवस्था के नए संतुलन संयुक्त ई' तक पहुंचने की संभावना नहीं है। ऐसा इसलिए है क्योंकि पूंजी प्रवाह की प्रतिक्रिया इतनी बड़ी और त्वरित है कि केंद्रीय बैंक ई' पर नए संतुलन तक पहुंचने से पहले धन आपूर्ति में प्रारंभिक विस्तार को तुरंत उलटने के लिए मजबूर हो जाएगा।

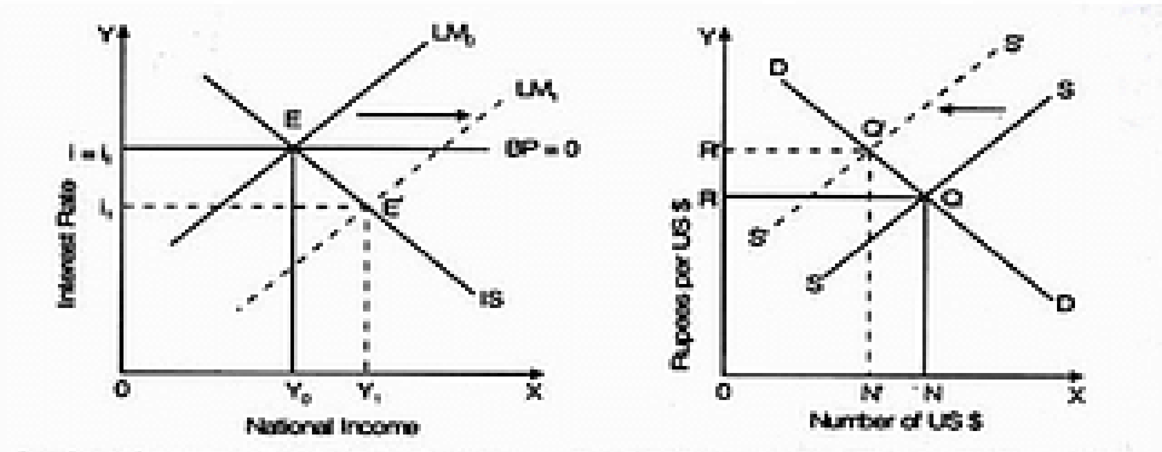

Panel (a) IS-LM Model of the Open Economy   Panel (b) Determination of Foreign Exchange Rate

Fig. 25.2. *Effect of Monetary Expansion Under the Fixed Exchange Regime and Perfect Capital Mobility*

निश्चित विनिमय दर प्रणाली के तहत धन आपूर्ति में संकुचन:

इसके विपरीत, यदि केंद्रीय बैंक धन आपूर्ति में संकुचन की नीति अपनाता है, तो एलएम वक्र प्रारंभिक संतुलन बिंदु ई के बाईं ओर स्थानांतरित हो जाएगा। आईएस वक्र को देखते हुए नया संतुलन विदेशी की तुलना में उच्च घरेलू ब्याज दर पर पहुंच जाएगा। ब्याज दर। इससे बड़े पैमाने पर पूंजी प्रवाह प्रेरित होगा जिससे घरेलू मुद्रा की मांग बढ़ेगी और परिणामस्वरूप घरेलू मुद्रा की सराहना होगी। विनिमय दर को बनाए रखने के लिए केंद्रीय बैंक विदेशी मुद्रा खरीदेगा और बदले में घरेलू मुद्रा देगा। परिणामस्वरूप, केंद्रीय बैंक को मुद्रा आपूर्ति का विस्तार करने के लिए मजबूर होना पड़ेगा और यह मौद्रिक विस्तार एलएम वक्र में दाईं ओर बदलाव का कारण बनेगा ताकि अंततः घरेलू अर्थव्यवस्था प्रारंभिक संतुलन स्थिति में वापस आ जाए।

निष्कर्ष:

निश्चित विनिमय दर व्यवस्था के तहत मुंडेल-फ्लेमिंग मॉडल के पूर्वगामी विश्लेषण से, यह निष्कर्ष निकलता है कि जब पूंजी की गतिशीलता सही होती है, तो घरेलू देश में ब्याज दरें विदेशों में प्रचलित ब्याज दरों से विचलित नहीं हो सकती हैं। ऊपर से यह बिल्कुल स्पष्ट है कि निश्चित विनिमय दर व्यवस्था के तहत पूंजी की पूर्ण गतिशीलता के साथ, एक छोटी खुली अर्थव्यवस्था में मौद्रिक नीति राष्ट्रीय आय (उत्पादन) और रोजगार के स्तर को प्रभावित करने में काफी अप्रभावी है।

देश के केंद्रीय बैंक द्वारा मुद्रा आपूर्ति में विस्तार करके ब्याज दर को कम करने के किसी भी प्रयास से बड़े पैमाने पर पूंजी का बहिर्वाह होगा जिससे घरेलू मुद्रा का मूल्यह्रास हो सकता है। सेंट्रल बैंक, जो विनिमय दर को एक निश्चित स्तर पर बनाए रखने के लिए बाध्य है, विदेशी मुद्रा के बदले में घरेलू मुद्रा खरीदेगा। इसके

परिणामस्वरूप धन की आपूर्ति अपने मूल स्तर पर कम हो जाएगी और घरेलू अर्थव्यवस्था फिर से प्रारंभिक स्तर पर संतुलन प्राप्त कर लेगी। इससे पता चलता है कि निश्चित विनिमय दर व्यवस्था के तहत, किसी देश का केंद्रीय बैंक स्वतंत्र मौद्रिक नीति नहीं अपना सकता है।

मुंडेल-फ्लेमिंग मॉडल: निश्चित विनिमय दर प्रणाली के तहत विस्तारवादी राजकोषीय नीति की भूमिका:

जबकि निश्चित दर व्यवस्था के तहत विस्तारवादी मौद्रिक नीति राष्ट्रीय आय और उत्पादन को प्रभावित करने में काफी अप्रभावी है, पूंजी की सही गतिशीलता को देखते हुए राजकोषीय नीति अत्यधिक प्रभावी है। इसे खुली अर्थव्यवस्था आईएस-एलएम मॉडल के माध्यम से दिखाने के लिए चित्र 25.3 पर विचार करें। मान लीजिए कि विस्तारवादी राजकोषीय नीति अपनाते हुए सरकार अपना व्यय बढ़ाती है और धन आपूर्ति अपरिवर्तित रहती है। पैनल (ए) से यह देखा जाएगा कि सरकारी व्यय में वृद्धि से आईएस वक्र में नई स्थिति आईएस के दाईं ओर बदलाव होता है। जैसा कि पैनल (ए) से देखा जाएगा, इससे ब्याज दर और राष्ट्रीय आय (उत्पादन) का स्तर दोनों बढ़ जाता है। विश्व ब्याज दर (यदि $_{एफ}$) की तुलना में उच्च घरेलू ब्याज दर अर्थव्यवस्था में पूंजी प्रवाह का कारण बनेगी।

ये पूंजी प्रवाह राष्ट्रीय मुद्रा की विनिमय दर में सराहना लाएंगे। विदेशी विनिमय दर का निर्धारण चित्र 25.3 के पैनल (बी) में दर्शाया गया है। पैनल (बी) से यह देखा जाएगा कि पूंजी प्रवाह के परिणामस्वरूप, विदेशी मुद्रा (यानी अमेरिकी डॉलर) का आपूर्ति वक्र एसएस से एस'एस तक दाईं ओर स्थानांतरित हो जाता है। विदेशी विनिमय दर का नया आपूर्ति वक्र S'S' विदेशी मुद्रा के मांग वक्र को बिंदु Q' पर काटता है और निम्न नई विदेशी विनिमय दर R' (प्रति अमेरिकी डॉलर रुपये) निर्धारित करता है। इसका तात्पर्य यह है कि रुपये की सराहना हो रही है। आर पर विनिमय दर बनाए रखने के लिए सेंट्रल बैंक को धन आपूर्ति का विस्तार करना होगा जिससे एलएम वक्र दाईं ओर शिफ्ट हो जाएगा और राष्ट्रीय आय में और वृद्धि होगी।

चित्र 25.3 के पैनल (ए) से यह देखा जाएगा कि मुद्रा आपूर्ति इतनी बढ़ जाती है कि एलएम वक्र नई स्थिति एलएम' पर स्थानांतरित हो जाता है और घरेलू ब्याज दर मूल स्तर पर वापस आ जाती है ताकि यह फिर से विश्व ब्याज के बराबर हो जाए। दर ($I = i_f$). इस प्रकार, इस मामले में, विनिमय दर को बनाए रखने के लिए धन आपूर्ति में अंतर्जात विस्तार के साथ, ब्याज दर प्रभावी रूप से एक निश्चित स्तर पर स्थिर रहती है। राजकोषीय विस्तार से राष्ट्रीय आय में $Y_1 Y_3$ की वृद्धि होती है , जो कीनेसियन गुणक प्रभाव के बराबर है।

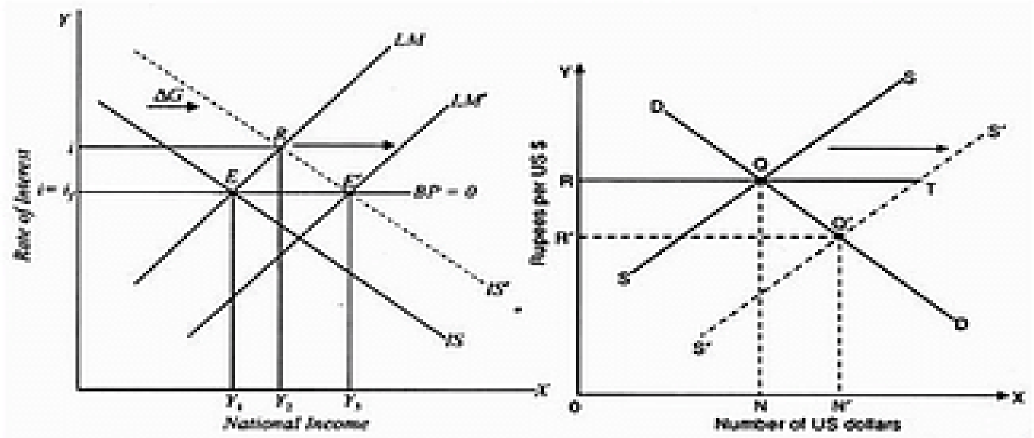

Panel (a) : Determination of National Income and Rate of Interest Panel (b) : Determination of Foreign Exchange Rate

Fig. 25.3 *Effect of Expansionery Fiscal Policy in a Small Open Economy under Fixed Exchange Rate*

निष्कर्ष:

उपरोक्त विश्लेषण का निष्कर्ष यह है कि एक निश्चित विनिमय दर बनाए रखने की प्रतिबद्धता धन आपूर्ति में परिवर्तन को अंतर्जात बनाती है। ऐसा इसलिए है क्योंकि केंद्रीय बैंक को अपने हस्तक्षेप के माध्यम से विनिमय दर प्रणाली को निश्चित स्तर पर बनाए रखने के लिए, जैसी भी स्थिति हो, विदेशी मुद्रा को बेचना या खरीदना पड़ता है। संपूर्ण पूंजी गतिशीलता के साथ निश्चित विनिमय दर प्रणाली के तहत सेंट्रल बैंक घरेलू आर्थिक स्थिरता प्राप्त करने के लिए एक स्वतंत्र मौद्रिक नीति का संचालन नहीं कर सकता है। हालाँकि, सरकार राष्ट्रीय आय और रोजगार के स्तर को बढ़ाने के लिए विस्तारवादी राजकोषीय नीति का उपयोग कर सकती है।

लचीली विनिमय दरों के तहत छोटी खुली अर्थव्यवस्था के लिए मुंडेल-फ्लेमिंग मॉडल:

अब हम यह समझाने के लिए मुंडेल-फ्लेमिंग मॉडल का उपयोग करते हैं कि एक छोटी खुली अर्थव्यवस्था में मौद्रिक और राजकोषीय नीतियां कैसे काम करती हैं जब पूरी तरह से लचीली विनिमय दर व्यवस्था और सही पूंजी गतिशीलता होती है। यह माना जाता है कि घरेलू कीमतें स्थिर रहती हैं जबकि विनिमय दर पूरी तरह लचीली होती है। यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि लचीली विनिमय दर व्यवस्था के तहत, केंद्रीय बैंक विदेशी मुद्रा के लिए बाजार में हस्तक्षेप नहीं करता है। विदेशी मुद्रा की मांग और आपूर्ति को संतुलन में लाने के लिए विनिमय दर स्वयं को समायोजित करती है। इसलिए, लचीली विनिमय दर प्रणाली के तहत और केंद्रीय बैंक के हस्तक्षेप के बिना, भुगतान संतुलन हमेशा संतुलन में रहना चाहिए, यानी न तो कोई घाटा हो और न ही कोई अधिशेष हो।

इसका तात्पर्य यह है कि किसी भी चालू खाते के घाटे को निजी पूंजी प्रवाह द्वारा वित्तपोषित किया जाना चाहिए। इसके विपरीत, किसी भी चालू खाते के अधिशेष को पूंजी बहिर्प्रवाह द्वारा संतुलित किया जाना चाहिए। यह फिर से ध्यान देने योग्य है कि यह लचीली विनिमय दर प्रणाली के तहत विदेशी विनिमय दर में समायोजन है जो गारंटी देता है कि भुगतान संतुलन के चालू और पूंजी खातों का योग शून्य है।

पूरी तरह से लचीली विनिमय दर व्यवस्था का दूसरा महत्वपूर्ण परिणाम यह है कि इसके तहत केंद्रीय बैंक अपनी स्वतंत्र मौद्रिक नीति को आगे बढ़ा सकता है, यानी वह घरेलू अर्थव्यवस्था की जरूरतों के आकलन के अनुसार इच्छानुसार धन आपूर्ति का विस्तार या अनुबंध कर सकता है। चूंकि लचीली विनिमय दरों के तहत, केंद्रीय बैंक के लिए हस्तक्षेप करने की कोई बाध्यता नहीं है, इसलिए अर्थव्यवस्था में भुगतान संतुलन और धन आपूर्ति के बीच कोई संबंध नहीं है। मुंडेल-फ्लेमिंग मॉडल में पूर्ण पूंजी गतिशीलता की धारणा यह सुनिश्चित करती है कि केवल एक ब्याज दर पर जो विश्व ब्याज दर (i = i f) के बराबर है, भुगतान संतुलन शून्य है, यानी संतुलन में है (बीपी = 0)। इसके अलावा किसी भी ब्याज दर पर घरेलू अर्थव्यवस्था के लिए पूंजी प्रवाह पर इसके प्रभाव के माध्यम से वास्तविक विनिमय दर में बदलाव होता है।

यह मानते हुए कि वस्तुओं की घरेलू और विदेशी कीमतें (पी और पीएफ) स्थिर रहती हैं, विश्व ब्याज दर (यानी यदि एफ) के नीचे घरेलू ब्याज दर में गिरावट असीमित पूंजी बहिर्वाह का कारण बनेगी और पूर्व-परिवर्तन दर में मूल्यह्रास लाएगी। विनिमय दर शुद्ध निर्यात (एनएक्स) का एक निर्धारक है जो खुली अर्थव्यवस्था में कुल मांग को प्रभावित करती है और इसलिए खुली अर्थव्यवस्था आईएस वक्र का स्तर निर्धारित करती है (आईएस वक्र: वाई = (वाई, आई) + एनएक्स (वाई, वाई एफ आर) जहां आर का मतलब वास्तविक विनिमय दर और एनएक्स का मतलब शुद्ध निर्यात है)।

अब, पूंजी बहिर्प्रवाह के बाद विनिमय दर में मूल्यह्रास जब $i < i_f$ निर्यात बढ़ाएगा और आयात कम करेगा और शुद्ध निर्यात (एनएक्स) में वृद्धि का कारण बनेगा। शुद्ध निर्यात में वृद्धि 'एस' वक्र को दाईं ओर स्थानांतरित कर देगी और इससे राष्ट्रीय आय और उत्पादन प्रभावित होगा। इसके विपरीत, यदि $i > _{if}$, तो असीमित पूंजी प्रवाह होगा जिससे विनिमय दर में सराहना होगी जिससे निर्यात कम होगा और आयात बढ़ेगा और इस प्रकार शुद्ध निर्यात (एनएक्स) में कमी आएगी। विनिमय दर में सराहना के परिणामस्वरूप शुद्ध निर्यात (एनएक्स) में कमी आईएस वक्र में बाईं ओर बदलाव का कारण बनती है और इसलिए राष्ट्रीय आय और उत्पादन को प्रभावित करेगी।

वस्तुओं के व्यापार और पूंजी प्रवाह के संदर्भ में अंतरराष्ट्रीय संबंधों वाली छोटी खुली अर्थव्यवस्था में, लचीली विनिमय दर व्यवस्था के तहत हमारे खुले अर्थव्यवस्था मॉडल में निम्नलिखित तीन समीकरण शामिल हैं।

IS वक्र: $Y = A (Y, i) + NX (Y, Y_f, R)$ . . ।(मैं)

बीपी = एनएक्स (वाई, वाई $_{एफ}$ आर) + सीएफ (आई - आई $_{एफ}$)। . .(ii)

मैं = मैं $_{एफ}$ . . .(iii)

जहां सीएफ का मतलब पूंजी प्रवाह है।

लचीली विनिमय दर व्यवस्था के तहत एक छोटी खुली अर्थव्यवस्था के इस मुंडेल-फ्लेमिंग लिंकेज मॉडल के साथ हम निम्नलिखित कारकों और नीतियों के राष्ट्रीय आय (उत्पादन), ब्याज दर और विनिमय दर पर प्रभाव को नीचे समझाते हैं।1. निर्यात में बाहरी वृद्धि 2. राजकोषीय नीति 3. मौद्रिक नीति

लचीली विनिमय दर के तहत निर्यात में बाहरी वृद्धि: निर्यात में बाहरी वृद्धि का प्रभाव, मान लीजिए कि हमारे माल की विश्व मांग में वृद्धि के कारण, चित्र 25.4 में दिखाया गया है, प्रारंभ में, अर्थव्यवस्था Y 0 के बराबर राष्ट्रीय उत्पादन और ब्याज दर i के साथ बिंदु E पर संतुलन में है जो कि बराबर है विश्व ब्याज दर i_f ($i=i_f$). जब हमारे निर्यात में बाहरी वृद्धि होती है, तो आईएस वक्र आईएस के दाहिनी ओर स्थानांतरित हो जाता है।

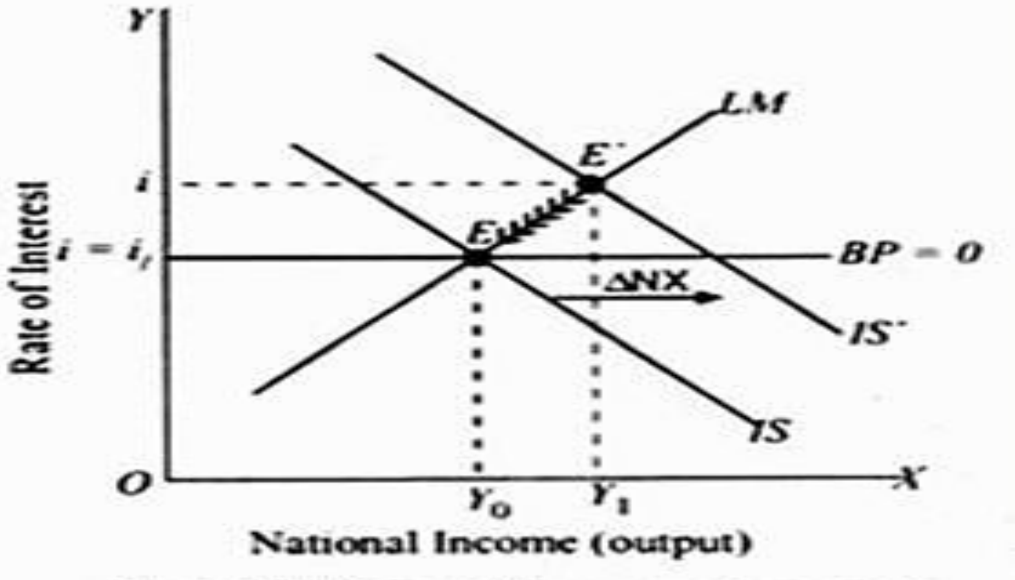

Fig. 25.4. *Effect of Exogenous Increase in Exports*

अब, नया आईएस 'वक्र एलएम वक्र को बिंदु ई' पर केंद्रित करता है, जहां सामान और मुद्रा बाजार दोनों स्पष्ट होते हैं। यह ध्यान दिया जा सकता है कि इस नए संतुलन बिंदु, ई' पर, राष्ट्रीय आय बढ़ती है। राष्ट्रीय आय में वृद्धि भी विश्व ब्याज दर की तुलना में संतुलन ब्याज दर में वृद्धि को प्रेरित करती है ।

इस उच्च घरेलू ब्याज दर से पूंजी प्रवाह को बढ़ावा मिलेगा जो विनिमय दर पर दबाव डालेगा। जैसा कि ऊपर देखा गया है, ये पूंजी प्रवाह घरेलू मुद्रा की सराहना का कारण बनेगा। विनिमय दर में बढ़ोतरी से हमारा निर्यात अपेक्षाकृत महंगा हो जाएगा और आयात पहले की तुलना में सस्ता हो जाएगा। परिणामस्वरूप, मांग घरेलू वस्तुओं से दूर हो गई और परिणामस्वरूप शुद्ध निर्यात (एनएक्स) में गिरावट आई।

चित्र 25.4 में, विनिमय दर की सराहना और परिणामस्वरूप शुद्ध निर्यात में गिरावट के कारण आईएस वक्र वापस बाईं ओर खिसक जाएगा। पूंजी प्रवाह जारी रहेगा और घरेलू मुद्रा की सराहना के परिणामस्वरूप शुद्ध निर्यात में गिरावट जारी रहेगी जब तक कि वक्र मूल स्तर आईएस पर वापस न आ जाए और राष्ट्रीय आय और आउटपुट का संतुलन स्तर ओए 0 स्तर पर बहाल न हो जाए जो मौद्रिक संतुलन के अनुरूप है ।

निष्कर्ष:

ऊपर से यह निष्कर्ष निकलता है कि पूर्ण पूंजी गतिशीलता की स्थितियों में, एक छोटी खुली अर्थव्यवस्था के निर्यात में वृद्धि का राष्ट्रीय आय और उत्पादन के संतुलन स्तर पर कोई स्थायी प्रभाव नहीं पड़ता है। शुद्ध निर्यात (एनएक्स) में वृद्धि से राष्ट्रीय आय के स्तर में वृद्धि के माध्यम से ब्याज दर में वृद्धि होती है। इससे पूंजी प्रवाह प्रेरित होता है जिसके परिणामस्वरूप विनिमय दर में वृद्धि होती है और शुद्ध निर्यात में कमी आती है। यह किसी देश के निर्यात में प्रारंभिक बाहरी वृद्धि के राष्ट्रीय आय पर प्रभाव को रद्द कर देता है।

लचीली विनिमय दर के तहत छोटी खुली अर्थव्यवस्था में विस्तारवादी राजकोषीय नीति का प्रभाव:

हम लचीली विनिमय दर प्रणाली के तहत एक छोटी खुली अर्थव्यवस्था में विस्तारवादी राजकोषीय नीति के प्रभाव का विश्लेषण करने के लिए मुंडेल-फ्लेमिंग लिंकेज मॉडल का उपयोग कर सकते हैं। विस्तारवादी राजकोषीय नीति का प्रभाव निर्यात में बाहरी वृद्धि के समान ही होता है। विस्तारवादी राजकोषीय नीति के तहत या तो सरकारी व्यय बढ़ाया जाता है या कर कम किये जाते हैं।

इस राजकोषीय विस्तार से कुल मांग में वृद्धि होती है और आईएस वक्र में दाईं ओर बदलाव होता है। यह, एलएम वक्र को देखते हुए, ब्याज दर को बढ़ाने के लिए प्रेरित करता है और अर्थव्यवस्था में पूंजी प्रवाह को आमंत्रित करता है। इन पूंजी प्रवाहों के परिणामस्वरूप विनिमय दर में वृद्धि होती है। उच्च ब्याज दर से प्रेरित विनिमय दर की इस सराहना से निर्यात में कमी और आयात में वृद्धि होती है। परिणामस्वरूप, शुद्ध निर्यात में कमी आती है जो राष्ट्रीय आय और उत्पादन पर राजकोषीय विस्तार के प्रभाव को पूरी तरह से समाप्त कर देती है।

हम अपने उपरोक्त विश्लेषण से एक महत्वपूर्ण निष्कर्ष पर पहुँचते हैं। निर्यात में बाहरी वृद्धि या सरकारी व्यय में विस्तार या कर कटौती जैसी वास्तविक गड़बड़ी, सही पूंजी गतिशीलता के साथ लचीली विनिमय दर प्रणाली के तहत एक छोटी खुली अर्थव्यवस्था में आय के संतुलन स्तर को प्रभावित नहीं करती है।

निश्चित विनिमय दर व्यवस्था के तहत, छोटी खुली अर्थव्यवस्था में विस्तारवादी राजकोषीय नीति राष्ट्रीय आय के स्तर को बढ़ाने में अत्यधिक प्रभावी है। हालाँकि, संपूर्ण पूंजी गतिशीलता की स्थितियों के साथ लचीली विनिमय दर प्रणाली के तहत, विस्तारवादी राजकोषीय नीति के परिणामस्वरूप कुल आय या आउटपुट का संतुलन स्तर अप्रभावित रहता है। लचीली विनिमय दर के तहत राजकोषीय विस्तार से विनिमय दर में वृद्धि होती है जिसके कारण निर्यात में कमी आती है और आयात में वृद्धि होती है और इस प्रकार घरेलू मांग की संरचना में विदेशी वस्तुओं की ओर और घरेलू वस्तुओं से दूर बदलाव होता है।

मुंडेल-फ्लेमिंग मॉडल: लचीली विनिमय दरों के तहत छोटी खुली अर्थव्यवस्था में विस्तारवादी मौद्रिक नीति:

विस्तारवादी राजकोषीय नीति के बिल्कुल विपरीत, मुंडेल-फ्लेमिंग मॉडल में लचीली विनिमय दर व्यवस्था के तहत विस्तारवादी मौद्रिक नीति राष्ट्रीय आय या उत्पादन के स्तर को बढ़ाने में अत्यधिक प्रभावी है। राष्ट्रीय उत्पादन के स्तर पर धन आपूर्ति में विस्तार का यह अनुकूल प्रभाव घरेलू मुद्रा की विनिमय दर में गिरावट के कारण आता है। चित्र 25.5 पर विचार करें जहां आईएस और एलएम से शुरू करें और बिंदु ई पर ब्याज घटता है और राष्ट्रीय आय का स्तर वाई $_{0}$ और ब्याज दर आई, (आई = आई $_{\text{एफ}}$) निर्धारित करें। अब, मान लीजिए कि मुद्रा आपूर्ति एम की नाममात्र मात्रा में वृद्धि हुई है। चूँकि हम मान रहे हैं कि वस्तुओं की कीमतें स्थिर रहती हैं, धन में वृद्धि वास्तविक धन शेष, एम/पी में वृद्धि लाएगी।

इसके साथ संतुलन बिंदु E पर, वास्तविक धन शेष की अतिरिक्त आपूर्ति होगी। संतुलन बहाल करने के लिए ब्याज दर कम करनी होगी या कुल आय बढ़ानी होगी। परिणामस्वरूप LM वक्र दाईं ओर नई स्थिति LM'

पर स्थानांतरित हो जाता है। नया LM' वक्र मूल IS वक्र को नए बिंदु E' पर काटता है। नए बिंदु E' पर, जबकि माल और मुद्रा बाजार संतुलन में हैं (प्रारंभिक विनिमय दर पर), ब्याज दर विश्व ब्याज दर से नीचे गिर गई है। इससे देश से पूंजी का बहिर्प्रवाह होगा।

इन पूंजी बहिर्प्रवाहों से विदेशी मुद्रा (जैसे अमेरिकी डॉलर) की आपूर्ति कम हो जाएगी और घरेलू मुद्रा का मूल्यह्रास हो जाएगा। घरेलू मुद्रा के अवमूल्यन से देश का निर्यात अपेक्षाकृत सस्ता हो जायेगा और आयात पहले की तुलना में महंगा हो जायेगा। इससे निर्यात में वृद्धि होगी और देश के आयात में कमी आएगी जिसके परिणामस्वरूप बड़ा शुद्ध निर्यात (एनएक्स) होगा।शुद्ध निर्यात (एनएक्स) में वृद्धि, जो कुल मांग का एक घटक है, आईएस वक्र को दाईं ओर स्थानांतरित कर देगा। बिंदु E' वास्तव में अंतिम संतुलन बिंदु नहीं है क्योंकि बिंदु E पर समायोजन प्रक्रिया पूरी नहीं हुई है। IS वक्र तब तक दाईं ओर खिसकता रहेगा जब तक कि वस्तु बाजार और मुद्रा बाजार का संयुक्त संतुलन ब्याज दर पर स्थापित न हो जाए जो कि बराबर है विश्व ब्याज दर.

चित्र 25.5 में ऐसा संतुलन बिंदु E” पर पहुंच जाता है, जिस पर नए LM और IS वक्र प्रतिच्छेद करते हैं और ब्याज दर निर्धारित करते हैं $i = i_f$। चित्र 25.5 से यह देखा जाएगा कि नए अंतिम संतुलन बिंदु E" पर, राष्ट्रीय आय (या कुल उत्पादन) का स्तर Y_1 प्रारंभिक आय Y_0 से अधिक है।

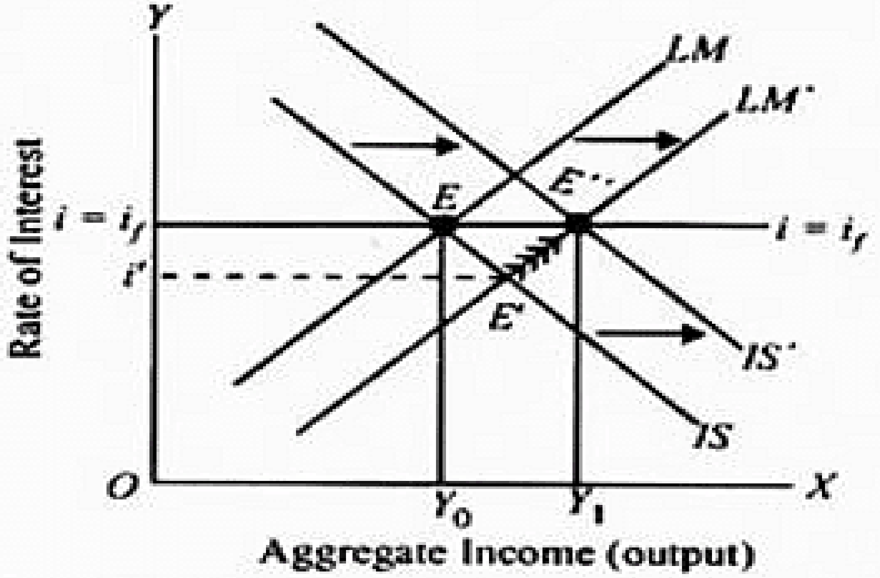

Fig. 25.5. *Mundell Fleming Model : Effect of Expansion in Money Supply on Level of Income or Output in a Small Open Economy under Flexible Exchange Rate System*

तुलना:

छोटी खुली अर्थव्यवस्था के मामले में लचीली दर प्रणाली के तहत मुद्रा आपूर्ति में विस्तार के प्रभाव की तुलना निश्चित विनिमय दर व्यवस्था के तहत करना दिलचस्प है। निश्चित विनिमय दर व्यवस्था के तहत विस्तारवादी मौद्रिक नीति राष्ट्रीय आय या कुल उत्पादन बढ़ाने में काफी अप्रभावी है। मुद्रा आपूर्ति बढ़ाने का कोई भी प्रयास ब्याज दर को विश्व ब्याज दर से कम कर देता है जिससे असीमित पूंजी बहिर्वाह होता है। ये पूंजी बहिर्वाह धन आपूर्ति में वृद्धि को उलट देते हैं ताकि अंततः अर्थव्यवस्था का संतुलन आय या आउटपुट के प्रारंभिक स्तर पर बहाल हो जाए।

दूसरी ओर, लचीली विनिमय दर प्रणाली के तहत जहां सेंट्रल बैंक हस्तक्षेप नहीं करता है, मुद्रा आपूर्ति में वृद्धि, जैसा कि ऊपर देखा गया है, विदेशी मुद्रा बाजार में उलट नहीं होती है। विश्व ब्याज दर से नीचे ब्याज दर में गिरावट के बाद विदेशी मुद्रा बाजार में होने वाले पूंजी बहिर्वाह से घरेलू मुद्रा का मूल्यह्रास होता है।

इस मूल्यह्रास के कारण निर्यात में वृद्धि होती है और आयात में गिरावट आती है जिसके परिणामस्वरूप शुद्ध निर्यात (एनएक्स) में वृद्धि होती है। परिणामस्वरूप, आय या उत्पादन में विस्तार वास्तव में निश्चित कीमतें मानकर होता है। इस प्रकार, लचीली विनिमय दर के तहत धन आपूर्ति को नियंत्रित करने की केंद्रीय बैंक की क्षमता लचीली विनिमय दर प्रणाली का एक महत्वपूर्ण प्रभाव है।

मुंडेल-फ्लेमिंग मॉडल का मुख्य संदेश :

मुंडेल-फ्लेमिंग मॉडल का मुख्य संदेश यह है कि किसी भी आर्थिक नीति (राजकोषीय, मौद्रिक या व्यापार) का प्रभाव विचाराधीन देश की विनिमय दर प्रणाली पर निर्भर करता है, अर्थात, देश एक निश्चित या अस्थायी विनिमय दर का पालन कर रहा है या नहीं। प्रणाली। तालिका 12.1 मुंडेल-फ्लेमिंग मॉडल में तीन अलग-अलग नीतियों के प्रभावों का सारांश प्रस्तुत करती है।

तालिका: 12.1 मुंडेल-फ्लेमिंग मॉडल में तीन प्रकार की नीतियों के प्रभाव

Exchange Rate System

	Floating			Fixed		
	Impact on					
Policy	Y	e	NX	Y	e	NX
Fiscal (G rises, T falls)	—	↑	↓	↑	—	—
Monetary (M rises)	↑	↓	↑	—	—	—
Trade (Imports fall)	—	↑	—	↑	—	↑

Note : The sign — implies no effect; ↑ implies a rise and ↓ implies a fall

मुंडेल-फ्लेमिंग मॉडल दिखाता है कि किसी वांछित व्यापक आर्थिक उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए मौद्रिक, राजकोषीय और व्यापार नीतियों का उचित उपयोग कैसे किया जाए। इन नीतियों का प्रभाव विनिमय दर प्रणाली पर निर्भर करता है। फ्लोटिंग विनिमय दर प्रणाली के तहत, केवल मौद्रिक नीति ही राष्ट्रीय आय में परिवर्तन कर सकती है।

विस्तारवादी राजकोषीय नीति का प्रभाव मुद्रा की सराहना से पूरी तरह निष्प्रभावी हो जाता है। निश्चित विनिमय दर प्रणाली के तहत, केवल राजकोषीय नीति ही Y को बदल सकती है। केंद्रीय बैंक धन आपूर्ति पर नियंत्रण खो देता है क्योंकि विनिमय दर को पूर्व निर्धारित स्तर पर बनाए रखने के लिए इसे ऊपर या नीचे समायोजित करना पड़ता है।

5.6 परिवर्तनशील तथा स्थिर विनिमय दरें तथा भुगतान संतुलन

मौद्रिकवादियों का यह मानना है कि भुगतान–संतुलन का असंतुलन **एक अस्थायी परिघटना है जो की मुद्रा बाज़ार में** असंतुलन के कारण बनी रहती है। दीर्घकाल में यह स्वतः ही समाप्त हो जाता है। एक देश के भुगतान–संतुलन में अतिरेक मुद्रा मांग में आधिक्य और भुगतान संतुलन का घाटा मुद्रा–स्टॉक की पूर्ति में आधिक्य का परिणाम हैं। स्थिर विनिमय दरों के अंर्तगत भुगतान–संतुलन का असंतुलन अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा प्रवाह का परिणाम है जबकि परिवर्तनशील विनिमय दरों के अंर्तगत भुगतान–संतुलन का असंतुलन बिना अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा प्रवाह के उत्पन्न होता है और समाप्त होता है। भुगतान–संतुलन **के** असंतुलन **के समायोजन के मौदिक उपगाम के अध्ययन से पहले आप यह जानेगें की** स्थिर **तथा** परिवर्तनशील विनिमय दरों **की प्रणाली के अंतरगत** भुगतान–संतुलन **के** असंतुलन **का समायोजन किस प्रकार से होता है.**

14.3.1 परिवर्तनशील विनिमय दरें तथा भुगतान संतुलन – परिवर्तनशील विनिमय दरें विदेशी विनिमय बाजार में विदेशी विनिमय की मांग तथा पूर्ति के शक्तियों के द्वारा निर्धारित होती है तथा इसमें मौद्रिक

प्राधिकरण का कोई हस्तक्षेप नहीं होता है। परिवर्तनशील विनिमय दरों के अंतर्गत समायोजन प्रक्रिया किसी व्यक्तिगत देश के किसी आन्तरिक समायोजन पर निभर नहीं करती है। बल्कि यह विनिमय दर में परिवर्तनों पर आधारित है। विनिमय दरों में परिवर्तन देश की भुगतान–संतुलन की बदलती हुई स्थिति के अनुरूप विदेशी विनिमय की मांग और पूर्ति की दशाओं में परिवर्तन के फलस्परूप स्वतः ही उत्पन्न होता है। यहाँ सरकारी या राज्य हस्तक्षेप के लिए कोई स्थान नहीं है और न ही संतुलन उत्पन्न करने के लिए समायोजक पूँजी लेन–देन (अंतर्राष्ट्रीय तरलता खाता) की आवश्यकता है।

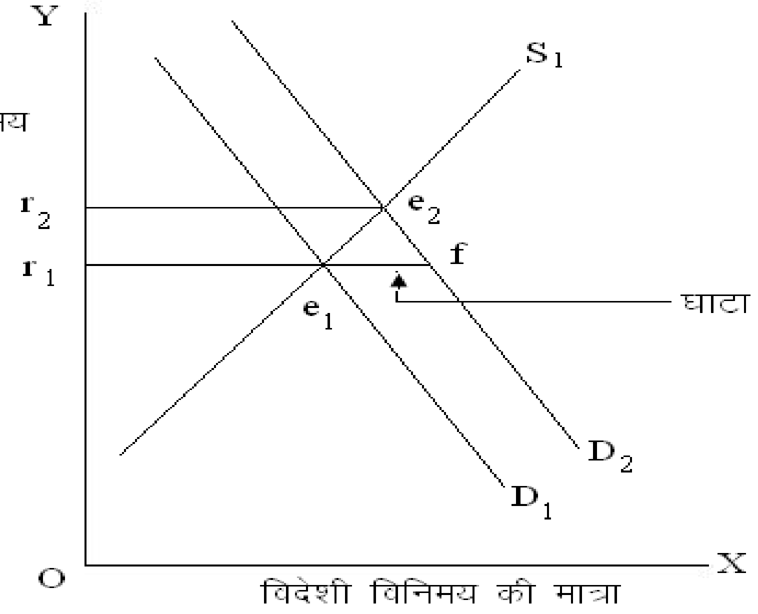

चित्र 14.1

चित्र 14.1 में भुगतान–संतुलन का प्रारम्भिक संतुलन e बिन्दु पर है। जहाँ विदेशी विनिमय की मांग और पूर्ति आपस में बराबर है। बिन्दु e_1 पर विदेशी विनिमय की मांग वक्र D_1 पूर्ति वक्र S_1 को काटता है। यदि किन्हीं कारणों से (आयात प्रवृत्ति बढ जाने, आयात बढ़ने इत्यादि) मांग वक्र ऊपर की ओर विवर्तित हो जाता है या फिर निर्यातों के कम होने से निर्यात–अर्जन में कमी आने से विदेशी विनिमय पूर्ति वक्र ऊपर की ओर खिसक जाता है तो भुगतान–संतुलन में घाटा उत्पन्न हो जाता है।

चित्र 14.1 में मांग वक्र के ऊपर विवर्तित हो जाने से संतुलन बिन्दु e_1 से e_2 पर आ जा रहा है। विदेशी विनिमय की मांग बढ़ जाने से विदेशी विनिमय बाजार में e_1f के बराबर घाटा हो जाता है। परन्तु परिवर्तनशील विनिमय दरों के कारण नया संतुलन e_2 पर हो जा रहा है तथा विनिमय दर R_1 से R_2 हो जा रही है। अर्थात् विदेशी विनिमय दर के मूल्य में वृद्धि या घरेलू मुद्रा के मूल्य में मूल्य ह्रास के द्वारा भुगतान–संतुलन का घाटा स्वतः ही दूर हो जाता है। इसी प्रकार भुगतान–संतुलन का अतिरेक विदेशी विनिमय दर में मूल्य ह्रास या घरेलू मुद्रा के अधिमूल्यन के द्वारा स्वतः ही दूर हो जाएगा।

14.3.2 स्थिर विनिमय दरें तथा भुगतान संतुलन – इस व्यवस्था के अंतर्गत विदेशी विनिमय बाजार में सरकार या राज्य का पूरा हस्तक्षेप रहता है। बाजार विनिमय दर एक दी हुई संतुलन स्तर पर स्थिर रहती है यदि मांग और पूर्ति की शक्तियाँ इस संतुलन को बिगाडती हैं या सट्टेबाजी की गतिविधियाँ इस संतुलन को बिगाडती है तो सरकार इसमे हस्तक्षेप करती है और इस संतुलित विनिमय दर को बनाए रखती है। सरकार विदेशी विनिमय के क्रय या विक्रय के माध्यम से ऐसा करती है।

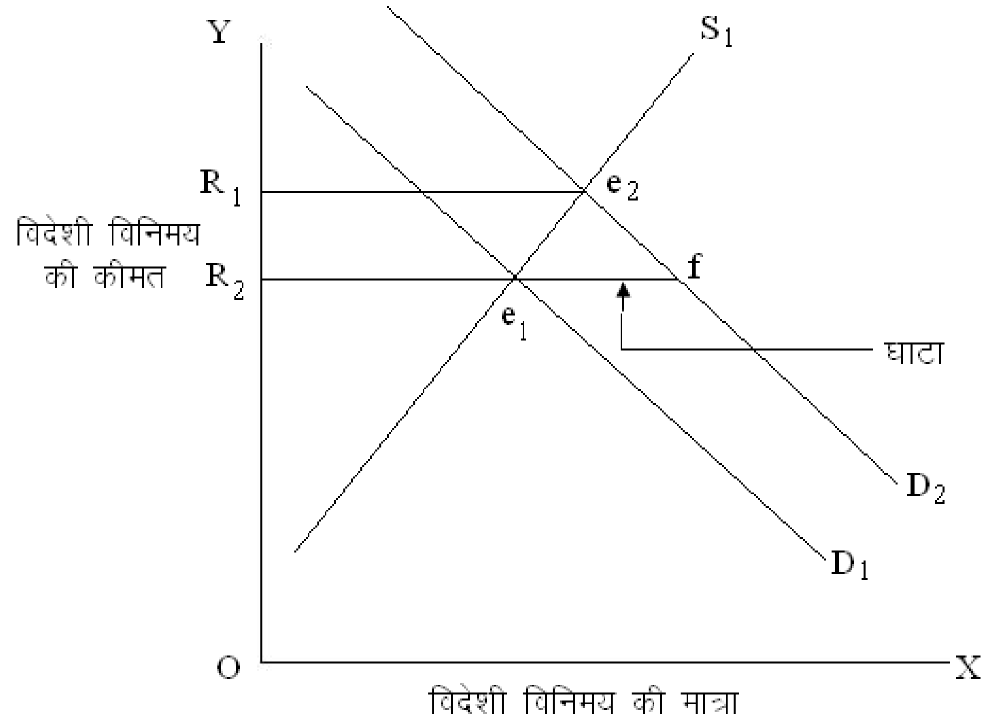

चित्र 14.2

चित्र 14.2 में R_0 विनिमय दर संतुलित विदेशी विनिमय बाजार को बताती है। जहाँ विदेशी विनिमय की मांग और पूर्ति बराबर है। यदि आयातों में वृद्धि के कारण मांग वक्र ऊपर की ओर विवर्तित हो जाता है या निर्यातों में कमी के कारण पूर्ति–वक्र ऊपर की ओर विवर्तित हो जाता है तो विदेशी विनिमय बाजार में घाटा होगा।

चित्र में 14.2 मांग वक्र ऊपर की ओर विवर्तित होकर D_1 से D_2 हो जाता है। परिवर्तनशील विनिमय दरों की **स्थिति में** यह घाटा घरेलू मुद्रा में मूल्यह्रास के द्वारा स्वतः ही समाप्त हो जाएगा और नयी विनिमय दर R_0 से R_1 हो जाएगी। परन्तु यदि सरकार विनिमय दर को R_0 पर स्थिर रखना चाहती है तो उतनी ही मात्रा में विदेशी विनिमय (e_1f के बराबर) विदेशी मुद्रा बाजार में बेचेगी। इस घाटे को समाप्त करने के लिए सरकार भुगतान–संतुलन के समायोजन खाते का सहारा लेती है। सरकार निम्नलिखित तीन संभव उपायों द्वार इस घाटे या अन्तराल को पूरा करेगी–

(i) अपने पहले के विदेशी मुद्रा भण्डार में कमी करेगी,

(ii) दूसरे देशों या संस्थानों से उधार लेगी,

(iii) सोने का निर्यात करेगी।

इन उपायों में से किसी एक या तीनों के संयोग के द्वारा सरकार घाटे को समाप्त कर विनिमय दर R_0 पर बनाए रख सकती है। यह वास्तव में भुगतान–संतुलन के घाटे को व्यवस्थित (settlement) करना है।

इसी प्रकार भुगतान–संतुलन में अतिरेक होने पर विदेशी विनिमय दर को स्थिर बनाए रखने के लिए सरकार विदेशी विनिमय बाजार में विदेशी मुद्रा को खरीदेगी और इसके लिए वह समायोजन लेन–देन के अंतर्गत सोने का आयात, अपने विदेशी मुद्रा भण्डार में वृद्धि या वाह्य उधार देने जैसे उपायों का सहारा ले सकती है।

5.7 मौद्रिक और राजकोषीय नीतियाँ तथा भुगतान संतुलन

भुगतान शेष के असंतुलन विशेष रूप से घाटे का समयोजन किसी भी देश के विदेशी मुद्रा रिजर्वो के उसके भंडार पर निर्भर करती है. और फिर बाह्य संतुलन के साथ साथ आतंरिक संतुलन के लिए भी देश हमेशा प्रयासरत रहते है. इसलिए सरकारे नीतिगत यंत्रों के माध्यम से भुगतान शेष के असंतुलन समयोजन का प्रयास करतें हैं. बाह्य आतंरिक संतुलन प्राप्त करने के लिए मौद्रिक तथा राजकोषीय नीतियों की भूमिका काफी प्रभावी होती है. ये व्ययकारी नीतियाँ होती हैं जो की अर्थव्यवस्था में कुल में परिवर्तन लाकर भुगतान शेष को प्रभावित करती हैं. यहाँ यह महत्वपूर्ण है की भुगतान शेष के असंतुलन को दूर करने में मौद्रिक निति अधिक प्रभावी और निश्चित परिणाम वाली होती है. राजकोषीय नीति के ठीक विपरीत मौद्रिक नीति के भुगतान–संतुलन पर पड़ने वाले प्रभाव बिल्कुल सीधे–सीधे और स्पष्ट है। यह बिल्कुल स्पष्ट है कि एक विस्तारक मौद्रिक नीति या मुद्रा–पूर्ति में वृद्धि भुगतान–संतुलन में घाटा लाएगी तथा संकुचनकारी मौद्रिक नीति या मुद्रा–पूर्ति में कमी भुगतान–संतुलन में अतिरेक लाएगी। इसलिए मौद्रिक उपागम से पहले आपको मौद्रिक नीति के भुगतान–संतुलन पर पड़ने वाले प्रभाओं तथा उसकी सापेक्षिक प्रभावित को जानना जरूरी है.

मौद्रिक नीति, मुद्रा–पूर्ति (M_s) तथा ब्याज दर (i) में परिवर्तन के द्वारा अर्थव्यवस्था पर प्रभाव डालती है। जबकि राजकोषीय नीति सरकारी व्यय (G) तथा करों (T) के द्वारा अर्थव्यवस्था में प्रभावित करती है। इन नीतियों के माध्यम से व्यय में परिवर्तन के द्वारा भुगतान–शेष के घाटे को दूर किया जा सकता है। हम मौद्रिक तथा राजकोषीय नीतियों के भुगतान–शेष पर प्रभाव जानने के लिए IS (निवेश–बचत) वक्र, LM (मुद्रा की मांग तथा पूर्ति) वक्र तथा BB (भुगतान–शेष) वक्र का प्रयोग करेंगे। IS वक्र राष्ट्रीय आय (Y) तथा ब्याज दर (i) के उन संयोगो को बताता है जो कि निवेश (I) तथा बचत (S) की समानता को प्रस्तुत करते हैं।

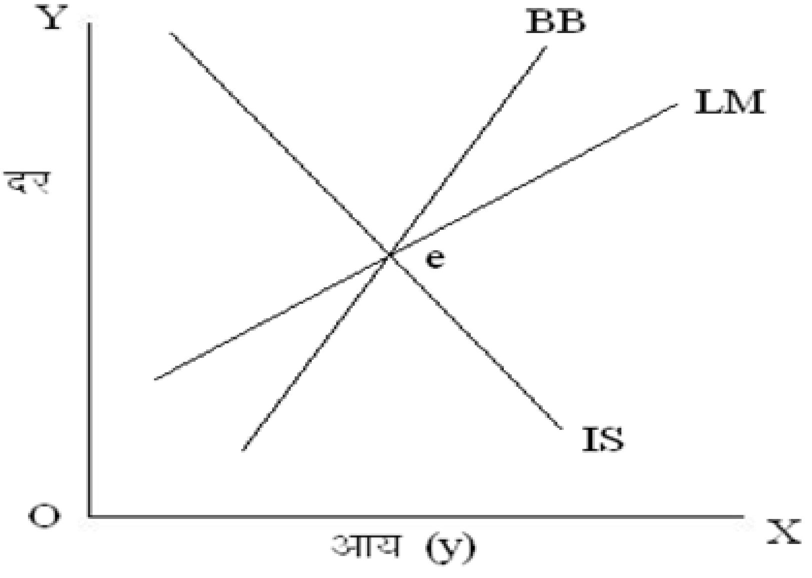

चित्र 14.3

LM वक्र मुद्रा की मांग तथा पूर्ति की समानता को दर्शाने वाले राष्ट्रीय आय तथा ब्याज दर के विभिन्न संयोग को बताते हैं; जबकि BB वक्र राष्ट्रीय आय तथा ब्याज दर के उन संयोगों को बताता है जो कि भुगतान शेष में सतुलन को दर्शाते हैं।राष्ट्रीय आय में वृद्धि से आयात में वृद्धि होती है जिससे भुगतान–संतुलन का घाटा बढ़ता है। जबकि ब्याज में वृद्धि से विदेशी निवेश आकर्षित होता है और देश में पूँजी के अंर्तप्रवाह बढ़ने से भुगातन–शेष का घाटा कम होता है।

चित्र 14.3 में BB वक्र के बायीं ओर कोई भी बिन्दु भुगतान–संतुलन में अतिरेक को दर्शाता है जबकि BB वक्र के को दायीं ओर नीचे की तरफ कोई बिन्दु भुगतान–संतुलन में घाटा को प्रदर्शित करता है। सरकारी ब्याज (G) में वृद्धि होने या कर (T) में कमी होने से IS वक्र दायीं ओर ऊपर सरक जाता है

जबकि सरकारी ब्यय में कमी या करों में वृद्धि से IS वक्र नीचे की ओर विवर्तित हो जाता है। इसी प्रकार मुद्रा–पूर्ति में वृद्धि होने पर LM वक्र नीचे की ओर विवर्तित हो जाता है जबकि मुद्रा–पूर्ति मे कमी होने पर LM वक्र ऊपर की ओर विवर्तित हो जाता है।

अब हम भुगतान–संतुलन के असंतुलन को दूर करने में राजकोषीय और मौद्रिक नीतियों की प्रभाविता की विवेचना करेंगे।

राजकोषीय नीति तथा भुगतान–संतुलन

मान लिया अर्थव्यवस्था में प्रारम्भिक संतुलन की स्थिति है। चित्र 14.4 में बिन्दु e पर IS-LM-BB वक्र एक दूसरे को काटते हैं। अर्थात् e बिन्दु पर अर्थव्यवस्था में आन्तरिक तथा वाह्य दोनों संतुलन विद्यमान है।

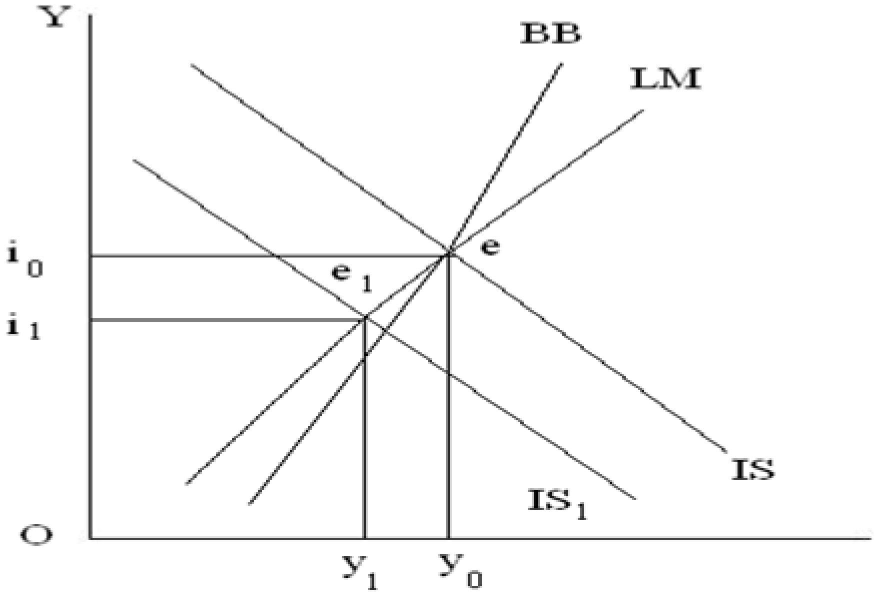

चित्र 14.4 A

माना कि सरकार संकुचनकारी राजकोषीय निति अपनाती है ओर सरकारी व्यय में कमी करती है। सरकारी व्यय (G) में कमी से IS वक्र नीचे की ओर सरक कर IS_1 हो जाता (चित्र 14.4) है और LM वक्र को e_1 बिन्दु पर काटता है। नए संतुलन बिन्दु पर आय कम होकर y_1 तथा ब्याज दर कम होकर i_1 हो जाती है। सरकारी व्यय में कमी से राष्ट्रीय आय (y) में कमी होगी तथा आय में कितनी कमी होगी यह गुणक के मान पर निर्भर करता है।

व्यय में वृद्धि होने पर ब्याज दर (i) में भी वृद्धि होगी क्योंकि सरकारी व्यय में वृद्धि से निजी निवेश के लिए फण्ड (कोष) की उपलब्धता कम हो जाएगी, जिससे फण्ड या पूंजी की कीमत अर्थात् ब्याज दर मे वृद्धि हो जाएगी।

सरकारी ब्यय में परिवर्तन का भुगतान–संतुलन पर क्या प्रभाव पडेगा यह भुगतान–संतुलन वक्र (BB) की लोच पर निर्भर करेगा। यदि BB वक्र LM वक्र की अपेक्षा अधिक बेलोचदार या तिरछा है तो सरकारी व्यय में कमी होने पर भुगातन शेष में अतिरेक उत्पन्न होगा (चित्र 14.4A) जबकि यदि LM वक्र BB वक्र की अपेक्षा अधिक तिरछाा है अर्थात् BB वक्र, LM वक्र की अपेक्षा अधिक लोचदार है (चित्र 14.4B) तो सरकारी व्यय में कमी से भुगतान–संतुलन का घाटा होगा। इस प्रकार व्यय परिवर्तन का भुगातन–संतुलन पर प्रभाव LM वक्र के सापेक्षा BB वक्र के ढाल पर निर्भर करेगा।

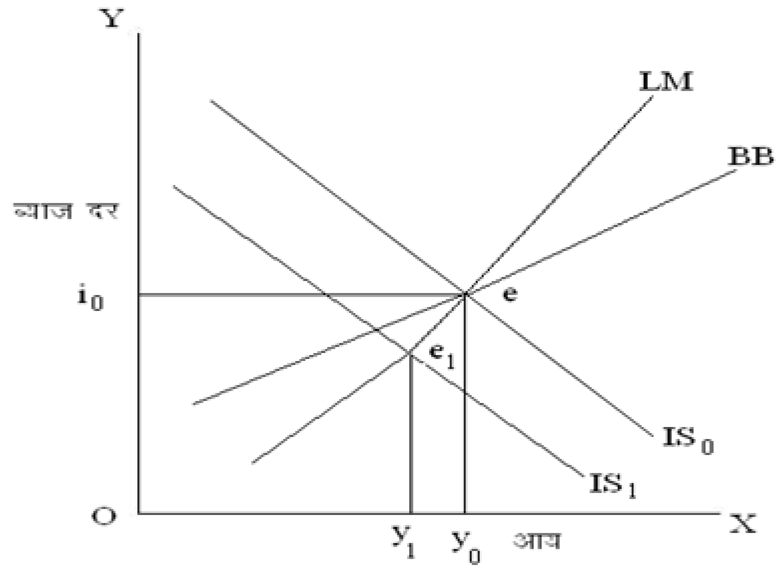

चित्र 14.4 B

सरकारी व्यय में कमी से आय मे कमी आएगी और फलस्वरूप आयातों में भी कमी आएगी। आयातों में कितनी कमी होगी यह सीमान्त आयात प्रवृत्ति पर निर्भर करेगी। स्पष्ट है कि आयातों में कमी से भुगतान–संतुलन की स्थिति में सुधार होगा अर्थात् चालू खाते में घाटे में कमी आएगी। परन्तु सरकारी व्यय में कमी का दूसरा प्रभाव यह होगा कि ब्याज–दर (i) में भी कमी आएगी जिससे देश में शृद्ध पूँजी प्रवाह में कमी आएगी, यह कमी कितनी होगी यह पूँजी प्रवाह के ब्याज–लोच पर निर्भर करेगा। किसी भी स्थिति में ब्याज–दर में कमी से पूँजी के अंर्तप्रवाह में हुई कमी, भुगतान–संतुलन के पूँजी खाते पर नकारात्मक प्रभाव डालेगी।

इस प्रकार व्यय में कमी से भुगतान संतुलन पर अंतिम प्रभाव क्या होगा यह इस बात पर निर्भर करेगा कि आय में कमी से आयात में कमी का प्रभाव अधिक सशक्त है या ब्याज–दर में कमी से पूँजी के अंर्तप्रवाह मे कमी का प्रभाव अधिक सशक्त है। यदि आयात में कमी से चालू खाते का अतिरेक पूँजी खाते के घाटे से अधिक सशक्त है तो भुगतान–संतुलन में अतिरेक होगा (चित्र 14.5A) और यदि पूँजी खाते का घाटा, चालू खाते के अतिरेक से अधिक है तो भुगतान–संतुलन में घाटा होगा (चित्र 14.5)। यह बात इस तथ्य से भी स्पष्ट है कि चित्र 14.5A में, बिन्दु e_1 वक्र BB में बायीं तरफ है जबकि चित्र 14.5B में बिन्दु e_1 वक्र के दायीं तरफ है।

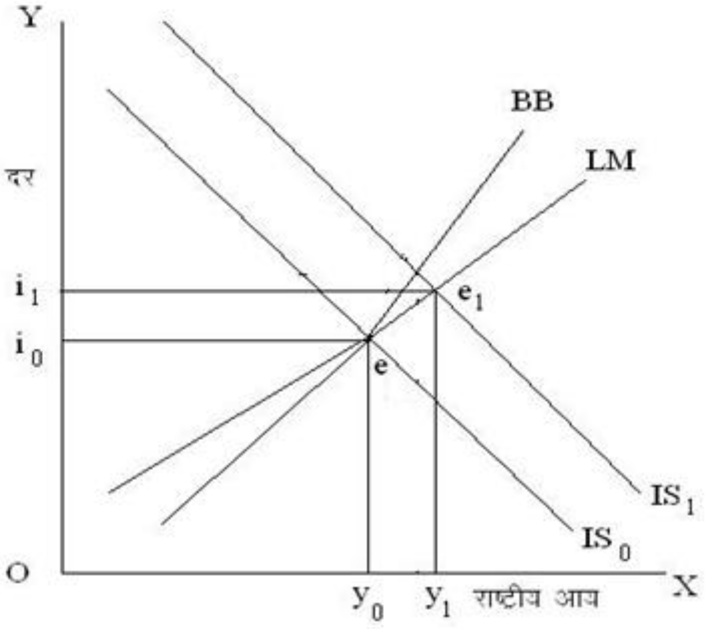

चित्र 14.5A

इसी प्रकार, सरकारी व्यय में वृद्धि से IS वक्र ऊपर दायीं ओर विवर्तित हो जाएगा जिससे नया संतुलन e से e_1 पर हो जाएगा और आय तथा ब्याज दर दोनों बढ़ जाएगी (चित्र 14.6)। आय के बढ़ने पर आयातों में वृद्धि होगी जिससे चालू खाते का घाटा बढ़ेगा जबकि ब्याज दर (i) बढ़ने से पूँजी का अंर्तप्रवाह बढ़ेगा जिससे पूँजी खाता में अतिरेक उत्पन्न होने की प्रवृत्ति होगी। यदि धनात्मक चालू खाते का घाटा, पूँजी खाते के अतिरेक से अधिक है तो भुगतान–संतुलन में घाटा (चित्र 14.6A) होगा और यदि पूँजी खाते का अतिरेक चालू खाते के घाटा से अधिक हो जाता है तो भुगतान–संतुलन में अतिरेक होगा (चित्र 14.6B)।

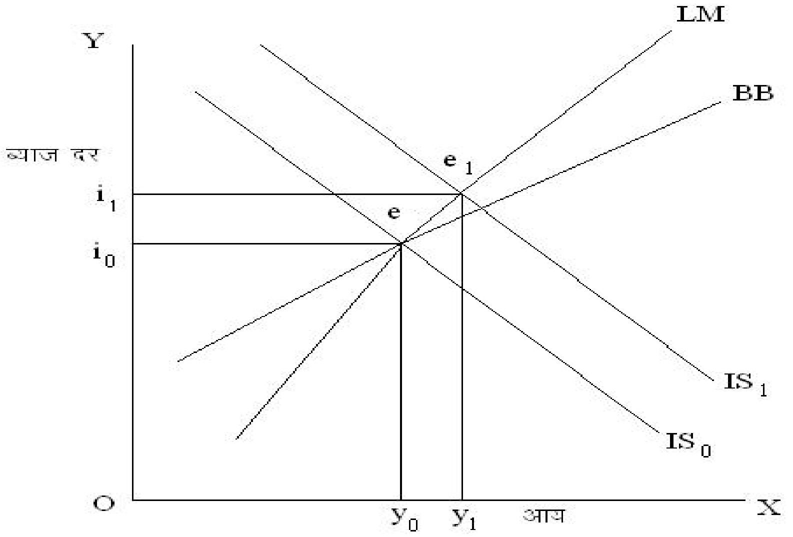

चित्र 14.5 B

इस प्रकार, आपने देखा कि यह स्पष्ट है कि राजकोषीय उपायों का भुगतान संतुलन पर क्या प्रभाव होगा, यह इस पर निर्भर करेगा कि LM वक्र के सापेक्ष भुगतान–संतुलन का ढाल क्या

होगा। दूसरे शब्दों में, यदि आय गुणक, आयात की सीमान्त प्रवृत्ति और पूँजी प्रवाहों की ब्याज–लोच ज्ञात हो तो सरकार ब्यय में परिवर्तन के भुगतान संतुलन पर प्रभावों को जाना जा सकता है।

मौद्रिक नीति तथा भुगतान–संतुलन

राजकोषीय नीति के ठीक विपरीत मौद्रिक नीति के भुगतान–संतुलन पर पड़ने वाले प्रभाव बिल्कुल सीधे–सीधे और स्पष्ट है। यह बिल्कुल स्पष्ट है कि एक विस्तारक मौद्रिक नीति या मुद्रा–पूर्ति में वृद्धि भुगतान–संतुलन में घाटा लाएगी तथा संकुचनकारी मौद्रिक नीति या मुद्रा–पूर्ति में कमी भुगतान–संतुलन में अतिरेक लाएगी, चाहे LM वक्र तथा BB वक्र का ढाल कुछ भी हो।

चित्र 14.6 में IS और LM वक्र के कटान बिन्दु e_0 पर संतुलन है जबकि ब्याज दर i_0 तथा राष्ट्रीय आय y_0 है। मुद्रा पूर्ति में कमी से LM वक्र ऊपर बायीं ओर विवर्तित हो जाएगा जिससे नया संतुलन e_2 पर हो जाता है। जहाँ ब्याज दर बढ़कर i_1 तथा राष्ट्रीय आय घटकर y_1 हो जाती है। e_1 बिन्दु BB वक्र के बायीं ओर स्थित है इसलिए भुगतान–संतुलन में अतिरेक है। स्पष्ट है कि BB वक्र तिरछा है या चपटा, LM वक्र के मुकाबले, e_2 बिन्दु BB वक्र में बायीं ओर ही होगा। अर्थात् मुद्रा–पूर्ति में कमी से स्पष्ट भुगतान–संतुलन में अतिरेक होगा।

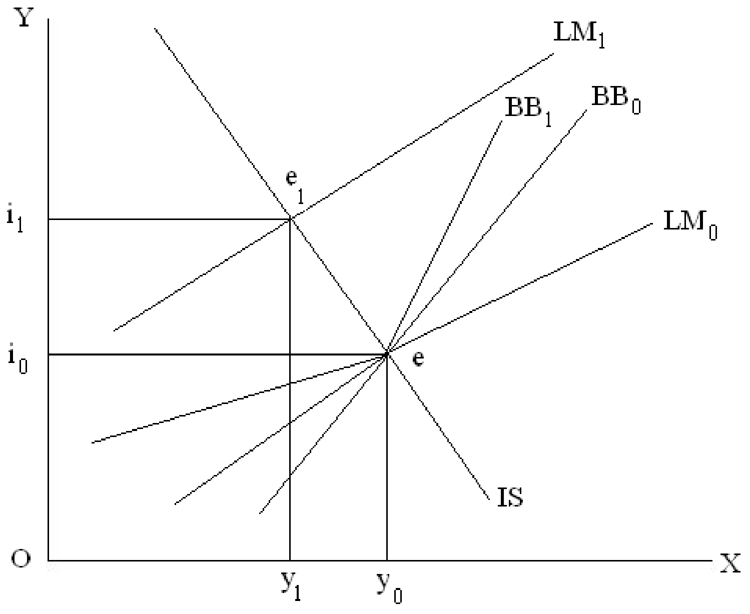

चित्र 14.6 A

मुद्रा–पूर्ति में कमी से आय में कमी होगी जिससे आयात में कमी होगी और चालू खाते के घाटे में आधिक्य या अतिरेक आएगा। दूसरी तरफ मुद्रा–पूर्ति में कमी से ब्याज–दर में वृद्धि हागी जिससे पूँजी का अंर्तप्रवाह बढ़ेगा और पूँजी खाते का अतिरेक बढ़ेगा। इस प्रकार, मुद्रा–पूर्ति में कमी से राष्ट्रीय आय में कमी और ब्याज–दर में वृद्धि दोनों का ही प्रभाव भुगतान–संतुलन का अतिरेक उत्पन्न करने वाला होगा।

परन्तु भुगतान–संतुलन अतिरेक से अर्थव्यवस्था में मुद्रा पूर्ति में वृद्धि होती है और संतुलन e_1 बिन्दु पर नहीं बना रहता है। मुद्रा–पूर्ति में वृद्धि से LM_1 वक्र दायीं ओर खिसक कर पुनः LM_0 की स्थिति में आ जाएगा और इस स्थिति में भुगतान–संतुलन का अतिरेक समाप्त हो जाएगा।

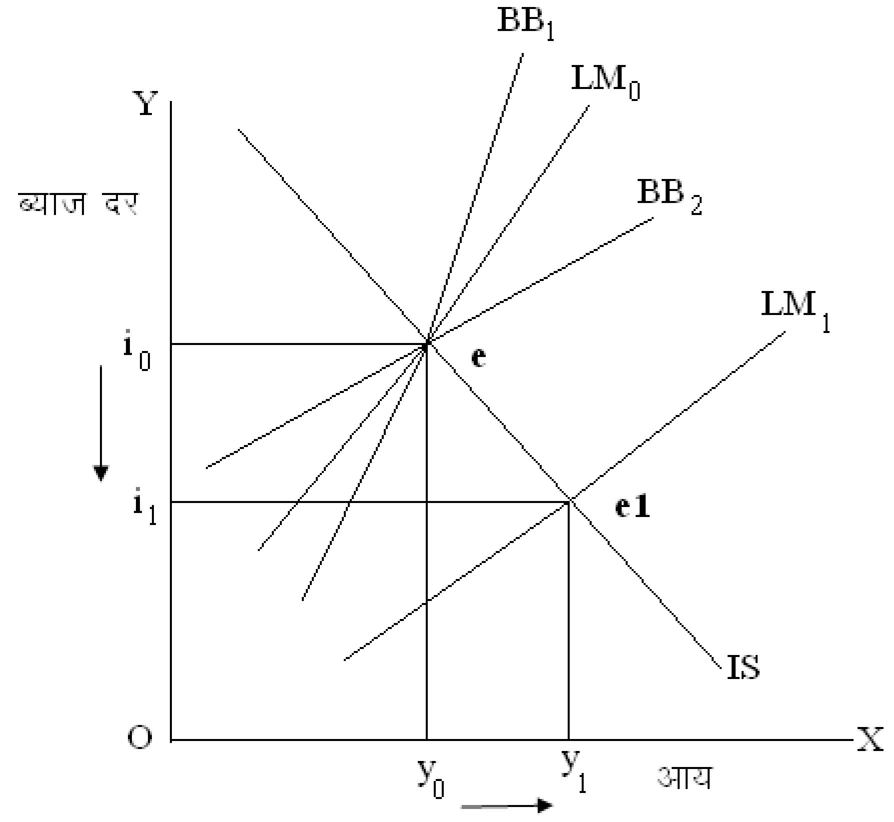

चित्र 14.6 B

चित्र 14.6 B मुद्रा–पूर्ति में वृद्धि से LM_0 वक्र दायीं तरफ नीचे की ओर खिसक आता है जिससे संतुलन e से e_1 पर आ जाता है जिससे आय बढ़कर y_1 तथा ब्याज दर घटकर i_1 हो जाती है। e_1 बिन्दु BB वक्र के दायीं ओर स्थित है अर्थात् भुगतान शेष में घाटा होगा। वास्तव में, मुद्रा–पूर्ति में वृद्धि के कारण आय में हुई वृद्धि से आयातों में वृद्धि होगी जिससे चालू खाते का घाटा बढ़ेगा जबकि ब्याज दर में कमी से पूँजी का बर्हिप्रवाह होगा जिसके कारण पूँजी खाते में घाटा होगा। इस प्रकार, कुल भुगतान–संतुलन में घाटा उत्पन्न होने की प्रवृत्ति होगी।

उपरोक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि भुगतान–संतुलन के घाटे को दूर करने मे राजकोषीय उपायों की प्रभाविता अनिश्चित है जबकि मौद्रिक उपायों की प्रभाविता बिल्कुल स्पष्ट है। एक संकुचनकारी मौद्रिक नीति या मुद्रा–पूर्ति में कमी निश्चित ही भुगतान–संतुलन के घाटे को दूर करने में प्रभावी होती है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि भुगतान–संतुलन के घाटे को दूर करने में मौद्रिक नीति का प्रयोग करना उचित होगा। ऐसी स्थिति में राजकोषीय नीति का प्रयोग आन्तरिक संतुलन लाने अर्थात् पूर्ण रोजगार तथा कीमतों मे स्थिरता लाने के लिए किया जा सकता है। जिससे कि भुगतान–संतुलन के घाटे को दूर करने में मौद्रिक नीति अधिक प्रभावी हो सके।

5.8सारांश

5.9 शब्दावली

5.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. H. G. Mannur, *International Economics* ,Vikas Publishing House Pvt. Ltd. 2001
2. Bo Sodersten, International Economics ,Macmillan, 1999
3. Dominik Salvatore, International Economics, John Willy & Sons, Inc., 2008
4. सुदामा सिंह एवं एम०सी० वैश्य, अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, ऑक्सफ़ोर्ड एंड आई०बी०एच० पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2007
5. एम०एल०झिंगन, अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, वृंदा पब्लिकेशन, दिल्ली, 2010.
6. ज्ञानेंद्र सिंह कुशवाहा, अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, दि मैकमिलन कंपनी आफ इंडिया लिमिटेड, नई दिल्ली,1979.

5.11 अभ्यास प्रश्न

खण्ड–5 : अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाएँ क्षेत्रीय सहयोग एवं भारत का व्यापार

इकाई–1 : अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष, विश्व बैंक एवं सम्बद्ध संस्थाएं

इकाई की रूपरेखा :–

- उद्देश्य
- प्रस्तावना
- I.M.F. की स्थापना
- I.M.F. की प्रशासनिक संरचना
- I.M.F. के कार्य
- I.M.F. की सदस्यता
- I.M.F. के सदस्य देशों को प्राप्त ऋण
- S.D.R
- I.M.F. की शर्ते
- I.M.F. द्वारा जारी रिपोर्ट
- I.M.F. की आलोचना
- I.M.F. की उपलब्धियाँ
- भारत और I.M.F.

प्रमुख शब्दावलियाँ

उद्देश्य :–

वर्ष 1929 की महामंदी और उनके बाद के वर्षों में देखा गया किय यूरोप एवं उत्तरी अमेरिका के देशों में निर्गत तथा रोजगार के स्तरों में भारी गिरावट आयी। इसका प्रभाव दुनिया के अन्य देशों में भी देखने को मिला। बाजार में वस्तुओं के मांग में कमी थी और कारखाने बंद पड़े थे, श्रमिकों की छंटनी जोरों पर थी आदि घटनाओं ने अर्थशास्त्रियों को नये तरीके से अर्थव्यवस्था को संचालित करने के विषय में सोचने के लिये प्रेरित किया महामंदी के दुष्प्रभाव से विश्व अर्थव्यवस्था पूरी तरह से उबर नही पायी थी इसी बीच विश्व को एक और दुःखदायी समस्या द्वितीय विश्व युद्ध के रूप में सौगात के रूप में प्राप्त होती है। अंतर्राष्ट्रीय मौद्रिक सहयोग में एक विशेष प्रकार की असफलता उपरोक्त दो कारणों से देखने को मिलती है। आदि कारणों से प्रेरित होकर और अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक सहयोग तथा यूरोप के पुनर्निमाण के लिये एक वैश्विक आर्थिक संस्थान के रूप किसी संस्था के होने की आवश्यकता महसूस की गयी फलतः अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष तथा विश्व बैंक आदि संस्थाओं का उदय हुआ।

प्रस्तावना :–

अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष विश्व बैंक के बाद दूसरा अंतर्राष्ट्रीय संगठन है, जिसकी स्थापना का मुख्य उद्देश्य एक व्यवस्थित अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा प्रणाली का विकास करना अर्थात अंतर्राष्ट्रीय भुगतान प्रणाली को सुविधाजनक बनाना एवं राष्ट्रीय मुद्राओं में

विनियम दर को समायोजित करना है। तथा एक संस्था के के रूप में अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा सहयोग को बढ़ाना है।

अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष
INTERNATIONAL MONETARY FUND

स्थापना :– अतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोण (I.M.F.) की संकल्पना सर्वप्रथम वर्ष्या 1944 में संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा आयोजित ब्रेटन वुड्स सम्मेलन में की गई थी। यह सम्मेलन संयुक्त राज्य अमेरिका के न्यू हैंपशायर शहर के ब्रेटन वुड्स नामक स्थान पर हुआ था। इस सम्मेलन के निर्णय के अनुसार I.M.F. का गठन औपचारिक रूप से 27 दिसंबर 1985 को संयुक्त राज्य अमेरिका के वाशिगंटन शहर ने हुआ, वास्तविक रूप से I.M.F. द्वारा 1 मार्च 1947 से कार्य प्रारम्भ किया गया। ब्रेटन वुड्स सम्मेलन में अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के साथ–साथ अंतर्राष्ट्रीय पुनर्निर्माण एवं विकास बैंक (IBRD) के साथ–साथ अंतर्राष्ट्रीय पुनर्निर्माण एवं विकास बैंक (IBRD) के भी गठन की कल्पना की गई थी। स्मरणीय रहे कि I.M.F. और IBRD को संयुक्त रूप से ब्रेटन वुड्स की जुड़वाँ (Bretton Woods Twins) कहा जाता है।

अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष में वर्तमान समय में 190 सदस्य देश हैं तथा इसका मुख्यालय वाशिगंटन डी सी में है।

'अंडोरा' अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष का सदस्य बनने वाला सबसे आखिरी अर्थात 190 वाँ सदस्य है। वर्तमान समय में क्रिस्टालिना जॉर्जीवा (Kristalina Geogieva) I.M.F. के प्रबंधक निदेशक हैं। इसके I.M.F. के पहले प्रबंधक निदेशक कैमिल गट्ट (Camile Ciutt) थे। अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के अन्तर्गत वृध्दि दर और वित्तीय तनाव एवं पर्याप्त विकास जोखिम में वैश्वीकरण के समय इस प्रकार से परिवर्तन हुए है।

वृद्धि दर और वित्तीय तनाव

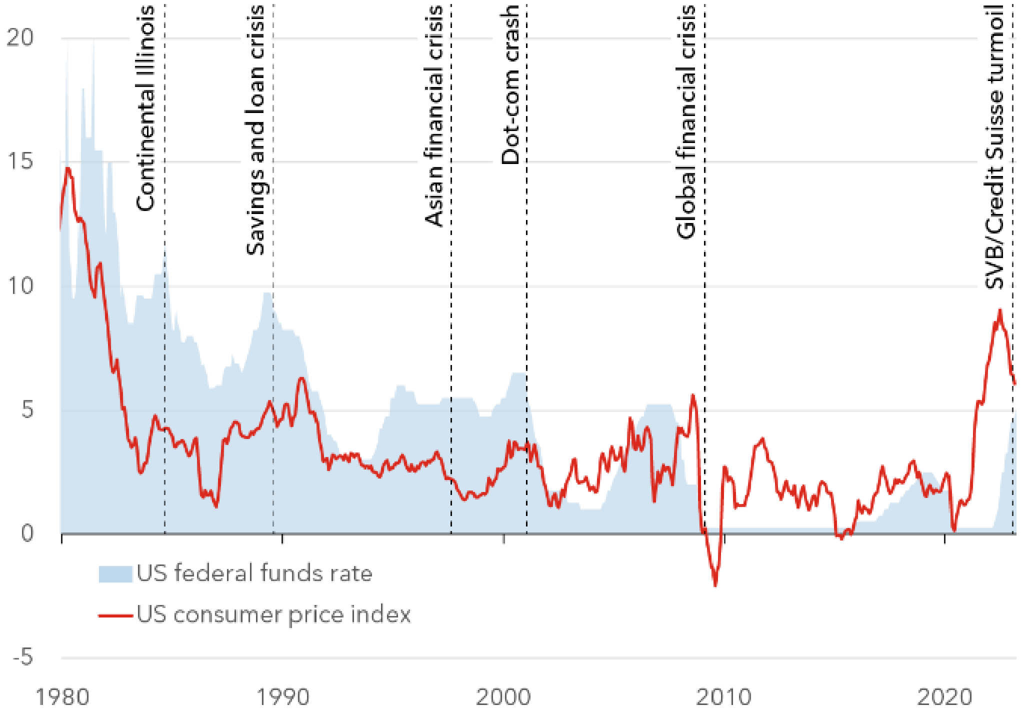

Sources: Bloomberg Finance L.P., Federal Reserve History.
Note: Fed funds rate since 2008 depicts upper limit of the federal funds target range.

वैश्विक वित्तीय स्थिरता का आकलन करने की अपनी भूमिका में, आईएमएफ ने वित्तीय संस्थानों के पर्यवेक्षण, विनियमन और समाधान में अंतराल को चिह्नित किया है। पिछली वैश्विक वित्तीय स्थिरता रिपोर्टों ने उच्च ब्याज दरों के कारण बैंक और गैर–बैंक वित्तीय मध्यस्थों में तनाव की चेतावनी दी थी

पर्याप्त विकास जोखिम

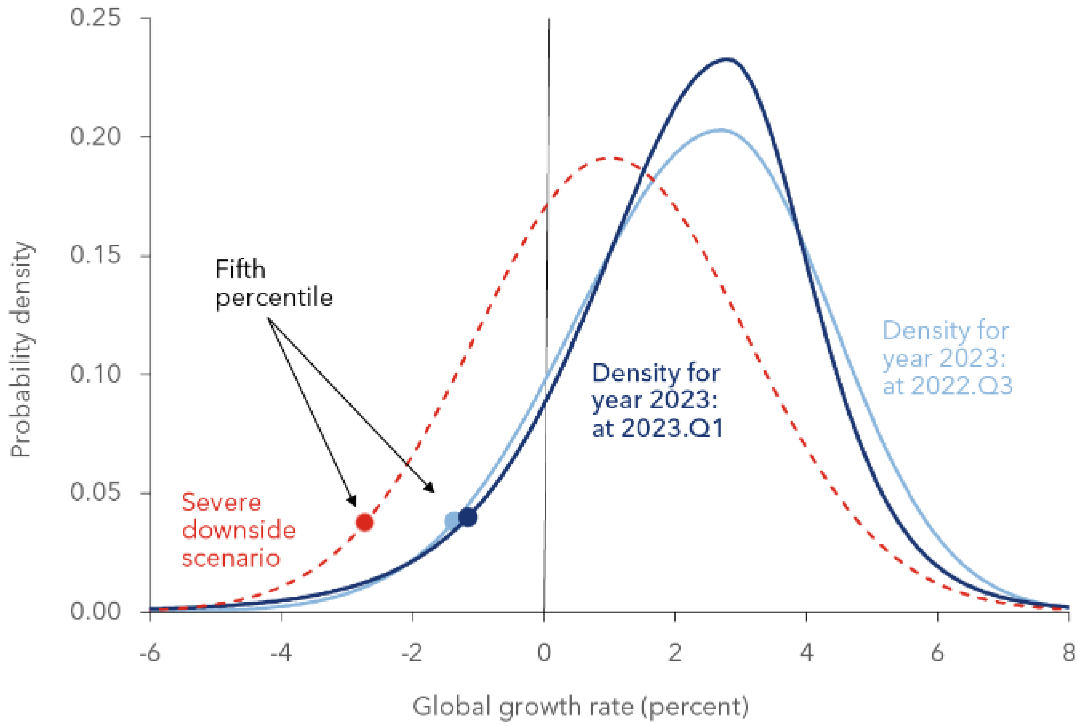

Sources: Bank regulatory filings, Bloomberg, and IMF staff estimates.
Note: The blue forecast densities are centered around the World Economic Outlook forecasts for 2023.

वित्तीय स्थिरता के लिए बढ़ते जोखिमों का सामना करते हुए, नीति निर्माताओं को विश्वास बनाए रखने के लिए दृढ़ता से कार्य करना चाहिए। निगरानी, पर्यवेक्षण और विनियमन में कमियों को तुरंत दूर किया जाना चाहिए। कई देशों में समाधान व्यवस्था और जमा बीमा कार्यक्रमों को मजबूत किया जाना चाहिए। गंभीर संकट प्रबंधन स्थितियों में, केंद्रीय बैंकों को बैंक और गैर–बैंक संस्थानों दोनों को वित्त पोषण सहायता का विस्तार करने की आवश्यकता हो सकती है। ये उपकरण केंद्रीय बैंकों को वित्तीय स्थिरता बनाए रखने में मदद करेंगे, जिससे मौद्रिक नीति मूल्य स्थिरता प्राप्त करने पर ध्यान केंद्रित कर सकेगी। यदि वित्तीय क्षेत्र के संकट का व्यापक अर्थव्यवस्था पर गंभीर प्रभाव पड़ता है, तो नीति निर्माताओं को वित्तीय स्थिरता का समर्थन करने के लिए

मौद्रिक नीति के रुख को समायोजित करने की आवश्यकता हो सकती है। यदि ऐसा है, तो उन्हें वित्तीय तनाव कम होने पर मुद्रास्फीति को यथाशीघ्र लक्ष्य पर वापस लाने के अपने निरंतर संकल्प को स्पष्ट रूप से बताना चाहिए।

I.M.F. की प्रशासनिक संरचना –

अंतर्राष्ट्रीय मुद्राकोष की सबसे निर्णायक संस्था गवर्नर मंडल (Board of Governors) है। गवर्नर मंडल में सभी सदस्य देशों का प्रतिनिधित्व होता है। सदस्य देशों के वित्तमंत्री या केंद्रीय बैंक के गर्वर I.M.F. के गवर्नर मंडल में गवर्नर के रूप में सदस्य देशों द्वारा नियुक्त किये जाते हैं। साथ ही सदस्य देशों द्वारा एक वैकल्पिक गवर्नर की भी नियुक्ति की जाती है जो गवर्नर के अनुपस्थित में अपने देश का प्रतिनिधित्व कर सके।

I.M.F. के गवर्नन मण्डल को अंतर्राष्ट्रीय मौद्रिक एवं वित्तीय समिति I.M.F. तथा विकास समिति आदि मंत्रिमण्डलीय समितियों से सलाह प्राप्त होती है। अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के विकास समिति का गठन अक्टूबर 1974 में किया गया। इसमें कुल 25 सदस्य होते हैं, जो I.M.F. तथा विश्व बैंक के गवर्नर मण्डल के सदस्य होते हैं।

I.M.F. तथा विश्रूव बैंक समूह के गवर्नर मंडल अपने संबंधित संस्थाओं के काम पर चर्चा हेतु सामान्यतः वर्ष में एक बार बैठक करते हैं। तथा I.M.F. के गवर्नर मण्डल वर्ष में दो बार आयोजित की जाती है। जिसमें पहली बैंठ क को 'बसंत बैठक' जो प्रायः अप्रैल महीने में आयोजित की जाती है तथा दूसरी बैठक को 'वार्षिक बैठक' जो प्रायः सितम्बर–अक्टूबर के माह में आयोजित की जाती है, कहते हैं।

I.M.F. के गवर्नर मंडल की अधिकांश शक्तियाँ कार्यकारी मण्डल के पक्ष में प्रत्यायोजित हैं किन्तु सदस्य देशों का कोटा बढ़ाने, विशेष आहरण अधिकार (SDR) आवंटन, नये सदस्यों का प्रवेश, सदस्यों का अनिवार्य वापसी तथा उपविधि में संशोधन की शक्ति अब भी गवर्नर मण्डल के पास है।

I.M.F. के कार्य –

1. अंतर्राष्ट्रीय मोद्रिक सहयोग को बढ़ावा देना तथा सभी सदस्य देशों के आर्थिक विकास के लिये अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के संतुलित विकास को सुविधाजनक बनाना।
2. सदस्य देशों के मुद्रा विनियम दर की स्थिरता को बढ़ावा देना।
3. सदस्य देशों के भुगतान संतुलन की समस्या के समय आर्थिक सहायता प्रदान करना।
4. एक लघु अवधि साख संस्था के रूप में काम कना।
5. विनियम दर के नियमानुसार समायोजन के लिये तंत्र की स्थापना करना
6. किसी भी देश की मुद्रा का मूल्य निर्धारण करना अथवा आवश्यकता पड़ने पर उसमें परिवर्तन करना जिससे की सदस्य देशों में विनियम दरों में सुव्यवस्थित समायोजन किया जा सके।
7. अंतर्राष्ट्रीय विचार विमर्श के लिये तंत्र की व्यवस्था करना।

8. विश्व में गरीबी को कम करने के लिये प्रयास करना।

9. विदेशी मुद्रा एवं वर्तमान लेन–देन के ऋणदात्री संस्था का कार्य आदि।

I.M.F. की सदस्यता –

कोई भी संप्रभु राष्ट्र अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की सदस्यता प्राप्त कर सकता है। सदस्यता के लिये राष्ट्रों को अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के कार्यकारी मंडल के समक्ष आवेदन करना होता है, तथा कार्यवाही मंडल के गहन जाँच के बाद उस राष्ट्र को I.M.F. का सदस्य बनाये जाने तथा उसके कोटे एवं मताधिकार के सम्बंध में प्रस्ताव गवर्नर मण्डल को दिया जाता है। गवर्नर मण्डल किसी राष्ट्र की सदस्यता के सम्बंध में आखिरी निर्णयकर्ता होता है।

अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की सदस्यता प्राप्त होने पर आवेदक राष्ट्र को कोटा निर्दिष्ट किया जाता है। यह कोटा सदस्य देश का आइ0एम0एफ0 के साथ उसके वित्तीय एवं संगठनात्मक सम्बंधों का निर्धारण करता है। जिसके अंतगर्त अंशदान, मतदान शक्ति तथा वित तक पहुँच शामिल है।

अंशदान–अंशदान (Subscription) वह अधिकतम वित्तीय संसाधन है, जिसे प्रदान करने के लिये सदस्य देश बाध्य होता है। सदस्य देश को अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष में शामिल होने पर अंशदान का पूरा भुगतान करना पड़ता है।

सदस्य देश का कोटा, कोष के निर्णयों में मतदान की शक्ति का निर्धारण करती है। किसी देश को अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष से प्राप्त होने वाले आर्थिक संसाधनों का निर्धारण सदस्य देश के कोटा के माध्यम से किया जाता है।

I.M.F. के सदस्य देशों को प्राप्त ऋण–

आई0एम0एफ0 अपने सदस्य देशों को भुगतान संतुलन की समस्या से निपटने के लिये सहायता के रूप में ऋण प्रदान करता है। सदस्य देशों को उनकी आर्थिक स्थित के आधार पर दो प्रकार के आधार पर दो प्रकार के ऋण प्रदान किये जाते है, जो गैर–रियायती ऋण और रियायती ऋण आदि प्रकार के होते हैं। जिनमें से गैर–रियासती ऋण विकसित और विकासशील अर्थव्यवस्था वाले सदस्य देशों को तात्कालिक भुगतान संतुलन समस्या के समाधान तथा आर्थिक विकास को बढ़ावा देने के लिये प्रदान किया जाता है। इस प्रकार के ऋण अल्पअवधि और मध्यम अवधि के होते है और ऋणप्राप्त कर्ता देशों को ऋण के बदले ब्याज का भुगतान करना होता है। और रियायती ऋण आई0एम0एफ0 द्वारा अल्पविकसित अर्थव्यवस्था वाले तथा आर्थिक रूप से कमजोर सदस्य देशों को उनके भुगतान संतुलन की समस्या तथा आर्थिक विकास को बढ़ाने के लिये प्रदान किया जाता है। रिसायती ऋण प्राप्त करने वाले देशों को केवल ऋण की मूल राशि ही मुद्रा कोष में वापस करनी होती है। उन्हें ब्याज के भुगतान से छूट प्राप्त होती है।

विशेष आहरण अधिकारी (Special Drawing Right-SDR) SDR, I.M.F द्वारा वर्ष 1969 से प्रारम्भ एक अंतर्राष्ट्रीय आरक्षित मुद्रा परिसंपत्ति है जिसका सृजन सदस्य देशों के विदेशी मुद्रा भण्डार को पूरकता प्रदान करने के लिये किया गया।

अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के विशेष आहरण अधिकार टोकरी (SDR-Basket) में पांच प्रमुख मुद्राओं को शामिल किया जाता है जिनमें अमेरिका की मुद्रा, डॉलर, यूरोप की मुद्रा यूरो, जापान की मुद्रा येन, ब्रिट्रिश मुद्रा पाउंड तथा चीन की मुद्रा रेन्मिनवी (Renminbi) या युआन आदि है। कार्यवाही मंडल द्वारा विशेष आहरण अधिकार टोकरी की समीक्षा प्रत्येक 5 वर्षों में की जाती है। वर्ष 2015 की समीक्षा के दौरान चीनी मुद्रा रेन्मिनवी को SDR, बास्केट में शामिल करने का निर्णय लिया गया शुरूआत में एस डी आर के मूल्य का निर्धारण अमेरिकी डॉलर के आधार पर किया गया। 1969 में एक विशेष आहरण अधिकार का मूल्य 1 डॉलर निर्धारित किया गया जो उस समय लगभग 0.888671 ग्राम सोने के मूल्य के बराबर था।

वर्ष 1973 में 'ब्रेटन वुड्स' व्यवस्था के धराशायी होने के पश्चात विशेष आहरण अधिकार की टोकरी में विश्व की प्रमुख मुद्राओं को शामिल किया गया।

I.M.F की शर्ते–

अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष अपने सदस्य देशों को ऋण प्रदान करते समय कुछ शर्तों को मानने के बाध्य करती है, प्रायः ऋणप्राप्त कर्ता देशों द्वारा इन शर्तो का विरोध किया जाता है क्यों ये शर्ते ऋणप्राप्त कर्ता देशों के सामाजिक तथा मानव विकास के मार्ग में बाधा के समान होती हैं।

अपने शर्तो के पक्ष में आई0एम0एफ0 यह तर्क देता है कि इनसे ऋणप्राप्तकर्ता देशों के आर्थिक स्वास्थ्य में सुधार होगा तथा वे विकास की तरफ अग्रसर होगी।

1. ऋण प्राप्त कर्ता देशों द्वारा निजीकरण को बढ़ावा दिया जाए।
2. ऋण प्राप्त कर्ता देशों राजकोशीय घाटे में कमी की जाय।
3. सदस्य देशों की मुद्रा की विदेशी लेन–देन के लिये नियंत्रण मुक्त किया जाए।
4. सब्सिडी में कटौती तथा लचीले श्रम क्षेत्र में सुधारों को लागू किया जाये आदि।

* सब्सिडी में कटौती तथा लचीले श्रम क्षेत्र में सुधारों को लागू किया जाये आदि।
* सब्सिडी में कटौती तथा लचीले श्रम क्षेत्र में सुधारों को लागू किया जाये आदि।

* विशेष आहरण अधिकार (SDR) धारिता के सापेक्ष I.M.F में प्रमुख शीर्ष देशों के कोटा तथा वोटिंग शेयर (प्रतिशत के रूप में)–

क्रम संख्या	देश	कोटा %	वोटिंग शेयर %
1.	अमेरिका	17.44	16.51
2.	जापान	6.48	6.15
3.	चीन	6.41	6.08
4.	जर्मनी	5.60	5.32
5.	फ्रांस	4.24	4.03
6.	ब्रिटेन	4.24	4.03
7.	इटली	3.17	3.02
8.	भारत	2.76	2.63

स्रोत– I.M.F की 14 वीं सामान्य समीक्षा रिपोर्ट जनवरी 2016

I.M.F द्वारा जारी की जाने वाली रिपोर्टस–

विश्व आर्थिक परिदृश्य रिपोर्ट (World economic outlook Report), वैश्विक वित्तीय स्थिरता रिपोर्ट (Global Financial Stability Report) तथा राजकोषीय अनुश्रवण (Fiscal Monitor) आदि प्रमुख तीन रिपोर्ट आई0एम0एफ0 द्वारा जारी की जाती हैं।

आलोचनाएँ–

सदस्य के द्वारा निम्नलिखित आधारों पर प्रायः अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की आलोचना की जाती है जो निम्न प्रकार की है–

पहला यह कि सदस्य देशों द्वारा आरोप लगाया जाता है कि आई0एम0एफ में संयुक्त राज्य अमेरिका तथा अमेरिका के ही सहयोगी पश्चिमी यूरोपीय देशों का प्रभुत्व है और संयुक्त राज्य अमेरिका का अप्रत्यक्ष वीटो है। सदस्य देशों द्वारा आई0एन0एफ0 की आलोचना इस आधार पर भी की जाती है कि इसके बन्धक निदेशक की नियुक्ति पश्चिमी यूरोपीय देशों से ही की जाती है।

अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की शर्तावालियों की संख्या अत्यधिक है तथा कोष द्वारा 2008–09 के वैश्विक आर्थिक मन्दी का पूर्वानुमान सही ढंग से नही लगाया जा सका।

उपर्युक्त आलोचनाओं से बचने के लिये अंतर्राष्ट्रीय मुद्राकोष में कोटा सुधार (Quata ReForm) तथा प्रशासनिक सुधार (Governance) आदि दो प्रकार की सुधारों की आवश्यकता है।

I.M.F की उपलब्धियाँ :–

इसकी प्रमुख उपलब्धियाँ निम्न प्रकार है–

(i) विनियम दरों में स्थिरता – मुद्रा–कोष की मौलिक व्यवस्था के अनुसार विभिन्न देशों की मुद्राओं के बीच विनियम दरों के निर्धारण का कार्य सुगम हो गया तथा विनियम दरे स्थिर हो गई। विनियम स्थिरता हेतु सदस्य देशों को घरेलू को घरेलू आर्थिक नीतियों की स्वतन्त्रता का परित्याग, भी नहीं करना पड़ा।

(ii) मौद्रिक प्रारक्षित निधि की स्थापना–मुद्रा कोष के पास विभिन्न देशों की मुद्राओं का स्टॉक है। जिससे सदस्य देशों की विदेशी विनियम सम्बंधी जरूरतों को पूरी कर सकता है। जब किसी देश की मुद्रा की माँग उसकी पूर्ति से अधिक हो जाती है। तब मुद्रा कोष उसे दुर्लभ मुद्रा घोषित कर विभिन्न देशों के बीच उसकी राशनिंग की जाती है।

(iii) बहुपक्षीय व्यापार और भुगतान प्रणाली को बढ़ावा मिला है, यद्यपि संक्रान्तिकाल में सदस्य देशों को विदेशी व्यापार एवं विनियम पर प्रतिबन्ध लगाने का अधिकार दिया जाता है और संक्रान्तिकाल के पश्चात प्रतिबन्ध हटाने पड़ते है जिससे अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में मौद्रिक सहयोग को बल मिलता है और निवेश हेतु पूँजी आवागमन, प्रोत्साहित होता है।

(iv)अस्थायी भुगतान–असन्तुलन में सुधार और निर्यात उच्चावचनों के लिए प्रतिपूरक वित और साथ ही मुद्रा कोष द्वारा प्रतिस्पर्धात्मक अवमूल्यन पर रोक लगाता है। यद्यपि भुगतानशेष का आधारभूत असन्तुलन ठीक करने के लिए मुद्रा कोष सदस्य देशों को विदेशी व्यापार व विनियम पर नियंत्रण लगाने के लिए अतिरिक्त मुद्राओं का अवमूल्यन करने की सलाह देता है।

(v) अन्तर्राष्ट्रीय तरलता में वृद्धि मुद्रा कोष ने विशेष आहरण अधिकार योजना लागू करके अंतर्राष्ट्रीय तरलता बढ़ाने का प्रयास किया है। भुगतान सन्तुलन की कठिनाइयों के अतिरिक्त अब कोष के साधनों का प्रयोग पुनर्निमाण व विकास कार्यो में होने लगा है।

I.M.F में सुधार के सुझाव :–

प्रो0 सैम्यूल्सन ने 1997 में अपने एक लेख 'Three cheers for the IMF में मुद्रा कोष की प्रसंसा में लिखा कि मैक्सिकों में वित्तीय संकट का कारण यह था कि जब उसमें विदेशी मुद्रा का अन्तर्वाह हो रहा था तो मुद्रा कोष द्वारा दी गई चेतावनी को उसने नजरंदाज किया और यही कारण पूर्वी एशियाई देशों के संकट का है। वही फ्रीडमैन ने 1995 में एक लेख में मुद्रा कोष को विश्व आर्थिक संकट का दोषी ठहराते हुए उसे समाप्त करने को कहा क्योंकि इसने लाभ की आपेक्षा हानि अधिक पहुँचाई। अतः इन दोनों पक्षों में मुद्रा कोष जैसी संस्था जिसने पाँच दशकों से अधिक समय से विश्व की आर्थिक वृद्धि व अर्थव्यवस्था में सन्तुलन स्थापित करने महत्वपूर्ण योगदान दिया हो, उसे बन्द या समाप्त करने की आपेक्षा उसकी नीतियों व संरचना में सुधार करना अधिक उपयुक्त होगा ताकि वर्तमान संकट के छूत प्रभाव (Contagion effect) को और भविष्य में ऐसे और संकटों को रोका जा सके।

–इसके लिए विभिन्न आर्थिक मंचो पर निम्न सुझाव दिए गए है–

1. अल्प विकसित व विकासशील देशों को जो आर्थिक संकट से जूझ रहे है उन्हें आसान शर्तों पर वित्तीय सहायता देने के लिए कोष का प्रावधान करना।
2. ऐसी युक्त अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार प्रणाली कायम की जाए जो विकासशील देशों के प्रति उचित और न्यायसंगत हो।
3. कोष द्वारा विकासशील देशों को ऐसे उपाय सुझाए और ऐसी वित्तीय सहायता दे जिससे वे आंतरिक संसाधनों को बढ़ाकर अपनी विकास कार्यक्रमों का स्वयं वित प्रबंधन करें।
4. विश्व के विकसित देशों की समष्टि आर्थिक नीतियाँ इस तरह चलाई जाएं कि वे विश्व उत्पाद और व्यापार वृद्धि को सुरक्षा प्रदान करें, इस तरह कि विश्व अर्थव्यवस्था के लिए अधिक प्रभावी सुरक्षा जाल का कार्य करें।
5. संसर्ग प्रभाव (Contagion effect) से बचने के लिए मुद्रा कोष की विकास कमेटी ने विकासशील देशों को यह कहा कि वे मार्केट को खुला करके, संरक्षण को हटाकर, भ्रष्टाचार को समाप्त कर, बैंकिंग प्रणाली में सुधार कर और शासन व्यवस्था को सुदृढ़ कर अपनी नीतियों और व्यवस्थाओं को सशक्त करें। साथ ही

विकसित देशों को सलाह दी कि वे शीघ्र और निश्चित उपाय करें जिनसे विश्व वित्तीय स्थिरता और आर्थिक वृद्धि को अधिक गति सुनिश्चित हो सकें।

अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष और भारत :–

भारत अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष में 27 दिसम्बर 1945 को शामिल हुआ यह आई0एम0एफ के संस्थापक सदस्यों में से एक है। भारत उन 44 देशों में शामिल था, जिन्होंने ब्रेटन वुडस सम्मेलन में भाग लिया और सम्मेलन के मत को स्वीकार किए। प्रारंभ में भारत का अभ्यस 400 मिलियन डालर था जो 1976 में बढ़ाकर 1,145 मिलियन SDRs कर दिया गया।

आई0एम0एफ0 में 26 जनवरी 2016 को बोर्ड सुधार संशोधन के लागू होने के बाद, जिन सदस्यों ने अपने कोटे में वृद्धि की सहमति दी, वे कोटा की 14 वीं सामान्य समीक्षा के तहत अपने कोटे में वृद्धि का भुगतान कर सकते है। आई0एम0एफ0 ने भारत का अभ्यंस 13,114.4 मिलियन SDRs के साथ कोटा 2.75 प्रतिशत तथा वोटिंग शेयर 2. 63 प्रतिशत है। अर्थात भारत का आठवाँ सर्वाधिक कोटाधारक तथा वोटिंग शेयर वाला देश है।

आई0एम0एफ का सदस्य बनने के बाद भारतीय रूपया 'स्वतन्त्र मुद्रा' बन गया। 1947 में रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया एक्ट, में संशोधन करके भारत सरकार ने रिजर्व बैंक में स्टर्लिंग के साथ–साथ अन्य देशों की मुद्रा रख सकता है। इससे भारतीय रूपया ब्रिटिस पौण्ड की परम्परागत दासता से मुक्त हो गई और अन्य विदेशी मुद्राओं में बहुपक्षीय परिवर्तनीय हो गईं।

मुद्रा कोष का सदस्य होने से भारत विश्व–बैंक का सदस्य बन सका। जिससे विश्व बैंक के विकास कार्यों से और आर्थिक सहायता से देश को लाभ होता रहा है।

मुद्रा कोष से प्राप्त वित्तीय एंव तकनीकी सहायता के परिणामस्वरूप भारत के विदेशी व्यापार में अतुलनीय वृद्धि हुई है। साथ ही विभिन्न आर्थिक क्रियाओं और योजनाओं के सम्बंध में मुद्रा कोष के विशेषज्ञों ने समय–समय आवश्यक परामर्श दिया जिससे घरेलू आर्थिक समस्याओं के निवारण में सहायता मिली है।

अन्य सदस्य देशों की तरह भारत को भी मुद्रा कोष से संकटकालीन सहायता प्राप्त हुई। उदाहरण वर्ष 1957 में उत्पन्न विनियम संकट के निवारण हेतु मुद्रा कोष ने भारत को 200 मिलियन डालर लवण स्वीकृत किया। वही वर्ष 1991 में देश में उत्पन्न भुगतान असन्तुलन के समाधान हेतु वित्तीय ऋण के साथ विभिन्न शर्तावलियों के आरोपण के फलस्वरूप भारत उदारीकरण, निजीकरण और वैश्विकरण की तरफ अग्रसरित हुआ।

भारत का अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष से सम्बंध सदैव मित्रवत रहा है। प्रारम्भ में भारत के भुगतान संतुलन में मुद्रा कोष द्वारा जहाँ सहायता प्रदान की जाती थी वही वर्तमान समय में भारत मुद्रा कोष के वित्तपोषक राष्ट्रों में शामिल है।

भारत द्वारा अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के कोटा सुधार तथा प्रशासनिक सुधार हेतु लगातार मांग की जा रही है, इस प्रकार भारत मुद्रा कोष में अपनी भूमिका में वृद्धि के लिए सतत् रूप से प्रयासरत है।

अन्र्राष्ट्रीयय पुननिर्माण एवं विकास बैंक

(Bank for Reconstruction and Development)

- प्रस्तावना
- IBRD की स्थापना
- IBRD के अध्यक्ष
- अंतर्राष्ट्रीय विकास संघ (IDA)
- IDA के कार्य
- अंतर्राष्ट्रीय वित निगम (IFC)
- बहुपक्षीय निवेश गारण्टी ऐजंसी (MIGA)
- MIGA के कार्य
- निवेश विवादों के समाधान के लिये अंतर्राष्ट्रीय केन्द्र (ICSID)
- ICSID के कार्य
- विश्व बैंक (IBRD) में शेयर धारिता तथा वोटिंग अधिकारी
- विश्व बैंक (IBRD) समूह की रिपोर्ट्स

अतर्राष्ट्रीय पुननिर्माण एवं विकास बैंक (IBRD)

परिचय / प्रस्तावना :–

अंतर्राष्ट्रीय पुननिर्माण एवं विकास बैंक (IBRD), जिसे 'विश्व बैंक' भी कहा जाता है वह 1944 में सम्पन्न हुये ब्रेटन बुड्स सम्मेलन का परिणाम था। इस संगठन की स्थापना का मुख्य उद्देश्य द्वितीय विश्व युद्ध के अयावाह परिणाम झेल रहे यूरोपीय देशों की अर्थव्यवस्था का पुननिर्माण एवं विश्व के अन्य अविकसित देशों के विकास के कार्य में सहायता प्रदान करना था। प्रारम्भिक वर्षों में विश्व बैंक युद्ध से तबाह यूरोपीय देशो के विकास के कार्य में सहायता करना तथा उन्हें युद्ध की तबाही से उबारना था। वर्ष 1950 तक वह अपने इस कार्य में सफलता प्राप्त करने के पश्चात विश्व बैंक ने अविकसित देशों को विकास के मार्ग पर लाने का कार्य किया।

विश्व बैंक का यह मानना था कि अविकसित देशों में जितना स्वास्थ्य तथा शिक्ष्ज्ञा, उतना ही उन देशों में सामाजिक एवं आर्थिक बदलाव लाना सम्भव होगा। अपने इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु वर्ष 1960 में अंतर्राष्ट्रीय विकास सहा (I.D.A) नामक एक संस्था की स्थापना की जिसका दरों पर ऋण उपलब्ध कराना था। IBRD का मुख्यालय अमेरिका के वांशिगटन डी0सी0 में है।

I.B.R.D की स्थापना :–

अंतर्राष्ट्रीय पुननिर्माण एवं विकास बैंक (IBRD) जो कि 'विश्व बैंक' समूह की प्रमुख संस्था है कि स्थापना ब्रेटन वुड्स सम्मेलन जो कि वर्ष 1944 को संयुक्त राज्य अमेरिका के न्य हैं पशायर नामक शहर के ब्रेटन वुड्स नामक स्थान पर किया गया था, के पश्चात हुई। किन्तु 'अंतर्राष्ट्रीय पुननिर्माण एवं विकास बैंक' ने अपना कार्य वर्ष 1946 से प्रारम्भ किया।

स्मरणीय रहे कि ब्रेटन वुड्स सम्मेलन को आधिकारिक तौर पर संयुक्त राष्ट्र मौद्रिक एवं वित्तीय सम्मेलन के रूप में जाना जाता है। इस सम्मेलन में 22 जुलाई 1944 तक, 44 देशों के प्रतिनिधि शामिल हुये थे।

अंतर्राष्ट्रीय पुननिर्माण एवं विकास बैंक में वर्तमान समय में सदस्य देशों की संख्या 189 है, जिससे 'नौरू गणराज्य' इसमें शामिल होने वाला नवीनतम सदस्य देश है जो कि 12 अप्रैल 2016 को सदस्यता ग्रहण की। विश्व बैंक समूह के अध्यक्ष 'विश्व बैंक' समूह का अध्यक्ष ही विश्व बैंक समूह का प्रमुख होता है। जो कि निदेशक मंउल की बैठकों की अध्यक्षत तथा विश्व बैंक समूह के प्रबन्धन के लिये जिम्मेदार माना जाता है।

इसके पहले अध्यक्ष का चुनाव संयुक्त राज्य अमेरिका से यूजीन मेयर के रूप में किया गया था। वर्तमान में डेविड मालपास इसके अध्यक्ष हैं। एक परिपाटी के अनुसार इसके अध्यक्ष के रूप में अमेरिकी नागरिक की ही नियुक्ति की जाती है जिसका प्रमुख कारण यह है कि इसके वित्तीय संसाधनों में सबसे अधिक भागेदारी स0रा0अ0 की है।

अंतर्राष्ट्रीय विकास संघ (International Devlopment Association-IDA) अंतर्राष्ट्रीय विकास सहा (IDA) जो कि विश्व बैंक समूह की एक प्रमुख संस्था है की स्थापना 24 सितंबर 1960 को संयुक्त राजय अमेरिका की राजधानी वांशिगटन में की

गई। IDA के स्थापना के समय इसके संस्थापक सदस्य देशों की संख्या 15 थी जो कि वर्तमान समय में 173 हो चुकी है।

IDA के प्रमुख कार्य–

अंतर्राष्ट्रीय विकास संघ द्वारा मुख्य रूप से निर्धन देशों को ऋण अथवा अनुदान प्रदान किया जाता है जिसकी अवधि प्रायः 25 वर्ष से 40 वर्ष तक होती है। इस ऋण के बदले सहायता प्राप्त देशों को मात्र 0.75 प्रतिशत की दर से सेवा शुल्क का भुगतान करना पड़ता है।

'अंतर्राष्ट्रीय विकास संघ' को 'विश्व बैंक' की 'उदार ऋण खिड़की' (Soft Loan Window) कहा जाता है।

'अंतर्राष्ट्रीय विकास संघ' द्वारा सदस्य देशों को प्रदान की जाने वाली आर्थिक सहायता एवं ऋण का वित्तीयन इसके सदस्य देशों द्वारा ही किया जाता है, जिसके लिये प्रत्येक तीन वर्ष पर सदस्य देशों की एक विशेष बैठक होती है जिसे 'पुनःपूर्ति (Replenishment) के नाम सं0 जाना जाता है।

अंतर्राष्ट्रीय वित निगम (International Finance Corporation-IFC)

'अंतर्राष्ट्रीय वित निगम' विश्व बैंक समूह की एक संस्था है। जिसका स्थापना वर्ष 1956 में हुई।

विश्व बैंक की अन्य संस्थाओं की ही भांति इसका मुख्यालय भी स0रा0 अमेरिका की राजधानी वाशिगंटन डी0सी0 में है। तथा वर्तमान समय में इसके सदस्य देशों की संख्या 185 है।

IFC की स्थापना प्रमुख उद्देश्य इसके सदस्य देशों की निजी निवेश को प्रोत्साहन देना था जिसके लिये IFC द्वारा विकासशील सदस्य देशों की निजी कंपनियों को आर्थिक सहायता प्रदान करना, तथा उनकी तकनीकि सहायता प्रदान करना है।

IFC के कार्य –

वर्तमान समय में अंतर्राष्ट्रीय वित निगम के निम्नलिखित कार्य हैं–

- विकासशील सदस्य देशों के निजी क्षेत्र को ऋण उपलब्ध कराना, जिसके लिये IFC द्वारा अंतर्राष्ट्रीय पूंजी बाजार में बॉण्ड (Bond) जारी किये जाते हैं।
- निजी क्षेत्र के पूंजी एवं प्रबन्धन में समन्वय स्थापित करना आजकल अंतर्राष्ट्रीय वित निगम द्वारा सदस्य देशों की निजी कंपनियों को ऋण प्रदान करने के उद्देश्य से वहां की स्थानीय मुद्रा में बॉण्ड जारी किये जा रहे हैं। जैसे भारतीय मुद्रा में जारी बॉण्ड 'मसाला बॉण्ड'।
- पूंजी प्रधान देशों को पूंजी की कमी वाले देशों में पूंजी लगाने के लिये प्रोत्साहित करना।

बहुपक्षी निवेश गारंटी एजेंसी :–

ultilateral Investment Guarantee Agency-MIGA

- बहुपक्षीय निवेश गारंटी एजेंसी (MIGA) विश्व बैंक समूह की एक संस्था है। जिसकी स्थापना संयुक्त राज्य अमेरिका को राजधानी वाशिंगटन में वर्ष 1988 को हुई थी। (MIGA) एक विकासात्मक वित्तीय संस्थान है।

MIGA के कार्य :–

बहुपक्षी निवेश गारंटी एजेंसी (MIGA) का प्रमुख उद्देश्य विकासशील सदस्य देशों में अप्रत्यक्ष विदेशी निवेश को बढ़ाता देता, जिससे विकासशील देशों में गरीबी के स्तर में कमी लाकर वहाँ के लोगों का जीवन स्तर सुधारा जा सकें।

बहुपक्षीय निवेश गारंटी एजेंसी (MIGA) द्वारा विकासशील देशों में होने वाले प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (FDI) के लिये बीमा प्रदान किया जाता है।

MIGA द्वारा प्रत्यक्ष विदेशी निवेश में वृद्धि के लिये विकासशील देशों की सरकारों को समय–समय पर गुणत्तापूर्ण व लाभकारी सलाह भी दी जाती है।

निवेश विवादों के समाधान के लिये अंतर्राष्ट्रीय केन्द्र International Centre for Settlement or Investment Disputes-ICSID :–

राष्ट्र एवं अन्य राष्ट्र के नागरिकों के मध्य निवेश विवादों के समाधान पर एक कन्वेंशन, जिसे निवेश विवादों के समाधान के लिये अंतर्राष्ट्रीय (ICSID) कन्वेंशन कहा जाता है, के प्रावधानों के अन्तर्गत निवेश विवादों के समाधान के लिये एक अंतर्राष्ट्रीय केन्द्र की स्थापना वर्ष 1966 में की गई। इसके सदस्य देशों की कुल संख्या 164 है, जिसमें हस्ताक्षरकर्ता देशा (8) और अनबंधित देशों की संख्या (156) है।

I C S I D के कार्य :–

निवेश विवादों के समाधान के लिये अंतर्राष्ट्रीय केन्द्र (ICSID), अंतर्राष्ट्रीय निवेश विवादों के समाधान के लिये समर्पित विश्व की अग्रणी संस्था हैं। ICSID को निवेश विवादों के समाधान के सन्दर्भ में व्यापक अनुभव प्राप्त है। इसके सदस्य देशों ने विभिन्न सन्धियों/समझौतों जैसे द्विपक्षीय निवेश सन्धियों तथा अंतर्राष्ट्रीय कानूनों में ICSID को निवेश समाधान मंच के रूप में परिभाषित किया है।

यह (ICSID) कन्वेंशन विश्व बैंक के कार्यकारी निदेशकों द्वारा अंतर्राष्ट्रीय निवेश को बढ़ावा देने के उद्देश्य से निर्मित बहुपक्षीय सन्धि है, जो विश्व बैंक के अंतर्राष्ट्रीय निवेश को बढ़ावा देने में सहायक है। यह एक स्वतंत्र, गैर–राजनीतिक प्रभावी निवेश विवाद समाधान संस्था के रूप में कार्यरत है, ICSID, सुलह (Condiliation) मध्यस्थता (Arbitration) तथा तथ्यान्वेषण (Fact Finding) के माध्यम से विवादों के समाधान का प्रयास करती है।

विश्व बैंक (IBRD) में शेयर धारिता, वोटिंग अधिकार–

विश्व बैंक में अधिकता शेयर धारिता और वोटिंग अधिकारी वाले–प्रमुख देश निम्न प्रकार है–

क्रम संख्या	देश	कोटा %	वोटिंग शेयर %
1.	अमेरिका	16.46	15.57
2.	जापान	7.93	7.52

3.	चीन	5.37	5.10
4.	जर्मनी	4.51	4.29
5.	यूनाटेड किंगडम	4.01	3.82
6.	फ्रांस	4.01	3.82
7.	भारत	3.12	2.76

स्रोत–आई0बी0आर0डी0 (फरवरी 2021)

विश्व बैंक (IBRD) समूह की रिपोर्टस–

विश्व बैंक समूह द्वारा समय–समय पर निम्नलिखित रिपोर्ट का प्रकाशन किया जाता है–

- व्यापार सुगमता रिपोर्ट (Daing Business Report)
- वैश्विक आर्थिक संभावना रिपोर्ट (Global Economic Prospect Report)
- विश्व विकास रिपोर्ट (World Devlopment Report)
- कमोडिटी मार्केट आउट लुक (Commodity Market Outlook)
- वैश्विक वित्तीय विकास रिपोर्ट (Global Financial Devlopment Report)
- विश्व विकास संकेत (World Development Indicators)

नोट–व्यापार सुगमता रिपोर्ट (Ease of Doing Business Report) के विवादस्पद व्यापार श्रृंखला को बंद कर विश्व बैंक द्वारा विभिन्न देशों के कारोबारी माहौल को मापने के लिए कए नई प्रणाली को शुरू करेगा जिसे ''बिजनेस इनेबलिंग इनवायरमेंट (BEE) रिपोर्ट कहा जाएगा। BEE रिपोर्ट का पहला प्रकाशन अप्रैल 2024 में किया जाएगा।

विश्व बैंक में मतदान शक्तियाँ–

सदस्य देशों को सदस्यता के दौरान और बाद में पूंजी के लिए अतिरिक्त अभिदान (Subscriptions) के लिए आवांटित किए जाते है। प्रत्येक संगठन में वोट अलग–अलग आवांटित किए जाते हैं।

संगठनों द्वारा वोटों के आवांटन की प्रणाली–

प्रत्येक सदस्य को प्रोयर वोट (सदस्य द्वारा रखे गये बैंक के पूंजी स्टाक के प्रत्येक शेयर के लिए एक वोट) प्लास बेसिक वोट (गणना की जाती है ताकि सभी मूल वोटों का योग 5.55 के बराबर हो) से मिलकर वोट प्राप्त करता है। यह प्रणाली IBRD, IDA, IFC, MIGA में सदस्यों के शेयर के आधार पर स्रोतों की प्रतिशत निर्धारित होता है।

विश्व बैंक समूह में भारत के वोटो का प्रतिशत दिसम्बर 2022

IBRD	-	3.02%
IDA	-	2.89%
IFC	-	3.78%
MIGA	-	2.53%

भारत एवं विश्व बैंक समूह–

भारत विश्व बैंक समूह के अधिकांश संस्थाओ का सदस्य देश है, जिसमें निवेश विवादों के समाधान के लिये अंतर्राष्ट्रीय केन्द्र (ICSID) को छोड़कर सभी IBRD, IDA, IFC, MIGA शामिल हैं। विश्व बैंक समूह की इन संस्थाओं में भारत IBRD, IDA तथा IFC का संस्थापक सदस्य है जबकि भारत ने MIGA की सदस्यता वर्ष 1994 में ली।

भारत अंतर्राष्ट्रीय पुनर्निर्माण एवं विकास बैंक तथा 'अंतर्राष्ट्रीय विकास संघ' से ऋण तथा अनुदान प्राप्त करता है। अंतर्राष्ट्रीय पुनर्निर्माण एवं विकास बैंक द्वारा भारत को ऋण की मंजूरी वर्ष 1948 में पहली बार दी गई।

भारत एवं पाकिस्तान द्वारा हुये सिंधु जल समझौते (1960) में विश्व बैंक ने एक मध्यस्थ के रूप में कार्य किया था। तथा विश्व बैंक द्वारा भारत को विशेषतः परिवहन एवं संचार, सिंचाई, शिक्षा, जलापूर्ति, विद्युत ऊर्जा उत्पादन, जनसंख्या नियंत्रण, गरीबी उन्मूलन, ग्रामीण विकास, आधारित संरचना विकास, सड़क निर्माण इत्यादि के लिये दीर्घकालिक ऋण प्रदान करता है।

भारत विश्व बैंक समूह से सर्वाधिक ऋण प्राप्त करने वाला देश है लोकसभा में वित मंत्रालय द्वारा प्रस्तुत एक रिपोर्ट से यह जानकारी प्राप्त होती है कि भारत ने विश्व बैंक समूह से 100 बिलियन डॉलर से अधिक का ऋण प्राप्त किया है।

विश्व बैंक ने भारत को मुख्य रूप चार क्षेत्रों में महत्वपूर्ण लेकिन कम अग्रणी योगदान दिया है। जिसमें पहला, 'बाह्य रूप में इसने भारत के लिए एक अधिवक्ता आर सहायता प्रवाह क समन्वयक के रूप में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई इसने वर्ष 1958 से 'एड इंडिया कंसोर्टियम का आयोजन किया तब से समन्वय किया है। इसमें 1960 की सिन्धु जल सन्धि समझौता जो भारत–पाकिस्तान के मध्य है के समाधान में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

दूसरा विश्व बैंक ने केंद्र सरकार की एजेंसियों व राज्य सरकारों के बीच भी एक समन्वयकारी भूमिका निभाई। तीसरा, विश्व बैंक ने 'संयम की एजेंसी' के रूप में भी कात किया है। इसके कई ऋणों और शर्तों ने भारत को सार्वजनिक वस्तुओं की एक श्रृंखला भी प्रदान की, पर्याप्त अनुसंधान के साथ ही अंतर्राष्ट्रीय कृषि अनुसंधान प्रणाली पर परामर्शदात्री समूह के रूप में योगदान दिया।

अन्ततः स्पष्ट है कि विश्व बैंक और भारत के बीच समग्र सम्बंध समरूपता और समानता (कुछ अपवादों को छोड़कर) की विशेषता रही है। जैसा कि विश्व ने एक रिपार्ट में हा था, ''भारत की तुलना में विश्व बैंक द्वारा किसी भी देश का अधिक अध्ययन नहीं किया गया है, और यह कहना कोई अतिशयोक्ति नहीं है कि भारत ने बैंक को उतना ही प्रभावित किया है जितना कि बैंक ने भारत को प्रभावित किया है।'' वास्तविकता यह है कि विश्व बैंक ने अधिकांश अन्य कर्जदारों की तुलना में भारत के साथ अधिक अनुकूल व्यवहार किया है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. अर्पैक, ओ., बर्ड, जी., और मैंडिलारस, ए. (2006)। आईएमएफ कार्यक्रमों का कार्यान्वयन क्या निर्धारित करता है? अर्थशास्त्र में सरे विश्वविद्यालय चर्चा पत्र डीपी 18/06
2. एटोइयन, आर., और कॉनवे, पी. (2006)। आईएमएफ कार्यक्रमों के प्रभाव का मूल्यांकनरू मिलान और वाद्य–चर अनुमानकों की तुलना। अंतर्राष्ट्रीय संगठनों की समीक्षा, 1, 99-124A
3. बैरो, आर.जे., और ली, जे.डब्ल्यू. (2005)। आईएमएफ कार्यक्रमरू किसे चुना जाता है और इसके प्रभाव क्या हैं? मौद्रिक अर्थशास्त्र जर्नल, 52, 1245-1269A
4. बेनेली, आर. (2006). क्या आईएमएफ समर्थित कार्यक्रम निजी पूंजी प्रवाह को बढ़ावा देते हैं? कार्यक्रम के आकार और नीति समायोजन की भूमिका।
5. ए. मोदी, और रेबुची ए. (सं.) में, आईएमएफ समर्थित कार्यक्रमरू हालिया स्टाफ रिसर्च (पीपी. 35-51)।
6. वाशिंगटन, डी.सी.: अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष। बर्ड, जी., हुसैन, एम., और जॉयस, जे.पी. (2004)। बहुत शुभकामनाएँ? पुनरावर्तनवाद और आईएमएफ। जर्नल ऑफ इंटरनेशनल मनी एंड फाइनेंस, 23, 231-251
7. बर्ड, जी., और रोलैंड्स, डी. (2002)। क्या आईएमएफ कार्यक्रमों का अन्य अंतरराष्ट्रीय पूंजी प्रवाह पर उत्प्रेरक प्रभाव पड़ता है? ऑक्सफोर्ड डेवलपमेंट स्टडीज, 30, 229-249
8. ब्रूने, एन., गैरेट, जी., और कोगुट, बी. (2004)। अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष और निजीकरण का वैश्विक प्रसार। आईएमएफ स्टाफ पेपर्स, 51, 195-219
9. बुलो, जे., और रोगॉफ, के. (1990)। सफाईकर्मियों के पास जाए बिना तीसरी दुनिया के कर्ज को साफ करना। जर्नल ऑफ इकोनॉमिक पर्सपेक्टिव्स, 4,31-42
10. बटकीविक्ज, जे.एल., और यानिक्कया, एच. (2005)। दीर्घकालिक आर्थिक विकास पर आईएमएफ और विश्व बैंक के ऋण का प्रभावरू एक अनुभवजन्य विश्लेषण। विश्व विकास, 33, 371-391
11. च्विएरोथ, जे. (2007). विचारों की भूमिका का परीक्षण और मापन: अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष में नवउदारवाद का मामला। अंतर्राष्ट्रीय अध्ययन त्रैमासिक, 51, 5-30
12. कोल, एच.एल., डॉव, जे., और इंग्लिश, डब्ल्यू.बी. (1995)। अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक समीक्षा, 36, 365-385
13. कोपेलोविच, एम.एस. (2005)। वैश्विक बाजारों को नियंत्रित करनारू निजी ऋण और अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष उधार की राजनीति। पीएच.डी. थीसिस, हार्वर्ड विश्वविद्यालय।
14. डिक्स–मिरेक्स, एल., मेकाग्नि, एम., और शैडलर, एस. (2000)। कम आय वाले देशों को आईएमएफ द्वारा दिए गए ऋण के प्रभाव का मूल्यांकन करना। जर्नल ऑफ डेवलपमेंट इकोनॉमिक्स, 61, 495-526
15. ड्रेहर, ए. (2004). आईएमएफ और विश्व बैंक के ऋण और सशर्तता का एक सार्वजनिक चयन परिप्रेक्ष्य। सार्वजनिक विकल्प, 119, 445-464
16. ड्रेहर, ए. (2006). आईएमएफ और आर्थिक विकासरू कार्यक्रमों, ऋणों और सशर्त अनुपालन के प्रभाव। विश्व विकास, 34, 769-788

17. https://www.orfonline.org/hindi/research/a-reform-proposal-for-a-fit-for-purpose-imf/
18. https://testbook.com/ias-preparation/international-monetary-fund-imf?language=hindi
19. https://www.toppr.com/guides/general-awareness/international-financial-organisation/international-monetary-fund/
20. https://joshbadhao.com/ अन्तर्राष्ट्रीय–मुद्रा–कोष

खंड 05: अंतरराष्ट्रीय संस्थाएं, क्षेत्रीय सहयोग एवं भारत का व्यापार

इकाई- 02

क्षेत्रीय व्यापार सहयोग: यूरोपियन यूनियन और सार्क

2.24 प्रस्तावना

2.25 उद्देश्य

2.26 सारांश

2.27 यूरोपियन यूनियन

2.28 सार्क

2.29 शब्दावली

2.30 सन्दर्भ ग्रन्थ / उपयोगी सुची

2.31 अभ्यास प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

यूरोपियन यूनियन 27 देशों का एक समूह है जो एक संसक्त आर्थिक और राजनीतिक ब्लॉक के रूप में कार्य करता है। इसके 19 सदस्य देश अपनी आधिकारिक मुद्रा के तौर पर 'यूरो' का उपयोग करते हैं, जबकि 8 सदस्य देश (बुल्गारिया, क्रोएशिया, चेक गणराज्य, डेनमार्क, हंगरी, पोलैंड, रोमानिया, स्वीडन) यूरो का उपयोग नहीं करते हैं। यूरोपीय देशों के मध्य सदियों से चली आ रही लड़ाई को समाप्त करने के लिये यूरोपीय संघ के रूप में एक एकल यूरोपीय राजनीतिक इकाई बनाने की इच्छा विकसित हुई जिसका द्वितीय विश्व युद्ध के साथ समापन हुआ और इस महाद्वीप का अधिकांश भाग समाप्त हो गया। यूरोपीय संघ ने कानूनों की मानकीकृत प्रणाली के माध्यम से एक आंतरिक एकल बाज़ार (Internal Single Market) विकसित किया है जो सभी सदस्य राज्यों के मामलों में लागू होता है और सभी सदस्य देशों की इस पर एक राय होती है।

उद्देश्य

1. यूरोपीय संघ के सभी नागरिकों के लिये शांति, मूल्य एवं कल्याण को प्रोत्साहित करना।
2. आंतरिक सीमाओं के बिना स्वतंत्रता, सुरक्षा एवं न्याय प्रदान करना।
3. यह सतत् विकास, संतुलित आर्थिक वृद्धि एवं मूल्य स्थिरता, पूर्ण रोज़गार और सामाजिक प्रगति के साथ एक अत्यधिक प्रतिस्पर्धी बाज़ार अर्थव्यवस्था और पर्यावरणीय सुरक्षा पर आधारित है।
4. सामाजिक बहिष्कार और भेदभाव का निराकरण।
5. वैज्ञानिक और तकनीकी प्रगति को बढ़ावा देना।
6. यूरोपीय संघ देशों के मध्य आर्थिक, सामाजिक और क्षेत्रीय एकजुटता एवं समन्वय को बढ़ावा देना।
7. इसकी समृद्ध सांस्कृतिक और भाषायी विविधता का सम्मान करना
8. एक आर्थिक और मौद्रिक यूनियन की स्थापना करना जिसकी मुद्रा यूरो है।

कार्य

यूरोपीय संघ का कानून और विनियमन अपने सदस्य देशों की एक संसक्त आर्थिक इकाई बनाने के लिये है ताकि माल को सदस्य राष्ट्रों की सीमाओं तक बिना शुल्क के एक ही मुद्रा में और एक बढ़े हुए श्रम समुच्चय के निर्माण से स्वतंत्र रूप से पहुँचाया जा सके, जो अधिक कुशल वितरण और श्रम का उपयोग सुनिश्चित करता है। यह वित्तीय संसाधनों का एक संयोजन है ताकि सदस्य राष्ट्र निवेश करने के लिये 'बेल आउट' या पैसा उधार ले सकें। सदस्य देशों के लिये संघ की अपेक्षाएँ मानव अधिकार एवं पर्यावरण जैसे क्षेत्रों में राजनीतिक निहितार्थ हैं। संघ अपने सदस्य देशों को सहायता देने की शर्तों के रूप में मितव्ययी बजट और विभिन्न कटौतियों जैसे भारी राजनीतिक लागतों को आरोपित कर सकता है।

इसके सदस्यों के मध्य मुक्त व्यापार यूरोपीय संघ के संस्थापक सिद्धांतों में से एक था जिसका श्रेय एकल बाज़ार को जाता है। इसकी सीमाओं से परे यूरोपीय संघ विश्व व्यापार के उदारीकरण के लिये भी प्रतिबद्ध है। यूरोपीय संघ विश्व में सबसे बड़ा व्यापारिक ब्लॉक है। यह विश्व में निर्मित वस्तुओं एवं सेवाओं का सबसे बड़ा आयातक है और 100 से अधिक देशों के लिये निर्यात हेतु सबसे बड़ा बाज़ार है।

यूरोपीय संघ विश्व भर में कृत्रिम और प्राकृतिक आपदाओं से प्रभावित लोगों के सहयोग के लिये प्रतिबद्ध है एवं प्रतिवर्ष 120 मिलियन से अधिक लोगों को सहयोग प्रदान करता है। यूरोपीय संघ और उसके घटक देश मानवीय सहायता प्रदान करने वाले दुनिया के प्रमुख दाता देश हैं।

यूरोपीय संघ कूटनीति के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है और स्थिरता, सुरक्षा तथा समृद्धि, लोकतंत्र आधारभूत स्वतंत्रता एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर विधि के नियमों को बढ़ावा देने के लिये कार्य करता है।

यूरोपीय संघ से संबंधित विभिन्न शासी निकाय

यूरोपीय संघ के शासी निकायों के माध्यम से अपने कार्यों का संचालन करता है। ये शासी निकाय यूरोपीय संघ की विभिन्न तरीके से मदद करते हैं, ताकि वह अपने कार्यों को सुचारु तरीके से संचालित कर सके। इनमें से कुछ प्रमुख शासी निकायों का जिक्र हम इस आलेख में आगामी खंड में कर रहे हैं, जिनका विवरण इस प्रकार है-

यूरोपीय परिषद

यूरोपीय परिषद यूरोपीय संघ का एक सामूहिक निकाय है। इसका मुख्य उद्देश्य यूरोपीय संघ के सभी राजनीतिक मामलों को दिशा देना तथा विभिन्न राजनीतिक मुद्दों की प्राथमिकता निर्धारित करना है।यूरोपीय संघ की पहली औपचारिक बैठक 1975 ईस्वी में आयोजित हुई थी। इसके बाद 2009 ईस्वी में 'लिस्बन की संधि' लागू हुई थी। 2009 ईस्वी में लागू होने वाली इस लिस्बन की संधि के माध्यम से यूरोपीय परिषद को एक औपचारिक संस्थान के रूप में स्थापित किया गया था। इससे पहले यूरोपीय परिषद एक अनौपचारिक संस्थान के रूप में ही अस्तित्व में थी।

यूरोपीय परिषद के सम्मेलन और उसकी बैठक में यूरोपीय संघ के सभी सदस्य देशों के 'सरकार के अध्यक्ष' और 'राज्य के अध्यक्ष'भाग लेते हैं। इसके अलावा, इस संगठन में यूरोपीय परिषद के अध्यक्ष और 'यूरोपीय आयोग' के अध्यक्ष भी हिस्सा लेते हैं। यूरोपीय परिषद की बैठक में लिए जाने वाले सभी निर्णय सदस्यों की सर्वसम्मति से लिए जाते हैं।

यूरोपीय आयोग

यूरोपीय आयोग यूरोपीय संघ का एक 'कार्यकारी निकाय' (Executive Body) है। यह निकाय मुख्य रूप से यूरोपीय संघ के निर्णय को लागू करने यूरोपीय संघ की विभिन्न विधियों को क्रियान्वित करने और यूरोपीय संघ के दैनिक क्रियाकलापों को प्रबंधित करने के लिए उत्तरदायी होता है। इस प्रकार, 'यूरोपीय आयोग' यूरोपीय संघ का एक ऐसा निकाय है, जो उसके द्वारा सर्वसम्मति से लिए गए निर्णयों को न सिर्फ लागू करता है, बल्कि यूरोपीय संघ के रोजमर्रा के कार्यों की भी देख रेख भी करता है।

यूरोपीय संसद

यूरोपीय संसद यूरोपीय संघ का एकमात्र संसदीय निकाय है। अर्थात् यूरोपीय संसद के अलावा, यूरोपीय संघ का अन्य कोई भी ऐसा निकाय नहीं है, जो प्रत्यक्ष रूप से जनता द्वारा चुन कर निर्मित किया जाता हो। यूरोपीय संसद एक द्विसदनीय निकाय है, जिसका एक कदम स्वयं यह यूरोपीय संसद ही है, जबकि इसका दूसरा सदन 'यूरोपीय संघ की परिषद' के नाम से जाना जाता है। यूरोपीय संघ के इस निकाय 'यूरोपीय संसद' के सदस्यों का चुनाव लोगों द्वारा प्रत्यक्ष रूप से किया जाता है। इस संस्था के लिए सदस्यों के निर्वाचन में यूरोपीय संघ के सदस्य देशों के 18 वर्ष या उससे अधिक उम्र के सभी व्यक्ति भाग लेते हैं। अर्थात् यूरोपीय संसद के सदस्यों का निर्वाचन सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार के आधार पर किया जाता है।

यूरोपीय संघ की परिषद

यूरोपीय संसद व्यवस्था का पहला सदन 'यूरोपीय संसद' के नाम से जाना जाता है, जबकि दूसरा सदन 'यूरोपीय संघ की परिषद' के नाम से जाना जाता है। यूरोपीय संघ की परिषद को प्रचलित रूप में 'परिषद') के नाम से भी जाना जाता है। यूरोपीय संसद और यूरोपीय संघ की परिषद यह दोनों ही सदन मिलकर यूरोपीय संघ के लिए विधायी कार्यों का निष्पादन करते हैं। इस संस्था में यूरोपीय संसद के विपरीत, यूरोपीय संघ के सदस्य देशों के मंत्री शामिल होते हैं। इस प्रकार, स्पष्ट है कि 'यूरोपीय संघ की परिषद' नामक संस्था, 'यूरोपीय परिषद' नामक संस्था से पूरी तरह से भिन्न है। लेकिन दोनों ही संस्थाएँ यूरोपीय संघ की 'शासी निकाय' अवश्य हैं।

यूरोपीय केंद्रीय बैंक

यूरोपीय केंद्रीय बैंक यूरोपीय संघ का एक अन्य शासी निकाय है। यह बैंक यूरोपीय संघ के लिए ठीक उसी तरह से कार्य करता है, जैसे किसी देश का केंद्रीय बैंक उस देश के लिए कार्य करता है। यूरोपीय संघ का यह यूरोपीय केंद्रीय बैंक 'यूरो' नामक मुद्रा के लिए मौद्रिक नीति का निर्माण करता है तथा उससे संबंधित विभिन्न पहलुओं को प्रशासित करता है। हम इस बात का उल्लेख पहले ही कर चुके हैं कि यूरोपीय संघ के कुल 28 सदस्य देशों में से केवल 19 सदस्य देशों ने ही यूरो को अपनी मुद्रा के रूप में स्वीकार किया है। अतः यूरो को अपनी राष्ट्रीय मुद्रा के रूप में स्वीकार करने वाले इन 19 देशों के संगठन को 'यूरो जोन' (यूरोपीय संघ ro Zone) कहा जाता है। ऐसे में, यूरोपीय संघ का यह यूरोपीय केंद्रीय बैंक केवल यूरो जोन के लिए ही अपनी मौद्रिक नीतियाँ निर्मित करता है और उनका प्रशासन करता है।

यूरोपीय संघ का न्यायालय

यूरोपीय संघ से संबंधित इस न्यायिक संस्था का गठन सबसे पहले 1952 में पेरिस की संधि के माध्यम से किया गया था। उस समय इस न्यायिक संस्था का नाम 'द कोर्ट ऑफ जस्टिस ऑफ द यूरोपियन कम्युनिटीज'

रखा गया था। लेकिन आगे चलकर वर्ष 2009 में इस संस्था का नाम बदलकर 'यूरोपीय संघ का न्यायालय' कर दिया गया था। इस न्यायिक संस्था का सबसे महत्वपूर्ण कार्य यह है कि यह यूरोपीय संघ के कानूनों की व्याख्या करती है। इसके अलावा, यह न्यायिक संस्था इस बात को भी सुनिश्चित करती है कि यूरोपीय संघ के सभी कानून यूरोपीय संघ के सभी सदस्य देशों में एक समान रूप से लागू हो रहे हों।'द कोर्ट ऑफ जस्टिस ऑफ द यूरोपियन यूनियन' पर यह जिम्मेदारी दी होती है कि वह यूरोपीय संघ के सदस्य देशों के बीच, इन सदस्य देशों की राष्ट्रीय सरकारों के बीच और यूरोपीय संघ के किन्हीं संस्थानों के बीच, यदि किसी प्रकार के विवाद उभरते हैं, तो वह उनका निपटान करे। इस दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि 'द कोर्ट ऑफ जस्टिस ऑफ द यूरोपीयन यूनियन' व्यापक अधिकारों से संपन्न एक न्यायिक संस्था है, जो यूरोपीय संघ से संबंधित सभी लगभग सभी मसलों का समाधान करने के लिए अधिकृत है।

यूरोपीय संघ की हिंद-प्रशांत रणनीति:

यूरोपीय संघ (ईयू) ने इंडो-पैसिफिक में घनिष्ठ संबंध और मज़बूत उपस्थिति को आगे बढ़ाने के लिये अक्बतूर 2021 में इंडो-पैसिफिक में सहयोग हेतु अपनी रणनीति जारी की। रणनीति की प्रमुख विशेषताओं में शामिल हैं:

a. **संवहनीय आपूर्ति शृंखला:** हिंद-प्रशांत भागीदारों के साथ इस संलग्नता का प्राथमिक उद्देश्य अधिक प्रत्यास्थी और संवहनीय वैश्विक मूल्य शृंखलाओं का निर्माण करना है।
b. **समान विचारधारा वाले देशों के साथ साझेदारी:** ऐसा प्रतीत होता है कि यूरोपीय संघ की रणनीति वर्तमान में हिंद-प्रशांत क्षेत्र में पहले से स्थापित साझेदारियों को और सुदृढ़ करने तथा समान विचारधारा वाले देशों के साथ नई साझेदारियाँ विकसित करने पर अधिक केंद्रित है, ताकि हिंद-प्रशांत क्षेत्र में उसकी भूमिका और बढ़ती उपस्थिति सुनिश्चित हो सके।
c. **'क्वाड' (Quad) सदस्यों के साथ सहयोग की इच्छा:** यूरोपीय संघ 'क्वाड' सदस्य देशों के साथ जलवायु परिवर्तन, प्रौद्योगिकी और वैक्सीन जैसे विषयों में सहयोग की इच्छा रखता है।
d. पश्चिमी प्रशांत क्षेत्र में चीन की विस्तारवादी प्रवृत्तियों और हिंद महासागर में इसके बढ़ते पदचिह्नों को देखते हुए, यूरोपीय संघ इंडो-पैसिफिक क्षेत्र में क्वाड देशों के साथ काम करने को तैयार है।

चुनौतियाँ और सुधार

वर्तमान में यह स्पष्ट नहीं है कि सभी पुराने सदस्य राज्य संघ में रहेंगे। लिस्बन संधि के बाद से सदस्यों को यूरोपीय संघ से बाहर होने का अधिकार मिल गया है। वित्तीय संकट ने ग्रीस को बुरी तरह से प्रभावित किया है। यह आशंका जताई जा रही है कि यह देश संघ से बाहर निकल जाएगा। उन देशों में जहाँ श्रम सस्ता है, रोज़गार हेतु पलायन, छँटनी एवं रिक्तता यूरोपीय नागरिकों के दैनिक जीवन को प्रभावित करता है। यूरोपीय संघ आर्थिक समस्याओं एवं रोज़गार के समाधान के लिये अपेक्षित है।

रोज़गार एवं कार्य करने की शर्तों पर मानक श्रम समझौतों की मांग भी की जा रही है जो पूरे यूरोप और यहाँ तक कि विश्व भर में लागू होंगे। विश्व व्यापार संगठन के सदस्य के रूप में यूरोपीय संघ एक ऐसी स्थिति में है कि वह वैश्विक विकास को प्रभावित कर सकता है। यूरोपीय संघ प्रमुख सक्षम प्रौद्योगिकियों के

विकास में एक वैश्विक नेतृत्वकर्त्ता की भूमिका निभाता है। यूरोपीय संघ में प्रमुख सक्षम प्रौद्योगिकियों से संबंधित निर्माण कम हो रहा है और यूरोपीय संघ से बाहर पेटेंट का तेज़ी से दोहन हो रहा है।

यूनाइटेड स्टेट्स की तरह यूरोपीय संघ ने यूरोपीय सुरक्षा और स्थिरता के निहितार्थ **मुखर रूस** के साथ अपने संबंधों पर पुनर्विचार करने के लिये दबाव डाला है। यूरोपीय संघ ने यूक्रेन के राजनीतिक संक्रमण काल में सहयोग करने की बात की है। मार्च 2014 में रूस के क्रीमिया राज्य-हरन की निंदा की और दृढ़तापूर्वक रूस से आग्रह किया कि वह यूक्रेन के पूर्व क्षेत्र में अलगाववादी ताकतों का समर्थन करना बंद करे।

यूरोपीय संघ ने व्यापार पर कई नियमों को आरोपित किया है और बदले में प्रतिवर्ष सदस्यता शुल्क के तौर पर बिलियन पाउंड शुल्क वसूला। वर्ष 2004 में यूरोपीय संघ ने आठ पूर्वी यूरोपीय देशों को जोड़ा, जिससे आव्रजन की लहर शुरू हो गई और इसने सार्वजानिक सेवाओं को तनाव की स्थिति में ला दिया। इंग्लैंड और वेल्स में विदेशी मूल के निवासियों की हिस्सेदारी 2011 तक 13.4 प्रतिशत थी, जो 1991 से लगभग दोगुनी थी।

ब्रेक्जिट समर्थक चाहते थे कि ब्रिटेन अपनी सीमाओं का पूर्ण नियंत्रण वापस ले और यहाँ रहने या काम करने के लिये आने वाले लोगों की संख्या को कम करे। उन्होंने तर्क दिया कि यूरोपीय संघ एक सुपर स्टेट में रूपांतरित हो रहा है जिसने राष्ट्रीय संप्रभुता को प्रभावित किया है। उनका मानना है कि ब्रिटेन बिना किसी गुट के वैश्विक ताकत है और वह स्वयं बेहतर व्यापार संधियों पर बातचीत कर सकता है। यूरोपीय संघ से बाहर होने की प्रक्रिया को यूरोपीय संघ की संधि के अनुच्छेद 50 द्वारा शासित किया जाता है। ब्रिटेन और यूरोपीय संघ के मध्य एक समझौता जो इसे आप्रवासन पर नियंत्रण की शक्ति देता है और 500 मिलियन लोगों को यूरोपीय संघ के टैरिफ-मुक्त एकल बाज़ार तक तरजीही पहुँच प्रदान करता है। विश्व के सबसे बड़े व्यापार ब्लॉक की आर्थिक मज़बूती को जर्मनी एवं अन्य यूरोपीय संघ नेताओं द्वारा अस्वीकृत कर दिया गया है।

यूरोपीय संघ और भारत

यूरोपीय संघ देश भर में शांति स्थापना, रोज़गार सृजन, आर्थिक विकास को बढ़ाने एवं सतत् विकास को प्रोत्साहित करने के लिये भारत के साथ निकटता से कार्य करता है। जैसा कि भारत ने निम्न से मध्यम आय वाले देश की श्रेणी में प्रवेश किया, भारत-यूरोपीय संघ सहयोग भी साझा प्राथमिकताओं पर केंद्रित होकर पारंपरिक वित्तीय सहायता से साझेदारी की ओर अग्रसर हुआ है। वर्ष 2017 में यूरोपीय संघ -भारत शिखर सम्मेलन में नेताओं ने सतत् विकास के लिये एजेंडा 2030 के क्रियान्वयन पर सहयोग को मज़बूती प्रदान करने के लिये अपने इरादे को दोहराया और भारत-यूरोपीय संघ विकास संवाद के विस्तार के अन्वेषण हेतु सहमत हुए।

यूरोपीय संघ वस्तु व्यापार में 2019-20 में भारत का सबसे बड़ा व्यापारिक भागीदार था, चीन और अमेरिका से आगे कुल व्यापार 90 बिलियन अमेरिकी डॉलर के करीब था। यूरोपीय संघ भारत का सबसे बड़ा व्यापार भागीदार है, वर्ष 2017 में दोनों के बीच वस्तुओं का कुल व्यापार € 85 बिलियन (95 बिलियन USD) या कुल भारतीय व्यापार का 13.1% है जो चीन (11.4%) और USA (9.5%) से अधिक है।

भारत - यूरोपीय संघ द्विपक्षीय व्यापार और निवेश समझौता (BTIA): यह भारत और यूरोपीय संघ के मध्य मुक्त व्यापार समझौता है जिसकी शुरुआत वर्ष 2007 में की गई थी। हाल ही में, भारत और यूरोपीय

संघ ने नई दिल्ली में भारत-यूरोपीय संघ व्यापार और निवेश समझौतों के लिये पहले दौर की वार्ता संपन्न की।दूसरे दौर की वार्ता सितंबर 2022 में ब्रुसेल्स में होने वाली है।BTIA पर हस्ताक्षर के साथ, भारत और यूरोपीय संघ अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों में वस्तुओं और सेवाओं के व्यापार और निवेश में बाधाओं को दूर करके द्विपक्षीय व्यापार को बढ़ावा देने की उम्मीद करते हैं।

भारत और यूरोपीय संघ विभिन्न क्षेत्रों में आपसी सहयोग कर रहे हैं। वास्तव में 1962 में भारत और 'यूरोपीय कम्युनिटी' (EC) के बीच कूटनीतिक संबंध स्थापित हुए थे। उस समय यूरोपीय कम्युनिटी के साथ कूटनीतिक संबंध स्थापित करने वाला 'भारत' विश्व का पहला विकासशील देश था। वर्ष 2017 में आयोजित हुई भारत और यूरोपीय संघ की शिखर वार्ता के दौरान यह निर्णय लिया गया था कि दोनों देश मिलकर 'एजेंडा 2030' को लागू करने के लिए संयुक्त प्रयास करेंगे। वास्तव में, एजेंडा 2030 सतत विकास लक्ष्यों के क्रियान्वयन से संबंधित है। इसी अवसर पर दोनों पक्षों ने यह निर्णय भी लिया था कि वे भारत और यूरोपीय संघ के मध्य हस्ताक्षर हुए 'विकास डायलॉग' को आगे भी जारी रखेंगे।

यदि विदेशी निवेश की दृष्टि से देखा जाए तो यूरोपीय संघ भारत के लिए दूसरा सबसे बड़ा निवेशक है। पिछले एक दशक में यूरोपीय संघ से भारत की ओर आने वाले निवेश की मात्रा 8 प्रतिशत से बढ़कर 18 प्रतिशत हो गई है। इसका अर्थ है कि पिछले एक दशक में यूरोपीय संघ की ओर से भारत में किए जाने वाले निवेश की मात्रा दोगुनी से भी अधिक बढ़ गई है। यह स्थिति दोनों पक्षों के बढ़ते आपसी विश्वास और सहयोग को दर्शाती है। यूरोपीय संघ भारत द्वारा किए जाने वाले सबसे बड़े निर्यात गंतव्यों में से एक है। भारत यूरोपीय संघ को वस्त्र, इंजीनियरिंग वस्तुओं, रसायन और उससे संबंधित उत्पादों इत्यादि का भारी मात्रा में निर्यात करता है। जबकि यूरोपीय संघ की ओर से भारत में आयात की जाने वाली वस्तुओं में आभूषण, कीमती पत्थर, इंजीनियरिंग वस्तुएँ, रसायन और उससे संबद्ध उत्पाद इत्यादि प्रमुख हैं।

भारत और यूरोपीय संघ तकनीक, स्वच्छ ऊर्जा और जलवायु भागीदारी जैसे मुद्दों पर भी एक दूसरे का व्यापक स्तर पर सहयोग कर रहे हैं। इससे दोनों पक्षों के बीच व्यापारिक रिश्ते निरंतर मजबूत हो रहे हैं। इसके अलावा, भारत और यूरोपीय संघ के विभिन्न देश आपस में 'अनुसंधान और विकास' (Research and Development) के क्षेत्र में भी सहयोग को बढ़ावा दे रहे हैं। 'भारत' यूरोप में संचालित किए जा रहे 'अंतरराष्ट्रीय आई. टी. ई. आर. संलयन परियोजना' में एक मुख्य भागीदार के रूप में शामिल है। इस प्रकार, भारत और यूरोपीय संघ 'विज्ञान और प्रौद्योगिकी' के क्षेत्र में भी बढ़ चढ़कर एक दूसरे का सहयोग कर रहे हैं।

भारत और यूरोपीय संघ 'पानी और पर्यावरण' के क्षेत्र में भी एक दूसरे का व्यापक सहयोग कर रहे हैं। भारत सरकार द्वारा संचालित 'स्वच्छ गंगा पहल' में यूरोपीय संघ अपनी सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित करा रहा है। इसके अलावा, यूरोपीय संघ और भारत दोनों ही पक्ष, जल से संबंधित अन्य समस्याओं को सुलझाने में भी एक दूसरे का वृहद स्तर पर सहयोग कर रहे हैं। यह दोनों पक्षों के बीच बढ़ते आपसे विश्वास को दर्शाता है। इसके परिणाम स्वरूप दोनों पक्षों के आपसी रिश्ते निरंतर नई ऊँचाइयों को छू रहे हैं।

यूरोपीय संघ और भारत दोनों ही पक्ष प्रवसन और मोबिलिटी से संबंधित मसलों पर भी एक दूसरे का सहयोग कर रहे हैं। इन दोनों पक्षों के बीच इस संबंध में एक समझौता भी हस्ताक्षरित हुआ है। उस समझौते का नाम 'कॉमन एजेंडा ऑन माइग्रेशन एंड मोबिलिटी' (CAMM) है। दोनों पक्ष इसी समझौते के माध्यम से प्रवसन और मोबिलिटी से संबंधित अपने लगभग सभी मुद्दों का समाधान करते हैं।

भारत और यूरोपीय संघ दोनों ही पक्ष 'सूचना और संचार प्रौद्योगिकी' (ICT) के क्षेत्र में भी एक दूसरे का निरंतर सहयोग कर रहे हैं। इस दिशा में भारत और यूरोपीय संघ ने 'इंडिया ई. यू. साइबर सिक्योरिटी डायलॉग' भी हस्ताक्षर कर रखा है। जिसके माध्यम से दोनों पक्ष साइबर सुरक्षा से संबंधित अपने अनेक मामलों को हल करने की कोशिश करते हैं और इस क्षेत्र में निरंतर आपसी सहयोग को बढ़ावा देते हैं। इसके अलावा, यूरोपीय संघ भारत के स्मार्ट सिटी कार्यक्रम में भी सहयोग कर रहा है। इसके अंतर्गत यूरोपीय संघ भारत के कुछ शहरों को यूरोप के कुछ शहरों की तर्ज पर विकसित करने के संबंध में सहायता प्रदान कर रहा है। अर्थात् वर्तमान में अवसंरचनात्मक विकास, सतत् विकास, और नियोजित विकास की दृष्टि से भी दोनों पक्ष एक दूसरे का व्यापक सहयोग कर रहे हैं।

यूरोपीय संघ भारत को मानव अधिकार के मुद्दे पर अनावश्यक ही घेरता रहता है। वर्ष 2019 में भारत ने अपनी संप्रभुता का इस्तेमाल करते हुए जम्मू कश्मीर से संबंधित भारतीय संविधान के अनुच्छेद 370 में संशोधन किया था। भारत के इस आंतरिक मामले को यूरोपीय संघ ने मानवाधिकार के उल्लंघन के रूप में देखा था और इस पर सवाल उठाया था। यानी यूरोपीय संघ द्वारा भारत के आंतरिक मामलों में अनावश्यक हस्तक्षेप करना दोनों पक्षों के मध्य विवाद का एक प्रमुख कारण है।

भारत और यूरोपीय संघ, दोनों पक्षों के बीच व्यापार असंतुलन की स्थिति है। यह कारक भी दोनों पक्षों के आपसी रिश्तों को मजबूत करने में एक प्रमुख बाधक तत्व के रूप में कार्य करता है। इसीलिए दोनों पक्षों को मिलकर व्यापार असंतुलन को कम करने की दिशा में आगे बढ़ना चाहिए, ताकि दोनों पक्षों के आपसी रिश्ते और अधिक मजबूत हो सकें तथा दोनों पक्ष इससे अधिक से अधिक लाभ उठा सकें।

यूरोपीय संघ और भारत के बीच वर्ष 2007 में ही एक 'द्विपक्षीय व्यापार और निवेश समझौता' (BTIA) हस्ताक्षरित हो गया था, लेकिन विभिन्न बाधक तत्व के कारण यह समझौता अभी तक लागू नहीं हो सका है। ऐसे में, दोनों पक्षों को आपस में मिलकर इन सभी बाधक तत्वों का निराकरण करने की कोशिश करनी चाहिए, ताकि दोनों पक्ष अपने व्यापारिक रिश्तों को और अधिक मजबूत कर सकें तथा दोनों पक्ष आर्थिक विकास की ओर आगे बढ़ सकें।

निष्कर्ष

इस प्रकार, हमने ऊपर की गई अपनी इस चर्चा में भारत और यूरोपीय संघ से संबंधित विभिन्न पहलुओं को विश्लेषणात्मक ढंग से समझने का प्रयास किया है। इस दौरान हमने देखा है कि भारत और यूरोपीय संघ के बीच विभिन्न बिंदुओं पर बेहतरीन सहयोग किया जा रहा है, लेकिन कुछ बिंदु ऐसे भी हैं, जिन पर दोनों पक्षों के बीच विवाद की स्थिति बानी हुई है। ऐसे में, दोनों पक्षों को आपस में बुद्धिमानी का परिचय देना चाहिए और इन विवादित मसलों को आपसी बातचीत के माध्यम से सुलझाने की तरफ आगे बढ़ना चाहिए। आपसी सहयोग की स्थिति न सिर्फ दोनों पक्षों के व्यापार को और अधिक प्रफुल्लित करने के रूप में सामने आएगी, बल्कि दोनों दोनों पक्षों की आर्थिक, वैज्ञानिक और सामाजिक प्रगति के रूप में भी परिलक्षित होगी। दोनों पक्षों को दृढ़ इच्छाशक्ति का परिचय देते हुए इन तमाम बिंदुओं को सुलझाने के लिए गंभीरता पूर्वक प्रयास करना चाहिए।

2.4 दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग संगठन (सार्क)

दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग संगठन (सार्क) की स्थापना 8 दिसंबर,1985 को ढाका में सार्क चार्टर पर हस्ताक्षर के साथ की गई थी। दक्षिण एशिया में क्षेत्रीय सहयोग का विचार सर्वप्रथम नवंबर 1980 में सामने आया था। सात संस्थापक देशों- बांग्लादेश, भूटान, भारत, मालदीव नेपाल, पाकिस्तान एवं श्रीलंका के विदेश सचिवों के परामर्श के बाद इनकी प्रथम मुलाकात अप्रैल 1981 में कोलंबिया में हुई थी। अफगानिस्तान वर्ष 2005 में आयोजित हुए 13वें वार्षिक शिखर सम्मेलन में सार्क का सबसे नया सदस्य बना। इस संगठन का मुख्यालय एवं सचिवालय नेपाल के काठमांडू में स्थित है।

सिद्धांत

सार्क के फ्रेमवर्क के तहत सहयोग निम्नलिखित सिद्धांतों पर आधारित है

1. संप्रभु समानता, क्षेत्रीय अखंडता, राजनीतिक स्वतंत्रता, अन्य राज्यों के आंतरिक मामलों में गैर-हस्तक्षेप एवं पारस्परिक लाभ के सिद्धांतों का सम्मान करना।
2. इस प्रकार का क्षेत्रीय सहयोग अन्य द्विपक्षीय एवं बहुपक्षीय सहयोग का विकल्प न होकर उसका एक पूरक होगा।
3. ऐसा क्षेत्रीय सहयोग अन्य द्विपक्षीय एवं बहुपक्षीय दायित्वों के साथ असंगत नहीं होगा।

सार्क में आठ सदस्य देश शामिल हैं:

अफगानिस्तान, बांग्लादेश, भूटान, भारत,मालदीव,नेपाल, पाकिस्तान और श्रीलंका.

वर्तमान में सार्क के 9 पर्यवेक्षक सदस्य देश हैं- (i) ऑस्ट्रेलिया (ii) चीन (iii) यूरोपियन यूनियन (iv) ईरान (v) जापान (vi) रिपब्लिक ऑफ कोरिया (vii) मॉरीशस (viii) म्याँमार एवं (ix) संयुक्त राज्य अमेरिका।

संगठन के कार्य क्षेत्र है : मानव संसाधन विकास एवं पर्यटन,कृषि एवं ग्रामीण विकास,पर्यावरण, प्राकृतिक आपदा एवं बायो टेक्नोलॉजी,आर्थिक, व्यापार एवं वित्त,सामाजिक मुद्दे,सूचना एवं गरीबी उन्मूलन,उर्जा, परिवहन विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी,शिक्षा, सुरक्षा एवं संस्कृति और अन्य

उद्देश्य

1. दक्षिण एशिया के लोगों के कल्याण को बढ़ावा देना एवं उनके जीवन की गुणवत्ता में सुधार करना।
2. इस क्षेत्र में आर्थिक वृद्धि, सामाजिक प्रगति, सांस्कृतिक विकास में तेज़ी लाना और सभी व्यक्तियों को गरिमापूर्ण जीवन जीने का अवसर प्रदान करना तथा उनकी क्षमताओं को आकलन करना।
3. दक्षिण एशिया के देशों के मध्य सामूहिक आत्मनिर्भरता को बढ़ावा देना एवं उसे मज़बूत करना।
4. एक-दूसरे की समस्याओं का मूल्यांकन, आपसी विश्वास और समझ को बढ़ावा देना।
5. आर्थिक, सामाजिक,सांस्कृतिक, तकनीकी एवं वैज्ञानिक क्षेत्रों में आपसी सहयोग एवं सक्रिय सहभागिता को प्रोत्साहित करना।
6. अन्य विकासशील देशों के साथ सहयोग को मजबूत बनाना।
7. समान हितों के मामलों में अंतर्राष्ट्रीय मंच पर आपसी सहयोग को मज़बूत बनाना।
8. अंतर्राष्ट्रीय एवं क्षेत्रीय संगठनों के साथ समान उद्देश्यों एवं लक्ष्यों के साथ सहयोग करना।

प्रमुख अंग

राष्ट्र या सरकार के प्रमुखों की बैठक: ये बैठकें आमतौर पर वार्षिक आधार पर शिखर सम्मेलन स्तर पर आयोजित की जाती हैं।

विदेश सचिवों की स्थायी समिति: समिति संपूर्ण निगरानी एवं समन्वय स्थापित करती है, प्राथमिकताओं को निर्धारित करती है, संसाधनों को संगठित करती है और परियोजनाओं तथा वित्तपोषण को मंज़ूरी देती है।

सचिवालय: सार्क सचिवालय की स्थापना **16 जनवरी, 1987 को काठमांडू में की गई थी। इस सचिवालय की भूमिका संगठन** की गतिविधियों के क्रियान्वयन हेतु समन्वय और निगरानी, एसोसिएशन की बैठकों से संबंधित सेवाएँ, अंतर्राष्ट्रीय संगठनों एवं सार्क के मध्य संचार चैनल के रूप में कार्य करना है। इसके सचिवालय में महासचिव, **सात निर्देशक एवं सामान्य सेवा कर्मचारी शामिल हैं। महासचिव की नियुक्ति रोटेशन बेसिस पर मंत्रिपरिषद द्वारा तीन साल** के लिये की जाती है।

सार्क की संरचना निम्नलिखित प्रकार से है:-

1. **परिषद -** यह सर्वोच्च नीति-निर्माण निकाय है। परिषद का प्रतिनिधित्व संबंधित सदस्य देशों के शासनाध्यक्षों द्वारा किया जाता है।
2. **मंत्रिपरिषद -** मंत्रिपरिषद में विदेश मंत्री शामिल होते हैं और वे आम तौर पर एक साल दो बार मिलते हैं।

मंत्रिपरिषद के कार्य- (i) नीति निर्धारण, (ii) क्षेत्रीय सहयोग की प्रगति की समीक्षा करना, (iii) सहयोग के नए क्षेत्रों की पहचान करना, और (iv) आवश्यकतानुसार अतिरिक्त तंत्र स्थापित करना आदि।

स्थायी समिति के कार्य- इसमें सदस्य देशों के विदेश सचिवालय शामिल हैं। स्थायी समिति के प्रमुख कार्य हैं:- (i) कार्यक्रमों की निगरानी और समन्वय स्थापित करना, (ii) वित्तपोषण के तौर-तरीकों से निपटना, और (iii) क्षेत्र के भीतर और बाहर सहयोग जुटाना आदि।

सचिवालय के कार्य- यह मंत्रिपरिषद द्वारा नियुक्त महासचिव के नेतृत्व में होता है। सचिवालय के मुख्य कार्य इस प्रकार हैं: (i) सार्क द्वारा संचालित गतिविधियों का समन्वय और निष्पादन, (iii) सार्क बैठकों की निगरानी करना, (iii) SAARC और अन्य अंतर्राष्ट्रीय शिखर और मंचों के बीच एक संचार लिंक के रूप में कार्य करें आदि। इसके अतिरिक्त सार्क में ओर अन्य तीन समितियाँ है जिनमें - **स्थायी समिति, प्रोग्रामिंग समिति, तकनीकी समिति** सम्मिलित है।

सार्क के विशेष निकाय

सार्क विकास कोष (SDF): इसका प्राथमिक उद्देश्य सामाजिक क्षेत्र में सहयोग आधारित परियोजनाओं का वित्तपोषण करना है जैसे- गरीबी उन्मूलन, विकास आदि। SDF का शासन सदस्य देश के वित्त मंत्रालय के प्रतिनिधियों से गठित एक बोर्ड द्वारा किया जाता है। SDF की गवर्निंग काउंसिल (MSc के वित्त मंत्री) बोर्ड के कार्यों की देख-रेख करती है।

दक्षिण एशियाई विश्वविद्याल: भारत में अवस्थित दक्षिण एशियाई विश्वविद्यालय एक अंतर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय है। दक्षिण एशियाई विश्वविद्यालय द्वारा प्रदान की गई डिग्री एवं प्रमाण-पत्र राष्ट्रीय विश्वविद्यालय या संस्थाओं द्वारा प्रदान की गई संबंधित डिग्री एवं प्रमाण-पत्र के समान होती है।

दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय मानक संगठन: दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय मानक संगठन का सचिवालय बांग्लादेश के ढाका में अवस्थित है। इसकी स्थापना मानकीकरण और अनुरूपता (Standardization And Conformity) मूल्यांकन के क्षेत्र में सार्क के सदस्य देशों के मध्य समन्वय एवं सहयोग बढ़ाने एवं प्राप्त करने के लिये की गई थी। इसका लक्ष्य वैश्विक बाज़ार में पहुँच तथा अंतर-क्षेत्रीय व्यापार में सुविधा प्रदान करने के लिये सामंजस्यपूर्ण मानकों का विकास करना है।

सार्क मध्यस्थता परिषद : यह पाकिस्तान में स्थापित एक अंतर-सरकारी निकाय है। यह वाणिज्यिक, औद्योगिक, व्यापारिक, बैंकिंग, निवेश और ऐसे अन्य संबंधित विवादों के उचित और कुशल निपटान के लिये एक कानूनी मंच प्रदान करता है।

सार्क का महत्त्व

सार्क सदस्य देशों का क्षेत्रफल विश्व के क्षेत्रफल का 3% है एवं विश्व की कुल आबादी के 21% लोग सार्क देशों में रहते हैं तथा वैश्विक अर्थव्यवस्था में सार्क देशों की हिस्सेदारी 3.8% अर्थात् 2.9 ट्रिलियन अमेरिकी डॉलर है। यह दुनिया की सबसे घनी आबादी वाला क्षेत्र होने के साथ-साथ महत्त्वपूर्ण उपजाऊ क्षेत्रों में से एक है। सार्क देशों में परंपरा, परिधान, भोजन और सांस्कृतिक एवं राजनीतिक पहलू लगभग समान हैं जो उनके कार्यो में तालमेल या सहयोग स्थापित करने में लाभदायक है। सार्क के सदस्य देशों में समान समस्याएँ और मुद्दे विद्यमान हैं जैसे- गरीबी, निरक्षरता, कुपोषण, प्राकृतिक आपदाएँ, आंतरिक संघर्ष, औद्योगिक एवं तकनीकी पिछड़ापन, निम्न जीडीपी एवं निम्न सामाजिक-आर्थिक स्थिति। अतः विकास के सामान्य क्षेत्रों का निर्माण कर तथा विकास प्रक्रिया में आने वाली समस्याओं का समाधान करके वे अपने जीवन स्तर को ऊपर उठा सकते हैं।

सार्क की उपलब्धियाँ

1. **मुक्त व्यापार क्षेत्र:** वैश्विक क्षेत्र में सार्क तुलनात्मक रूप से एक नया संगठन है। सार्क के सदस्य देशों ने एक **मुक्त व्यापार क्षेत्र (Free Trade Area -FTA)** स्थापित किया है जिसके परिणामस्वरूप उनके आंतरिक व्यापार में वृद्धि होगी तथा कुछ देशों के व्यापार अंतराल में तुलनात्मक रूप से कमी आएगी।
2. **SAPTA**: साउथ एशिया प्रेफरेंशियल ट्रेडिंग एग्रीमेंट (South Asia Preferential Trading Agreement) वर्ष 1995 में सार्क के सदस्य देशों के मध्य व्यापार को प्रोत्साहित करने के लिये किया गया था।
3. मुक्त व्यापार समझौता, सूचना प्रौद्योगिकी जैसी सभी सेवाओं को छोड़कर, केवल वस्तुओं तक सीमित है। वर्ष 2016 तक सभी व्यापारिक वस्तुओं के सीमा शुल्क को कम करने के लिये इस समझौते पर हस्ताक्षर किये गए थे।
4. **सार्क एग्रीमेंट ऑन ट्रेड इन सर्विस (SATIS): SATIS** सेवा उदारीकरण के क्षेत्र में व्यापार करने के लिये GATS-plus के **'सकारात्मक सूची'** दृष्टिकोण का अनुसरण कर रहा है।

5. **सार्क विश्वविद्यालय:** भारत में एक सार्क विश्वविद्यालय तथा पाकिस्तान में फूड बैंक एवं एक ऊर्जा भंडार की स्थापना भी की गई।

भारत के लिए महत्त्व

भारत देश के समीपवर्ती पड़ोसियों को प्रमुखता देता रहा है। यह विकास प्रक्रिया एवं आर्थिक सहयोग में नेपाल, भूटान, मालदीव एवं श्रीलंका को आकर्षित करके **चीन के वन बेल्ट एंड वन रोड कार्यक्रम** का विरोध कर सकता है। सार्क इन क्षेत्रों के बीच आपसी विश्वास एवं शांति स्थापना में सहयोग कर सकता है। यह भारत को अतिरिक्त जिम्मेदारियां लेकर क्षेत्र में अपने नेतृत्व को प्रदर्शित करने के लिये एक मंच प्रदान करता है।

सार्क भारत की एक्ट ईस्ट पॉलिसी के लिये एक गेम चेंजर है . दक्षिण एशियाई अर्थव्यवस्थाओं को दक्षिण पूर्व एशिया के साथ लिंक करके मुख्य रूप से सेवा क्षेत्र में भारत के लिए आर्थिक एकीकरण एवं समृद्धि को आगे लाया जा सकता है।

एक ऐसे क्षेत्र में जहाँ चीनी निवेश एवं ऋण तेज़ी से बढ़ा है, सार्क विकास हेतु और अधिक स्थायी विकल्प प्रस्तुत करने के साथ ही व्यापार शुल्कों का विरोध कर सकता है। इसके अलावा यह दुनिया भर में दक्षिण एशियाई क्षेत्र के श्रमिकों के लिये बेहतर शर्तों की मांग करने हेतु एक आम मंच की भूमिका निभा सकता है। सार्क एक ऐसा संगठन है जो ऐतिहासिक और समकालीन रूप से दक्षिण एशियाई देशों की पहचान को दर्शाता है। यह प्राकृतिक रूप से बनी एक भौगोलिक पहचान है। यहाँ की संस्कृति, भाषा और धार्मिक संबंध समान रूप से दक्षिण एशिया को परिभाषित करते हैं। सभी सदस्य देशों द्वारा क्षेत्र में शांति व स्थिरता बनाए रखने के लिये संगठन की क्षमता का अन्वेषण किया जाना चाहिये। सार्क को स्वाभाविक रूप से प्रगति करने की अनुमति दी जानी चाहिये एवं दक्षिण एशिया के लोगों, जो कि विश्व की जनसंख्या का एक-चौथाई हिस्सा है, को अधिक लोगों से संपर्क स्थापित करने की पेशकश की जानी चाहिये।

<u>खंड 05:</u> अंतरराष्ट्रीय संस्थाएं, क्षेत्रीय सहयोग एवं भारत का व्यापार

<u>इकाई</u>- 03

विश्व व्यापार संगठन एवं अन्य विकसित देशों का व्यापार

2.32 प्रस्तावना
2.33 उद्देश्य
2.34 सारांश
2.35 विश्व व्यापार संगठन
2.36 अन्य विकसित देशों का व्यापार
2.37 शब्दावली
2.38 सन्दर्भ ग्रन्थ / उपयोगी सुची
2.39 अभ्यास प्रश्न

विश्व व्यापार संगठन (WTO)

विश्व व्यापार संगठन (WTO) की स्थापना 1995 में टैरिफ और व्यापार संबंधी सामान्य करार (GATT) के उत्तराधिकारी के रूप में हुई थी। वर्तमान में 164 देश इसके सदस्य हैं। भारत इस बहुउद्देशीय संस्था का संस्थापक सदस्य और सक्रिय भागीदार देश है। सतत विकास के उद्देश्य के साथ वैश्विक संसाधनों का इष्टतम उपयोग करते हुए वस्तुओं एवं सेवाओं के उत्पादन और व्यापार का विस्तार करने के लिए विश्व व्यापार संगठन वैश्विक व्यापार समझौते प्रस्तुत करता है, व्यापार वार्ताओं के लिए मच प्रदान करता है, देश के बीच व्यापारिक विवादों का निपटारा करता है। राष्ट्रीय व्यापार नीतियों की समीक्षा करता है, तकनीकी सहायता और क्षमता निर्माण कार्यक्रमों के माध्यम से व्यापार नीति संबंधी मामलों में विकासशील देशों की सहायता करता है और अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं के व्यापार में आनेवाली बाधाओं को दूर करने के लिए अन्य अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं के साथ सहयोग करता है ताकि सभी के लिए सामान्य अवसर सुनिश्चित किये जा सकें।

वैश्विक व्यापार नियम

व्यापार के वैश्विक नियम आश्वासन और स्थिरता प्रदान करते है। उपभोक्ताओं और उत्पादकों को पता रहता है कि वे सुरक्षित आपूर्ति और उनके द्वारा उपयोग किए जाने वाले तैयार उत्पादों, घटकों, कच्चे माल और सेवाओं के अधिक विकल्पों का आनंद ले सकते है। उत्पादकों और निर्यातकों को निश्चित रहता है कि विदेशी

बाजार उनके लिए खुले रहेंगे।WTO में निर्णय आम तौर पर सभी सदस्यों के बीच आम सहमति से लिए जाते हैं और उन्हें सदस्यों की संसदों द्वारा अनुमोदित किया जाता है।

व्यापार घर्षण को WTO की विवाद निपटान प्रक्रिया में शामिल किया जाता है, जहाँ समझौतों और प्रतिबद्धताओं की व्याख्या करने और यह सुनिश्चित करने पर ध्यान केंद्रित किया जाता है कि सदस्यों की व्यापार नीतियां उनके अनुरूप हो। सदस्य सरकारों के बीच बातचीत के माध्यम से व्यापार बाधाओं को कम करके, WTO की प्रणाली लोगों और व्यापारिक अर्थव्यवस्थाओ के बीच अन्य बाधाओं को भी घटा देती है। प्रणाली के केंद्र में- जिसे बहुपक्षीय व्यापार प्रणाली के रूप में जाना जाता है - WTO के समझौते हैं, जिन पर दुनिया की व्यापारिक अर्थव्यवस्थाओं के एक बहुत बड़े बहुमत द्वारा बातचीत और हस्ताक्षर किए जाते हैं, और उनकी संसदों में इसकी पुष्टि की जाती है।वैश्विक व्यापार के लिए कानूनी आधार हैं। मूलतः वे अनुबंध हैं, जो WTO सदस्यों को महत्वपूर्ण व्यापार अधिकारों की गारंटी देते हैं। समझौते वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादकों, निर्यातकों और आयातकों को अपना व्यवसाय चलाने में मदद करने के लिए एक स्थिर और पारदर्शी ढांचा प्रदान करते हैं।

व्यापार वार्ता

विश्व व्यापार संगठन 1995 में अस्तित्व में आया। सबसे युवा अंतरराष्ट्रीय संगठनों में से एक, WTO द्वितीय विश्व युद्ध के मद्देनजर स्थापित टैरिफ और व्यापार पर सामान्य समझौते (GATT) का उत्तराधिकारी हैं। इसलिए जबकि WTO अपेक्षाकृत युवा है, बहुपक्षीय व्यापार प्रणाली जो मूल रूप से GATT के तहत स्थापित की गई थी, 70 वर्ष से अधिक पुरानी है । पिछले 70 वर्षों में विश्व व्यापार में असाधारण वृद्धि देखी गई है। व्यापारिक निर्यात में सलाना औसतन 6% की वृद्धि हुई है। GATT और WTO ने अभूतपूर्व विकास में योगदान करते हुए एक मजबूत और समृद्ध व्यापार प्रणाली बनाने में मदद की है।GATT के तहत आयोजित व्यापार वार्ताओं या दौरों की एक श्रृंखला के माध्यम से विकसित की गई थी। पहले दौर में मुख्य रूप से टैरिफ कटौती पर चर्चा हुई लेकिन बाद की बातचीत में एंटी-ड्रेपिंग और गैर टैरिफ उपायों जैसे बन्य क्षेत्र भी शामिल हुए। 1986-94-उरुग्वे दौर के कारण WTO का निर्माण हुआ|

1997 में दूरसंचार सेवाओं पर एक समझौता हुआ, जिसमें 69 सरकारें व्यापक उदारीकरण उपायों पर सहमत हुई जो उरुग्वे दौर में सहमति तक नहीं पहुँच सके थे। उसी वर्ष 40 सरकारों ने सूचना प्रद्योगिकी उत्पादों में टैरिफ मुक्त व्यापार के लिए सफलतापूर्वक बातचीत संपन्न की और 70 सदस्यों ने बैंकिंग, बीमा, प्रतिभूतियों और वित्तीय जानकारी में 95% से अधिक व्यापार को समाहित करते हुए एक वित्तीय सेवा सौदा संपन्न किया। 2000 में कृषि और सेवाओं पर नई बातचीत शुरू हुई। इन्हें नवंबर 2001 में दोहा, कतर में चौथे

WTO मंत्रीस्तरीय सम्मेलन में विमोचित किए गए कार्य कार्यक्रम, दोहा विकास एजेंडा में शामिल किया था। नए कार्य कार्यक्रम में गैर-कृषि टैरिफ, व्यापार और पर्यावरण, एंटी-डैपिंग और सब्सिडी पर WTO के नियम, व्यापार सुविधा,सरकारी खरीद में पारदर्शिता, बौद्धिक संपदा और विकासशील अर्थव्यवस्थाओं द्वारा कठिनाइयों के रूप में उठाए गये कई मुद्दों पर बातचीत और अन्य कार्य शामिल थे।

इन और अन्य विषयों पर बातचीत के परिणामस्वरूप हाल के वर्षों में WTO नियम पुस्तिका में बड़े अपडेट हुए हैं। एक संशोधित सरकारी खरीद समझौता - जिसे 2011 में WTO के 8वें मंत्रिस्तरीय सम्मेलन में अपनाया गया-ने मूल समझौते कवरेज को अनुमानित रूप से 100 बिलियन अमेरिकी डॉलर प्रति वर्ष तक बढ़ा दिया। 2013 में बाली में 9 वें मंत्रिस्तरीय सम्मेलन में, WTO के सदस्यों ने व्यापार सुविधा पर समझौता किया, जिसका उद्देश्य लालफीताशाही को कम करके सीमा पर देरी को कम करना है। पूरी तरह लागू होने पर, यह समझौता - WTO में हुआ पहला बहुपक्षीय समझौता - व्यापार लागत में 14% से अधिक की कटौती करेगा और वैश्विक निर्यात को प्रति वर्ष 1 ट्रिलियन अमेरिकी डॉलर तक बढ़ा देगा ।

सूचना प्रद्योगिकी समझौते के विस्तार - जो 2015 में नैरोबी में 10 वीं मंत्रीस्तरीय सम्मेलन में संपन्न हुआ-ने प्रतिवर्ष 1.3 ट्रिलियन अमेरिकी डॉलर से अधिक मूल्य के 200 अतिरिक्त IT उत्पाद पर टैरिफ को समाप्त कर दिया। सम्मेलन का अन्य परिणाम शून्य भूख पर संयुक्त राष्ट्र सतत विकास लक्ष्य के प्रमुख लक्ष्यों में से एक को पूरा करते हुए, कृषि निर्यात सब्सिडी को समाप्त करने का निर्णय था।

व्यापार प्रणाली के सिद्धांत

WTO के समझौतें लंबे और जटिल हैं क्योंकि वे गतिविधियों की लंबी श्रृंखला को समाहित करते हैं। वे कृषि, वस्त्र, बैंकिंग, दूरसंचार, सरकारी खरीद, औद्योगिक मानक और उत्पाद सुरक्षा, खाद्य स स्वच्छता नियम, बौद्धिक संपदा आदि से संबंध रखते है। ये सिद्धांत इस प्रकार है:

1. बिना भेद भाव के व्यापार

सर्वाधिक पसंदीदा राष्ट्र (MFN) - (WTO समझौतों के तहत अन्य लोगों के साथ सामान व्यवहार करना)- देश आम तौर पर अपने व्यापारिक भागीदारों के बीच भेदभाव नहीं कर सकते हैं। किसी को विशेष अनुदान प्रदान करने (जैसे किसी उत्पाद के लिए कम सीमा शुल्क दर) अन्य सभी WTO सदस्यों के लिए भी ऐसा ही करना

होगा। इस सिद्धांत को सर्वाधिक पसंदीदा राष्ट्र (MFN) के रूप में जाना जाता है। यह इतना महत्वपूर्ण है कि यह पहला अनुच्छेद है जो वस्तुओं के व्यापार को नियंत्रित करता है। MFN को सेवाओं में व्यापार पर सामान्य समझौते (GATS) (अनुच्छेद 2) और बौद्धिक संपदा अधिकारों के व्यापार संबंधित पहलुओं पर समझौते (TRIPS) (अनुच्छेद 4) में भी एक प्राथमिकता है, हालांकि प्रत्येक समझौते में सिद्धांत को थोड़ा अलग तरीके से नियंत्रित किया जाता है। कुल मिलाकर, वे तीन समझौते WTO द्वारा नियंत्रित व्यापार के सभी तीन मुख्य क्षेत्रों को समायोजित करते हैं।

कुछ अपवादों की अनुमति है, उदाहरण के लिए, देश एक मुक्त व्यापार समझौता स्थापित कर सकते हैं जो केवल समूह के भीतर व्यापार किए जाने वाले समानों पर लागू होता है। बहर से आनेवाले सामानों से भेदभाव कर सकते हैं। या विकासशील देशों को अपने बाजारों में विशेष पहुँच दे सकते हैं। या कोई देश उन उत्पादों के खिलाफ बाधाएँ खड़ी कर सकता है उन विशिष्ट देशों के खिलाफ जिन्हें गलत तरीके से व्यापार किया जाना माना जाता है। और सेवाओं में, देशों को सीमित परिस्थितियों में भेदभाव करने की अनुमति है। लेकिन समझौते केवल सख्त शर्तों के तहत ही इन अपवादों की अनुमति देते हैं।

MFN का मतलब, सामान्य तौर पर, हैं कि जब भी कोई देश व्यापार बाधा को कम करता है या बाजार खोलता है, तो उसे अपने सभी व्यापारिक भागीदारों, चाहे अमीर या गरीब, कमजोर या मजबूत से समान वस्तुओं या सेवाओं के लिए ऐसा करना पड़ता है।

2. राष्ट्रीय व्यवहार: (विदेशियों और स्थानीय लोगों के साथ समान व्यवहार करना) - आयातित और स्थानीय रूप से उत्पादित वस्तुओं के साथ समान व्यवहार किया जाना चाहिए - कम से कम विदेशी वस्तुओं के बाजार में प्रवेश करने के बाद। यही बात विदेशी और घरेलू सेवाओं तथा विदेशी और स्थानीय ट्रेडमार्क, कॉपीराइट और पेटेंट पर भी लागू होना चाहिए। राष्ट्रीय व्यवहार का यह सिद्धांत सभी तीन मुख्य WTO समझौतों (GATT के अनुच्छेद 3,GATS के अनुच्छेद 17 और TRIPS के अनुच्छेद 3) में भी पाया जाता है।

राष्ट्रीय व्यवहार केवल तभी लागू होता है जब कोई उत्पाद, सेवा या बौद्धिक संपदा की वस्तु बाजार में प्रवेश कर जाती हैं। इसलिए, आयात पर सीमा शुल्क वसूलना राष्ट्रीय व्यवहार का उल्लंघन नहीं है,भले ही स्थानीय स्तर पर उत्पादित उत्पादों पर समकक्ष कर न लगाया जाए।

3. मुक्त व्यापार : चीरे धीरे, बातचीत के माध्यम से-

व्यापार बाधाओं को कम करना व्यापार को प्रोत्साहित करने का सबसे स्पष्ट साधन है। संबंधित बाधाओं में सीमा शुल्क (या टेरिफ) और आयात प्रतिबंध या कोटा जैसे उपाय शामिल है जो मात्रा को चुनिंदा रूप से प्रतिबंधित करते हैं। समय-समय पर लालफीताशाही और विनिमय दर नीतियों जैसे अन्य मुद्दों पर भी चर्चा की गई।

1947-48 में GATT के निमार्ण के बाद से व्यापार वार्ता के आठ दौर हो चुके है। दोहा विकास एजेंदा के तहत नौवा दौर अब चल रहा है। सबसे पहले इनका ध्यान आयातित वस्तुओं पर टैरिफ (सीमा शुल्क) कम करने पर था। वार्ता के परिणामस्वरूप 1990 के दशक के मध्य तक औद्योगिक देशों को औद्योगिक वस्तुओं पर टैरिफ दरें लगातार गिरकर 4% से भी कम हो गई थीं। लेकिन 1980 के दशक तक, माल पर गैर टैरिफ बाधाओं और सेवाओं और बौद्धिक संपदा जैसे नए क्षेत्रों को कवर करने के लिए बातचीत का विस्तार हुआ। बाजार खोलना फायदेमंद हो सकता है, लेकिन इसमें समायोजन की भी आवश्यकता है। WTO समझौते देशों को प्रगतिशील उदारीकरण के माध्यम से धीरे-धीरे बदलाव लाने की अनुमति देते हैं। विकासशील देशों को आमतौर पर अपने दायित्वों को पूरा करने के लिए अधिक समय दिया जाता है।

पुर्वानुमेयता : बंधन और पारदर्शिता के माध्यम से

कभी-कभी व्यापार बाधा को न बढ़ाने का वादा करना उतना ही महत्वपूर्ण हो सकता है जितना कि इसे कम करना क्योंकि यह वादा व्यवसायों को उनके भविष्य के अवसरों के बारे में स्पष्ट दृष्टिकोण देता है। स्थिरता और पूर्वानुमेयता के साथ, निवेश को प्रोत्साहित किया जाता है, नौकरियां पैदा होती है और उपभोक्ता प्रतिस्पर्धा - विकल्प और कीमतों के लाभों का पूरी तरह से आनंद ले सकते हैं। बहुपक्षीय व्यापार प्रणाली सकारों द्वारा कारोबारी माहौल को स्थिर और पूर्वानुमानित बनाने का एक प्रयास है।

निष्पक्ष प्रतिष्पर्धा को बढ़ावा देना

WTO को कभी कभी "मुक्त व्यापार" संस्था के रूप में वर्णित किया जाता है, लेकिन यह पूरी तरह से सटीक नहीं है। सिस्टम टैरिफ और सीमित परिस्थितियों में, सुरक्षा के अन्य रूपों की अनुमति देता है। अधिक सटीक रूप से, यह खुली, निष्पक्ष और अविरल परिस्थितियों में प्रतिस्पर्धा के लिए समर्पित नियमों की एक प्रणाली है। WTO के कई समझौतों का उद्देश्य निष्पक्ष प्रतिस्पर्धा का समर्थन करना है। उदाहरण के लिए कृषि, बौद्धिक संपदा सेवाओं में। सरकारी खरीद पर समझौता (एक बहुपक्षीय समझौता क्योंकि इस पर केवल कुछ WTO सदस्यों द्वारा हस्ताक्षर किए गए हैं। कई देशों में हजारों संस्थाओं द्वारा खरीद के लिए प्रतिस्पर्धा नियमों का विस्तार करता है।

विकास और आर्थिक सुधार को प्रोत्साहित करना

WTO प्रणाली विकास में योगदान देती है। दूसरी ओर, विकासशील देशों को प्रणाली के समझौतों को लागू करने में लगने वाले समय में लचीलेपन की आवश्यकता होती है। और समझौते स्वयं GATT के पहले प्रावधानों को विरासत में लेते हैं जो विकासशील देशों के लिए विशेष सहायता और व्यापार रियायतें प्रदान करते हैं। WTO के तीन-चौथाई से अधिक सदस्य विकासशील देश, बाजार और बाजार अर्थव्यवस्था में संक्रमण वाले देश हैं। उरुग्वे दौर के साढ़े सात वर्षों के दौरान, इनमें से 60 से अधिक देशों ने स्वायत्त रूप से व्यापार उदारीकरण कार्यक्रम लागू किए। साथ ही, विकासशील देश और संक्रमण अर्थव्यवस्थाएँ उरुग्वे दौर की वार्ता में किसी भी पिछले दौर की तुलना में अधिक सक्रिय और प्रभावशाली थीं और वर्तमान दोहा विकास एजेंडा में वे और भी सक्रिय और प्रभावशाली हैं।

उरुग्वे दौर

इसमें साढ़े सात साल लग गए, जो मूल कार्यक्रम से लगभग दोगुना था। अंत तक, 123 देश भाग ले रहे थे। इसमें लगभग सभी व्यापार शामिल थे ,टूथब्रश से लेकर आनंद नौकाओं तक ,बैंकिंग से लेकर दूरसंचार तक, जंगली चावल के जीन से लेकर एड्स के उपचार तक। यह निःसंदेह अब तक की सबसे बड़ी व्यापार वार्ता थी, और संभवतः इतिहास में किसी भी प्रकार की सबसे बड़ी वार्ता थी। कभी-कभी ऐसा लगता था कि इसका असफल होना निश्चित है। लेकिन अंततः, द्वितीय विश्व युद्ध के अंत में GATT के निर्माण के बाद से उरुग्वे दौर दुनिया की व्यापार प्रणाली में सबसे बड़ा सुधार लेकर आया। और फिर भी, अपनी धीमी प्रगति के बावजूद उरुग्वे दौर में कुछ शुरुआती परिणाम देखने को मिले | केवल दो वर्षों के भीतर, प्रतिभागियों में उष्णकटिबंधीय उत्पादों पर आयात शुल्क में कटौती के पैकेज पर सहमति व्यक्त की थी- जो मुख्य रूप से विकासशील देशों द्वारा निर्यात किए जाते है। उन्होंने विवादों को निपटाने के नियमों में भी संशोधन किया था, जिसमें कुछ उपाय मौके पर ही लागू किए गए थे।

सभी दौरों को खत्म करने वाला एक दौर ?

उरुग्वे दौर के बीज नवंबर 1982 में जिनेवा में GATT साथ की एक मंत्रिस्तरीय बैठक में बोये गए थे। हालाँकि मंत्रियों का इरादा एक बड़ी नई बातचीत शुरू करने का था, सम्मेलन कृषि पर रुक गया और इसे व्यापक रूप से विफलता माना गया। वास्तव में, जिस कार्यक्रम पर मंत्रियों ने सहमति व्यक्त की, उसने उरुग्वे दौर की वार्ता का एजेंडा बनने का आधार बनाया। फिर भी, मंत्रियों द्वारा नया दौर शुरू करने पर सहमति जताने से पहले खोजबीन करने, मुद्दों को स्पष्ट करने और आम सहमति बनाने में चार साल और लग गए।

सितंबर 1986 में पुंटा डेल एस्टे, उरुग्वे में ऐसा हो पाया। अंततः एक बातचीत के एजेंडे को स्वीकार कर लिया जिसमें लगभग हर बकाया नीति मुद्दे को शामिल किया गया | वार्ता व्यापार प्रणाली के कई नए क्षेत्रों में विस्तारित करने जा रही थी, विशेष रूप से सेवाओं और बौद्धिक संपदा में व्यापार और कृषि और कपड़ा के संवेदनशील क्षेत्रों में व्यापार में सुधार करने के लिए। सभी मूल GATT लेख समीक्षा के लिए उपलब्ध थे। यह व्यापार पर अब तक का सबसे बड़ा समझौता वार्ता जनादेश था, और मंत्रियों ने इसे पूरा करने के खुद को चार साल का समय दिया।

दो साल बाद, दिसंबर 1988 में, मंत्रियों की कनाडा के मॉन्ट्रियल में फिर बैठक हुई, जिसमें दौर के आधे-अधूरे बिंदु पर प्रगति का आकलन शामिल था। इसका उद्देश्य शेष दो वर्षों के लिए एजेंडा को स्पष्ट करना था, लेकिन वार्ता एक गतिरोध में समाप्त हो गई जिसे तब तक हल नहीं किया गया जब तक कि अधिकारियों ने अगले अप्रैल में जिनेवा में अधिक शांति से बैठक नहीं की। कठिनाई के बावजूद, मॉन्ट्रियल बैठक के दौरान, मंत्रियों ने शीघ्र परिणामों के एक पैकेज पर सहमति व्यक्त की। इनमें उष्णकटिबंधीय उत्पादों के लिए बाजार पहुँच पर कुछ रियायतें शामिल है- जिसका उद्देश्य विकासशील देशों की सहायता करना है- साथ ही एक सुव्यवस्थित विवाद निपटान प्रणाली और व्यापार नीति समीक्षा तंत्र जो राष्ट्रीय व्यापार नीतियों और प्रथाओं की पहली व्यापक, व्यवस्थित और नियमित समीक्षा प्रदान करता है। यह दौर तब खत्म होना था जब दिसंबर 1990 में ब्रुसेल्स में मंत्रियों की फिर बैठक हुई। लेकिन वे कृषि व्यापार में सुधार कैसे किया जाए इस पर असहमत थे और बातचीत को आगे बढ़ाने का फैसला किया। उरुर दौर अपने सबसे निराशाजनक दौर में प्रवेश कर गया।

खराब राजनीतिक दृष्टिकोण के बावजूद काफी मात्रा में तकनीकी कार्य जारी रहा, जिससे अंतिम काननू समझौते का पहला मसौदा तैयार हुआ | यह मसौदा 'अंतिम अधिनियम' तत्कालीन GATT महानिदेशक द्वारा संचालित किया गया था, जिन्होंने अधिकारियों के स्तर पर वार्ता की अध्यक्षता की थी। इसे 1991 में जिनेवा में पटल पर रखा गया था। पाठ ने पुंटा डेल स्टेज के हर हिस्से को पूरा किया, एक अपवाद के साथ - इसमें आयात शुल्क में कटौती और अपने सेवा बाजार खोलने के लिए भाग लेने वाले देशों की प्रतिबद्धताओं की सूची शामिल नहीं थी। यह मसौदा अंतिम मसौदे का आधार बना।

अगले दो वर्षों में वार्ताएँ आसन्न विफलता से लेकर आसन्न सफलता की भविष्यवाणियों के बीच झूलती रही। कई समय सीमाएँ आईं और गई। कृषि से जुड़ने के लिए प्रमुख संघर्ष के नए बिंदु उभर कर सामने आए। सेवाएँ, बाजार पहुँच, एंटी डंपिंग नियम और एक नई संस्था का प्रस्तावित निर्माण, संयुक्त राज्य अमेरिका और यूरोपीय संघ के बीच मतभेद अंतिम, सफल निष्कर्ष की आशा केंद्र बन गए।

नवंबर 1992 में अमेरिका और यूरोपीय संघ ने कृषि पर अपने अधिकांश मतभेदों को एक समझौते में सुलझा लिया। इसे अनौपचारिक रूप से 'ब्लेयर हाउस समझौते के रूप में जाना जाता है। जुलाई 1993 तक अमेरिका, यूरोपीय संघ, जापान और कनाडा ने टैरिफ और संबंधित विषयों (बाजार पहुँच) पर बातचीत में महत्वपूर्ण प्रगति की घोषणा की। हर मुद्दे को अंतिम रूप से हल करने और वस्तुओं और सेवाओं के लिए बाजार पहुँच पर बातचीत को अंतिम रूप देने में दिसंबर 1993 तक का समय लग गया। 15 अप्रैल, 1994 को माराकेश, मोरो मोरक्को में एक बैठक में 123 भाग लेने वाले वाली सरकारों में से अधिकांश के मंत्रियों द्वारा समझौते पर हस्ताक्षर किए गए।

विश्व व्यापार संगठन के प्रमुख समझौते

- कृषि पर समझौता (AoA)
- बौद्धिक संपदा अधिकारों के व्यापार संबंधित पक्षों पर समझौता (TRIPS)
- स्वच्छता और पादप स्वच्छता संबंधित अनुप्रयोगाे पर समझौता (SPS)
- व्यापार पर तकनीकी बाधाओं पर समझौता (TBT)
- व्यापार संबद्ध निवेश उपायों पर समझौता (TRIMS)
- सेवा व्यापार पर सामान्य समझौता (GATS) आदि

भारत की व्यापार संबंधी चिंताएँ और WTO.

•स्टील और एल्यूमीनियम के शुल्क- हाल ही में अमेरिकी सरकार ने विभिन्न व्यापार साझीदारों के खिलाफ एल्यूमीनियम पर 10% और स्टील पर 25% शुल्क लगाया है। भारत चाहता है कि इसे हटा दिया जाए अन्यथा वह WTO में इस मुद्दे को उठाएगा।

• निर्यात सब्सिडी का मुद्दा - हाल ही में अमेरिका ने भारत को WTO में घसीटा और SEZ, MEIS, EPCG आदि के रूप में भारतीय कंपनियों को मिलने वाली निर्यात सब्सिडी व्यवस्था पर चिंता जताई।

•कृषि सब्सिडी - सब्सिडी का वर्तमान कोटा वर्ष 1986-88 के मूल्य स्तर पर आधारित है। वर्तमान में न्यूनतम समर्थन मूल्य (MSP) अवधारणा, जो भारत में किसानों को सब्सिडी प्रदान करती है, एम्बर बॉक्स के अंतर्गत आती है ।

• विशेष और अंतरीय व्यवहार - दोहा दौर के दौरान सदस्य राष्ट्र विकासशील देशों के साथ अनुकूल व्यवहार करने पर सहमत हुए। हालांकि, विकसित देश भारत और चीन जैसी उभरती अर्थव्यवस्थाओं को इस प्रावधान के योग्य मानने से इनकार कर रहे हैं।

• संपदा अधिकारों से संबंधित मुद्दे - दवाओं की अनिवार्य लाइसेंसिंग के मुद्दों को TRIPS के माध्यम से हल किया गया है। यद्यपि, विकसित देश TRIPS+ प्रतिबद्धताओं पर जोर देने का प्रयास कर रहे हैं।

खंड 05: अंतरराष्ट्रीय संस्थाएं, क्षेत्रीय सहयोग एवं भारत का व्यापार

इकाई 04

भारत का विदेशी व्यापार: संरचना एवं दिशा

2.40 प्रस्तावना
2.41 उद्देश्य
2.42 भारत का विदेशी व्यापार: संरचना एवं दिशा
2.43 निर्यातों की संरचना
2.44 आयातों की संरचना
2.45 निर्यातों की दिशा
2.46 आयातों की दिशा
2.47 सारांश
2.48 शब्दावली
2.49 सन्दर्भ ग्रन्थ / उपयोगी सुची
2.50 अभ्यास प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

भारत का विदेशी व्यापार 1947 में अपनी स्वतंत्रता से पहले काफी हद तक ब्रिटिश औपनिवेशिक शक्तियों की रणनीतिक जरूरतों से निर्धारित होता था। अन्य उपनिवेशों की तरह, भारत भी ब्रिटेन और अन्य औद्योगिक देशों को कच्चे माल और कृषि वस्तुओं का आपूर्तिकर्ता था और यह निर्मित वस्तुओं का आयात करता था। ब्रिटेन से.विनिर्मित वस्तुओं के लिए ब्रिटेन पर औपनिवेशिक भारत की निर्भरता ने औद्योगीकरण की प्रक्रिया में बाधा डाली और स्वदेशी हस्तशिल्प और कुटीर उद्योगों को नष्ट कर दिया।ब्रिटिश रणनीति के एक भाग के रूप में, भारत को द्वितीय विश्व युद्ध से पहले अपने आयात से अधिक निर्यात करना था, ताकि सैन्य और नागरिक दोनों ब्रिटिश कारियों के वेतन और पेंशन के माध्यम से ब्रिटेन को भुगतान के एकतरफा हस्तांतरण को पूरा किया जा सके। भारत में निवेश की गई ब्रिटिश पूंजी पर लाभांश, और स्टर्लिंग ऋण पर ब्याज।इससे भारत को अनुकूल व्यापार संतुलन हासिल करने में मदद मिली। अप्रैल 1946 में, भारत रुपये का एक विशाल स्टर्लिंग बैलेंस बनाने में सक्षम था। स्टर्लिंग ऋण का भुगतान करने के बाद भी 17.33 बिलियन। हालाँकि, भारत के निर्यात में कच्चे माल की हिस्सेदारी 1938-39 में 45 प्रतिशत से घटकर 1947-48 में 31 प्रतिशत हो गई, जबकि निर्मित वस्तुओं की हिस्सेदारी 1938-39 में 30 प्रतिशत से बढ़कर 1947-48 में 49 प्रतिशत हो गई। .

स्वतंत्रता के बाद ही भारत की विकासात्मक आवश्यकताओं के मद्देनजर भारत के व्यापार पैटर्न में बदलाव आना शुरू हुआ। एक नए स्वतंत्र देश के रूप में भारत को नई उत्पादन क्षमता बनाने और बुनियादी ढांचे के निर्माण के लिए उन उपकरणों और मशीनरी का आयात करना पड़ता था जिनका निर्माण घरेलू स्तर पर नहीं किया जा सकता था, जिसे विकासात्मक आयात के रूप में जाना जाता है। इसे मध्यवर्ती वस्तुओं और कच्चे माल का भी आयात करना पड़ता था ताकि इसकी उत्पादन क्षमता का पूरा उपयोग किया जा सके, जिसे रखरखाव आयात के रूप में जाना जाता है।इसके अलावा, एक नए विकासशील देश के रूप में, मुद्रास्फीति के दबाव को रोकने के लिए, उसे खाद्यान्न जैसी उपभोक्ता वस्तुओं का आयात करना पड़ा जिनकी घरेलू आपूर्ति कम थी। आयात पर इतनी भारी निर्भरता देश के व्यापार संतुलन पर प्रतिकूल प्रभाव डालती है। इसे अपने आयात के वित्तपोषण के लिए निर्यात का विस्तार करने की आवश्यकता है।

स्वतन्त्रता के बाद भारत का विदेशी व्यापार कॉमनवेल्थ देशों तक सीमित न रहकर विश्वव्यापी हो गया है। स्वतन्त्रता के पूर्व भारत कच्चे पदार्थों (कृषि तथा खनिजों) का निर्यातक देश था, किन्तु स्वतन्त्रता के बाद उसके निर्यातों में तैयार माल सम्मिलित हुए तथा उनमें विविधता आ गई। स्वतन्त्रता के पूर्व भारत में पर्याप्त अन्नोत्पादन होता था, किन्तु देश के विभाजन के बाद गेहूँ तथा चावल के बड़े उत्पादक क्षेत्र पाकिस्तान में चले जाने से भारत को अन्न का आयात करना पड़ा। खाद्य एवं कृषिगत पदार्थ भारत के परम्परागत निर्यात पदार्थ रहे हैं, किन्तु अब भारत मशीनरी, सूती – वस्त्र, सिले-सिलाये वस्त्र, हस्तनिर्मित वस्तुओं आदि का भी निर्यात करने लगा है। भारतीय निर्यातों का आधे से अधिक भाग पश्चिमी यूरोप के विकसित देशों संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा, ऑस्ट्रेलिया और जापान को, लगभग एक-तिहाई भाग पूर्वी यूरोप तथा अन्य विकासशील देशों को और केवल एक छोटा-सा भाग मध्य-पूर्व के तेल उत्पादक देशों को जाता है। भारत के निर्यातों में रूस और जापान का महत्त्व बढ़ा है तथा ब्रिटेन का एकाधिकार समाप्त हो गया है। भारत का अपने पड़ोसी देशों से व्यापार कम होता जा रहा है तथा पूर्व साम्यवादी देशों-पोलैण्ड, चेकोस्लोवाकिया व रूस से बढ़ा है। भारत जिन देशों को निर्यात करता है, क्रमानुसार उनके नाम हैं—सं० रा० अमेरिका, जापान, जर्मनी, ब्रिटेन, रूस, फ्रांस, इटली, सऊदी अरब, इराक, कुवैत, हॉलैण्ड, ईरान, सिंगापुर, ऑस्ट्रेलिया

किसी देश के उत्पादों और सेवाओं के आयात और निर्यात के अध्ययन को व्यापार की संरचना के रूप में जाना जाता है। दूसरे अर्थ में, यह किसी देश के वस्तुओं के आयात और निर्यात के बारे में जानकारी प्रदान करता है। परिणामस्वरूप, यह किसी राष्ट्र की संरचना और आर्थिक विकास के स्तर को प्रकट करता है। विकासशील देशों द्वारा कच्चे संसाधनों, कृषि उत्पादों और मध्यवर्ती वस्तुओं का निर्यात किया जाता है, जबकि विकसित देश तैयार माल, उपकरण और मशीनों का निर्यात करते हैं। भारतीय विदेश व्यापार नीति भारत के निर्यात और आयात में उल्लेखनीय वृद्धि करके अर्थव्यवस्था को बढ़ावा देती है।

भारतीय विदेशी व्यापार की संरचना: आयात

स्वतंत्रता के समय भारत की आयात टोकरी की संरचना में तेल, दालें, मशीनरी, रसायन, हार्डवेयर, फार्मास्यूटिकल्स, रंग, धागे, कागज, अनाज, अलौह धातु, कारें और अन्य वस्तुएं शामिल थीं। योजना के आगमन और पूंजीगत सामान और इंजीनियरिंग क्षेत्रों की स्थापना पर जोर देने के साथ, सरकार को बड़ी संख्या में पूंजीगत उपकरण और रखरखाव आयात खरीदने की आवश्यकता थी।

2021-22 के दौरान शीर्ष आठ आयात वस्तुएं थीं:

- पेट्रोलियम क्रूड एवं उत्पाद (कुल आयात का 25.7 प्रतिशत)
- प्लास्टिक सामग्री, कृत्रिम रेजिन, आदि (3.3 प्रतिशत)
- मोती, अर्ध-कीमती और कीमती पत्थर (5 प्रतिशत)
- सोना (8.2 प्रतिशत)
- इलेक्ट्रॉनिक सामान (11.8 प्रतिशत)
- विद्युत एवं गैर-विद्युत उपकरण (6.6 प्रतिशत)
- अकार्बनिक एवं कार्बनिक रसायन (5 प्रतिशत)
- कोयला, कोक, आदि (4.9 प्रतिशत)।

वित्त वर्ष 2012 में, इन मुख्य आयात वस्तुओं का कुल आयात में 70.6 प्रतिशत हिस्सा था।

भारत के आयात की संरचना को तीन श्रेणियों में विभाजित किया गया है: कच्चा माल, पूंजीगत सामान और उपभोक्ता उत्पाद।

कच्चा माल में पेट्रोलियम तेल, स्नेहक, खाद्य तेल, लोहा और इस्पात, उर्वरक, अलौह धातुएँ, कीमती पत्थर, मोती और अन्य वस्तुएँ इस श्रेणी में आती हैं। इन सभी वस्तुओं से बने कुल आयात का प्रतिशत 1960-61 में 47% से बढ़कर 1980-81 में लगभग 80% हो गया।

वर्तमान में, यूक्रेन पर रूस के आक्रमण के कारण आपूर्ति में व्यवधान की चिंता बढ़ गई है, जिससे तेल की कीमतें कई वर्षों के उच्चतम स्तर पर पहुंच गई हैं। यह देखते हुए कि भारत अपना लगभग 80% तेल आयात करता है, मौजूदा परिस्थिति उसके व्यापार घाटे को खतरे में डालती है। पेट्रोलियम आयात जनवरी में 13.1 बिलियन अमेरिकी डॉलर से बढ़कर 22 फरवरी को 15.3 बिलियन अमेरिकी डॉलर हो गया। बढ़ती अंतरराष्ट्रीय तेल की कीमतों, उच्च गतिशीलता और घरेलू और विदेशी तेल की खपत में इसी वृद्धि के कारण, वित्त वर्ष 2011 में पेट्रोलियम आयात 72.4 बिलियन अमेरिकी डॉलर से बढ़कर यूएसडी हो गया। FY22 में 141.7 बिलियन।

पूंजीगत माल

गैर-विद्युत और विद्युत मशीनरी, धातु, लोकोमोटिव और अन्य परिवहन उपकरण, अन्य चीजों के अलावा, इस श्रेणी में आते हैं। ये वस्तुएँ देश के औद्योगिक विकास के लिए आवश्यक हैं। 1960-61 में पूंजीगत वस्तुओं का आयात कुल आयात का लगभग 32% था, जो लगभग 356 करोड़ रुपये था। इसमें धीरे-धीरे कमी आई और 1992-93 में यह लगभग 21% हो गई।

उपभोक्ता उत्पादों

इसमें अन्य चीजों के अलावा बिजली के सामान, खाद्यान्न, दवाएं और कागज का आयात शामिल है। तीसरी पंचवर्षीय योजना के अंत तक, भारत में खाद्यान्न की भारी कमी थी। परिणामस्वरूप, भारत भारी मात्रा में खाद्यान्न का आयात करेगा। वर्तमान में भारत खाद्यान्न उत्पादन में आत्मनिर्भर हो गया है।

भारतीय विदेशी व्यापार की संरचना: निर्यात

FY22 की अप्रैल-फरवरी अवधि के दौरान शीर्ष आठ निर्यात वस्तुएँ थीं:

- इंजीनियरिंग सामान (कुल निर्यात का 26.9%)
- कार्बनिक एवं अकार्बनिक रसायन (7.1%)
- रत्न एवं आभूषण (9.4%)
- औषधि एवं फार्मास्यूटिकल्स (5.9%)
- कपड़ा (3.8%)
- इलेक्ट्रॉनिक सामान (3.7%)
- पेट्रोलियम उत्पाद (14.8%)
- सूती धागा/फैब/मेड-अप, हथकरघा उत्पाद आदि (3.7%)।

वित्त वर्ष 2012 में कुल निर्यात में इन आठ वस्तुओं की हिस्सेदारी लगभग 75 प्रतिशत थी।
भारत की निर्यात संरचना को दो श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है: पारंपरिक निर्यात और गैर-पारंपरिक निर्यात।

पारंपरिक उत्पाद

पारंपरिक वस्तुओं में कॉफी, चाय, जूट के सामान, लौह अयस्क, जानवरों की खाल, कपास, खनिज, मछली और मछली उत्पाद आदि का निर्यात शामिल है। योजना युग की शुरुआत में इन उत्पादों का हमारे कुल निर्यात का लगभग 80% हिस्सा था। हालाँकि, इन वस्तुओं का योगदान धीरे-धीरे कम हो रहा है, जबकि गैर-पारंपरिक वस्तुओं का योगदान बढ़ रहा है।

गैर-पारंपरिक उत्पाद

निर्यात की जाने वाली गैर-पारंपरिक वस्तुओं में इंजीनियरिंग सामान, चीनी, रसायन, बिजली के सामान, लोहा और इस्पात, चमड़े के सामान, रत्न और आभूषण शामिल हैं।

इंजीनियरिंग सामान और पेट्रोलियम उत्पाद भारत के कुल निर्यात के दो प्रमुख घटक हैं। वित्त वर्ष 2012 में इंजीनियरिंग सामानों का निर्यात 49.8% की वृद्धि के साथ 101 बिलियन अमेरिकी डॉलर हो गया है। साथ ही, पेट्रोलियम निर्यात वित्त वर्ष 2011 में 22.2 बिलियन अमेरिकी डॉलर से बढ़कर वित्त वर्ष 2012 में 55.5 बिलियन अमेरिकी डॉलर हो गया है।

निष्कर्ष

संक्षेप में, पिछले पांच दशकों में भारतीय विदेशी व्यापार के पैमाने, संरचना और पाठ्यक्रम में बड़े बदलाव देखे गए हैं। भारत का बड़े पैमाने पर प्राथमिक वस्तुओं के निर्यातक देश से गैर-प्राथमिक वस्तुओं के निर्यातक देश में परिवर्तन उल्लेखनीय है। पूंजीगत वस्तुओं और खाद्यान्नों के आयात पर देश की निर्भरता भी कम हो गई है। इनमें से अधिकांश संशोधन अर्थव्यवस्था की विकास आवश्यकताओं के अनुरूप हैं। प्रवृत्ति का तात्पर्य है कि भारतीय अर्थव्यवस्था संरचनात्मक परिवर्तनों से गुजर रही है।

वित्त वर्ष 2022-23 में भारत का कुल व्यापार 1164.19 बिलियन डॉलर का था. इसमें 450.06 बिलियन डॉलर का निर्यात और 714.13 बिलियन डॉलर का आयात हुआ.

वित्त वर्ष 2022-23 में भारत के निर्यात में 6 फीसदी का उछाल दर्ज किया गया. यह आंकड़ा 447 बिलियन डॉलर रहा. देश का आयात भी पिछले वित्त वर्ष में 16.5 फीसदी बढ़कर 714 बिलियन डॉलर रहा.
भारत विश्व के 190 देशों को लगभग 7500 वस्तुएँ निर्यात करता है. 140 देशों से लगभग 6000 वस्तुएँ आयात करता है.
भारत सबसे ज़्यादा पेट्रोलियम पदार्थों का आयात करता है. साल 2022-23 के दौरान भारत ने कुल 209 अरब डॉलर का क्रूड आयल तथा अन्य पेट्रोलियम पदार्थों का आयात किया. यह एक साल पहले के मुकाबले 29.52 फीसदी की बढ़ोतरी है.

खंड 05: अंतरराष्ट्रीय संस्थाएं, क्षेत्रीय सहयोग एवं भारत का व्यापार

इकाई 05

भारत में विदेशी पूंजी एवं विदेशी ऋण

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 भारत में विदेशी पूंजी

2.4 भारत में विदेशी ऋण

2.5 सारांश

2.6 शब्दावली

2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ / उपयोगी सुची

2.8 अभ्यास प्रश्न

विदेशी पूंजी का अर्थ (Meaning of Foreign Capital):

अल्पविकसित देशों में घरेलू साधन आर्थिक विकास की वित्तीय आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये अपर्याप्त होते हैं । इन देशों में पूंजी निर्माण का वर्तमान स्तर इतना कम होता है कि आय के अति निम्न स्तर और निर्धनता के विस्तृत फैलाव के कारण बचत में वृद्धि सम्भव नहीं होती ।सार्वजनिक ऋण और करारोपण की अपनी त्रुटियां हैं । अर्थव्यवस्था पर स्फीतिकारी प्रभाव के कारण घाटे की वित्त व्यवस्था का सहारा भी नहीं लिया जा सकता । इस गम्भीर स्थिति में, अर्थव्यवस्था को निर्धनता के कुचक्र से निकालने का केवल एक विकल्प बचता है तथा वह है आयातित या विदेशी पूंजी । इस प्रकार विकासशील देशों के विकास यन्त्र को तीव्र करने के लिये विदेशी पूंजी ही लाभप्रद है । वास्तव में, यह कम विकसित पिछड़े हुये देशों की छोटी घरेलू बचतों का एक पूरक है ।

यदि हम विभिन्न देशों के आर्थिक इतिहास के पन्ने पलटते हैं तो हम इस बात को स्वीकार करेंगे कि आधुनिक विश्व के लगभग प्रत्येक देश को अपने आर्थिक विकास की गति को तीव्र करने के लिए विदेशी सहायता पर निर्भर करना पड़ा था। लगभग सभी विकसित देशों को अपने विकास के आरम्भिक सोपानों के दौरान अपनी कम बचतों की सहायता के लिये विदेशी वित्त की सहायता लेनी पड़ी थी । इंग्लैण्ड ने 17वीं और 18वीं शताब्दियों में हालैण्ड से ऋण लिया तथा उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दियों में प्रत्येक अन्य देश को ऋण दिया । संयुक्त राज्य अमरीका जोकि आज का सबसे समृद्ध देश है इसने उन्नीसवीं शताब्दी में भारी ऋण लिया तथा बदले में बीसवीं शताब्दी का सबसे बड़ा ऋणदाता माना जाने लगा ।

संयुक्त राष्ट्र संघ रिपोर्ट के अनुसार विकासशील देशों में घरेलू बचतों का स्तर कम आय के कारण एक निम्न स्तर पर होता है। अत: उपभोग के पहले ही नीचे स्तरों में कटौती करना अव्यवहार्य होता है । इसलिये बाहरी वित्त एक आवश्यकता बन जाता है तथा यह आवश्यकता केवल विकास दरकी वृद्धि के लिये ही नहीं बल्कि धरेलू बचतों के लिये प्रोत्साहक का कार्य करती है ।

विदेशी पूंजी का महत्व (Importance of Foreign Capital):

विदेशी पूंजी अल्प विकसित देशों के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है । यह कई प्रकार से आर्थिक विकास की दर को तीव्र करने में सहायक होती है । विदेशी पूंजी का आगमन प्राप्तकर्त्ता देश को घरेलू निवेश के लिये स्थानीय साधन प्राप्त करने के लिये उपाय उपलब्ध करवाता है। यह विदेशी विनिमय की पूर्ति करता है जिससे विकासशील परियोजनाओं के लिये सीधे आवश्यक सामग्री और अन्य साजो-सामान आयात किया जा सकता है । इसके अतिरिक्त यह अन्य वस्तुओं के आयात की इजाजत भी देता है जिनकी विकास और राष्ट्रीय आय के बढ़ने के साथ परोक्ष रूप में मांग होगी । विदेशी पूंजी के बिना विकास की गति वांछित गति से बहुत कम होती है ।

अल्प विकसित देशों में विदेशी पूंजी के महत्व का मूल्यांकन निम्नलिखित कारणों से किया जा सकता है:

1. पूंजी अभाव की समस्या का समाधान (Solution of the Problem of Capital Deficiency):

अल्प विकसित देशों को प्राय: 'पूंजी निर्धन' अथवा 'कम बचत एवं कम निवेश' वाली अर्थव्यवस्थाएं कहा जाता है । इन देशों में घरेलू बचत का दर इतना कम होता है कि उनके आर्थिक विकास की आवश्यकता को पूरा करने के लिये पर्याप्त नहीं होता । अधिकांश लोग निर्वाह स्तर पर जीवन व्यतीत करते हैं । इसके अतिरिक्त घरेलू बचतों की दर को किसी महत्त्वपूर्ण सीमा तक बढ़ाया नहीं जा सकता । यह देश केवल अपने घरेलू साधनों के आधार पर तीव्रतापूर्वक विकसित नहीं हो सकते । यदि यह न्यायसंगत तीव्रता के दर से विकास प्राप्त करना चाहते हैं तो विदेशी पूंजी द्वारा घरेलू बचतों और निवेश के वांछित दर के बीच के अन्तराल को भरना होगा ।

2. तकनीकी ज्ञान और विशेषीकृत पूंजी साजो-सामान (Technical Knowledge and Specialised Capital Equipment):

ये देश केवल पूंजी में निर्धन नहीं होते बल्कि तकनीक और आर्थिक विकास में भी पिछड़े हुये होते हैं । उन्हें प्रशिक्षित कार्यकर्ता, तकनीकी ज्ञान और विशेषज्ञों की राय की आवश्यकता होती है तथा आधुनिक मशीनों और साजो-सामान की भी आवश्यकता होती है ।

विदेशी पूंजी इन देशों की तकनीकी पिछड़ेपन की समस्या का समाधान कर सकती है । इसलिये विदेशी पूंजी न केवल अतिरिक्त बचतों के स्रोत के रूप में महत्व रखती है बल्कि अल्प विकसित देशों के लिये आधुनिक तकनीकों और विशेषीकृत पूंजी साजो-सामान के पूर्तिकर्त्ता के रूप में भी महत्त्वपूर्ण है ।

3. विपरीत भुगतानों के सन्तुलन को ठीक करने के लिये (To Correct Adverse Balance of Payments):

प्राप्तकर्त्ता देश के भुगतानों के सन्तुलन पर इसके हितकर प्रभाव के दृष्टिकोण से विदेशी मुद्रा विशेष महत्व रखती है । ये देश प्राय: अहितकर भुगतानों के सन्तुलन का शिकार होते हैं । आर्थिक विकास भुगतानों के सन्तुलन पर विपरीत प्रभाव डालता है क्योंकि पूंजीगत वस्तुओं का भारी आयात, तकनीकी ज्ञान तथा कच्चा माल विकास कार्यक्रमों को जारी रखने के लिये आवश्यक होता है ।दूसरी ओर उत्पादन की उच्च लागत और घरेलू उपभोग में वृद्धि के कारण इन देशों द्वारा बहुत कम निर्यात सम्भव होता है । इस प्रकार अल्प विकसित देशों के भुगतानों के सन्तुलन पर निरन्तर दबाव बना रहता है । विदेशी पूंजी एक बड़ी सीमा तक इन देशों के विदेशी विनिमय के संकट को समाप्त कर सकती है ।

4. विदेशी पूंजी उत्पादन स्तर बनाये रखने में सहायता करती है (Foreign Capital Helps to Maintain Production Level):

विदेशी पूंजी के आयात का एक अन्य महत्व यह है कि यह अल्प विकसित देशों में औद्योगिक उत्पादन के स्तर को बनाये रखने में बहुत सहायक होती है। यह आवश्यक कच्चा माल, अर्द्ध निर्मित वस्तुएं, मशीनें, उपकरण और साजो-सामान उपलब्ध करवा कर अल्प विकसित देशों की सहायता करती है। ये देश इस स्थिति में नहीं होते कि अपने अर्जित विदेशी विनिमय से अपनी आवश्यकताओं अनुसार वस्तुओं का आयात कर सकें। अत: देश में उत्पादन स्तर को बनाये रखने के लिये उन्हें विदेशी ऋण का सहारा लेना पड़ता है।

5. आर्थिक एवं सामाजिक बन्धे खर्चों के विकास में सहायक (Helpful in the Development of Economic and Social Overheads):

यह कठोर सत्य है कि अल्प विकसित देशों के पास विकास के लिये आवश्यक संरचना का अभाव होता है जैसे रेल, सड़कें नहरें, विद्युत परियोजनाएं और अन्य सामाजिक एवं आर्थिक बंधे खर्चे आदि। क्योंकि उनके विकास के लिये भारी पूंजी निवेश और लम्बे उत्पादन समय की आवश्यकता होती है।

यह देश केवल घरेलू साधनों की सहायता से इन भारी परियोजनाओं को आरम्भ करने में असमर्थ होते हैं। अत: विदेशी पूंजी आर्थिक विकास की गति में सहायक होती है तथा इन देशों में तीव्र आर्थिक विकास की नींव रखने में सहायता करती है।

6. निर्धनता का कुचक्र तोड़ने के लिये (To Break the Vicious Circle of Poverty):

निर्धनता के कुचक्र को तोड़ने और बाजार अशुद्धियों को समाप्त करने के लिये विदेशी पूंजी लाभप्रद होती है। नर्कस के मतानुसार- “विदेशी साधनों का प्रयोग निर्धनता के कुचक्र और निम्न पूंजी निर्माण को तोड़ने का एक मार्ग है। विदेशी पूंजी एवं अन्य साधनों का आगमन उत्पादन में तीव्र वृद्धि करेगा जिससे बढ़ती हुई जनसंख्या का निर्वाह हो सकेगा। अत: संचयी विस्तार की प्रक्रिया आरम्भ हो सकेगी और विदेशी विनिमय में इस पूंजी का पर्याप्त भाग होगा जिससे आवश्यक खाद्य पदार्थों के अतिरिक्त विकास के लिये आवश्यक कच्चे माल और साजो- सामान का आयात किया जा सके।”

7. पूंजी निर्माण की तीव्र दर (Rapid Rate of Capital Formation):

अल्प विकसित देशों का पूंजी निर्माण का दर धीमा होता है परन्तु विदेशी पूंजी की सहायता से पूंजी निर्माण की दर को सरलतापूर्वक त्वरित किया जा सकता है क्योंकि आयात की गई पूंजी को पूंजी-गहन भारी उद्योगों में लगाया जा सकता है जैसे मशीनरी, इस्पात और उर्वरक आदि।

8. प्राकृतिक साधनों एवं जोखिमपूर्ण परियोजनाओं का उचित उपयोग (Proper Use of Natural Resources and Risky Projects):

अल्प विकसित देशों में पूंजी बहुत दुष्प्राप्य होती है और निजी उद्यम अप्रयुक्त प्राकृतिक साधनों को काम में लाने जैसी जोखिमपूर्ण परियोजनाओं को आरम्भ करने में संकोच करते हैं। विदेशी पूंजी नये उद्यम और व्यापारिक गतिविधि के नये क्षेत्र खोल कर इस कमी को पूरा करती है। यह जोखिमों वाले पथ-प्रदर्शक उद्यमों

में प्रवेश करती है। अत: विदेशी पूंजी के निवेश के परिणामस्वरूप अगम्य क्षेत्रों तक पहुंच पाती है और अप्रयुक्त प्राकृतिक साधनों का प्रयोग आरम्भ होता है।

विदेशी पूंजी की आशंकाएं (Dangers of Foreign Capital):

विदेशी पूंजी का आयात अल्प विकसित देशों के लिये पूर्णतया वरदान नहीं होता। नि:सन्देह यह इन अल्प विकसित देशों की अर्थव्यवस्थाओं को अनेक लाभ पहुंचाती है परन्तु इसकी अपनी आशंकाएं हैं।
जिनका संक्षिप्त वर्णन नीचे किया गया है:

1. घरेलू ऋणों की तुलना में भारी बोझ (Heavier Burden as Compared to Domestic Loans):

विदेशी पूंजी का सबसे बुरा सकेत यह है कि यह बोझ को घरेलू ऋणों से भी अधिक बढ़ाती है। इसके अतिरिक्त विदेशी पूंजी की वापसी के लिये ऋण प्राप्तकर्त्ता द्वारा ऋणदाता को दुर्लभ विदेशी विनिमय के साधन स्थानान्तरित करने पड़ते हैं। ऐसे ऋणों के भुगतान के लिये बड़ी मात्रा में विदेशी मुद्रा की आवश्यकता होती है। इसके अतिरिक्त, विकासशील देशों के विदेशी विनिमय साधन इतने कम होते हैं कि वे इन ऋणों की वापसी और उनके सेवा शुल्क देने में असमर्थ होते हैं। अन्य शब्दों में, विदेशी ऋणों की वापसी का बोझ उन्हें अपनी वचनबद्धता पूरी करने के लिये अधिक ऋण लेने के लिये विवश कर सकता है तथा देश ऋण के कुचक्र में फंस कर रह जाता है।

2. यह दीर्घकालिक भुगतानों के सन्तुलन पर विपरीत प्रभाव डालता है (It Exercises Adverse Effect on Long Term Balance of Payments):

कुछ अर्थशास्त्रियों ने सत्य ही कहा है कि विदेशी पूंजी दीर्घकालिक भुगतानों के सन्तुलन पर विपरीत प्रभाव डालती है। विदेशी ऋणों की वापसी किसी देश के लिये भुगतानों के सन्तुलन का संकट उत्पन्न कर सकती है। विदेशी ऋणों के अन्तरिम भुगतान और किश्त भुगतानों के सन्तुलन पर और अधिक दबाव डालती है तथा स्थिति को अधिक गम्भीर कर सकती है। ऐसी स्थिति में उन्हें पुराने ऋण चुकता करने के लिये नये ऋण लेने पड़ते हैं।

3. बाहरी देशों पर निर्भर (Dependent on Foreign Countries):

विदेशी पूंजी का एक अन्य गम्भीर जोखिम यह है कि देश अन्य देशों पर निर्भर रह जाता है। ऐसी निर्भरता इसकी आर्थिक एवं राजनीतिक स्वतन्त्रता के लिये घातक सिद्ध हो सकती है। राजनीतिक डोर प्राय: विदेशी ऋणों के साथ जुड़ी रहती है जो विकासशील देशों को किसी-न-किसी शक्ति गुट से जुड़ने के लिये विवश करते हैं। इसके अतिरिक्त ऋणदाता देश की ओर से बड़े स्तर पर विदेशी पूंजी का स्थानान्तरण उसका ऋण प्राप्तकर्त्ता पर आर्थिक और राजनीतिक दबाव बढ़ा देता है। इस प्रकार विकासशील देशों के लिये अपनी तटस्थता बनाये रखना कठिन हो जाता है।

4. सम्भावित घरेलू निवेश का कम कार्यक्षेत्र (Less Scope for Potential Domestic Investment):

यह आशंका रहती है कि विदेशी पूंजी देश में उपलब्ध अति लाभप्रद निवेश अवसरों का उपयोग करके घरेलू निवेश के कार्यक्षेत्र को संकीर्ण कर सकती है। यह अति सन्देहपूर्ण है कि यदि विदेशी पूंजी का मौलिक एवं भारी उद्योगों के विकास तक सीमित रखा जाता है तो यह अर्थव्यवस्था में प्रभुत्वपूर्ण भूमिका निभाने लगती है तथा देश की आर्थिक एवं राजनीतिक नीतियों में हस्तक्षेप करना आरम्भ कर सकती है। कभी-कभी विदेशी पूंजी के उतार-चढ़ाव घरेलू बाजार के लिये एक चुनौती बन जाते हैं तथा आर्थिक विकास में अड़चन डालते हैं।

5. प्राकृतिक साधनों का स्वार्थी साध्यों के लिये शोषण (Exploitation of Natural Resources for Selfish Ends):

भूतकाल का उपनिवेशी इतिहास विशेष उदाहरण प्रस्तुत करता है जब विदेशी पूंजी का उपयोग विकसित देश के लाभ के लिये अल्पविकसित देश के विस्तृत साधनों के शोषण के उपकरण के रूप में किया गया है । विदेशी पूंजी का इस प्रकार का शोषण-पूर्ण प्रयोग विकासशील देशों का एक कड़वा इतिहास है ।नर्कस ने इस सम्बन्ध में सत्य ही कहा है- "अल्प विकसित देशों में विदेशी पूंजी का प्रयोग कर्षण उद्योगों में किया नया है जो मुख्यत: उन्नत औद्योगिक देशों की ओर निर्यात के लिये कार्य करते हैं । फलत: भूतकाल में विदेशी निजी निवेशों के कारण पिछड़े हुये कृषि देशों में बहुत कम विकास हुआ ।"

6. संकट काल में न्यायसंगत नहीं (Not Suitable during Emergency):

आयात की गई पूंजी अल्प विकसित देशों के सामान्य हितों के लिये विशेषतया राष्ट्रीय संकट अथवा युद्धों के दौरान उच्च पक्षपाती प्रमाणित हो सकती है । यह उन प्रकरणों में सम्भव है जहां आधारभूत और मुख्य उद्योगों पर विदेशियों का एकाधिकार होता है।

<u>भारत में विदेशी प्रत्यावेशन-</u>

1991 के बाद सरकार ने अर्थव्यवस्था को खोल दिया और LPG रणनीतियों की शुरुआत की थी, तब से भारत में निवेश वातावरण में बड़ी सुधार हुआ है। इस संदर्भ में सुधार को आमतौर पर FDI नियमों के आसान होने का क्रेडिट दिया जाता है। बहुत से क्षेत्रों में देश की आर्थिक उदारीकरण के बाद आंशिक या पूरी तरह से विदेशी निवेश के लिए खुले हैं। वर्तमान में, भारत सरकार के व्यापार करने की आसानी की सूची में शीर्ष 100 देशों में शामिल है। 2019 में, एक संयुक्त राष्ट्र रिपोर्ट के अनुसार, भारत विदेशी प्रत्यावेशन के शीर्ष दस प्राप्तकर्ताओं में था, जिसमें $49 बिलियन निवेश शामिल था। इसमें 2018 से 16% की वृद्धि हुई थी।

फरवरी 2020 में, DPIIT ने बीमा बीमा के लिए 100% विदेशी प्रत्यावेशन की अनुमति देने की नीति की अधिसूचना की।अप्रैल 2020 में, DPIIT ने एक नया नियम जारी किया, जिसमें कहा गया कि ऐसी कोई कंपनी का अंश जिसकी भारत के साथ भूमि सीमा होती है या जिसका भारत में निवेश के लाभकारी मालिक बैठा होता है, केवल सरकार के मार्ग से ही निवेश कर सकता है। अन्य शब्दों में, इस प्रकार की इकाइयाँ केवल भारत सरकार की मंजूरी के बाद ही निवेश कर सकती हैं। 2020 की शुरुआत में, सरकार ने राष्ट्रीय हवाई यातायात कंपनी एयर इंडिया के 100% हिस्से को बेचने का निर्णय लिया। भारत के विदेशी ऋण से तात्पर्य उस कुल धनराशि से है जो भारत पर विदेशी ऋणदाताओं का बकाया है, जिसमें दीर्घकालिक और अल्पकालिक दोनों ऋण शामिल हैं।

<u>भारत का विदेशी ऋण</u>

भारत का विदेशी ऋण हाल के वर्षों में विश्लेषण और चिंता का एक महत्वपूर्ण विषय बन गया है, क्योंकि देश का आर्थिक परिदृश्य लगातार विकसित हो रहा है। दुनिया की सबसे तेजी से बढ़ती प्रमुख

अर्थव्यवस्थाओं में से एक के रूप में, भारत ने अपने बाहरी ऋण की गतिशीलता में महत्वपूर्ण बदलावों का अनुभव किया है, जिससे वैश्विक मंच पर इसकी वित्तीय स्थिति को आकार मिला है।

बाह्य ऋण का अर्थ

बाह्य ऋण से तात्पर्य उस धन से है जो किसी देश के उधारकर्ताओं को विदेशी ऋणदाताओं को देना होता है। इसे देश की स्थानीय मुद्रा या विदेशी मुद्रा में दर्शाया जा सकता है, भारत का अधिकांश विदेशी ऋण अमेरिकी डॉलर से जुड़ा हुआ है। भारत में बाह्य ऋण प्रोफाइल को तीन मुख्य प्रकारों में वर्गीकृत किया गया है:

1.बाह्य वाणिज्यिक उधार,

2. मुद्रा परिवर्तनीय बांड

3.सरकारी उधार।

पूंजी खाता परिवर्तनीयता

यहां उपलब्ध आंकड़ों और भारत के विदेशी ऋण 2021-22 पर स्थिति रिपोर्ट के 28वें संस्करण के आधार पर भारत के विदेशी ऋण का अवलोकन दिया गया है। मार्च 2022 के अंत में भारत का विदेशी ऋण 8.2% बढ़कर 620.7 बिलियन अमेरिकी डॉलर तक पहुंच गया, जबकि मार्च 2021 में यह 573.7 बिलियन अमेरिकी डॉलर था। अमेरिकी डॉलर में मूल्यवर्गित ऋण कुल का 53.2% था, जबकि भारतीय रुपये में मूल्यवर्गित ऋण 31.2% था। सकल घरेलू उत्पाद के अनुपात के रूप में बाहरी ऋण मार्च 2022 में पिछले वर्ष के 21.2% से थोड़ा कम होकर 19.9% हो गया। बाह्य ऋण के अनुपात के रूप में विदेशी मुद्रा भंडार मार्च 2022 में घटकर 97.8% हो गया, जो पिछले वर्ष में 100.6% था।

बाह्य ऋण की संरचना

दीर्घकालिक ऋण का हिस्सा सबसे बड़ा 80.4% था, जो 499.1 बिलियन अमेरिकी डॉलर था।अल्पकालिक ऋण कुल का 19.6% था, जिसका मूल्य 121.7 बिलियन अमेरिकी डॉलर था। अधिकांश अल्पकालिक व्यापार ऋण (96%) का उपयोग आयात के वित्तपोषण के लिए किया गया था। वाणिज्यिक उधार, एनआरआई जमा , अल्पकालिक व्यापार ऋण और बहुपक्षीय ऋण सामूहिक रूप से कुल विदेशी ऋण का 90% थे।

भारत का विदेशी ऋण और सकल घरेलू उत्पाद का अनुपात 2022 में भारत के बाह्य ऋण और उसके नाममात्र सकल घरेलू उत्पाद का अनुपात 20.0% था, जो पिछले वर्ष के 23.7% के अनुपात से कम है। यह अनुपात एक प्रमुख संकेतक है जो देश के समग्र आर्थिक उत्पादन में बाहरी ऋण के अनुपात को मापता है। इस अनुपात के लिए उपलब्ध डेटा मार्च 1970 से मार्च 2022 तक है। पिछले कुछ वर्षों में, भारत के विदेशी ऋण और सकल घरेलू उत्पाद के अनुपात में उतार-चढ़ाव का अनुभव हुआ है। मार्च 1992 में यह अपने उच्चतम स्तर 38.2% पर पहुंच गया, जो उस समय बाहरी उधार पर अपेक्षाकृत अधिक निर्भरता का संकेत देता है। हालाँकि, मार्च 1980 में इसने 10.9% का रिकॉर्ड निचला स्तर भी दर्ज किया, जो अर्थव्यवस्था के आकार के मुकाबले बाहरी ऋण के निम्न स्तर को दर्शाता है .

मार्च 2022 में सॉवरेन विदेशी ऋण (SED) 17.1% बढ़कर 130.7 बिलियन अमेरिकी डॉलर तक पहुंच गया। इसी अवधि में गैर-संप्रभु विदेशी ऋण 6.1% बढ़कर 490.0 बिलियन अमेरिकी डॉलर तक पहुंच गया। गैर-संप्रभु ऋण मुख्य रूप से वाणिज्यिक उधार, एनआरआई जमा और अल्पकालिक व्यापार ऋण से बना था, जो कुल का लगभग 95% था।

ऋण सेवा अनुपात पिछले वर्ष के 8.2% से घटकर 2021-22 में 5.2% हो गया, मुख्य रूप से वर्तमान प्राप्तियों में वृद्धि और ऋण सेवा भुगतान में कमी के कारण। एक समूह के रूप में निम्न और मध्यम आय वाले देशों (एलएमआईसी) और उस समूह के भीतर कई व्यक्तिगत देशों की तुलना में भारत की विदेशी ऋण स्थिरता अपेक्षाकृत बेहतर थी। वैश्विक रैंकिंग के मामले में भारत का विदेशी ऋण 23वें स्थान पर रहा।

भारत आर्थिक विकास को बढ़ावा देने और विकास संबंधी जरूरतों को पूरा करने के लिए बुनियादी ढांचे के निवेश सहित विभिन्न विकास परियोजनाओं को वित्तपोषित करने के लिए बाहरी रूप से उधार ले रहा है। वैश्विक आर्थिक स्थितियाँ: ब्याज दरों और उधार लेने की लागत सहित वैश्विक आर्थिक वातावरण ने भारत की बाहरी उधारी को प्रभावित किया। उस अवधि के दौरान अनुकूल उधार स्थितियों ने बाहरी ऋण में वृद्धि में योगदान दिया होगा। भारत की बढ़ती अर्थव्यवस्था और बाजार क्षमता ने इसे विदेशी निवेशकों के लिए एक आकर्षक गंतव्य बना दिया है। विदेशी निवेश के इस प्रवाह के परिणामस्वरूप विदेशी ऋण में वृद्धि हो सकती थी। मार्च 2022 के अंत तक भारत का विदेशी ऋण लगभग 620.7 बिलियन डॉलर था। इस अवधि में भारत के विदेशी ऋण में बदलाव में कई कारकों का योगदान हो सकता है:

भारत की निरंतर आर्थिक वृद्धि और विकास की महत्वाकांक्षाओं के कारण बुनियादी ढांचा परियोजनाओं को निधि देने, औद्योगिक विकास को बढ़ावा देने और राजकोषीय आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए बाहरी उधार लेना आवश्यक हो गया है। कोविड-19 महामारी और उससे जुड़ी आर्थिक चुनौतियों के कारण अर्थव्यवस्था और सार्वजनिक स्वास्थ्य पर महामारी के प्रभाव को कम करने के लिए भारत सहित दुनिया भारतीय रुपये और अन्य मुद्राओं, विशेषकर अमेरिकी डॉलर के बीच विनिमय दरों में परिवर्तन, बाहरी ऋण के मूल्य को प्रभावित कर सकता है। विनिमय दर में उतार-चढ़ाव ने बाह्य ऋण के सूचित मूल्य में बदलाव में योगदान दिया हो सकता है। विदेशी निवेश को आकर्षित करने और आर्थिक विकास को बढ़ावा देने के लिए भारत सरकार द्वारा लागू किए गए नीतिगत उपाय और सुधार बाहरी ऋण के स्तर को प्रभावित कर सकते हैं।

1991 से निवेश नीति सुधार

सुधार के बाद की अवधि के दौरान, सरकार ने भारत में विदेशी निवेश को प्रोत्साहित करने के लिए कई कदम उठाए। निम्नलिखित कुछ सबसे महत्वपूर्ण संकेतक हैं: 1991 में, सरकार ने उच्च तकनीक और उच्च निवेश प्राथमिकता वाले उद्योगों की एक सूची स्थापित की, जिसके लिए 51 प्रतिशत विदेशी इक्विटी तक प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (एफडीआई) के लिए स्वचालित प्राधिकरण प्रदान किया गया था। इनमें से कई उद्योगों के लिए सीमा को पहले 74 प्रतिशत और फिर 100 प्रतिशत तक हटा दिया गया। इसके अलावा, समय के साथ, कई नए उद्योगों को सूची में जोड़ा गया है। विदेशी निवेश संवर्धन बोर्ड (एफआईपीबी) की स्थापना अंतरराष्ट्रीय कंपनियों के साथ जुड़ने और कुछ क्षेत्रों में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश को मंजूरी देने के लिए की गई थी।

भारत में विदेशी संस्थागत निवेश (FII) को प्रोत्साहित करने के लिए समय-समय पर कदम उठाए गए।विशेष आर्थिक क्षेत्रों में भाग लेने वाले विदेशी निवेशकों को विभिन्न प्रकार के कर छूटों से लाभ होता है, जिसमें निर्यात आय, पूंजीगत लाभ, लाभांश वितरण, आयातित वस्तुओं पर सीमा शुल्क और स्थानीय उत्पाद शुल्क पर करों से छूट शामिल है। 1991 की औद्योगिक नीति ने उन्नत प्रौद्योगिकी, स्थापित प्रबंधन क्षमता और वर्तमान विपणन रणनीतियों जैसे एफडीआई के अंतर्निहित लाभों को ध्यान में रखते हुए विदेशी निवेशकों के प्रवेश को उचित ठहराया।

निष्कर्ष

भारत को अपने विदेशी ऋण के परिणामस्वरूप 1991 में आर्थिक संकट का सामना करना पड़ा। तब से, सरकार ने नीतिगत उपायों का एक नया सेट लागू किया जिसने हमारी विकास रणनीतियों की दिशा बदल दी। इसके अलावा, औद्योगिक उत्पादन की अंतर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धात्मकता में सुधार के लिए विदेशी धन और प्रौद्योगिकी, व्यापार और निवेश को उदार बनाया गया। सरकार. घरेलू औद्योगिक दक्षता बढ़ाने के लिए आधुनिक तकनीक का भी उपयोग किया गया, भारत की व्यापार नीतियों में सुधार के उद्देश्य से आयात और निर्यात पर अतिरिक्त मात्रात्मक प्रतिबंधों में ढील दी गई।

खंड 05: अंतरराष्ट्रीय संस्थाएं, क्षेत्रीय सहयोग एवं भारत का व्यापार

इकाई 06

भारत का भुगतान संतुलन एवं व्यापार नीति

2.51 प्रस्तावना

2.52 उद्देश्य

2.53 भारत का भुगतान संतुलन

2.54 भारत का व्यापार संतुलन

2.55 भारत की व्यापर नीति

2.56 भारत की नयी व्यापर नीति

2.57 सारांश

2.58 शब्दावली

2.59 सन्दर्भ ग्रन्थ / उपयोगी सुची

2.60 अभ्यास प्रश्न

भारतीय व्यापार नीति ''' आंतरिक एवं बाहरी व्यापार को नियमित करने संबंधित भारत सरकार की नीतियाँ हैं। ये नीतियाँ भारत की आंतरिक आवस्यकताओं और वैश्विक व्यापार की स्थिभारतीय व्यापार नीति ''' आंतरिक एवं बाहरी व्यापार को नियमित करने संबंधित भारत सरकार की नीतियाँ हैं। ये नीतियाँ भारत की आंतरिक आवस्यकताओं और वैश्विक व्यापार की स्थितियों से प्रभावित होती रही है। स्वतंत्र भारत की व्यापारिक नीति आत्मनिर्भरता से लेकर उदारीकरण से लाभान्वित होने तथा अपनी तियों से प्रभावित होती रही है। स्वतंत्र भारत की व्यापारिक नीति आत्मनिर्भरता से लेकर उदारीकरण से लाभान्वित होने तथा अपनी कार्यदक्षता संवर्धित करने के अनुसार विभिन्न दशकों में बदलती रही है। इसके अनुरूप इसे मोटे तौर पर तीन भागों में बाँटा जा सकता है- 1950 – 1965, 1965-1980, 1980 पश्चात। इन समयावधियों में व्यापार के संबंध में कुछ खास दृष्टियाँ और नीतियाँ अपनायी जाती रही है।

1950-1965 के बीच भारत की व्यापारिक नीति आत्मनिर्भरता और आत्मपूर्णता पर आधारित रही है। आयात को प्रतिबंधित किया गया। इस दौर में भारत सरकार ने वैकल्पिक आयात की व्यवस्था करने पर भी ध्यान केंद्रित किया। आयात निषेधन और आयात विकल्पन इस दौर के आयात संबंधित व्यापारिक नीतियों का मूल चरित्र है। इस दौर में निर्यात नियंत्रण तंत्र की निर्यात संबंधी नीतियों में प्रभावी भूमिका है। इस तरह स्वतंत्र भारत शुरुआती दौर में न तो आयात को और न ही निर्यात को संवर्दित करने वाली व्यापारिक नीतियाँ बना रहा था। यह भारत की एक दशक पूर्व तक विदेशी व्यापार के कारण हुई दो शतकों की पराधीनता और उसके स्वतंत्रता संग्राम के मूल्यों का परिणाम था। यह आशंका बनी हुई थी कि मुक्त व्यापार भारत को फिर से विदेशी व्यापारियों के राजनितिक हस्तक्षेप के खतरे में डाल सकता है। स्वतंत्रता प्राप्ति के तुरंत बाद भारत को विशाल जनता के लिए अनाज और उद्योग धंधों के विकास के लिए मशीनों की आवश्यकता थी। इसलिए आयात निर्यात संबंधि प्रतिबंधों से इन्हें कुछ हद तक मुक्त रखा गया। १९५६ में लागू हुई दूसरी पंचवर्षीय योजना ने भारत के औद्योगिक विकास को लक्ष्य बनाया। इसके बाद भारत सककार ने औद्योगिक विकास के लिए आवश्यक सामग्री के आयात की छूट दी। यह आयात को मिली पहली बड़ी छूट थी। किंतु चीन और पाकिस्तान के साथ हुए दो युद्धों के बाद आयात पुनः प्रतिबंधित हो गए। यह स्थिति १९७७ तक बनी रही।

1965-1980 के मध्य निर्यात आधारित वृद्धि, अंतर्राष्ट्रिय प्रतिस्पर्धात्मकता और तकनीक ने इस दौर की भारतीय व्यापार नीतियों को निर्धारित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। 1980 के बाद भूमंडलीकरण का प्रभाव, उससे लाभ उठाने की कोशिश, कार्यदक्षता में वृद्धि आदि ने भारतीय व्यापार नीतियों को निर्धारित किया है।

भारत का दुनिया के अन्य क्षेत्रों के साथ मजबूत वाणिज्यिक संबंधों के साथ एक अत्यधिक विकसित आर्थिक प्रणाली होने का एक लंबा इतिहास रहा है। कई अर्थशास्त्रियों ने 1950 में भारत की 3.5 प्रतिशत की विकास दर की सराहना करते हुए दावा किया कि ब्रिटिश राज के पिछले 50 वर्षों के दौरान इसकी विकास दर दोगुनी थी। समाजवादियों के अनुसार, यह भारत की आर्थिक नीतियों के लिए एक सफलता थी, जो अंतर्मुखी थीं और सार्वजनिक क्षेत्र की कंपनियों का प्रभुत्व था।

1980 से पहले भारत की जीडीपी वृद्धि दर मामूली थी, लेकिन 1981 में आर्थिक सुधार शुरू होने के बाद इसमें तेजी आई। 1991 में सुधारों के पूरी तरह से लागू होने के बाद यह मजबूत हो गई। 1950 से 1980 तक तीन दशकों में जीएनपी की वृद्धि दर केवल 1.49 प्रतिशत थी। इस दौरान सरकारी नीतियां समाजवाद पर आधारित थीं। आयकर की दर बढ़कर 97.75 प्रतिशत तक पहुंच गई है। बड़ी संख्या में उद्योगों का राष्ट्रीयकरण किया गया। सरकार ने अर्थव्यवस्था पर पूर्ण नियंत्रण पाने के लिए अपने प्रयास तेज़ कर दिए थे। 1980 के दशक में हल्के आर्थिक उदारवाद ने प्रति व्यक्ति जीएनपी वृद्धि को 2.89 प्रतिशत प्रति वर्ष तक बढ़ा दिया। 1990 के दशक में प्रमुख आर्थिक उदारीकरण के बाद प्रति व्यक्ति जीएनपी बढ़कर 4.19 प्रतिशत हो गई।

भारत सरकार ने 1991 में महत्वपूर्ण आर्थिक सुधारों की घोषणा की, जो विदेशी व्यापार उदारीकरण, वित्तीय उदारीकरण, कर सुधार और विदेशी निवेश की माँगों के संदर्भ में बड़ी पहल थीं। ये नीतियां भारतीय अर्थव्यवस्था को पुनर्जीवित करने में सहायता करती हैं। तब से, भारत की अर्थव्यवस्था ने काफी प्रगति की है। सकल घरेलू उत्पाद की औसत वृद्धि दर (कारक लागत पर) 1951 और 1991 के बीच 4.34 प्रतिशत से बढ़कर 1991 और 2011 के बीच 6.24 प्रतिशत हो गई। 2015 में, भारतीय अर्थव्यवस्था $2 ट्रिलियन के आंकड़े को पार कर गई।

1991 से व्यापार नीति में सुधार

भारत सरकार ने 1991 में व्यापक आर्थिक सुधार लागू किए, जिनमें विदेशी व्यापार उदारीकरण, बैंकिंग उदारीकरण, कर सुधार और विदेशी निवेश की माँगें शामिल थीं। इन नीतियों ने भारतीय अर्थव्यवस्था को गति प्राप्त करने में सहायता की। तब से भारत की अर्थव्यवस्था ने काफी प्रगति की है।

नई व्यापार नीति की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं:

मुफ़्त आयात और निर्यात:

1991 से पहले, भारत के आयात को उन वस्तुओं की एक सकारात्मक सूची द्वारा नियंत्रित किया जाता था जिन्हें स्वतंत्र रूप से आयात किया जा सकता था। 1992 से आयात की निगरानी एक सीमित नकारात्मक सूची द्वारा की जा रही है। उदाहरण के लिए, 1 अप्रैल 1992 की व्यापार नीति ने व्यावहारिक रूप से सभी मध्यवर्ती और पूंजीगत वस्तुओं के आयात को उदार बना दिया। उस समय, केवल 71 सामान अभी भी प्रतिबंधित थे। 31 मार्च 1996 को, टैरिफ लाइन वॉयस आयात नीति की शुरुआत में घोषणा की गई थी, और उस समय 6161 टैरिफ लाइनें मुफ्त प्रदान की गई थीं। मार्च 2000 तक यह राशि बढ़कर 8066 हो गई थी। 2001 से 2002 तक, उत्पाद शुल्क नीति ने मात्रात्मक सीमाएँ हटा दीं। विश्व व्यापार संगठन के प्रति भारत का

दायित्व पूरा हो गया है। विश्व व्यापार संगठन द्वारा सभी आयात उत्पादों पर मात्रात्मक सीमाएं हटा दी गई हैं, जिससे भारत को अधिक स्वतंत्र रूप से आयात और निर्यात करने की अनुमति मिल गई है।

मात्रात्मक बाधाएँ और टैरिफ संरचना का युक्तिकरण:

चेलैया समिति ने अपनी रिपोर्ट में आयात शुल्क में बड़ी कटौती का सुझाव दिया. इसने 50 प्रतिशत शिखर दर की भविष्यवाणी की थी। टैरिफ में क्रमिक कमी की दिशा में पहले कदम के रूप में, 1991-92 के बजट ने आयात कर की शीर्ष दर को 300 प्रतिशत से अधिक से घटाकर 150 प्रतिशत कर दिया। सीमा शुल्क दरों को कम करने की रणनीति निम्नलिखित बजटों में भी जारी रखी गई। चेलैया समिति के प्रस्ताव के जवाब में सरकार ने वर्षों के दौरान शुल्क की अधिकतम दर में कमी की है। सरकार ने 1993 से 1994 के बजट चर्चा में कर को 110 प्रतिशत से घटाकर 85 प्रतिशत कर दिया। भविष्य के बजट में चरणों में शुल्क को और कम किया गया। सभी गैर-कृषि वस्तुओं पर उच्चतम महत्वपूर्ण शुल्क दर वर्तमान में केवल 10% है।

वाणिज्य घराने :

1991 की नीति के तहत, निर्यात घरानों और व्यापारिक घरानों को विभिन्न प्रकार के सामान आयात करने की अनुमति दी गई थी। निर्यात को प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से सरकार ने 51 प्रतिशत विदेशी इक्विटी के साथ व्यापारिक घरानों की स्थापना की भी अनुमति दी। उदाहरण के लिए, निर्यात घरानों और व्यापारिक घरानों को 1992-97 की व्यापार रणनीति के तहत अग्रिम लाइसेंसिंग प्रणाली के तहत स्व-प्रमाणन का लाभ दिया गया था, जो निर्यात के लिए शुल्क मुक्त आयात की अनुमति देता है।

चालू खाते में रुपये का मूल्यह्रास और परिवर्तनीयता:

1 और 3 जुलाई, 1991 को सरकार ने रुपये की विनिमय दर में 18-19% की दो-चरणीय कमी की। उदारीकृत विनिमय दर प्रबंधन प्रणाली (एलईआरएमएस) की शुरुआत की गई, जिसमें 1992-93 में आंशिक रुपये की परिवर्तनीयता, 1993-94 में ट्रेडिंग खाते पर पूर्ण परिवर्तनीयता और अगस्त 1994 में चालू खाते पर पूर्ण परिवर्तनीयता शामिल थी। LERMS। रुपये की परिवर्तनीयता भारतीय अर्थव्यवस्था में एक और अंतर्राष्ट्रीय व्यापार संरक्षण तंत्र थी। 1992-93 के बजट में, भारत सरकार ने रुपये को आंशिक रूप से परिवर्तनीय बना दिया। वैश्विक अर्थव्यवस्था के साथ भारत के आर्थिक संबंध के लिए यह बहुत अच्छी खबर थी। अगस्त 1994 में, रुपये को चालू खाते में पूर्णतः परिवर्तनीय बना दिया गया। भारत में रुपये की मुद्रा दर अब बाज़ार द्वारा निर्धारित होती है (मार्च 1993 से)। आपूर्ति और मांग की गतिशीलता अब इस प्रणाली में रुपये की विनिमय दर निर्धारित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

वर्ष 2004 से 2009 के लिए अंतर्राष्ट्रीय व्यापार नीति का तीसरा परिशिष्ट, जो अप्रैल 2007 में जारी किया गया था, ने निर्यात गृहों को पाँच श्रेणियों में वर्गीकृत किया: i. निर्यात गृह ii. विशिष्ट निर्यात गृह iii. व्यापारिक घराने iv. प्रीमियम ट्रेडिंग हाउस बनाम स्टार ट्रेडिंग हाउस। व्यापारिक फर्मों को उनकी उपलब्धियों के आधार पर उपरोक्त रैंक दी जाती है, जैसे 20 करोड़ रुपये, 100 करोड़ रुपये, 500 करोड़ रुपये, 2500 करोड़ रुपये और 10000 करोड़ रुपये आदि की निर्यात मात्रा, उनके वर्गीकरण के अनुसार, इन घरों को विभिन्न प्राप्त होते हैं भत्ते और रियायतें.

वित्त वर्ष 2021-22 भारत के अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के लिये एक उत्साहजनक स्थिति के साथ पूर्ण हुआ। भारतीय निर्यात ने न केवल कोविड संकट को सहने और उससे उबर लेने के संकेत दिये, बल्कि 419.65 बिलियन डॉलर के रिकॉर्ड राजस्व के साथ मज़बूत वृद्धि भी दर्ज की, जिसे निर्यात में तेज़ पुनरुद्धार के लक्षण के रूप में देखा जा रहा है। ऑस्ट्रेलिया और संयुक्त अरब अमीरात के साथ संपन्न **मुक्त व्यापार समझौतों** (Free Trade Agreements- FTA) को भी नीति-निर्माताओं द्वारा भारतीय उद्यमियों के लिये व्यापक अवसरों के प्रवेश द्वार के रूप में देखा जा रहा है। हालाँकि इन सभी उपलब्धियों के बावजूद इस तथ्य की अनदेखी नहीं की जानी चाहिये कि भारत के लिये एक नई विदेश व्यापार नीति (Foreign Trade Policy- FTP) अभी भी लंबे समय से प्रतीक्षित है। पिछली विदेश व्यापार नीति वर्ष 2015 में अधिसूचित की गई थी और एक नई नीति अप्रैल 2020 में पेश की जानी थी, लेकिन तब से इसे आगे की अवधि के लिये बार-बार टाला जा रहा है। हाल के भू-राजनीतिक घटनाक्रमों, स्थानीय विनिर्माण पर ज़ोर और द्विपक्षीय व्यापार अभिसमयों पर एक दिशा को देखते हुए एक नई नीति का लाया जाना अत्यंत महत्त्वपूर्ण है।

विदेश व्यापार नीति का महत्त्व:

विदेश व्यापार नीति भारत सरकार द्वारा जारी एक कानूनी दस्तावेज़ है, जो विदेश व्यापार (विकास और विनियमन) अधिनियम 1992 के तहत प्रवर्तनीय है। वर्ष 1991 के आर्थिक सुधारों के बाद से पंचवर्षीय रूप से पुनरीक्षित और अधिसूचित विदेश व्यापार नीति सभी हितधारकों के लिये मार्गदर्शक रही है। विदेश व्यापार नीति का मुख्य उद्देश्य लेन-देन और पारगमन लागत, समय को कम करके व्यापार को सुविधाजनक बनाना है। विदेश व्यापार नीति सीमा-पार व्यापार नियमों को निर्धारित करती है और प्रौद्योगिकी प्रवाह, अप्रत्क्ष संपत्ति आदि जैसे कई सहवर्ती लेकिन महत्त्वपूर्ण नीतिगत चरों पर सरकार की स्थिति को उजागर करती है।

1. **वैश्विक स्तर पर भारत के रुख को स्पष्ट करना: 'लोकल फॉर ग्लोबल'** और PLI (Production Linked Incentive) योजनाओं जैसे प्रमुख कार्यक्रमों, भारत की निर्यात प्रोत्साहन योजनाओं के विरुद्ध **विश्व**

व्यापार संगठन के निर्णय, विशेष आर्थिक क्षेत्र (SEZ) योजना की अतिदेय समीक्षा, भारत की निर्यात टोकरी के भौगोलिक प्रोफाइल में परिवर्तन और FTAs के निहितार्थों के संबंध में भारत की स्थिति और संरेखण को स्पष्ट करना आवश्यक है ।

2. वर्ष 2019 में WTO के एक विवाद समाधान पैनल ने माना था कि FTP के तहत निर्यात प्रोत्साहन (Export Incentives) भारत की WTO प्रतिबद्धता का उल्लंघन है।

3. **निर्यात-उन्मुख व्यवसायों पर प्रभाव:** FTP के जीर्णोद्धार का एक अन्य कारण यह है कि कुछ निर्यात-उन्मुख व्यवसाय वर्ष 2015 की नीति में कुछ तदर्थ, विरोधाभासी और गलत समय पर किये गए परिवर्तनों से प्रतिकूल रूप से प्रभावित हुए हैं।

4. वर्ष 2015 की FTP ने निर्यात के अनुपात में प्रत्यक्षतः 'ड्यूटी-क्रेडिट स्क्रिप' (Duty-Credit Scrips-DCS) जारी कर निर्यात को प्रोत्साहित किया था। ।

5. इसके अलावा, सेवा प्रोत्साहन के लिये परिवर्तन को सितंबर 2021 में पूर्वव्यापी रूप से अधिसूचित किया गया था, जिसे अप्रैल 2019 से लागू किया जाना था।

6. **परिव्यय और प्रोत्साहन में कमी: भारत से पण्य वस्तु निर्यात योजना (MEIS) और भारत से सेवा निर्यात योजना (SEIS)** जैसे 51,012 करोड़ रुपए के वार्षिक निर्यात प्रोत्साहनों को 12,454 करोड़ रुपये के RoDTEP योजना प्रोत्साहन के साथ प्रतिस्थापित कर दिया गया है।

7. शेष 38,558 करोड़ रुपए को कुछ क्षेत्रों को लाभ प्रदान करने के लिये PLI की ओर मोड़ दिया गया है।

8. इसके अतिरिक्त पहले ट्रैक्टर जैसे कृषि उपकरणों पर 3% निर्यात प्रोत्साहन प्रदान किया जाता था, जिसे घटाकर 0.7% कर दिया गया है।

9. **अवसंरचनात्मक असफलताएँ:** बंदरगाहों, गोदामों और आपूर्ति शृंखलाओं जैसी अपर्याप्त रूप से उन्नत निर्यात अवसंरचनाओं के कारण भारत में जहाज़ों के लिये औसत 'टर्नअराउंड टाइम' लगभग तीन दिनों का है जबकि वैश्विक औसत 24 घंटे का है।

10. **MSMEs का संकट: सकल घरेलू उत्पाद** में लगभग 29% और अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में 40% के योगदान के साथ MSMEs क्षेत्र महत्त्वाकांक्षी निर्यात लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु प्रमुख अभिकर्त्ता हैं। लेकिन इनपुट और ईंधन लागतों में वृद्धि MSMEs के निचले स्तर पर स्थित उद्यमों को प्रभावित कर रही है।

11. इस्पात और प्लास्टिक जैसे कच्चे मालों की कीमतों में वृद्धि के साथ ही शिपिंग कंटेनरों और श्रम की कमी के कारण MSMEs के लिये वैश्विक मांग में वृद्धि का पूरा लाभ उठा सकना कठिन होता जा रहा है।

नई व्यापार नीति में में संभावित संशोधन संबंधी सुझाव

- **MSMEs संकट का समाधान करना:** भारत में SEIS के अंतर्गत अधिसूचित सेवाओं के सेवा निर्यातकों को शुद्ध विदेशी मुद्रा आय का 3-7% प्रोत्साहन प्रदान किया जाता है।

- नई नीति में योजना के तहत दावा योग्य शुद्ध विदेशी मुद्रा आय के लिये न्यूनतम सीमा में संशोधन और वैश्विक सेवाओं के लिये द्रुत **'जीएसटी रिफंड'** सुविधा का होना बेहद आवश्यक है।

- सरकार को MSMEs की मौजूदा टैरिफ लाइनों में निर्यात क्षमता का दोहन करने में भी मदद करनी चाहिये और निर्यातक MSMEs की संख्या बढ़ाने के लिये तथा वर्ष 2022-23 में MSME निर्यात को 50% तक बढ़ाने के लिये नीतिगत सहायता प्रदान करनी चाहिये।

- **निर्यातकों के लिये अधिक प्रोत्साहन:** नई FTP से निर्यातकों को लाभ हो सकता है यदि MSME श्रेणी के दायरे में खुदरा और थोक व्यापारियों को मिलने वाले प्रोत्साहन उन्हें भी दिया जाए।

- नई नीति को निर्यातकों को इस दृष्टिकोण से सक्षम बनाना चाहिये कि वे विदेशी व्यापार के क्षेत्र में प्रौद्योगिकी का लाभ उठा सकें। यह MSMEs के लिये अपने वैश्विक समकक्षों के साथ प्रतिस्पर्द्धा कर सकने में विशेष रूप से मदद करेगा।

- **अवसंरचना उन्नयन:** गोदामों, बंदरगाहों, SEZs, गुणवत्ता परीक्षण प्रयोगशालाओं, प्रमाणन केंद्र आदि के रूप में एक कुशल और व्यापक अवसंरचना नेटवर्क अत्यधिक प्रतिस्पर्द्धी बाज़ार में निर्यातकों को टिके रहने में सहायता देगा।

- भारत को चीन जैसे प्रौद्योगिकी उन्नत देशों से आगे बढ़ने के लिये निर्यात अवसंरचना के उन्नयन में निवेश करने की आवश्यकता है।

- इसे आधुनिक व्यापार अभ्यासों को अपनाने की भी आवश्यकता है जिन्हें निर्यात प्रक्रियाओं के डिजिटलीकरण के माध्यम से लागू किया जा सके। इससे समय और लागत दोनों की बचत होगी।

- **GST निर्यात लाभ:** GST के अंतर्गत निर्यात लाभ वर्तमान में FTP के दायरे से बाहर है, जिसके परिणामस्वरूप निर्यातकों के कुछ वर्गों को निर्यात लाभ से वंचित कर दिया गया है।

- इस परिदृश्य में दोनों नीतियों के बीच की खाई को पाटने की तत्काल आवश्यकता है। इसके अलावा बिना प्रशासनिक देरी के जीएसटी रिफंड का निर्बाध वितरण भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण है।

- **विश्व व्यापार संगठन की नीतियों का अनुपालन करने वाली योजनाएँ:** यह दृष्टिकोण FTP के मूल में है। विश्व व्यापार संगठन सरकारों को अपने निर्यातकों को भारी सब्सिडी देने से रोकने की दिशा में कार्य करता है ताकि सभी देशों को एक समान अवसर मिल सके।

- भारत सरकार विश्व व्यापार संगठन के मानदंडों के भीतर बने रहने की आवश्यकता से अच्छी तरह अवगत है और उसने सब्सिडीयुक्त योजनाओं को वापस लेने के लिये पहले ही कई उल्लेखनीय कदम उठाए हैं।

- हालाँकि निर्यात को बढ़ावा देने और यह सुनिश्चित करने के लिये कि वैश्विक बाज़ार में भारतीय निर्यात प्रतिस्पर्द्धी बने रहें, बुनियादी स्तर पर और अधिक प्रयास किये जाने की आवश्यकता है।

- **अन्य उपाय:** नीति-निर्माताओं को सभी हितधारकों के साथ संलग्न होने के लिये विचार-परिधि का तत्काल विस्तार करना चाहिये ताकि एक सचेत रूप से तैयार और निर्देशित नीति दृष्टिकोण सामने आ सके, जो देश की आर्थिक प्रगति के लिये केंद्र और निजी व्यवसायों दोनों का मार्गदर्शन करे।

- इस विचार-परिधि में ईंधन-आयात प्रतिस्थापन की प्रखर आवश्यकता, तात्कालिक लॉजिस्टिक्स का लाभ उठाने और उद्यमशीलता अभियान को बढ़ावा देने जैसे समकालीन प्रतिमानों को भी शामिल किया जाना चाहिये।

- महामारी के कारण उत्पन्न हुई आर्थिक कठिनाई को देखते हुए नई विदेशी व्यापार नीति को निर्यात बाधाओं को दूर करने के लिये चरणबद्ध तरीके से कार्य करना होगा, पारगमन लागत को कम करने के लिये नियामक एवं परिचालन ढाँचे की समीक्षा करनी होगी और विकसित लॉजिस्टिक्स एवं उपयोगिता अवसंरचना के माध्यम से निम्न लागतपूर्ण परिचालन वातावरण का सृजन करना होगा।

नयी विदेश व्यापार नीति 2023

वर्ष 2015-2020 के लिये विदेश व्यापार नीति में वर्ष 2020 तक 900 बिलियन अमेरिकी डॉलर के निर्यात का लक्ष्य रखा गया था;इस नीति और लक्ष्य को बढ़ाकर मार्च 2023 तक कर दिया गया था। हालाँकि भारत द्वारा वर्ष 2021-22 के 676 बिलियन अमेरिकी डॉलर के मुकाबले वर्ष 2022-23 की समाप्ति पर 760-770 बिलियन अमेरिकी डॉलर का कुल निर्यात किये जाने की संभावना है

सरकार ने विदेश व्यापार नीति (FTP) 2023 पेश की, जिसका उद्देश्य 2030 तक देश के निर्यात को 2 ट्रिलियन अमरीकी डालर तक बढ़ाना है। नई नीति पिछले 5-वर्षीय FTP घोषणाओं से अलग है क्योंकि इसकी कोई विशिष्ट अंतिम तिथि नहीं है और इसे संशोधित किया जाएगा। वाणिज्य मंत्री पीयूष गोयल ने उद्योग के प्रतिनिधियों और मंत्रालय के शीर्ष अधिकारियों की उपस्थिति में नीति को जारी किया। पीयूष गोयल ने कहा कि नई विदेश व्यापार नीति का मकसद कारोबार को इंसेटिव यानी प्रोत्साहन वाली रिजीम से हटाकर छूट और पात्रता आधारित रिजीम पर शिफ्ट करना है।

नयी विदेश व्यापार नीति 2023 एक नीति दस्तावेज़ है जो निर्यात को सुगम बनाने वाली समय-परीक्षणित योजनाओं की निरंतरता पर आधारित है, साथ ही यह एक ऐसा दस्तावेज़ है जो त्वरित व्यापार आवश्यकताओं के लिये उत्तरदायी है। यह नीति निर्यातकों के साथ विश्वास एवं साझेदारी के सिद्धांतों पर आधारित है और इसका उद्देश्य निर्यातकों को व्यापार करने में आसानी की सुविधा हेतु पुन: इंजीनियरिंग तथा स्वचालन की प्रक्रिया से है।

मुख्य दृष्टिकोण चार स्तंभों पर आधारित है: छूट के लिये प्रोत्साहन। सहयोग के माध्यम से निर्यात संवर्द्धन - निर्यातक, राज्य, ज़िले, भारतीय मिशन। व्यापार करने में सुगमता, लेन-देन की लागत में कमी और ई-पहल। उभरते क्षेत्र- ई-कॉमर्स निर्यात हब के रूप में ज़िलों का विकास करना एवं विशेष रसायन, जीव, सामग्री, उपकरण और प्रौद्योगिकी (SCOMET) नीति को सुव्यवस्थित करना।

सरकार का लक्ष्य वर्ष 2030 तक भारत के समग्र निर्यात को 2 ट्रिलियन अमेरिकी डॉलर तक बढ़ाना है, जिसमें वस्तु एवं सेवा क्षेत्रों का समान योगदान होगा। सरकार का लक्ष्य सीमा पार व्यापार में भारतीय मुद्रा के उपयोग को प्रोत्साहित करना भी है, जो जुलाई 2022 में RBI द्वारा पेश किये गए एक नए भुगतान निपटान ढाँचे से सहायता प्राप्त है। यह उन देशों के मामले में विशेष रूप से फायदेमंद हो सकता है जिनके साथ भारत व्यापार अधिशेष की स्थिति में है।

नयी विदेश व्यापार नीति 2023 की मुख्य विशेषताएँ:

पुनः इंजीनियरिंग प्रक्रिया और स्वचालन:

यह नीति निर्यात संवर्द्धन और विकास को प्रोत्साहन आधारित व्यवस्था से एक ऐसी व्यवस्था में परिवर्तित करने पर बल देती है जो प्रौद्योगिकी इंटरफेस एवं सहयोग के सिद्धांतों के आधार पर सुविधा प्रदान करती है। शुल्क संरचनाओं और IT-आधारित योजनाओं में कमी से MSME तथा अन्य के लिये निर्यात लाभ प्राप्त करना आसान हो जाएगा। निर्यात उत्पादन के लिये शुल्क छूट योजनाएँ अब क्षेत्रीय कार्यालयों के माध्यम से एक नियम-आधारित IT प्रणाली के वातावरण में कार्यान्वित की जाएंगी, जिससे मैन्युअल इंटरफेस की आवश्यकता समाप्त हो जाएगी।

निर्यात उत्कृष्टता वाले शहर (TEE):

मौजूदा 39 शहरों के अलावा चार नए शहरों, अर्थात् फरीदाबाद, मिर्ज़ापुर, मुरादाबाद और वाराणसी को TEE के रूप में नामित किया गया है। TEEs को MAI योजना के तहत निर्यात संवर्द्धन निधियों तक पहुँच प्राप्त होगी और वे निर्यात संवर्द्धन पूंजीगत वस्तु (EPCG) योजना के तहत निर्यात पूर्ति हेतु सामान्य सेवा प्रदाता (CSP) लाभ प्राप्त करने में सक्षम होंगे।

निर्यातकों को मान्यता:

निर्यात प्रदर्शन के आधार पर 'स्थिति' के साथ मान्यता प्राप्त निर्यातक फर्में अब सर्वोत्तम प्रयास के आधार पर क्षमता निर्माण पहल में भागीदार होंगी। 'ईच वन टीच वन' (Each One Teach One) पहल के समान, 2-स्टार और उससे ऊपर की स्थिति धारकों को इच्छुक व्यक्तियों को एक मॉडल पाठ्यक्रम के आधार पर व्यापार से संबंधित प्रशिक्षण प्रदान करने हेतु प्रोत्साहित किया जाएगा। स्थिति मान्यता मानदंडों को पुनः निर्धारित किया गया है ताकि अधिक निर्यातक फर्मों को 4 और 5-स्टार रेटिंग हासिल करने में सक्षम बनाया जा सके, जिससे निर्यात बाज़ारों में बेहतर ब्रांडिंग के अवसर पैदा हो सकें।

ज़िलों से निर्यात को बढ़ावा देना:

FTP का उद्देश्य राज्य सरकारों के साथ साझेदारी का निर्माण करना और ज़िला स्तर पर निर्यात को बढ़ावा देने तथा ज़मीनी स्तर पर व्यापार पारिस्थितिकी तंत्र के विकास में तेज़ी लाने हेतु ज़िलों को निर्यात हब (DEH) पहल के रूप में आगे ले जाना है। निर्यात योग्य उत्पादों एवं सेवाओं की पहचान करने और ज़िला स्तर पर समस्याओं को हल करने का प्रयास क्रमशः राज्य और ज़िला स्तर पर एक संस्थागत तंत्र - राज्य निर्यात प्रोत्साहन समिति और ज़िला निर्यात प्रोत्साहन समिति के माध्यम से किया जाएगा।पहचान किये गए उत्पादों और सेवाओं के निर्यात को बढ़ावा देने हेतु ज़िला विशिष्ट रणनीति को रेखांकित करते हुए प्रत्येक ज़िले के लिये ज़िला विशिष्ट निर्यात कार्ययोजना तैयार की जाएगी।

SCOMET नीति को कारगर बनाना:

भारत "निर्यात नियंत्रण" व्यवस्था पर अधिक ज़ोर दे रहा है क्योंकि निर्यात नियंत्रण व्यवस्था वाले देशों के साथ यह मज़बूत व्यापार एकीकरण सुनिश्चित कर रहा है। SCOMET पर हितधारकों के बीच व्यापक पहुँच और समझ है, साथ ही भारत द्वारा की गई अंतर्राष्ट्रीय संधियों एवं समझौतों को लागू करने हेतु नीति व्यवस्था को और अधिक मज़बूत बनाया जा रहा है। भारत में मज़बूत निर्यात नियंत्रण प्रणाली भारत से SCOMET के तहत नियंत्रित वस्तुओं/प्रौद्योगिकियों के निर्यात की सुविधा प्रदान करते हुए भारतीय निर्यातकों को दोहरे उपयोग वाली कीमती वस्तुओं और प्रौद्योगिकियों तक पहुँच प्रदान करेगी।

ई-कॉमर्स निर्यात को सुगम बनाना:

वर्ष 2030 तक ई-कॉमर्स क्षेत्र में निर्यात की संभावना 200 से 300 बिलियन अमेरिकी डॉलर के बीच होने का अनुमान है।FTP 2023 में भुगतान समाधान, बहीखाता पद्धति, वापसी नीति और निर्यात पात्रता जैसे संबंधित घटकों के साथ-साथ ई-कॉमर्स केंद्र बनाने का लक्ष्य और रोडमैप शामिल है। FTP 2023 में शुरुआती बिंदु के रूप में कूरियर-आधारित ई-कॉमर्स निर्यात हेतु खेप-आधारित सीमा को 5 लाख रुपए से बढ़ाकर 10 लाख रुपए कर दिया गया है। निर्यातकों की प्रतिक्रिया के आधार पर इस सीमा को संशोधित किया जाएगा या अंततः हटा दिया जाएगा।

EPCG योजना के तहत सुविधा:

EPCG योजना जो निर्यात उत्पादन हेतु शून्य सीमा शुल्क पर पूंजीगत वस्तुओं के आयात की अनुमति देती है, को और अधिक युक्तिसंगत बनाया जा रहा है। शामिल कुछ प्रमुख परिवर्तन हैं: प्रधानमंत्री मेगा एकीकृत वस्त्र क्षेत्र और परिधान पार्क (Prime Minister Mega Integrated Textile Region and Apparel Park-

PM MITRA) योजना को EPCG की सामान्य सेवा प्रदाता (Common Service Provider- CSP) योजना के तहत लाभ हेतु पात्र अतिरिक्त योजना के रूप में जोड़ा गया है। डेयरी क्षेत्र को प्रौद्योगिकी के उन्नयन हेतु डेयरी क्षेत्र का सहयोग करने के लिये औसत निर्यात दायित्व बनाए रखने से छूट दी जाएगी। सभी प्रकार के बैटरी चालित इलेक्ट्रिक वाहन, वर्टिकल फार्मिंग उपकरण, अपशिष्ट जल उपचार और पुनर्चक्रण प्रणाली, वर्षा जल संचयन प्रणाली, वर्षा जल फिल्टर तथा ग्रीन हाइड्रोजन को हरित प्रौद्योगिकी उत्पादों की सूची में जोड़ा गया है जो EPCG योजना के तहत अब कम निर्यात दायित्व आवश्यकता हेतु पात्र हैं।

अग्रिम प्राधिकरण योजना के तहत सुविधा:

घरेलू टैरिफ क्षेत्र (DTA) इकाइयों द्वारा उपयोग की जाने वाली अग्रिम प्राधिकरण योजना निर्यात वस्तुओं के निर्माण के लिये कच्चे माल पर शुल्क मुक्त आयात की सुविधा प्रदान करती है और इसे EOU तथा SEZ योजना के समान स्तर पर रखा गया है। निर्यात आदेशों के त्वरित निष्पादन की सुविधा के लिये स्व-घोषणा के आधार पर परिधान और वस्त्र क्षेत्र के निर्यात के लिये विशेष अग्रिम प्राधिकरण योजना का विस्तार किया गया। इनपुट-आउटपुट मानदंड तय करने के लिये स्व-अनुमान योजना के लाभ वर्तमान में अधिकृत आर्थिक ऑपरेटरों के अतिरिक्त 2 स्टार और उससे अधिक की श्रेणी वाले धारकों के लिये विस्तारित किये गए हैं।

एमनेस्टी योजना:

एमनेस्टी योजना के तहत पंजीकरण के लिये एक ऑनलाइन पोर्टल लॉन्च किया जाएगा और निर्यातकों को इस योजना का लाभ उठाने के लिये छह महीने की विंडो उपलब्ध होगी।इसमें प्राधिकरणों के निर्यात दायित्व में चूक से संबंधित सभी लंबित मामले शामिल होंगे, इन्हें अपूर्ण निर्यात दायित्व के अनुपात में छूट प्राप्त सभी सीमा शुल्क के भुगतान पर नियमित किया जा सकता है।

संदर्भ /उपयोगी ग्रंथ सूचीः

1. H. G. Mannur, *International Economics* ,Vikas Publishing House Pvt. Ltd. 2001
2. Bo Sodersten, International Economics ,Macmillan, 1999
3. Paul Krugman and Maurice Obstfeld: *International Economics: Theory and Policy, Dorling Kindersley India Pvt Ltd, 2009.*
4. Charles P Kindleberger, International Economics, Richard D. Irwin Inc., Illinois, 1968
5. Dominik Salvatore, International Economics, John Willy & Sons, Inc., 2008

6. International Economics: Theory and Policy, Ronald Press, New York 1968.

7. D. M. Mithani, International Economics, Himalaya Publishing House, Mumbai, 2006

8. Robert M. Dunn, and John H. Mutti, International Economics, Rougledge, London.

9. सुदामा सिंह एवं एम०सी० वैश्य, अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, ऑक्सफ़ोर्ड एंड आई०बी०एच० पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2007

10. एम०एल०झिंगन, अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, वृंदा पब्लिकेशन, दिल्ली, 2010.

11. ज्ञानेंद्र सिंह कुशवाहा, अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, दि मैकमिलन कंपनी आफ इंडिया लिमिटेड, नई दिल्ली,1979.

12. एच० एस० अग्रवाल, तथा सी०एस० बरला, *अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र* ,लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, 2003.